"चतुर्वेदीय रुद्रसूक्त"

(सान्वय व सार्थ गौरी व्याख्या सहित)

स्वामी शङ्करानन्दगिरि

"चतुर्वेदीय रुद्रसूक्त"

(सान्वय व सार्थ गौरी व्याख्या सहित)

सम्पादक व गौरीव्याख्या कर्त्ता

स्वामी शङ्करानन्दगिरि

पं० गौरीशङ्कर शर्मा
[illegible] पुस्तकालय,
[illegible] बनारस सिटी

कींमत रु. ३-०-०
[पोष्टेज अलग]

प्रकाशकः स्वामी शंकरानंदगिरि
श्रेयस्सत्र राजपीपळा
(गुजरात)

प्रथमावृत्तिः २०००

मुद्रक : बलवंतराय करुणाशंकर ओझा
गायत्री मुद्रणालय, कालुपुर,
अमदाबाद

प्रस्तावना

आजकल कालके माहात्म्यसे और संस्कृत विद्याकी ओर लोगोंको अभिरुचि पूर्ण न होनेसे प्रायः संस्कृत साहित्यकी पुस्तकोंके ओर जन समाजकी प्रवृत्ति ही नहीं होती है। उसमें भी वैदिक साहित्यकी ओर तो, प्रतिष्ठित विद्वद्वर्ग व्याकरणाचार्य, साहित्याचार्य, न्यायाचार्य और तीर्थादि पदोंसे विभूषित और महामहोपाध्यायादि उपाधि से अलंकृत महामाननीय विद्वद्वर्ग भी मौनावलम्बन कीए हुए प्रतीत होते है। इसका कारण एक तो काल, दूसरा आजकलके प्रचलित सम्प्रदाय और उन सम्प्रदायोंके ग्रंथोके अध्ययन अध्यापनमें ही जीवन परिसमाप्त हो जाता है। तीसरा वैदिक साहित्य के साधनोंकी पूर्ण सामग्रीका उपलब्ध न होना। चौथा उस साहित्यके विषयमें परंपरा प्राप्त ज्ञानका अभाव—पाँचवाँ हमलोगोंकी वैदिक

साहित्यके मूलमंत्रोंके अर्थोंके ज्ञान की पूर्ण जिज्ञासाका अभाव। ऐसे ऐसे अनेक कारणोंसे मानो वैदिक साहित्यमें गोता लगाना ही अशक्य और असम्भवनीयसा प्रतीत होता है।

कारण यह है कि जबसे वैदिक साहित्यका अवैदिक बौद्धादि साहित्यका संघर्ष हुआ तबसे ही वादविवाद भरत भिन्न भिन्न विषयोंकी आलोचनामें ही प्रायः प्रतिष्ठित विद्वद्वर्गोंका ध्यान आकर्षित हुआ। और मूल जो वैदिक साहित्य प्रधान था उसकी ओर भी अल्प अल्पतर उपेक्षा ही होती गई। जिसको प्रायः ढाई हजारके लगभग समय हुआ है।

एक तरफ वैदिक विषयकी गहनता दूसरी ओर वैदिक साहित्यकी दुर्लभता और अच्छे अच्छे प्रतिष्ठित विद्वद्वर्यों की चर्चाका अभाव, उसके साथ वेदके अंगजो निरुक्तादि ग्रन्थका पूर्ण अभ्यास न होने पर भी केवल व्याकरणादिके अभ्यास के बलपर जिन्होंने वैदिक साहित्यपर चर्चा भाष्य या टीका रची हैं उनमें न्यूनताकी सम्भावना से या न्यूनता और अयथार्थता के संशय से भी यह निर्णीत नहीं हो सकता कि यह अर्थ यथार्थ है या नहीं। ऐसी जटिलता होते हुए भी हमें सर्व वेद भाष्यकार पूज्य सायणाचार्यको पूर्ण धन्यवाद देनाही चाहिये कि जिन्होंने ऐसे विकट समयमें भी सर्व वेदोंपर भाष्य रचकर हमारे वैदिक साहित्यका पूर्णतया

रक्षण किया है। इतनाही नहीं किन्तु आज कोई भी वैदिक साहित्यके अवलोकन करने वालेको वैदिक साहित्यमें प्रवेश करने के लिए प्रथम ही पूज्य सायणाचार्यका भाष्य ही सहायक होगा। ऐसा दूसरा कोई ग्रन्थ ही नहीं जो वैदिक साहित्यमें उसकी तुलना कर सके।

विशेष तो क्या लिखे? किन्तु प्रतिष्ठित विद्वद्वर्ग भी पूज्य सायणाचार्यका अवलम्बन करके ही यथाशक्ति अपनी बुद्धिबल से वैदिक साहित्यमें कुछ कुछ अभिप्रायादि प्रगट करते रहते हैं। इसी लिए ही पूज्य सायणाचार्यका ही अवलम्बन करते हुए "चतुर्वेदीयरुद्रसूक्त" के सम्पादक और उसके उपर सान्वय और सार्थ गौरी व्याख्याके रचयिता श्रीमत् परमहंस परिव्राजकवर्य श्री शङ्करानन्दगिरि स्वामीजी महाराजने बड़े ही परिश्रमसे चारों वेदोंकी सम्यक् समालोचना करके आजीवन परिश्रम पुरःसर यथाशक्य प्रयत्न करके तैयार किया है। जो मुझ साक्षर विद्वद्वर्योंकी सेवामें समर्पित किया जाता है।

" नवाशुचिर्नाप्यनिर्णिक्त पाणिर्नां ब्रह्मविज्जुहुयान्ना विपश्चित्।
बुभुत्सवः शुचिकामाहि देवा नाश्रद्धानाद्धि हविर्जुषन्ति॥

महाभारत—२।१८६।१८

उपरोक्त श्लोकके अर्थको ध्यानमें रखते हुए और वैदिक मंत्रोंके अर्थके विषयमें जो आजकल गाढतम अन्धकार फैला हुआ है उसमें स्वामीजी महाराजने यह चतुर्वेदीय रुद्रसूक्तरूप ग्रन्थ रत्नको प्रकाशित करके अपूर्व ही प्रकाश किया है। आशा है कि विद्वद्वर्गभी इसका यथार्थ सत्कार करेंगे। मैं भी पूज्य स्वामीजी को शतशः धन्यवाद देता हूँ कि, जिन्हेंाने ऐसी अपूर्व वैदिक साहित्यकी सेवा की है।

पूज्य स्वामीजीने इस " चतुर्वेदीयरुद्रसूक्त " में बारह सूक्तोंका समावेश किया है। यह सूक्त संग्रहकी संकलना स्वयं स्वामीजीने ही की है। इसमें ऋग्वेदके छः सूक्त हैं वे प्रायः ऋग्वेदीय शाकल्य शाखा और सायणभाष्यका अवलम्बन करके किया है। साथ ही में कौषीतकि ब्राह्मण, ऐतरेय ब्राह्मण और ऐतरेयारण्यकका भी अवलम्बन लिया है।

अथर्वणवेदके तीन सूक्त हैं। उसमें शौनकीय शाखा और सायणभाष्यका अवलम्बन करते हुए गोपथ ब्राह्मणका भी अवलम्बन किया है।

यजुर्वेदमें दो सूक्त उसमें कृष्ण यजुर्वेदीय तैतिरीय संहिता कपिष्ठलकठ संहिता—मैत्रायणीसंहिता काठकसंहिता और तैत्तरीय ब्राह्मण तैत्तरीयारण्यकका अवलम्बन किया

है। शुक्ल यजुर्वेदीय कण्व संहिताका अवलम्बन किया है। माध्यन्दिनीय शतपथ ब्राह्मणका भी अवलम्बन लिया है।

सामवेदमें कौथुमीय शाखा सायणभाष्यका अवलम्बन करते हुए षड्विंश ब्राह्मण आरण्य संहिता, ताण्ड्य ब्राह्मण, जैमिनीय ब्राह्मणका अवलम्बन किया है इसका एकही सूक्त है।

इन बारह सूक्तोंपर श्रीमान् पूज्य स्वामीजीने स्वतंत्र गौरी नामकी व्याख्या लिखी है। जो सर्व सुज्ञ साक्षर विद्वद्वर्गोंको अवश्यमेव आनन्ददायिनी होगी ऐसी शुभाशा है।

ऐसे महान् वैदिक साहित्यके विषय पर वैदिक साहित्यके ज्ञानकी न्यूनतासे मैं कुछ भी स्वतंत्र अभिप्राय प्रगट नहीं कर सकता तथापि सर्व मान्य सकल वैदिक साहित्यके रसिक प्रतिष्ठित साक्षर विद्वद्वर्गोंसे सविनय प्रार्थना करता हूँ कि आप इस अपूर्व ग्रन्थको एकवार अवश्यही साद्यन्त अवलोकन करें ओर अभिप्राय न्यूनता व कुछ रही हुई अशुद्धियोंको अवश्य निम्न लिखित पते पर भेजने की कृपा करें।

क्योंकि उपर लिखे हूए ग्रन्थोंकी सहायता और यथाशक्ति परिश्रम करने पर भी पूर्णतया जिन जिन ग्रन्थोंकी आवश्यकता थी उन उन ग्रन्थोंके न मिलनेसे यथार्थ सफलता नहीं मिली है यह बाततो मैंने श्रीमान् पूज्य स्वामीजीके श्री मुखसे श्रवण की है।

विशेषमें यह वैदिक ग्रन्थ होनेसे अशुद्धियां भी अधिक रह गई है शुद्धिपत्रक देते हुए भी सम्भव है अशुद्धियां रही हों,

अत एव विद्वत्वर्ग शुद्धिपत्रक देखकर पढे और कोई भूल दृष्टिगोचर होतो सूचित करें ।

" साक्षर विद्वद्वर्गोंसे प्रार्थना "

जो विद्वद्वर्ग इस ग्रन्थके मंत्रोमें, जहांपर अर्थ आदिमें न्यूनता प्रतीत हो उनमंत्रो को सान्वय और सार्थ या विरुद्ध अर्थोंकी सूचना अवश्यमेव भेजनेकी कृपा करें । जिससे इस ग्रन्थकी दूसरी आवृत्तिमें अभिप्रायानुसार कार्य करने की अनुकूलता रहे । यह प्रथमावृत्तितो सर्व महात्मा और विद्वद्वर्गोंकी समालोचनार्थ ही छोटे अक्षरोमें व्याख्यासहित प्रकाशित की है किन्तु दूसरी आवृति सर्व विद्वद्वर्गोंके अभिप्रायसहित सुधार कर बड़े अक्षरोमें छपानेका विचार है ।

और इसी लिए धनिक और उदार पुरुषों से भी यह प्रार्थना है कि वे इस ग्रन्थमें पूर्ण सहायता देकर और ग्राहक बनकर अमूल्य वितरण करनेमें सहायक हों । क्यों कि पूज्य स्वामीजीकी यह उत्कट अभिलाषा है कि यह ग्रन्थ विद्वानवर्ग और महात्माओंके पास बिना मूल्य ही भेजा जाय । ईश्वर स्वामीजीके विचारोंको सफलता दे ऐसी शुभ भावना है इत्यलम् सुज्ञेषु किमधिकम् ॥

ता. १९–२–३५ }
अमदाबाद. }

राजपीपलानिवासी
शास्त्री अम्बालाल मगनलाल भट्ट

ऋग्वेदीय रुद्र सूची

	पृष्ठ
मंगलाचरण	१
नास्तिक आस्तिक प्रजाउत्पत्ति	२
वेदका महिमा	३
महा प्रलय	६
महा प्रलयमें रुद्र	७
उमाकी सत्ता माया	८
महेश्वर नीलकण्ठ श्वेत कण्ठ	९
माया निरुक्ति	१०
ब्रह्म उत्पत्ति	१४
स्वधा प्रयति	१८
ब्रह्मासे पंच भूत प्रगठ	२२
परम व्योम वासी	२३
इन्द्र माया पर्य्याय	२५
ब्रह्मा विराट् उत्पत्ति	३४

सात सूर्य	४५
अदिति निरुक्ति	५२
ब्रह्म लोक	५४
अघमर्षण	६१
माया मायिक	६७
सृष्टिके विषयमें प्रश्न उत्तर	७४
अव्यक्त से ब्रह्मा उत्पत्ति	७६
हिरण्य गर्भ व्याख्या	८०
ब्रह्म लोक	९९
पुरुष सूक्त व्याख्या	११३
नाभा नेदिष्ट रुद्र सम्वाद	१५५
प्रजापति उषा गमन	१५८
रुद्रने प्रजापतिका वध किया	१६२
यम लोक वर्णन	१८१
यज्ञमें पशु वध विचार...	१८६
चतुर्थ ब्रह्म लोक	१९२
स्वर्ग लोकका प्रमाण	१९५
त्रिपुर वध आर्योंकी उत्पत्ति	१९५
यक्ष देव संवाद	१९९
त्र्यम्बक अर्थ	२०५
क्षर अक्षरसे पर रुद्र	२०७
गायत्री अर्थ	२१५
देवताओंकी प्रार्थना	२२९
सब नदीयों में बडी सरस्वती	२५३
कुरु क्षेत्रमें तारक मंत्रका उपदेश	२५८

भगीरथने रुद्रकी कृपासे सरस्वतिके जळको
गंगा नामसे प्रसिद्ध किया २६०
रुद्रपुत्र मरुत २६१
रुद्र ३०१
एक रुद्र... ... ... ३१०
शिवरात्री ३२२
द्वासुपर्णा व्याख्या ३२५
अद्वैत स्वरूप ३५०
देवी सूक्त ३५२

अथर्वण वेदीय रुद्र सूची

माया ३६७
ब्रह्म ज्येष्ठा ३६९
पुण्डरीकं ३७०
एक ही रुद्र ३७१
अतिथि सत्कार ३७८
भवशर्व ३८३
भवाशर्वौ सूक्त व्याख्या... ... ... ३९४
भव राजन् ४१६
रुद्र प्रार्थना ४२२
मूर्ति स्वरूप ४३७
अद्वैत स्वरूप ४४१
अर्यमणं यजामहे ४४३
यो अग्नौ रुद्रः ४४७

यजुर्वेदीय रुद्र सूची

रुद्राध्याय नमस्ते	४५१
मन्त्रार्थ	४५४
घोर अघोर स्वरूप	४५८
चार वर्ण	४९१
संन्यासी	४९३
एक एक रुद्रः	५२२
त्र्यम्बकं	५२३
पञ्चस्वन्तः	५२८
अद्वैतवाद	५३२
ईशावास्य	५४२
लिंग योनि स्वरूप	५४४
समष्टि व्यष्टि स्वरूप एक रुद्र हैं ॥	५५१

सामवेदीय रुद्र सूची

रुद्र स्वरूप	५५५
पवित्रं ते विततं मंत्रार्थ	५६१

विज्ञप्ति पत्रक

" देवकल्पतरु " नामका एक अपूर्व ही ग्रन्थ थोडेही समयमें प्रकाशित-होगा-जिसमें-सर्वपुराण वाल्मीकिय रामायण, सर्व स्मृतियों ओर षड् दर्शनादि सर्व विषयोंकी सामान्यरूपसे समालोचना होगी नाना देवोंके विवादके विषयमें, सृष्टिके विषयमें अनेक ईश्वर और कर्त्ताके विषयमें जो भिन्न भिन्न पर्यायोका यथार्थ अर्थ न समझनेसे जो अनेक वाद उपस्थित हुए हैं। उन सर्व शंकाओंकी निवृत्ति करनेमें यह अपूर्व ही रहेगा। दूसरा भिन्न २ पर्यायवाचक शब्दोका प्रयोग कहाँ किया गया है और समानतावाचक शब्द भी कौन २ हैं वे भी इसमें बतलाया गया हैं। प्रायः ग्रन्थ के मुख्य विषय-(१) प्रलय प्रकरण, (२) मायावाद (३) ब्रह्मा और शिवका स्पष्ट वर्णन (४) आर्योंकी उत्पत्तिका मूलस्थान (५) वर्णाश्रमधर्म (६) ज्ञान, कर्म, उपासना आदि सर्व विषयोंमें भी साम्यक् विचार किया गया है॥ सर्वथा-यह ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी होगा। इस लिस सज्जन, विद्वद्वर्ग और धनिकवर्ग से प्रार्थना है कि अवश्यमेव इसके ग्राहक-साहयक बनकर इस ग्रन्थ के प्रकाशितमें सहायता करें. इत्यलम्-सुज्ञेषुकिमधिकम्.

ग्राहक बननेका पता
स्थल-श्रेयस्सत्र
राजपीपला-(गुजरात)

स्वामी शंकरानन्दगिरि

श्रीमंत्परमहंस परिव्राजिकाचार्य आत्मानन्द सरस्वती विरचित ऊपर लिखे हुए पतेपर नीचे लिखे हुए ग्रन्थ गुजराती भाषामें छपे हुए प्राप्त हो सकते हैं।

(१) श्रीमद्भगवद्गीता
शांकर भाष्यानुवाद पक्की जिल्द किं. २–८–०
(२) गीतासिन्धुतरंगावली ,, ०–८–०
(३) गीता रहस्य ,, ०–६–०
(४) धर्माख्यान ,, ०–२–०

(प्रत्येकका पोष्टेज अलग होगा)

॥ ॐ अथ श्री ऋग्वेदीय रुद्र प्रथम सूक्त ॥

निराकारं दिव्यं निगमगदितं, क्लेशरहितं
चिदानन्दं नित्यं किल निखिललोकैकजनकं ॥
उमाकान्तं भर्गं भवविषयभोगैर्विरहितं
नमामि श्रीरुद्रं परमसुखदं मोक्षसदनम् ॥१॥
सुरासुरैः सेवितपादपद्मं नमामि धातारमनेकरूपं ॥
ब्रह्माणमीशं परमेष्ठिनं च स्वानन्दमग्नं पुरुषं पुराणम्॥२॥
यास्कं निरुक्तकर्त्तारं शंकराख्यं शिवात्मकम् ॥
सर्ववेदभाष्यकारं सायणं प्रणमाम्यहम् ॥३॥
ॐ भद्रं नो अपि वातय मनोदक्षमुत क्रतुम् ॥
ॐ शांतिः शांतिः शांतिः ॥

रुद्र–ब्रह्माके सहित यास्काचार्य, शंकराचार्य, सर्ववेदभाष्यकार सायणाचार्यको प्रणाम करता हूँ ॥ इस मंगलाचरणके अनन्तर ऋग्वेदसे रुद्र मंत्रोंको शृङ्खलाबद्ध कर, उस रुद्र पर गौरी व्याख्या करता हूँ। इस व्याख्यामें चारो वेदोंकी उपलब्ध संहिताओंके

सहित, ब्राह्मण, और आरण्यक-उपनिषदोंका ही प्रमाण उद्धृत किया जायगा। ये सब ग्रन्थ, जैन बौद्धमतकी उत्पत्ति से बहुत पहिले के हैं। इसलिये ही मैं उस शुद्ध वैदिक धर्मका माननेवाला हूँ॥

प्रजा ह तिस्रो अत्यायं मीयुर्न्य१न्या अर्कमभितो विविश्रे ॥
बृहद्ध तस्थौ भुवनेष्वन्तः पवमानो हरित आविवेश ॥ १ ॥

अन्वयार्थ—(ह) प्रसिद्ध (तिस्र) तीन भागवाली (प्रजाः) प्रजा (अत्यायं) नास्तिक भावको (ईयुः) प्राप्त हुई। (अन्या) चतुर्थ भागकी दूसरी प्रजा थी–उसके भी तीन भाग हुए–उसमेंकी एक भाग प्रजा (अभितः) सर्वत्रसे (अर्के) अग्निको (विविश्रे) सेवन करने लगी। (हरितः) दिशाओं में (आविवेश) प्रवेश करनेवाले (पवमानः) वायुकी उपासनामें दूसरे भागकी प्रजा प्रवृत्त हुई (ह) प्रसिद्ध (भुवनेषु) तीनों लोकोंके (अन्तः) मध्यमें (तस्थौ) अवस्थित (बृहत्) सूर्यको तीसरे भागकी प्रजाने (नि) निरंतर सेवन किया ॥ ऋग्० ८। ९०। १४॥

व्याख्या—महा प्रलयके अनन्तर जो प्रजा प्रगट हुई उसके तीन भाग नास्तिक हुए, और एक भाग आस्तिक था, उस चतुर्थ भागके भी तीन भाग हुए, एकने अग्निकी, दूसरेने वायुकी, तीसरेने सूर्यकी उपासना करना आरम्भ कर दिया। सबका पूज्य अग्नि है। वायु सब दिशाव्यापी ओर देहमें प्राणरूप है। तीनों लोकोंके मध्यमें महालिंगरूप सूर्य स्थित है। तीन भागकी प्रजा जो नास्तिक थी, सो पशु, पक्षी, मत्स्य आदि प्राणि हुई, और वृक्ष आदि अन्न हुई [**अर्को वा अग्निः** ॥ अग्निही अर्क है। कपिष्ठल कठ संहिता ३१। ५] **वायुरेव पवमानः** ॥ वायु ही

पवमान है ॥ ऐतरेयारण्यक २। १। १] बृहद्भुवनेष्वन्तरसा चादित्यः ॥ भुवनोंके मध्यमें यह सूर्य ही वृहत् है ॥ ऐतरेयारण्यक २। १। १] अग्नि वायु सूर्य ये ही तीन देव हैं ॥ १ ॥

यस्तित्याज सचिविदं सखायं न तस्य वाच्यपि भागो अस्ति ॥ यदीं शृणोत्यलकं शृणोति नहि प्रवेद सुकृतस्य पन्थाम् ॥ २ ॥

अन्वयार्थ—(सचिविदं) मित्रके समान वेदको जान कर, वेद का पठन करनेवाले (सखायं) मित्रको वेद पालन करता है। (यः) जो पुरुष (तित्याज) वेदका त्याग कर लौकिक ग्रन्थोंको पढता है (तस्य) उस द्विजातिकी परिश्रम की हुई (वाचि) वाणीमें परलोकके लिये (अपि) कुछ भी (भागः) भाग (न) नहीं (अस्ति) है। (यत्) जो कोई (ई) लौकिक वाणीको (शृणोति) सुनता है सो सब ही (अलकं) व्यर्थ (शृणोति) सुनता है, (सुकृतस्य) उत्तम वैदिक कर्म करने वालेके (पन्थां) मार्गको (प्रवेद) प्राप्त (नहि) नहीं होता ॥ ऋग् १०। ७१। ६ ॥

व्याख्या—परम हितकारी मित्रके समान वेदको जानकर, वेदका पठन पाठन करनेवाले मित्र द्विजको, वेद देवता पालन करता हुआ, मरणके पश्चात् स्वर्गको ले जाता है जो पुरुष वेदके पठन पाठनको त्याग कर, मनुष्योंके रचित पुस्तकोंको पढता है, उस द्विजातिकी परिश्रम की हुई वाणीमें, परलोकके लिये कुछ भी फल नहीं है। जो कोई लौकिक वचनको सुनता है सो सब व्यर्थ ही सुनता है, उत्तम वैदिक कर्मके देवयान-पितृयान मार्गको नहीं प्राप्त होता। केवल नीच योनियोंमें जन्म लेता है। जैसे इन्द्रजाली वृक्षको उत्पन्न कर, फलयुक्त करता है। सो वृक्ष फल सहित

देखने मात्रको है। तैसे ही मनुष्यकी मधुरतायुक्त वाणीसे रचे हुए, ग्रन्थ भी, इस लोकमें मोहको उपजाते हुए, परलोकमें, निष्फल हैं। [एष पन्था एतत्कर्म तद्ब्रह्म तत्सत्यं ॥ तस्मान्न प्रमाद्येतन्नातीयात् ॥ नह्यत्यायन्पूर्वे येऽत्यायंस्ते पराबभूव ॥ यह वैदिक मार्ग इस और परलोक हितकारी है। यह अग्निहोत्र रूप कर्म है। यह व्यापक स्वर्गरूप फल है। यही वैदिक मार्ग सत्यस्वरूप रुद्रकी प्राप्ति करानेवाला है। इस लिये वैदिक कर्ममें आलस्य न करें, और उसका न त्याग करे। वसिष्ठ, भरद्वाज आदि महर्षियोंने वेदका कभी त्याग नहीं किया। जिन दैत्योंने त्याग किया, वे सब दुर्गतिरूप पराभवको प्राप्त हुए ॥ ऐतरेयारण्यक २। १। १] स्मृतिः प्रत्यक्षमैतिह्यं ॥ अनुमानचतुष्टयं ॥ एतैरादित्य मण्डलं ॥ सर्वैरेव विधास्यते ॥ विस्तारपूर्वक वेदके अर्थका स्मरण करना ही स्मृति है। वेदके वाक्यका वारंवार मनन करना ही प्रत्यक्ष प्रमाण है। परंपरागत वैदिक, उर्वशी पुरुरवा आदिकी गाथा सुनना ऐतिह्य नामका प्रमाण है। वेद अविरोधी देश कालके अनुकूल, चौथा धर्म ऋषिप्रणीत ही अनुमान है। इन सब ही प्रमाणों के द्वारा, सूर्य मण्डलवर्ति रुद्रको साक्षात्कार करनेमें पुरुष समर्थ होता है॥ तैत्तरीयारण्यक १। २। १] सूर्यो वरिष्ठः ॥ व्यापक सूर्यस्थ लिंगरूप चेतन ही उत्तम है॥ तैत्तरीय ब्राह्मण ३। ७। ७। १] येन सूर्यस्तपति तेजसेद्धः ॥ ना वेद विन्मनुते त बृहन्तं ॥ एष नित्यो महिमा ब्राह्मणस्य ॥ जिस चेतन रुद्रके द्वारा सूर्यमण्डल प्रकाशित हो रहा है उस महालिंगरूप रुद्रको, शब्द प्रमाणात्मक वेदसे रहित मनुष्य नहीं जानता है। व्यापक रुद्रका यह नित्यज्ञानस्वरूप महिमारूप प्रभाव है ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३। १२। ९। ७] शब्द प्रमाणका

वयं यच्छब्द आह तदस्माकं प्रमाणं ॥ हम वेद प्रमाण माननेवाले हैं। जो कुछ भी वेदने कहा है सो ही प्रमाण है। व्याकरण महाभाष्य में पतञ्जलिने कहा है। [अग्नि वै ब्राह्मणः ॥ व्यापक रुद्र ही ब्राह्मण है। कपिष्ठल कठ स. ४। ५।] रुद्रो वा अग्नि ॥ रुद्रका नाम ही अग्नि है॥ कृष्ण यजु कपिष्ठल कठ संहिता अध्याय ४०। ५] शितिङ्गो बृहच्छेपः॥ श्वेत स्वरूपात्मक शुद्ध वडा लिंग रुद्र है। अथर्वण ११। ७। १२।] रुद्रं बृहन्तं ॥ स्वयं प्रकाशी रुद्र ही जगत्की उत्पत्ति प्रलयका महास्थानरूप लिंग है। लिं—प्रलय के समय जो विश्वको अपनेमें लीन करता है और सृष्टि में ग—गमन रूपसे जगत् प्रगट करता है, सो ही लिंगरूप नित्य घन चेतन है। ऋग्० ७। ११। ४।] महती देवता॥ वडा देवता रुद्र है। तैत्तरीय ब्रा० ३। ९। १७। ३।] भूमा वै होता॥ अनन्त वल स्वरूप रुद्र ही भूमा है। यही रुद्र प्रलयमें सबका हवनरूपसे संहार कर्ता है। तैत्तरिय ब्रा० ३। ८। ५। ३।] भूमा मा प्रहासीत् ॥ अनन्त स्वरूपधारी रुद्र भगवान् आप, हमारे अज्ञान अपराधों के द्वारा, हमको निकृष्ट योनियोंमें डालकर प्रहार मत करो-क्योंकि हम आपकी दयाके पात्र हैं। कृष्ण यजु काठक सं० अनुवचन ३। ३।] भूमना ॥ वहुत महिमासे युक्त। ऋग्० । ३१। ६ १०।] ऋतस्य पथा॥ सत्यज्ञान स्वरूप रुद्रके प्रदर्शित वेद मार्गके द्वारा ही रुद्र प्राप्त होता है॥ ऋग्० १०। ३१। २] विश्वा हेन्द्रो अधि-वक्तानोस्तु ॥ सामान्य और विशेष स्वरूपसे प्रकाशी रुद्र सर्वदा हमारे लिये वेद ज्ञानका उपदेष्टा होवे। ऋग्० १। १००। १९।] तव रुद्र प्रणीतिषु॥ हे रुद्र आपके बताये हुए, वेदोंमें आपके उस सुखको हम प्राप्त करें॥ ऋग्० १। ११४। २।] सो वेद

कैसा है। सकामी जनोंके विविध मनोरथोंको पूर्ण करनेवाला कर्मकाण्डमय कोमल पल्लव, क्रममुक्तिवालोंके लिये उपासनारूप पुष्प, और कैवल्य रुद्र स्वरूपकी प्राप्ति के लिये ज्ञानात्मक सुन्दर फल युक्त है। त्रिकाण्ड स्वरूप महा कल्पद्रुम वेदकी सघन छायामें बैठकर त्रिविध स्वभाववाली प्रजा अपनी अपनी इच्छाके अनुसार सुख पाती है। जिसको तरनेकी अभिलाषा होवे वह कभी वेदके अद्भुत मार्गका त्याग न करे ॥२॥

नासदासीन्नो सदासीत्तदानीं नासीद्रजो नो व्योमा परो यत् ।। किमावरीवः कुह कस्य शर्मन्नम्भः किमासीद्गहनं गभीरम् ।। ३ ।।

अन्वायर्थ—(तदानीं) उस महा प्रलयमें (असत्) कारणात्मक प्राणशक्ति माया (न) नहीं (आसीत्) थी। (सत्) कारणका सूक्ष्मकार्य सूत्रात्मा (नो) नहीं (आसीत्) था। (रजः) भूमी लोक रजत कपाल (न) नहीं (आसीत्) था। (व्योम) मध्य अन्तरिक्ष (नो) नहीं था। (यत्) जिस मध्य लोकसे (परः) उत्तम (अम्भः) दिव्य जलवाला द्यौ (गहनं) दुर्गम्य (गभीरं) अगाध अवस्थावाला सुवर्ण कपाल भी (किं-प्रश्न) नहीं था? तो यह विश्व (किं) किससे (आवारीवः) ढका हुआ था? (कुह) किस अवस्थामें, और (कस्य) किसके (शर्मन्) आश्रय में (आसीत्) था॥ ऋग्० १०। १२९। १॥

व्याख्या—उस महा प्रलयमें विकारी मायारूप प्राणशक्ति नहीं थी, उस अव्याकृत कारणका, सूक्ष्म कार्यरूप हिरण्यगर्भ भी नहीं था। रजत कपाल भूलोक नहीं था, मध्यलोक अन्तरिक्ष नहीं था, जिस आकाशसे, श्रेष्ठ दिव्य जलवाला, द्युलोक, दुर्गम्य अगाध

अवस्थावाला, सुवर्ण कपाल भी क्या नहीं था ? तो यह जगत् किससे ढका हुआ था, किस आकारमें, और किसके आधारमें था [इदं वा अग्रे नैव किञ्चनाऽऽसीत् ॥ न द्यौरासीत् ॥ न पृथिवी नान्तरिक्षं ॥ यह जगत् अपनी उत्पत्तिके पहिले नाम रूपसे कुछ भी नहीं था । द्यौ रूप स्वर्ग नहीं था, आकाश नहीं था, और भूलोक भी नहीं था । तैत्तरीय ब्रा० २ । २ । ९ । ९ ।] तीन लोकरूप असंख्य फलोंके सहित, महः जनः तपः शाखा स्कन्धवाला ब्रह्मलोकमय मूल वृक्ष भी नहीं था ॥ ३ ॥

न मृत्युरासीदमृतं न तर्हिरात्र्या अह्न आसीत्प्रकेतः ॥
आनीदवातं स्वधया तदेकं तस्माद्धान्यन्न परः किञ्चनास ॥४॥

अन्वयार्थ—(मृत्युः) मरणधर्म (न; नहीं (आसीत्) था । (अमृतं) जीवनधर्म (न) नहीं था । (रात्र्याः) रात्रीका (अह्नः) दिनका (प्रकेतः) विभाग करनेवाला सूर्य भी (न) नहीं (आसीत्) था । (तर्हि) तो क्या था ? (अवातं) वायु रहित (स्वधया) अपनी शक्तिके सहित (तत्) सो (एकं) अद्वितीय चेतन (आनीत्) था । (तस्मात्) उस (ह) प्रसिद्ध अनादि चेतन रुद्र से (परः) उत्तम (अन्यत्) दूसरा (किञ्चन) कुछ भी (न) नहीं (आस) था ॥ ऋग्० १० । १२९ । २ ॥

व्याख्या—मरण जीवन धर्म नहीं था, रात्री दिनका विभाग करनेवाला सूर्य चन्द्रमा भी नहीं थे । तो उस महा प्रलयमें क्या था यह प्रश्न और उत्तर कर्त्ता प्रजापति है । समष्टि सूत्रात्मा प्राणके, श्वास प्रश्वास रूप कल्प सृष्टिओंकी उत्पत्ति और प्रलय आदि व्यापार रहित शान्त समुद्रके समान, सर्व उपाधि शून्य, जो रुद्

शब्द वाच्य ऋत स्वयं प्रकाशी चेतन । द्र-शब्द वाच्च अनन्ताकाश नित्यज्ञानस्वरूपिणी अपनी अर्धाङ्गना उमा शक्तिके सहित अखण्ड अद्वितीय रुद्र ही था । रुद्रकी अनन्त वल शक्ति के किसी एक भागमें जगत्का उपादान कारण विकारी होने पर भी, निर्विकारीके समान रहता है । जैसे वृक्ष शक्ति अपनी उत्पत्ति के पूर्व वीजमें रहती है । तैसे ही अव्याकृत, विकारी अवस्थामें आनेके प्रथम निर्विकारी रुपसे अनन्त शक्तिमें एक ज्ञानाकार होकर रहता है । सो प्राणशक्ति उमाकी ही एक विशेष अवस्था है । यही अज्ञान बीज निर्विशेष सत्ताके रूपसे प्रलयमें रहता है । उमासे भिन्न न होने के कारण ही, इस बीज सत्ताका नाम भी स्वधा है । जैसे अग्निकी दाहक शक्ति अग्निसे पृथक् नहीं । तैसे ही निर्विकारी उमासे विकारी वीज सत्ता भिन्न नहीं है । उमा विकारी अवस्थासे अवश्य भिन्न है । और उमा चेतनकी ज्ञान अवस्था है । इस लिये ही ज्ञानस्वरूप रुद्रका आकार नहीं हैं । उस प्रसिद्ध अनन्त शक्ति स्वरूप रुद्रसे भिन्न और कुछभी उत्तम नहीं था [**स्वधया शम्भुः** अपनी शक्तिके सहित रुद्र सुखस्वरूप है । ऋग्० ३ । १७ । ४ ।] **यदाऽतमस्तन्न दिवा नारात्रिर्नसन्न चासच्छिव एव केवलः ॥** जब महाप्रलयरूप समाधिमें दिन नहीं, रात्रि नहीं, और कार्य नहीं कारण नहीं था, तव सब प्रकारके आवरणसे रहित केवल अद्वितीय रुद्र ही था । श्वेता० उ० ४ । १८ ।] **एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे ॥** अखण्ड एक रस अद्वितीय रुद्र ही विराजमान है, उससे भिन्न और कुछ भी नहीं है । कृष्ण यजु तैत्तरीय सं० ५ । ८ । ६ । १ ।] **इन्द्रः परो मायाभिः ॥** प्रकाश स्वरूप रुद्र माया के सब प्रकार के आवरणोंसे रहित उत्तम है । ऋग्० ५ । ८८ । २ ।] **यः परः स**

महेश्वरः ॥ जो विकारी मायासे रहित है सो ही महेश्वर है। तैत्तरीयारण्यक १० । १० । २४ ।] **ऋतं बृहत्** ॥ सत्य स्वरूप महान् रुद्र है । ऋग्० १ । ७५ । ५ ।] **ऋतस्य** ॥ अग्निका। ऋत नाम व्यापक रुद्रका है । ऋग्० १। ६५ । ४ ।] **अग्नि र्ब्रह्माग्निर्यज्ञः** ॥ अग्नि महास्वरूप है और पूज्य है । अग्नि नाम रुद्रका है ॥ शुक्ल यजु काण्व संहिता १ । ४ । ५ । १ ।] **ब्रह्म देवा वास्तोस्पतिं** ॥ यज्ञके स्वामी (ब्रह्म) रुद्रको देवोंने प्रसन्न किया । ऋग्० १० । ६१ । ७ ।] इस रुद्रसे भिन्न और कोई भी उत्तम नहीं। सबका प्रलयमें नाश हो जाता है। रुद्र ही एक उमाके सहित प्रलयमें रहता है ॥ ४ ॥

तम आसीत्तमसा गूह्लमग्रेऽप्रकेतं सलिलं सर्वमा इदम् ॥
तुच्छ्येनाभ्वपिहितं यदासीत्तपसस्तन्महिनाजायतैकम् ॥५॥

अन्वयार्थ—(इदं) यह जगत् उत्पत्तिके (अग्रे) पहिले (सर्व) सब प्रकारके (अप्रकेतं) चिन्ह रहित (गूह्ल) अति गुप्त (तमसा) निर्विशेष बीज सत्तासे (आ) ढका हुआ (तमः) आज्ञानात्मक सुख स्वरूप ही (आसीत्) था। (यत्) अज्ञान विश्व रचनाके कुछ पहिले जिस अनन्त शक्ति स्वरूपके, एक भागमय कण्ठमें, विकारीरूपसे स्फुरण हुआ (तत्) उस माया-रूप विषको धारण करनेसे रुद्रका नाम नीलकण्ठ (आसीत्) हुआ। उतना ही (आभु) व्यापक चेतन (तुच्छयेन) मिथ्या माया जालके द्वारा (अपिहितं) आच्छादित हुआ। (तपसः) मैं एक हूँ, बहुत होऊँ, इस सृष्टि रचनात्मक संकल्पके (महिना) प्रभावसे (एकं) एक कारण (सलिलं) प्राणशक्ति रूप अव्याकृत (अजायत) प्रगट हुआ ॥ ऋग्० १० । १२९ । ३ ॥

व्याख्या—यह जगत् अपनी उत्पत्ति के पहिले, सब प्रकार के चिन्ह रहित, अत्यन्त गूढ निर्विशेष बीज शक्तिसे ढका हुआ अज्ञानात्मक सुखस्वरूप ही था। जैसे घट उत्पत्तिके पूर्व मृत्तिकासे ढका हुआ, मृत्तिकामय होता है। तैसे ही स्थूल सूक्ष्म कार्यके सहित अव्यक्त कारण, निर्विशेष रूपसे प्रलयमें रहता है। जब अनन्ताकाश व्यापी रुद्रके, एक देशरूप कण्ठमें अज्ञान निर्विशेष रूपसे रहता है, तब रुद्रका नाम शितिकण्ठ है। जो रुद्रके कण्ठमें निर्विशेष शक्ति थी सो ही बीज-सत्ता विश्वरचनाके कुछ पूर्व विकारी रूपसे भासती है। उस अधिष्ठित माया विषको, अधिष्ठान चेतनने धारण रूपसे पान किया। इस आगन्तुक मायाविषको पीनेसे रुद्रका नाम नीलकण्ठ हुआ। उतना ही व्यापक चेतन मिथ्या प्राणशक्ति मायाके द्वारा, आच्छादित हुआ [ऋतेन ऋतमपिहितं ॥ मायासे सत्यरूप रुद्र ढक गया। ऋग० ५। ६२। १।] जितने भागमें कारणोन्मुख मायाका आगमन हुआ, उतने ही चेतन में माया संकल्पमयी क्रिया हुई। इस क्रियारूप मायाके साथ, अधिष्ठान और तादात्म्य रूपसे जो चेतन का सम्बन्ध हुआ, सो चेतन अधिष्ठान रूपसे मायिक प्रेरक महेश्वर नामवाला है और तादात्म्य रूपसे समष्टि बीज स्वरूप ब्रह्माके आकारको धारण करनेवाला है। मैं एक मायिक चेतन मायादेह-धारी हूँ, यही मायाका आधार प्रेरक है। और अनन्त स्वरूप धारण करनेवाला ब्रह्मा होऊँ, यहि माया के साथ एकतारूप अध्यास है। जैसे रज्जु कल्पित सर्पसे ढक जाती है, तैसे ही चेतन अपने एक भागरूप विकारी मायासे ढक जाता है—निर्मल अनन्त ज्ञान स्वरूप उमा समुद्रके एक अंशरूप मायाविषको, निराकार शुद्ध चेतन रुद्रने मायिक रूपसे पान किया। सो ही

मायिक चेतन रुद्रका कण्ठ है। इस नीलकण्ठ देशको छोड़कर, मायाविध, रुद्रके अनन्ताकाश व्यापी शुद्ध तुरीय स्वरूपको आवरण करनेमें, असमर्थ है। जैसे मायिक नीलकण्ठ और श्वेतकण्ठ है। तैसे ही माया विशेष ओर निर्विशेष है। जब ज्ञानी जन सविशेष मायाको निर्विशेष सत्ताकी कल्पित सत्तारूप अविद्या मान कर, और निर्विशेष सत्ताको विद्या मान कर भव बन्धनसे मुक्त हो जाते हैं, अज्ञानी जन मायाको सत्य मानकर, संसारमें वारंवार जन्म मरण रूप गोता लगाते रहते हैं। माया मायिक चेतनकी संकल्परूप देह है। चेतन देही ने संकल्प जड देहके द्वारा विश्वरचनाके लिये प्रवृत हुआ और सृष्टि रचनात्मक विचारके प्रभावसे, एक कारण रूप अव्याकृत प्रगट हुआ। अर्थात् संकल्प ही अस्पष्ट शब्द रहित क्रियाके रूपमें प्रगट हुआ निर्विशेष सत्ताकी सविशेष तैयारी माया हुई। मायाका संकल्पसे कारणके आकारमें आना ही, अव्यक्त अवस्थाकी उत्पत्ति होना है। सृष्टि प्रलय भेदसे, उत्पत्ति लय कहा है। वास्तवमें उत्पत्ति नाश रहित अनादि शान्त प्रवाह रुप हैं। जैसे रात्रीका आविर्भाव तिरोधान है। तैसे ही बीज सत्ताका प्रलय और सृष्टि धर्म है। [**विषं** ॥ विषनाम जलका है। ऋग्० १० । ८७ । १८ ।] जलका नाम सलिल–आप है [**आपः** । आप शब्द व्यापक अर्थमें है। ऋग्० ६ । ६६ । ११ ।] व्यापक अव्याकृत रूपसे जो जगत् लय होता है सो ही कारण रूप सलिल है। [**तमो वै कृष्णं** ॥ प्रलयकी घोर, बीज अवस्था ही (कृष्णं) अज्ञान रूप माया विष है। कृष्ण यजु मैत्रायणी सं० २ । ५ । ६ । **तमो वै स्वर्गं** ॥ प्रलयकी बीज सत्ता ही सुख है। सुषुप्ति अवस्थाके समान प्रलय सुख है। यह परम सुख नहीं, क्योंकि प्रलयसे उठ कर सृष्टिके आकारमें जागना

है। और परम सुख तुरीयमें प्राप्त होकर, फिर ज्ञानी प्रलय सृष्टिके धर्मसे रहित होता है। मैत्रायणी सं० ३ । ३ । ४ ।] तमो वृधः ॥ निर्विशेष बीज सत्ता ही सविशेष मायारूपसे जगदाकारमें अव्याकृत वृद्धि पाता है। अथर्वण ८ । ४ । १ ।] मृत्यु वैं तमः ॥ बीज शक्ति ही अव्याकृत रूप मृत्यु है ॥ बृ० उ० १ । ३ । २८] मृत्यु वैं तमश्छाया ॥ बीज शक्तिकी ही, आगन्तुक माया कल्पित छायारूप भास है। ऐतरेय ब्रा० ३३ । ११ ।] सोऽपामन्नं ॥ सो सूत्रात्मा अव्याकृतका अन्न है। बृ० उ० ३ । २ । १० ।] तमसा ॥ तमरूप मायासे है । अथर्वण ३ । ३ । ६ ।] त्रिवृत आपः ॥ कार्य क्रियाकारण रूपसे माया नौ भेदवाली है। अथर्वण १९ । २७ । ३ ।] आपो हिरण्यं त्रिवृद्धिः ॥ अव्याकृतने अपने तीन वृतोंके द्वारा हिरण्यगर्भको घेर रक्खा है। अथर्वण १९ । २७ । ९ ।] स्त्री भिः ॥ स्थूल सूक्ष्म कारण इन तीनों रूपोंके द्वारा माया व्यापक है। ऋग्० १० । २७ । १० ।] आत्मन एष प्राणो जायते ॥ यथैषा पुरुषे छाया ॥ जैसे मनुष्यमें छाया रहती है, उस छायाके रहनेसे दो नहीं हैं। तैसेही यह प्राण रूप मायाका आत्मासे विकास होता है। यह छाया रूप कल्पित माया है, इस द्वैतरूप भाससे अद्वैत चेतनमें द्वैतता नहीं आती है। प्र० उ० ३ । ३ ।] सं छायया दधिरे ॥ उत्तम प्रकार परिणाम रहित चेतन देव कल्पित मायाके द्वारा विविध स्वरूपोंको धारण करता है। अथर्वण ५ । ४४ । ६ ।] आपो देवीः ॥ माया देवी है। अथर्वण ५ । १७ । १ ।] तमसावृत जालेन ॥ माया रूप जालसे यह सब जगत् ढका हुआ है। अथर्वण १० । १ । ३० ।] य एको जालवान् ॥ जो अद्वितीय माया जालका स्वामी जालवान् रुद्र है। श्वे० उ० ६ । १ ।]

इन्द्रजालमिव मायामयं ॥ इन्द्र जालीके खेलके समान माया जालरूप यह विश्व है ॥ मैत्रायण्युपनिषद् । ४ । २ ।] **माया च तमो रूपा ॥ माया चाविद्या च स्वयमेव भवति ॥** तमो रूप ही माया है। मायाही स्वयं अविद्या होती है। नृसिंहोत्तर तापिनी ऊ० ९] **विश्व माया निवृत्तिः ॥** ज्ञानसे सब माया जालका खेल अदृश्य हो जाता है। श्वे० उ० १ । १० ।]. **नमो नीलग्रीवाय च शितिकण्ठाय च ॥** नीलकण्ठ ओर श्वेतकण्ठ वाले रुद्रके लिये मेरा वारंवार प्रणाम हो। कपिष्ठल कठ. सं० २७ । ३ ।] **ऋतँ सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं कृष्णपिंगलं ॥** परिपूर्ण सत्य स्वयंप्रकाशी उत्तम स्वरूप रुद्र अपने कण्ठमें ड (कृष्णं) माया विषको धारण करता हुआ अर्धांगमें (पिंगलं) उमाको धारण करता है। तैत्तरीयारण्यक १० । १२ ।] **उमा सहायं परमेश्वरं प्रभुं त्रिलोचनं नीलकण्ठं प्रशान्तं ॥** सब उपाधि रहित समर्थ उमाके सहित तीन अवस्थावाले मायारूप आवरणका धारण करनेवाला वा--अग्नि सूर्य चन्द्रमारूप तीन नेत्र युक्त नीलकण्ठ स्वरूप रुद्र है। कैवल्यो. ७ ।] **सोमः ॥** उमाके सहित जो चेतन है, सो ही रुद्र है। माध्यन्दिनी सं० १६ । ३९ ।] **अम्बिका पतय उमापतये नमो नमः ॥** माया रूप प्राणशक्तिकी अधिष्ठातृ देवता अम्बिका। और निर्विशेष सत्ताकी देवता उमा है। बीज शक्ति उमासे भिन्न नहीं। क्योंकि इस बीजशक्तिकी सत्ता अनन्त सत्तारूप उमाके ही स्वरूपमें अवस्थित है। जगत् माता अम्बिकाके और ज्ञानमाता उमाके स्वामी रुद्रके प्रति मेरा वारंवार प्रणाम होवे। तैत्तरीयारण्यक १० । १८ ।] जो ज्ञानात्मक उमाके सहित चेतन है, सो ही ज्ञान स्वरूप अद्वितीय रुद्र है ॥ ५ ॥

**कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो रेतः प्रथमं यदासीत् ॥
सतो बन्धुमसति निरविन्दन् हृदि प्रतीष्या कवयो मनीषा ॥६॥**

अन्वयार्थ–(अग्रे) सबके पहिले (यत्) जिस (कामः) बहुत होउँ इस तादात्म्य बीजको (अधि) अधिष्ठान मायिकने (असति) प्राणशक्तिमें स्थापन किया, (तत्) सो असंख्यात्मक बीज (प्रथमं) प्रथम देहधारी (समवर्तत) समग्र ज्ञानादि ऐश्वर्य्य सम्पन्न ब्रह्मा प्रगट हुआ। वह ब्रह्मा (मनसः) विराट्का (रेतः) उपादान कारण (आसीत्) हुआ। (सतः) अव्यक्त के विकासरूप सूक्ष्म देहधारी ब्रह्माके (बन्धुं) कारण महेश्वरको (मनीषा) सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा (प्रतीष्या) विचार करके (कवयः) ऋषियोंने (हृदि) अपने हृदयाकाशमें (निरविन्दन्) निरंतर ध्यानसे जाना ॥ ऋग्० १० । १२९ । ४ ॥

व्याख्या–प्रलय पूर्व सृष्टिके जो कर्म संस्कार जीवों के भोगनेसे अवशेष रहे, वे ही संस्कार, अपरिपक्व दशामें प्रलयरूप और परिपक्व अवस्थामें, उत्तर सृष्टिमय हैं। इन परिपक्व कर्म संस्कारोंका ही, आप, सलिल, अव्याकृत, प्राणशक्ति आदि नाम है। जब अधिष्ठानमें बीज शक्तिरूप संस्कारका सृष्टि संकल्प से स्फुरण होता तब उस संकल्पमें जो ज्ञान स्वरूप चेतन है। सो हीं चेतन जड माया संकल्पका प्रेरक मायिक बीजी है। इस मायिकसे प्रेरित हुई माया, अस्पष्ट शब्द रहित क्रियात्मक अव्याकृतके रूपमें प्रगट होती है। अव्यक्तकी बाह्य और अभ्यन्तर दो अवस्था है। बाह्य कार्यात्मक आधारके विना अभ्यन्तर क्रियात्मक आधेयका प्रकाश नहीं हो सकता। उस लिंगके विना, लिंगी चेतनका भी विशेष रूपसे प्रकाश नहीं होगा तो जगत्की उत्पत्ति आदि व्यवहारभी

सिद्ध नहीं होगा। इस लिये ही कार्य क्रियात्मक परस्पर ओतप्रोत अव्यक्त शक्ति है। जिस चिदाभास बीजको महेश्वरने सबके पहिले प्राणशक्तिमें स्थापन किया, सो असंख्यात्मक बीज, प्रथम देहधारी, समग्र ज्ञान आदि ऐश्वर्य्यसम्पन्न ब्रह्मा प्रगट हुआ। वह विधाता सूक्ष्म देहधारी, स्थूल विराट्का उपादान कारण हुआ। अव्याकृतके प्रथम विकासरूप ब्रह्माके परम कारण रुद्रको अति शुद्ध बुद्धिके द्वारा विचार कर ऋषियोंने अपने हृदय कमलमें स्वात्मरूपसे साक्षात्कार किया [**असज्जजान सत आवभूव** ॥ प्रथम प्राणशक्ति रूप अव्यक्त प्रगट हुआ। उस अव्याकृतसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। तैत्तरीयारण्यक ३ । १४ । ४ ।] **असतो अधिमनो असृजत ॥ मनः प्रजापतिः** ॥ महेश्वरने प्राणशक्तिसे सृष्टि आदि कार्यके मनन करनेवाले ब्रह्माको उत्पन्न किया। और ब्रह्माने विराट्कोरचा ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३ । ७ । ९ । २ ।] **प्रजापति वै मनः** ॥ ब्रह्मा ही मन है। शांखायन ब्रा० १० । १ ।] **बन्धुः** ॥ पितामह परम कारण रुद्र है। ऋग्० ७ । ७२ । २ ।] **यो देवानां प्रभव श्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं** ॥ (उद्भवः) जन्म देनेवाला (प्रभवः) मूल कारण, जगत्का स्वामी और जिस सर्वज्ञ रुद्रने देवताओंके पहिले ब्रह्माको उत्पन्न किया। श्वे० उ० ३ । ४ ।] **यो देवानां प्रथमं पुरस्ताद्विश्वाधिको रुद्रो महर्षिः ॥ हिरण्यगर्भं पश्यत जायमानं** ॥ सबके आगे महाप्रलयमें विद्यमान समस्त जगत्का मूलकारण रूपसे उत्तम, अतीन्द्रियदर्शी ऋषीयोंके मध्यमें महादर्शी सर्वज्ञ। जिस रुद्रने, अग्नि वायु सूर्य आदि देवताओंकी उत्पत्ति के पहिले उत्पन्न होनेवाले ब्रह्माको पुत्र रूपसे देखा, अर्थात् यह मेरी महिमाको विस्तार करनेवाला है, इस प्रकार रुद्र ब्रह्माको

देखता है। तैतरीयारण्यक १०। १०। २०।] ब्रह्म वै ब्रह्मा ॥ रुद्र ही पुत्ररूप ब्रह्मा है । तैत्तरीय ब्रा० ३। ८। ३। १।] भूतो वै प्रजापतिः ॥ उत्पन्न होनेवाले समस्त ब्रह्माण्डवर्ती चराचर यही ब्रह्मास्वरूप है ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३। ७। २। १।] प्रजापति वैं ब्रह्मा। काठक संहिता स्थान १४। ७।] यो भूतानामधिपतिः ॥ रुद्रः ॥ जो रुद्र समस्त प्राणियोंका स्वामी है ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३। ३। २। ५।] अपां पुष्पं मूर्ति राकाश पवित्रं ॥ अव्याकृतका सूक्ष्म अवस्था रूप ब्रह्मलोक पवित्र आकाश कमल हैं। गोपथ ब्राह्मण १। ३९।] आपो गर्भं जनयन्तीः ॥ अपां गर्भः पुरुषः ॥ अव्यक्तने हिरण्य गर्भको प्रगट किया। प्राणशक्तिका सूक्ष्म देहधारी पूर्ण पुरुष गर्भ है ॥ गोपथ ब्रा० १। ३९।] ब्रह्म वै ब्रह्माणं पुष्करे ससृजे स खलु ब्रह्मा ॥ (ब्रह्म) व्यापक रुद्रहीने प्रसिद्ध आदि पुरुष भगवान ब्रह्माको अव्यक्तकी अमृतरूप सूक्ष्म देहमें प्रगट किया। वही ब्रह्मा निश्चय सबका आदि पुरुष है। गोपथ ब्रा० १। १६।] अपां पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितं ॥ प्राण शक्तिके सूक्ष्म कमलमय सूत्रात्मा देहको पूछता हूँ; जिस समष्टि सूक्ष्म देहमें (तत्) सो चेतन रुद्र ब्रह्मा स्वरूपको धारण करके, अपनी मायासे ढका हैं। अथर्वण १०। ८। ३४।] आपो वै पुष्करं ॥ अव्याकृत ही कमल रूप आकाश ब्रह्मलोक है। शतपथ ब्रा० ६। ४। २। २।] तपो वै पुष्कर पर्णं ॥ सृष्टि रचनात्मक विचार क्रियारूपसे अव्यक्त ही कमल है। तैत्तरीयारण्यक १। २५। १।] ब्रह्म वै पर्णं ॥ व्यापक माया ही अव्याकृत है। तैत्तरीय सं० ३। ५। ८। १।] अमृतस्य नाभिः ॥ रुद्रके चिदाभासको धारण करनेवाली अव्यक्त है ॥ ऋग० ३। १८। ४]

अमृतस्य पत्नीं ॥ रुद्रकी रक्षित (अदितिः) प्राणशक्ति रूप पत्नी है। अथर्वण ७। ६। २।] **ऋतस्य योनिं** ॥ रुद्रका गर्भधारण करनेवाली प्राणशक्ति योनि है। ऋग्० ६। १६। ३५।] **ऋतस्य गर्भं विष्णुं** ॥ रुद्रके गर्भको धारण करनेवाला व्यापक अव्याकृतको जानों। ऋग्० १। १५६। ३।] **विष्णुं निषिक्तपां** ॥ सिंचन किये हुए वीर्यरूप ब्रह्माके पालन करनेवाले अव्याकृतको जानों। ऋग्० ७। ३६। ९।] **हरिं योनिं** ॥ हरिको योनि जानों। ऋग्० १०। ९६। २। अथर्वण २०। ३०। २] **विष्णुः** ॥ विष्णु शब्दका अर्थ प्रसवकर्त्ता है। शुक्ल यजुर्माध्यन्दिनी सं० ९। २६।] **प्राणो वै हरिः** ॥ प्राणशक्ति ही हरि है। शांखायन ब्रा० १७। १।] **आपो देवीः** ॥ अव्याकृत माता देवी है। ऋग्० ७। ५०। १।] **आपः** ॥ आप अर्थ व्यापक है। ऋग्० ३। ५६। ४।] **आपो मातरः** ॥ प्राणशक्ति ही व्यापक माता है। ऋग० १०। ९२। ६।] **आपोवा अम्बयः** ॥ व्यापक प्राण ही माता है। शांखायन ब्रा० १२। २।] **प्राणा वा आप** ॥ प्राणशक्ति ही व्यापक है। तैत्तरीय ब्रा० ३। २। ५। १।] **आपो वै यज्ञः** । अव्यक्त ही यज्ञ है। **यज्ञो वै विष्णुः** ॥ सबका प्रसवकर्त्ता यज्ञ ही विष्णु है। कपिष्ठल कठ सं० ३८। ५।] अव्याकृतरूप प्राणशक्तिकी अधिष्ठातृ देवता अम्बिका है। इस जगन्माताका जो स्वामी रुद्र है सो ही अव्याकृत देहका प्रेरक है। **अपामजः** ॥ प्राणशक्तिका प्रेरक परिणाम रहित रुद्र है। ऋग० ३। ४५। २।] **तद्धेदंतर्ह्यव्याकृतमासीत्** ॥ उस महा प्रलयके समय यह प्रसिद्ध जगत् अव्याकृत रूप था। बृ० उ० १। ४। ७।] **आत्मा वै बृहतीप्राणाः** ॥ व्यापक प्राणशक्ति ही मूल उपादान कारण है। ऐतरेय ब्रा० ३०। ३। २८।]

प्रथमजा ऋतस्य प्रजापतिः ॥ रुद्रका पुत्र प्रथम प्रगट होनेवाला ब्रह्मा है। अथर्वण ४। २५। २।] ऋतस्य तन्तुं ॥ रुद्रके पुत्र ब्रह्माको जानों। माध्यन्दिनी सं० ३२। १२।] अग्निर्वाऋतं। रुद्र ही ऋत है। तैत्तरीय ब्रा० २। १। १। १।] रुद्रो वा अग्नि ॥ रुद्र ही अग्नि है। कृष्ण यजु काठक सं० २६ २।] अहमस्मि प्रथमजा ऋतस्यपूर्वं देवेभ्यो अमृतस्य नाम ॥ सब देवताओंकी उत्पत्तिसे पहिले जन्म मरण रहित स्वयं प्रकाशी उस रुद्रका प्रथम देहधारी पुत्र मैं ब्रह्मा नामसे प्रसिद्ध हूँ ॥ सामवेदीय आरण्य संहिता ९। ९।] जो निर्विशेष सत्ताकी देवता उमा है, सोही सविशेष मायाकी अम्बिका नाम देवता है ॥ जो उमाका स्वामी रुद्र है। सोही, अम्बिका देवीका पत्ति है ॥६॥

तिरश्चीनो विततो रश्मि रेषा मधः स्विदासी ३ दुपरि स्विदासी ३ त् ॥ रेतोधा आसन्महिमान आसन्स्वधा अवस्तात्प्रयतिः परस्तात् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थ—(एषां) इन समस्त ब्रह्माण्डोंका (अधः) नीचला भोग्य रूप आधार (स्वित्) कौन (आसीत्) था (उपरि) ऊपर भोक्तारूप आधेय (स्वित्) कौन (आसीत्) था जिनोंके मध्य में (तीरश्चीनः) सर्वत्र (विततः) व्यापक (रश्मिः) चेतन ज्योति है (स्वधा) बाह्यशक्ति (अवस्तात्) नीचला आधार है (प्रयतिः) अभ्यन्तर शक्ति (परस्तात्) ऊँचा आधेय है (रेतोधाः) असंख्य त्रिलोकात्मक सारभूत फलोंके धारण करने वाले महाशाखास्वरूप, तपः जनः महलोंक (आसन्) प्रगट हुए (महिमानः) उन सत्यलोक मूलवर्ती, तीनों स्कन्धरूप महा

शाखाओंसे, भूर्भुवः स्वर्गात्मक असंख्य फल (आसन्) उत्पन्न हुए ॥ ऋग्० १० । १२९ । ५ ॥

व्याख्याः—इन समस्त ब्रह्माण्डोंका स्थूल नीचला भोग्यरूप आधार, कौन था। ओर ऊपर रहनेवाला सूक्ष्म भोक्तारूप आधेय कौन था, जिन दोनोंके मध्यमें, सर्वत्र व्यापक चेतन ज्योति विराजमान है। वे दोनों भोग्य भोक्ता कौन हैं, इस प्रश्नका, उत्तर–प्राणशक्तिकी बाह्य शक्ति स्वधा, स्थूल जड प्रकाश रहित आवरणात्मक आधार है। और इस भोग्यरूप देहमें प्राणशक्तिकी अभ्यन्तर प्रयति शक्ति, सूक्ष्म प्रकाशयुक्त चिरस्थायी आधेय रूपसे ऊपर रहनेवाली है॥ प्राणशक्तिकी स्थूल अवस्था ही महा विराट् रूप देह है। ओर सूक्ष्म अवस्थाही, सूत्रात्मारूप देह है॥ इस अव्यक्तकी दोनों देहके वीचमें, जो चेतन सर्वत्र व्यापक स्वरूपसे विराजमान है। सो ब्रह्मा है। इस ब्रह्माके सत्यलोकरूप मूल वृक्षसे तपलोकरूप महास्कन्ध निकला है। उस तपसे दो स्कन्ध रूप मोटी शाखा उत्पन्न हुई है, सोही जनलोक है। उस जन लोकसे, असंख्य समूह शाखाओंका महर्लोक प्रगट हुआ। ब्रह्मकी स्वधा प्रयति देहका ही यह सघन वृक्ष है। स्वधाका नाम सोम। ओर प्रयतिका नाम अग्नि है। इस अग्नि सोमात्मक महर्लोककी असंख्य शाखाओंमें अनन्त तीन लोकरूप फल प्रगट हुए। एक २ क्षुद्र विराट् देहमें भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्ग लोक अवस्थित है। अग्निरूप अमृतसे प्रत्येक ब्रह्माण्डवर्ती, अग्नि, वायु, सूर्य प्रगट हुए। ओर सोमात्मक मृत्युसे जल भूमी चन्द्रमा प्रगट हुए। अग्नि वायु सूर्य ये तीनों रुद्र तत्त्व हैं। ओर जल भूमी चन्द्र ये तीनों उमातत्त्व हैं [**सोमो वै रेतो धाः** ॥ भोग्य रूप सोम शक्ति, जल भूमी चन्द्रमा आदिके रूपको धारण करती है॥ कपि-

ष्ठल कठ सं. ७ । ६ ।] अग्नि वै रेतोधाः ॥ अमृतशक्ति रूप भोक्ता प्राण । अग्नि तत्त्व, वायु तत्त्व सूर्य आदि प्रकाश मात्रके आकारोंको धारण करता है ॥ तैत्तरीय सं० ५ । ५ । ८ । ५ ।] मिथुनं वा अग्निश्च सोमश्च ॥ प्रसिद्ध अमृत ओर मृत्युशक्ति युगलजोडी है ॥ कपिष्ठल कठ सं. ७ । ६ ।] अग्नि भोक्ता ही ऊपरको विकाश करता हुआ, फिर अन्तमें सोमरूपको धारण करके नीचे आकर भोक्ताका भोग बन जाता है । फिर भोक्ताही भोग्य आधारके द्वारा सूक्ष्म अवस्थासे स्थूलके आकार में विकाश करने लग जाता है । उस अमृतको मृत्युशक्ति सोम भी आवरण करता हुआ, स्थूलके आकारमें विकाश करने लग जाता है । जिस विकाशसे असंख्य त्रिलोक फल प्रगट होते हैं । तीनलोक आवरणात्मक छालके भीतर अग्नि वायु सूर्यादि प्रकाशवाले बीज अमृत शक्ति रूपसे विद्यमान हैं । इस अग्नि आदि तत्त्वों में जो चेत्तन है. सो ही रुद्र है । जैसे बीजसे अङ्कुर । अङ्कुरसे वृक्ष । वृक्षमें फल । ओर फलमें बीज होता है । तैसे ही माया बीज युक्त चेतन मायिक बीजी है । माया बीज ही सूक्ष्म अङ्कुर रूप सूत्रात्माके रूपमें प्रगट होता हुआ स्थूल विराट् के आकारमें विस्तार पाता है । उसमाया बीजकी परिणाम अवस्थामय उपाधिके द्वारा मायिक महेश्वरभी सूक्ष्म उपाधिसे ब्रह्मा, स्थूल उपाधिसे प्रजापति ओर अनन्त क्षुद्र त्रिलोक फलके भीतर सूर्य आदि परिपक्व बीजोंमें भर्ग रूपसे विराजता है । जो माया उपाधिक चेतन आदिमें था, सोही चेतन, सूर्य मण्डलमें भर्ग है । अव्यक्तकी अमृत शक्तिका विकाश सूत्रात्मा, सूत्रात्माका विकाश सूर्य है । जो अव्याकृतरूप प्राणशक्तिका स्वामी मायिकथा सो ही अव्यक्तकी सूक्ष्म अवस्था रूप सूत्रात्मा देहका ब्रह्मारूपसे स्वामी हुआ । जो चेतन ब्रह्मा सूक्ष्म

देहका स्वामी था। सो ही आदित्य मण्डलका स्वामी हुआ। महेश्वरका पुत्र ब्रह्मा ओर ब्रह्माका पुत्र भर्ग है [पुत्रः पुरु त्रायते ॥ जो वहुतोंको तारे सो ही पुत्र है अर्थात् एक मायिक पिताको ब्रह्माने सूक्ष्म देह धारण करके तारा, उस सूक्ष्म देहधारी प्रजापतिने तारा, उस प्रजापतिको असंख्य अग्नि, वायु सूर्यादिकोंने तारा। अग्नि, आदि अधिदैवोंको वाणी आदि अध्यात्म इन्द्रियोंने विशेष प्रसिद्धि रूपसे तारा, एक २ को विशेष प्रख्याती करना ही पुत्र है ॥ निरूक्त २। ११। १।] अध्यात्म लिंगके द्वारा अधिदैव सूर्य, सूर्य लिंगके द्वारा प्रजापति, प्रजापति के द्वारा ब्रह्मा ब्रह्माके द्वारा महेश्वर जाना जाता है। महेश्वर विश्वरचना आदिक व्यवहारकी दृष्टिसे मायिक है। ओर परमार्थ दृष्टिसे माया रहित निराकार रुद्र तुरीय स्वरूप है [उर्ध्व मूलोऽवाक् शाख एषोऽश्वत्थः सनातनः ॥ तदेव शुक्रं तद्ब्रह्म तदेवामृत मुच्यते ॥ तस्मिंल्लोकाः श्रिताः सर्वे ॥ माया देहधारी महेश्वर ही महा विराट्रूप वृक्षका मूल है यह मायामय वृक्ष, पीपलके पत्रोंके समान सर्ग स्थिति लय रूपसे चंचल स्वभाव वाला, अनादि शान्त प्रवाह रूपसे सनातन है। इस कारण मूलकी सूक्ष्म स्थूल कार्यरूप शाखा प्रशाखा, तपः जनः महर्लोक कार्यों के आकारम फैल रही हैं। कारणसे कार्यमें आना ही नीचा है। सो विस्तृत वृक्षही अग्नि है। सोही वायु, सोही सूर्य है एसा कहा है। अग्नि वायु सूर्यात्मक असंख्य त्रिलोक, उस वृक्षकी शाखा समूहमें उदुम्बर वृक्षके फलोंके समान लगे हुए हैं॥ कठोपनिषद् ६। १।] असौ वा आदित्यः शुक्रः ॥ यह सूर्य ही शुक्र है। काठक सं. ३६। १०।] ब्रह्म वा अग्निः ॥ अग्नि ही ब्रह्म है॥ तैतरीय ब्रा० ३। ९। १६। ३।] प्राणो वै वायुः ॥ प्राणरूप अमृत ही वायु है ॥

काठक सं. २१। ३।] ऊर्ध्वं मूलमवाक् छाखं ॥ वृक्षं यो वेद संप्रति ॥ नस जातु जनः श्रद्दध्यात् ॥ मृत्युर्मा मारयादितः ॥ कारणात्मक मूल, कार्यशाखावाले ब्रह्माण्ड वृक्षको जो जानता है, उस ज्ञानकालमें, सो मनुष्य वारंवार मरणमें कदापि विश्वास नहीं करता। मेरेको काल भगवान् मारेगा। क्योंकि अज्ञान रूप मृत्यु आलसका ज्ञान पुरुषार्थसे नाश हो जाता है। फिर मृत्यु कौन है ॥ तैत्तरीयारण्यक १। ११। ५।] अहं वृक्षस्य रे रिवा ॥ कीर्तिः पृष्टं गिरेरिव ॥ ऊर्ध्व पवित्रो वाजिनीव स्वमृतमस्मि ॥ मैं संसार वृक्षका ज्ञानकेद्वारा छेदक हूँ। पर्वतके शिखरके समान मेरी कीर्ति है। और सूर्यके समान अक्षय अविनाशी उत्तम परम कारण शुद्ध तुरीय स्वरूप मैं, त्रिशंकु नाम वाला मुनि हूँ ॥ तैत्तरीयारण्यक ७। १०। १।] सत्यं ज्ञान मनन्तं ब्रह्म। यो वेद निहितं गुहायां परमे व्योमन् ॥ सोऽश्नुते सर्वान्कामान्त्सह ब्रह्मणा विपश्चि तेति ॥ अनन्त ज्ञान (ब्रह्म) स्वरूप रुद्र ही (सत्यं) प्रगट रूप ब्रह्मा अव्याकृत-प्राणशक्ति मय ब्रह्मलोकमें विराजमानको अपनी बुद्धि गुहामें जो पुरुष अभेद रूपसे साक्षात्कार करता है, सो मुमुक्षु देहको त्याग करके ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकर सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्माके संगसे प्राप्त हुए सब दिव्य भोगोंको भोगता है ॥ तस्माद्वा एतस्मादात्मन आकाशः संभूतः। आकाशाद्वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी पृथिव्या ओषधयः। ओषधीभ्योऽन्नं। अन्नात्पुरुषः॥ उस प्रसिद्ध रुद्र सेही ब्रह्मा प्रगट हुआ। इस सूक्ष्म देहधारी व्यापक ब्रह्मासे आकाश। आकाशसे वायु। वायुसे अग्नि। अग्निसे जल। जलसे भूमी। पृथिवीसे ओषधियाँ। ओषधियोंसे अन्न। अन्नसे पुरुष उत्पन्न

हुआ। अर्थात् ब्रह्माकी सूत्रात्मा देहसे महा विराट् प्रगट हुआ। महा विराट्के अन्दरमें जो पोल थी सोही आकाश है। महा विराट्के पेटरूप पोलमें स्पन्दन क्रिया हुई वही वायु है। वायुकी प्रदीप्त क्रिया हुई सो ही अग्नि। अग्निकी सोम शक्ति ही जल रूपसे द्रवित हुई। उस जलकी घनीभूत अवस्था ही पृथिवी हुई। इन अग्निसोमात्मक पंचभूतोंके समुदायका नाम ही महाविराट है। इस महा विराट् वृक्षमें तीन २ लोक वाले असंख्य फल लगे हैं। प्रत्येक सौरमय फलोंके आकार में भी पंच भूत व्याप्त हैं। अनन्त क्षुद्र त्रिलोकी अण्ड रूप हैं। प्रत्येक अण्डके भूमी जल अग्निकें सारसे सूर्य मण्डल हुआ। ओर वायु अन्तरिक्षके सारसे मण्डलका मध्य भाग हुआ। इस मध्य भाग रूप योनिमें चेतन लिंगरूप से विराजमान हुआ। उस भर्गके द्वारा मण्डलसे जल वर्षा। भूमीपर अन्न वनस्पति उत्पन्न हुए। प्रजापतिने घासके भक्षण करनेवाले गौ अश्व आदि प्राणियोंको रचा। ओर यव तण्डुल आदि अन्नके खाने वाले मनुष्य देहको रचकर स्वयं जीव रूपसे प्रविष्ट हुआ। [तैत्तरीयारण्यक ८। २।] जैसे उदुम्बरके फलमें जंतु भरे होते हैं तैसे ही इस क्षुद्र त्रिलोकमें देव दैत्य पितर गन्धर्व मनुष्यादि प्राणि भरे हैं। उस रुद्रात्मक ब्रह्माकी यह विश्व महिमा है ॥७॥

को अद्धा वेद कइह प्रवोचत्कुत अजाताकुत इयं विसृष्टिः ॥ अर्वाग्देवा अस्य विसर्जनेना था को वेद यत आबभूव ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(कुतः) किस उपादानसे (कुतः) किस निमित्त कारणसे (इयं) यह (विसृष्टिः) नाना रचना (अजात) प्रगट हुई (अस्य) इस जगतकी (विसर्जनेन) उत्पत्तिसे (अर्वाक्

पीछे (देवाः) देवता उत्पन्न हुए (इह) इस संसारमें (अद्धा) यथार्थ (कः) कौन (वेद) जानता (अथ) ओर (कः) कौन (प्रवोचत्) कहे (यतः) जिससे विश्व (आवभूव) उत्पन्न हुआ (कः) कोन इस प्रश्नका उत्तर (वेद) देवे ।। ऋग्० १० । १२९ । ६ ॥

व्याख्याः—किस उपादान कारणसे ओर किस निमित्त कारणसे यह चराचर रचना हुई। इस जगत्की उत्पतिके पीछे सब देवता उत्पन्न हुए। फिर इस संसारमें, यथार्थ कौन जानता है। और कौन कहेकि किस कारणसे जगत् कार्य प्रगट हुआ ? उस कारणके विषयमें कौन प्रश्नका उत्तर दे सकता हे । ८ ॥

इयं विसृष्टिर्यत आबभूव यदि वा दधे यदि वा न । यो अस्याध्यक्षः परमे व्योमन्त्सो अङ्ग वेद यदि वा न वेद ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(इय) यह (विसृष्टिः) विचित्र विश्व रचना (यतः) जिससे (आवभूव) उत्पन्न हुई, (यदिवा) अथवा जोही उत्पन्न करके (दधे) धारण पोषण करता (यदिवा) या (न) नहीं करता है (यः) जो (अस्य) इस जगत्का (अध्यक्षः) नियंता (परमे व्योमन्) ब्रह्मलोक धाममें विराजमान है (सः) सो ही ब्रह्मा (अङ्ग) व्यापक स्वामी (वेद) जानता (यदिवा) अथवा (न) नहीं (वेद) जानता है ।। ऋग्० १० । १२९ । ७॥

व्याख्याः—यह नाम रूपात्मक चराचर विश्व, जिस कारणसे प्रगट हुआ, अथवा जो कारण जगत्को रचकर, पालन और संहार करता है या नहीं करता है, उसीका यह काम है। जो इस संसारका नियंता, अव्याकृताकाश रूप ब्रह्मलोकमें विराजमान है, सो

व्यापक विधाता नहीं जानता ऐसा नहीं, वह अवश्य ही जानता है। अथवा वह नहीं जानता तो इस जगत्‌की अलौकिक व्यवस्था कौन करता? जिसने रचा सो ही पालन संहार करता है उसको हमभी वेदोंके द्वारा जाननेमें समर्थ हैं॥ ९॥

रूपं रूपं प्रति रूपो बभूव, तदस्य रूपं प्रति चक्षणाय॥ इन्द्रो मायाभिः पुरु रूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः शता दश॥ १०॥

अन्वयार्थः—(इन्द्रः) अनन्तशक्तिसम्पन्न सामान्य विशेष स्वरूपसे व्यापक रुद्र (मायाभिः) कारण, सूक्ष्म, स्थूल कार्य भेदवाली मायाके द्वारा (पुरुरूपं) वहुत स्वरूप धारण करनेवाला (ईयते) होता है। (तत्) वह असंख्य स्वरूप (अस्य) इस देवके (रूपं) अनन्त शक्ति स्वरूपको (प्रति चक्षणाय) प्रख्यात करनेके लिये एक लिंगात्मक महिमा ह (रूपं रूपं) जिस २ स्वरूपकी इच्छा होती है (प्रति रूपः) उस २ आकारके समान (बभूव) हुइ (हरयः) हरि रूप प्राणशक्तिके स्थूल, सूक्ष्म, कारण ये तीन (शत) असंख्य भेद (युक्ताः) युक्त होने परभी माया (दश) ब्रह्माण्डमें दश वसु, दस रुद्र, दस आदित्य, और पिण्डमें दश स्थान, दश प्राण, दश इन्द्रियों रूपसे व्यापक है। (हि) निश्चय महा ब्रह्माण्डके सत्यलोकमें (अस्य) इस रुद्रका ब्रह्मा नाम, सूर्य मण्डलमें भर्ग, और प्रत्येक व्यक्तिगत देहमें जीव नाम है॥ ऋग्० ६। ४७। १८।]

व्याख्याः—अनन्त बलसम्पन्न सामान्य विशेष रूपसे व्यापक रुद्र, अपनी त्रिविध भेदवाली मायाके द्वारा, वहुत स्वरूपोंको धारण

करनेवाला होता है। वह असंख्य रूप, इस देवके, अनन्त ज्ञान स्वरूपको, प्रख्यात करनेके लिये एक प्राणशक्ति रूप चिन्ह है। यह विकारी अवस्था न होती तो निर्विकारी अवस्थावाले चेतन रुद्रका परिचय कौन कराता, और कौन करता। उस अखण्ड अद्वितीय रुद्रके यशको गायन करनेवाली माया नहीं है। जिस २ स्वरूपकी इच्छा होती है उस २ आकारके समान हुआ अर्थात् एक तादात्म्य सम्पन्न जो चेतन है सो ही चिदाभास माया नटिनीके साथ अनेक शरीरोंको धारण करताहुआ खेल करता है। अपने वास्तविक स्वरूप अधिष्ठान महेश्वरको भूलकर, माया जालमें फस जाता है। हरि रूप प्राणशक्ति मायाके स्थूल महा विराट्, सूक्ष्म सूत्रात्मा, कारण अव्याकृत. ये तीन अवस्थावाली माया, असंख्य भेद युक्त होने पर भी, महा विराट्के प्रत्येक् त्रिलोकमय ब्रह्माण्डों में दश दिशा, दश वसु, दश रुद्र, दश आदित्य, और व्यष्टि शरीरोंमें दश स्थान, दश प्राण, दश इन्द्रिय रूपसे व्यापक है। निश्चय इस माया अध्यक्ष महेश्वरका सत्यलोकमें ब्रह्मा, तप लोकमें जनलोकमें वृहस्पति, महर्लोकमें इन्द्र और वरुण प्रत्येक सूर्य मण्डलोंमें भर्ग नाम है। और प्राणियोंके असंख्य शरीरोंमें जीव नामसे ही प्रसिद्ध है। अर्थात् अग्नि वायु आदित्य सब देवोंमें वही रुद्र व्यापक है [**देव एकः। इन्द्रः** ॥ अद्वितीय रुद्र ही इन्द्र नाम वाला है। इत्—सामान्य एक रस। और द्रः—ब्रह्मा आदिके रूपमें विशेष प्रकाश पाने वाला ही इन्द्र है। ऋग्० १० । १०४ । ९। **हरिः** ॥ हरि नाम इन्द्रका है। प्राण शक्ति रूप हरिका प्रेरक आधार चेतन ही हरिरूप इन्द्र है। ऋग्० ३ । ४५ । ४।] **अवंशे धीरः शच्या समैरत्** ॥ (अवंशे) निराधार अपने मायिक स्वरूप में स्थित होकर—अद्भुत प्राणशक्तिके द्वारा रुद्रने

सबको प्रगट किया। ऋग्० ४। ५६। ३।] **उग्राय शिव तमाय इन्द्राय** ॥ अति कल्याण स्वरूप सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न रुद्र है। ऋग्० ८। ८५। १०।] **इन्द्रः शिवः** ॥ इन्द्र नामवाला शिव है। ऋग्० ८। ८२। ४।] **इन्द्रः परो मायाभिः** ॥ रुद्र मायासे पर है। ऋग्० ५। ४४। २।] **यः पर स महेश्वरः** ॥ जो मायासे पर है, सो ही महेश्वर है। तैत्तरीयारण्यक १०। १०। २४।] **मायिनमिन्द्रं** ॥ मायावान् इन्द्र है। ऋग्० ८। ६६। २।] **मायान्तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं तु महेश्वरं** ॥ मायाको (प्र) अति महा (कृतिः) जाल जाने और माया जालके धारण करनेवाले जालवान्को महेश्वर जाने। श्वे० उ० ४। १०।] **य एको जालवान्** ॥ जो अद्वितीय रुद्र जालवान् है। श्वे० उ० ३। १।] **इन्द्रो मायया** ॥ रुद्र मायाके द्वारा सबको रचता है। ऋग्० ४। ३०। २१। २१।] **असुरस्य मायया वपुंषि कृण्वन्** ॥ प्राणशक्ति प्रेरक रुद्र अपनी प्राणशक्तिके द्वारा समष्टि व्यष्टि शरीरोंको धारण करता है, अर्थात् मायाके नाना भेद वाले समष्टि व्यष्टि शरीरों में जो ब्रह्मा, जीव नामसे चेतन है, सो ही रुद्रका स्वरूप धारण करता है। अथर्वण ६। ७२। १।] **मायया** ॥ शक्तिसे। अथर्वण ४। ३८ ३।] **मायाभिः स्वधाभिः** ॥ ऋग्० १। ५१। ५।] **मायाभिः शचीभिः** ॥ ऋग्० ३। ६० ६।] बहुवचन कार्य कारणकी दृष्टिसे कहा है [**स्वधया मायया एकः परिभूम जायसे** ॥ हे देव तू अद्वितीय स्वरूप होने पर भी अपनी उमा शक्तिकी मायाके द्वारा सर्वत्र बहुत स्वरूप धारी प्रगट होता है। अथर्वण १३। २। ३।] **असुरस्य मायया** ॥ रुद्रकी मायासे सब जगत् प्रगट हुआ। ऋग्० ५। ६३। ७।] **छायया** ॥

प्रदीप्त प्राणशक्तिसे। ऋग्० ५।४४।१४। **दश वसव इन्द्र एकादशः ॥ दश रुद्रा इन्द्र एकादशः॥ दशादित्य। इन्द्र एकादशः॥** दश वसु ग्यारवां चेतन पुरुष। दश रुद्र ग्यारवाँ चेतन स्वामी। दश आदित्य ग्यारवाँ चेतन देव है। काठक स० २८।३।] **रशनाभि र्दशभिः** दश रज्जुओंसे बँधा है। ऋग्० १०।४।६।] **दशकक्ष्याभिः॥** दश रज्जुओंके द्वारा बँधा है। ऋग्० १०। १०१। १०।] **दश यंत्रं॥** दश बाँधनेवाले प्राण हैं। ऋग० ६।४४। २४] **स रुद्रेभिः॥** सो इन्द्र रुद्रोंके साथ है। ऋग० १०।९९।५।] **प्राण वै वसवः॥ प्राणा वै रुद्राः॥ प्राणा वा आदित्याः॥** प्राण ही वस्तु। प्राण हीं रुद्र। प्राण ही आदित्य हैं। ये समष्टि रूपसे ब्रह्माण्ड व्यापी। और व्यष्टि रूपसे देह व्यापी हैं। जैमिनीय ब्राह्मण ४।२।१।३-६-९।] **प्राणों वै ब्रह्मः॥** प्राण रूपमाया ही व्यापक स्वरूप कारण है। जैमिनीय ब्रा० ३।७।१।२।] **तद्ब्रह्म वे त्रिवृत्॥** वह व्यापक कारण तीन स्वरूप ही है। जैमिनीय ब्रा० ३। १।४। ११।] **प्राणो वे त्रिवृत्॥** प्राण नाम अव्याकृत का है ताण्डय ब्रा० २।१५।३। **तेजो वै त्रिवृत्॥** तेज कहो वा प्राण कहो ताण्डय ब्रा० २।१७।२। **ब्रह्म वै त्रिवृत्॥** ब्रह्म नाम प्राण शक्ति है ताण्डय ब्रा० २३।७।५। **अय मेवेदमग्र आकाश आसीत्॥ आकाश इन्द्र एव सः॥ सप्तदशधा भवति शतधा सहस्र धाऽयुतधा॥** यह सब पहिले अव्याकृत रूपही था। आकाश ही सो इन्द्र है। अधिष्ठान चेतनसे अधिष्ठित माया सत्ता भिन्न नहीं है। इस लिये ही मायाको मायिक रुप कहा है। सो मायिक माया के द्वारा दश

से लेकर अनन्त रुप धारण करता हैं। जैमिनीय ब्रा० १।९।१।१-२-३।] ब्रह्म ॥ प्राणशक्ति रुप देहका नाम ब्रह्म है। ऋग्० ९।६७।२३। एको ही प्राणः ॥ एक ही प्राण शक्ति है। जैमिनीय ब्रा० २।२।४।१।] दशवैपाशोः प्राणा आत्मैकादशः ॥ दश प्राण रुप पाशसे युक्त ग्यारवाँ समष्टि व्यष्टि उपाधिक चेतन पुरुष है। काठक सं. २६।४।] आत्मा वै पुरुषः ॥ व्यापक चेतन ही पुरुष है। काठक सं० २०।५।] सर्वो वै पुरुषः ॥ सर्व व्यापक पुरुष ही आत्मा है। काठक सं० ८।१२।] सर्वो वै रुद्रः पुरुषो वै रुद्रः। सर्वात्मक ही रुद्र है। पूर्ण पुरुष ही रुद्र है। तैत्तरीयारण्यक १०।१६।] एक रुद्र ही अनेक नाम रूपोंसे व्यापक है ॥ १० ॥

इन्द्रो॑ दि॒वः इन्द्र॑ ईशे पृथि॒व्या इन्द्रो॑ अ॒पामिन्द्र॒ इत्पर्व॑तानाम् ॥ इन्द्रो॑ वृ॒धा मिन्द्र॒ इन्मे धिरा॒णामिन्द्रः॒ क्षेमे॒ योगे॒ हव्य॒ इन्द्रः॑ ॥ ११ ॥

अन्वयार्थ (इन्द्रः) इन्द्र (दिवः) महाविराट् विराट्के मस्तक रुप ऊर्ध्व कपालका स्वामी हैं। (इन्द्रः) इन्द्र (पृथिव्याः) अधो भागवर्ती भूमीमय रजत कपालका (ईशे) स्वामी है। (अपां) महाप्रलय अवस्थावाले कर्म संस्कार समूहका (इन्द्रः) इन्द्र स्वामी है (इत्) और (इन्द्रः) इन्द्र (इत्) ही (पर्वतानां) असंख्य ब्रह्माण्डों का स्वामी है। (इन्द्रः) इन्द्र (वृधां) वृद्ध पूज्य ब्रह्मा आदि प्रजापतियोंका स्वामी है (इत्) और (इन्द्रः) रुद्र (मेधिराणां) बुद्धिमान् अङ्गिरा आदि ऋषियोंका स्वामी है। (इन्द्र) महेश्वर (क्षेमे) प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करनेमें (योगे)

अप्राप्त की प्राप्ति करनेमें स्वामी है। (इन्द्रः) इन्द्र ही (हव्यः) प्रार्थना करने योग्य है॥ ऋग्० १०। ८९। १०॥

व्याख्या—महेश्वर महा विराट्के मस्तकरूप सुवर्ण कपालका स्वामी है अधो भागवर्ती भूमीमय रजत कपालका इन्द्र स्वामी है। ओर महा प्रलय रुप कर्म संस्कार समूह बीजका इन्द्र स्वामी, महा विराट्के अन्तरगत असंख्य सौरमय जगतोंका स्वामी इन्द्र हैं। ओर ब्रह्मा आदि वृद्ध प्रजापतियोंका स्वामी रुद्र, ज्ञानी वसिष्ठ वामदेवादि मुनियोंका स्वामी रुद्र है। ओर प्राप्त हुई वस्तुकी रक्षा करनेमें। अप्राप्तकी प्राप्ति करानेमें रुद्र ही स्वामी है, वही महेश्वर सबके प्रार्थना करने योग्य सेवनीय है [अपः॥ अप नाम कर्म समूहका है ॥ ऋग्० १०। ३५। १] **उग्र एको विश्वस्य भुवनस्य राजा**॥ हे उत्तम रुद्रतू अद्वितीय समस्त लोकवर्ती ब्रह्माण्डका स्वामी है॥ ऋग्० ३। ४६। २] **रूपं रूपं मघवा बोभवीति मायाःकृण्वानस्तन्वं परिस्वाम्**॥ ज्ञान आदि सर्वैश्वर्य सम्पन्न इन्द्र जिस २ रुपकी इच्छा करता है, उस २ देहके आकार वाला होता है॥ अनेक रूप ग्रहण करनेवाली सामर्थ्य के सहित, अपने मायिक रुपसे अनेक स्वरुपोंको धारण करता है॥ ऋग्० ३। ५३। ८] **महाँ ऋषिः**॥ अतिशय सामर्थ्यवान् सर्वत्र रुद्र है॥ ऋग्० ३। ५३। ९] **रुद्रोमहर्षिः**॥ रुद्र महर्षि हैं॥ श्वेता० उ० ३। १२] **महान्देवः**॥ यह महान् देवशब्द महान् ऋषिके समान ही ऋग्वेदमें महादेवका वाचक है॥ ऋग्० ४। ५४। ४] **सरुद्रः स महादेवः**॥ सो रुद्र है सो ही महादेव है॥ अथर्वण १३। ४। ४] **स रुद्रो वसु वनिः**॥ माया रुप धनको जगत्के रुपमें प्रदान करनेवाला धनवान् सोही रुद्र है॥ अथर्वण

१३। ६। ५] इन्द्रः—ब्रह्मा—ऋत—मघवा—वसुवनि—महर्षि महादेव—ये सब विशेषण रुद्रके पर्य्याय वाचक हैं ॥ ११ ॥

यद्द्याव इन्द्र ते शतं शतं भूमी रुतस्युः ॥ नत्वाव ज्रिन्त्सहस्त्रं सूर्या अनुन जात मष्टरोदसी ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ (इन्द्रः) हे देव (यत्) यदि (शतं) सैंकडों (द्यावः) द्युलोक (उत) ओर (शतं) असंख्य (भूमीः) भूमी (स्युः) होति हुई (ते) आपके अनन्त ज्ञान स्वरुपका. (अनुअष्ट) अन्त पासकते (न) नहीं (वज्रिन्) हे वज्ररुप धनुषधारी देव (त्वा) आपको (सहस्र) असंख्य त्रिलोकात्मक (सूर्याः) सूर्य प्रकाश (न) नहीं कर सकते (रोदसी) रुद्रकी उमासे पालन की हुई, प्राणशक्ति अपने सूक्ष्म स्थूल सूत्रात्मा महा विराट् कार्य के सहित भी अन्त नहीं पा सकते तो (जातं) उत्पन्न होनेवाले प्राणि अन्त कैसे पा सकेंगे ॥ ऋग्० ८। ५९। ५ ॥ **व्याख्या**—हे इन्द्र यदि अपरिमित क्षूद्र विराटोंके शिर रुप द्यो, ओर पग रुप असंख्य भूमी होती हुई आपके अनन्त ज्ञान स्वरुपका। अन्त नहीं पा सकते हैं। हे धनुषधारीदेव आपको असंख्य त्रिलोकात्मक सूर्य, प्रकाश नहीं कर सकते। रुद्रकी उमा पत्नीसे सुरक्षित प्राणशक्ति अपने सूत्रात्मा ओर महाविराट्के सहित भी अन्त नहीं पा सकते हैं तो उत्पन्न होने वाले प्राणिमात्र कैसे अन्त पा सकता है [**वज्रो वै धनुः ॥** वज्रही धनुष है ॥ मैत्रायणी सं० ४। ४। ३] जो रुद्र अपनी उमाकी एक विकारी प्राणशक्तिकामायिक रुपसे आधार है। सो रुद्र मायाके पदार्थोंसे कब नापमें आता है। अर्थात् कभी नहीं ॥ १२ ॥

दशानामेकं कपिलं समानं तं हिन्वन्ति क्रतवे पार्याय ॥ गर्भं माता सुधितं वक्षणा स्ववेनन्तं तुषयन्ती बिभर्ति ॥ १३ ॥

अन्वयार्थ—(तुषयन्ती) मायिकसे प्रेरित हुए (अवेनन्तं) जगत्के आकारमें प्रकाश पानेवाले (वक्षणासु) अव्याकृत जलोंके मध्यमें (गर्भं) गर्भको (सुधितं) उत्तमतासे स्थापन किया (क्रतवे) मैं एक हूँ बहुत होऊँ इस संकल्पको (पार्याय) पूर्ण करने के लिये जिस गर्भको (माता) प्राणशक्ति माता (विभर्ति धारण करती है (दशानां) दश प्राणोंके मध्यमें (एकं) अद्वितीय चेतन (समानं) समग्रैश्वर्यशाली (तं) उस (कपिलं) समष्टि व्यष्टि अनन्तरूप धारी ब्रह्माको (हिन्वन्ति) देवता उपासना करते हैं ॥ ऋग्० १०। २७ । १६ ॥

व्याख्या—महेश्वरसे प्रेरित हुए, जगत्के आकारमें प्रकाश पाने वाले, अव्यक्त जलोंके मध्यमें गर्भके समान, संकल्प युक्त चेतनको स्थापन किया। मैं एक हूँ बहुत होऊँ, अर्थात् मायारूप क्षेत्रमें, क्षेत्रज्ञ स्वरूप ब्रह्मा होऊँ। इस सृष्टि विचारको पूर्ण विकाश करनेके लिये जिस माया के तादात्म्य चेतनको, प्राणशक्ति माता धारण करती है सो प्राणशक्ति दश पाश रूपसे विभक्त हुई है, उन प्राणोंकी समष्टि सूत्रात्मा देहके मध्यमें, एक मुख्य चेतन सर्वज्ञ सर्वरूप, उस ब्रह्माको देवता उपासना करते हैं। जैसे युवा स्त्री रजोदर्शनके अनन्तर गर्भ धारण करनेमें समर्थ होती है। तैसे ही संकल्पकी क्रियाशक्तिरूप माया, कारणके आकारमें आनेके पीछे ही अपने तादात्म्य चेतनको ब्रह्मारूपसे धारण कर ती है। प्राणशक्ति कारणके आकारमें आने के लिये तैयार हुई किन्तु

आई नहीं सो ही माया है। यही माया कारणके आकारमें आई, सो ही माया हिरण्यगर्भको धारण करनेवाली अव्याकृत नामसे प्रसिद्ध है। माया-अव्यक्त-अव्याकृत-आप-सलिल-मरुत-विष्णु-ऋत-नर-प्राण स्वधा इत्यादि नाम विकारी बीजशक्तिरूप प्राण-शक्तिके ही हैं [**अमृतं वै प्राणाः** ॥ प्राणशक्ति ही अमृतरूप कारण है॥ तैत्तरीयसं० २। ६। ८। ३।] **प्राणो वै मरुतः** ॥ प्राणशक्ति ही मरुत है ॥ ऐतरेय ब्रा० २२। ६] **आपो वै मरुतः** ॥ व्यापक प्राणशक्ति ही मरुत है ॥ शांखायन ब्रा० १२। ८] **नरो मरुतोऽमृतः** ॥ प्राणशक्ति नर-ओर मरुत नामवाली है॥ ऋग्० ५। ५८। ८] **दश जाता देवाः** ॥ प्राणशक्ति ही दश वसु। दश रुद्र। दश आदित्य। अधिदैव रूपसे प्रगट हुई। ओर देहके नौ द्वार दशमी नाभी ये ये दश प्राण दशेन्द्रियें ये अध्यात्म देवता है ॥ अथर्वण ११। १०। १०] **प्राणो वा अङ्गिराः** ॥ प्राणशक्ति अंगिरा है ॥ शतपथ ब्रा० ६। ७। १। २] **प्राणो वा असुरस्यैषा माया** ॥ प्राण ही असुर है उस प्राण रूप मायिककी यह माया देह है ॥ शतपथ ब्रा० ६। ६। २। ६] **अङ्गिरसो विरूपादिवस्पुत्रा सो असुरस्य वीराः** ॥ स्वयं प्रकाशी चेतन महेश्वरके एक रूपको बहुत रूप धारण करके प्रकाश करने वाले प्राणशक्तिके दश भेद युक्त दश प्राणरूप मरुत नामवाले अंगिरा पुत्र हैं ॥ ऋग्० ६। ५३। ७] **अङ्गिराभिः** ॥ दश प्राणोंसे युक्त ग्यारवाँ चेतन समष्टिब्रह्मा. और व्यष्टि जीव है ॥ अथर्वण २। ११। ४। **दश प्राणा आत्मैकादश** ॥ दश प्राण ग्यारवाँ व्यापक चेतन पुरुष है ॥ शतपथ ब्रा० ८। ४। ३। ८] **ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे** ॥ जिस रुद्र

प्रथम उत्पन्न होनेवाले सर्वज्ञ (कपिलं) हिरण्य गर्भको वेद दिया ॥ श्वेत० उ० ५। २] महर्षिरूप प्रपितामह रुद्रका, ऋषिरूप ब्रह्मा पुत्र है ॥ १३ ॥

असंच्च सच्चं पर॒मे व्यो॑म॒न्दक्ष॑स्य॒ जन्म॒न्नदि॑ते रु॒पस्थे॑ ॥ अ॒ग्निर्ह॑ नः प्रथ॒मजा ऋ॒तस्य॒ पूर्व॒ आयु॑नि वृ॒षभश्च॑ धे॒नुः ॥ १४ ॥

अन्वयार्थ (अदितेः) प्राणशक्ति के (उपस्थे) मध्य (जन्मन्) स्थानरूप (परमे व्योमन्) उत्तम सत्यलोकमें विराजमान ब्रह्मा (प्रथमजाः) सबके पहिले उत्पन्न होने वाला (ऋतस्य) रुद्रका पुत्र है (च) ओर उस (दक्षस्य) वृद्ध सर्वज्ञ ब्रह्माका पुत्र (अग्निः) महाविराट् अभिमानी प्रजापति है (ह) प्रसिद्ध प्रजापतिकी महा विराट देहके सुवर्ण ओर रजत दो भाग है (आयुनि) प्रलयके उत्तर सृष्टि के (पूर्वे) आदि में (वृषभः) उर्ध्वकपाल रूप विराट्का मस्तक (च) ओर (धेनुः) विराट्का पग रूप भूकपाल (नः) हम सब देहधारीयोंके ये दोनों माता पिता हैं (असत्) प्राणशक्ति सूक्ष्म स्थूल है (च) ओर उस प्राणशक्ति में जो चेतन है सो ही (सत्) सत्रूप ब्रह्मा है ॥ ऋग्० १० । ५ । ७ ॥

व्याख्या—मायाके मध्य गर्भस्थान रूप ब्रह्मलोकमें विराजमान ब्रह्मा, सबके पहिले उत्पन्न होनेवाला, रुद्रकापुत्र है। ओर उस सर्वज्ञ पितामह ब्रह्माका पुत्र महाविराट् देहका अभिमानी प्रजापति है, प्रसिद्ध प्रजापतिकी विराट् देहके सुवर्ण और रजत दोकपाल हैं। महा प्रलयके अनन्तर उत्तर सृष्टिके आदिमें जल वर्षा करने-वाला ऊर्ध्व कपाल द्यौ है, ओर वर्षारूप वीर्यको धारण करनेवाली,

असंख्य भूमीयोंकी जननी रजत कपालात्मक पृथिवी है, हम सबके ये दोनों माता पिता हैं। कारण स्वरूप प्राणशक्ति ही सूक्ष्म स्थूल देह है, ओर उस सूक्ष्म स्थूल देहमें जो चेतन है, सो ही सत् स्वरूप क्षेत्रज्ञ ब्रह्मा है। यही ब्रह्मा स्थूल उपाधिसे प्रजापति है [**अग्नि वैं विराट्** ॥ अग्नि नामवाला विराट् है ॥ कपिष्ठल कठ सं० २९। ७।] **आप एवेदमग्र आसुस्ता आपः सत्य मसृजन्त सत्यं ब्रह्म ॥ ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापतिर्देवा स्ते देवाः सत्यमेवोपासते** ॥ इस स्थूल विश्वके पहिले व्यापक कारण ही था उस अव्यक्तने सत्यरूप ब्रह्माको उत्पन्न किया, सत्य स्वरूप चेतन ब्रह्माने प्रजापतिको रचा, फिर महा विराट् अभिमानी प्रजापतिने असंख्य त्रिलोकात्मकवर्ती अग्निवायु सूर्य आदिक देवताओंको रचा। वे देवता स्थूल देह अभिमानी प्रजापतिको त्याग कर सूत्रात्मा अभिमानी ब्रह्माकी उपासना करते हैं ॥ बृह० उ०। ५। ५। १।] **प्रथमजं ब्रह्म** ॥ प्रथम प्रगट होनेवाले हिरण्यगर्भको उपासते हैं ॥ बृह० उ० ५। ४। १।] **ब्रह्मा हि परः परो हि ब्रह्मा** ॥ ब्रह्मा ही महेश्वर है। महेश्वर ही ब्रह्मा है ॥ तैत्तरीयारण्यक १०। ७८।] **अग्निर्ह वै ब्रह्मणो वत्सः** ॥ प्रजापति ही प्रसिद्ध ब्रह्माका पुत्र है ॥ जैमिनीयं ब्रा० २। ५। १। १।] **प्रजापतिं ब्रह्माऽसृजत** ॥ ब्रह्माने प्रजापतिको उत्पन्न किया ॥ जैमिनीय ब्रा० ३। ७। १। १।] अधिष्ठान महेश्वर ही मायादेहमें तादात्म्य रूपसे ब्रह्मा हुआ ॥ १४ ॥

देवानां नु वयं जाना प्रवोचाम विपन्यया ॥ उक्थेषु शस्यमानेषु यः पश्यादुत्तरे युगे ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(देवानां) देवताओंके (जाना) जन्मोंको (वयं) मैं वृहस्पति (विपन्यया) विशेष स्पष्ट वाणीसे (प्रवोचाम) कहता हूँ (यः) जो (नु) कोई भी (उत्तरेयुगे) वर्तमान समयमें (शस्यमानेषु) प्रसंशनीय (उक्थेषु) उपादान कारण अव्याकृतमें (पश्यत्) देखता है ॥ ऋग्० १० । ७२ । १ ।]

व्याख्यान—जो कल्प और मन्वन्तरके आदिमें मंत्रको देखता है । सोही ऋषि है, ओर मंत्रमें जिसका वर्णन होवे सा ही देवता है । जिस प्रकार सृष्टि शान्त अनादि है, उसी प्रकार वेद भी अनादि है । मह। प्रलयके अनन्तर उत्तरसृष्टिके आदिमें सब वेद मंत्रोका दृष्टा ब्रह्मा है । ओर प्रत्येक कल्प मन्वन्तर के आदिमें ब्रह्माकी कृपासे जो २ ऋषि मंत्र प्राप्त करता है, उस २ मंत्रका सो ही दृष्टा होता है। मैं वृहस्पति सब देवताओंके जन्मोंको यथार्थ जानता हुआ कहता हूँ । समस्त प्रपञ्चके कारणको वर्णन करता हूँ । इस वर्तमान सृष्टिकालमें—जो कोई भी वैदिक श्रद्धालु पुरुष, प्रसंशनीय महेश्वरकी देहभूत माया, कार्यकारण समूहमें । सब देवता प्रजापतिकी विभूति रूपसे स्थित है [**वायु वैं पशूनां प्रियं धाम** ॥ प्राणशक्ति ही देवता आदि प्राणियोंका उत्पत्ति आदिका स्थान है ॥ तैत्तरीय सं० ५ । ५ । ॰१ । १ ।] **प्राणो वै मरुतः** ॥ प्राणशक्ति ही दश प्राण रूप पाश है ॥ तैत्तरीय सं० २ । ३ । १ । ५ ।] **दश वे प्राणाः** ॥ दश पाश रूप प्राण हैं ॥ ऐतरेय ब्रा० २९ । ३ ।] **दश वै पाशोः प्राणा आत्मैकादशः** ॥ दश प्राणरूप पाशसे ग्यारवाँ चिदाभास वँधा है ॥ कृष्ण यजु कपिष्ठल कठ सं० ४१ । २ ।] **आत्मा पशुः** ॥ आत्मा ही पशु है ॥ कपिष्ठल कठ सं ४१ । ६ ।] **दश हि प्राणाः** ॥ दश पाश ही प्राण हैं ॥ **प्राणो वे वायुः** ॥ प्राण

ही अव्याकृत है ॥ कपिष्ठव कठ सं० ४२ । ५ ।] पशवो वै बृहती: ॥ दश प्राणरूप मायाशक्ति ही जीवरूप पशुओंका तीन प्रकारसे देह है ॥ कपि० सं० ४४ । ६ ।] आत्मा हि वरः ॥ चिदाभास ही उत्तम रुद्र स्वरूप है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४४ । ५] प्राणो वै ग्रहाः ॥ प्राण ही पाश रूप ग्रह हैं ॥ कपि० सं० ४६ । ५ ।] आपो देवानां प्रियं धामः ॥ प्राण शक्ति ही देवता आदि प्राणियोंका स्थान है ॥ कपि० सं० ४७ । ३ ।] दश भेद युक्त व्यापक सत्ताको मानकर ही प्राणशक्तिका वहुवचनमें प्रयोग हुआ है । ओर कारण रूपसे एक वचन है ॥ १५ ॥

ब्रह्मणस्पतिं रेतासंकर्मारं इवाधमत् ॥ देवानां पूर्व्ये युगेऽसतः सदं जायत ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(कर्मारः इव) लोहारके समान (ब्रह्मण स्पतिः) मायाका स्वामी रुद्र (सं) अनन्त महा प्रलयोंके क्रम पूर्वक (अधमत्) बीज सत्ताको कारणके रूपमें प्रेरणा किया (पूर्व्ये) ब्रह्माकी उत्पत्तिके पहिले (युगे) प्रलयके अन्त ओर सृष्टिके आदि रूप दोनोंकी संधिमें, सो माया कारणके रूपसे भासी, उस माया रूप (असतः) मिथ्या प्राणशक्तिसे (सत्) सत् चेतन स्वरूप भगवान् ब्रह्मा (अजायत) उत्पन्न हुआ। उस विधाता के प्रजापति रूपसे (एता) इन (देवानां) अग्नि वायु सूर्यादि अधि दैवोंके सहित, वाणी आदि अध्यात्म देवताओंका जन्म हुआ ऋग्० १० । ७२ । २ ।]

व्याख्याः—जसे लोहार सूक्ष्म अग्निको विशेष रूपमें प्रज्व-लित करता है । तैसे ही महेश्वरने महा प्रलय स्मशानरूप समा-धिसे शवस्वरूप निर्विशेष बीज सत्ताको अनन्त महा प्रलयके

समान क्रम पूर्वक, विकारी कारणके आकारमें प्रेरणा किया। अर्थात् निर्विशेष बीज शवको, सविशेष सत्ताके आकारमें विकाश होनेके लिये हलाथा। यही कारणके रूपमें सन्मुख होनेवाली माया है॥ फिर माया संकल्पकी अभिव्यक्ति रूप क्रिया ही अव्याकृत है। सूक्ष्म कार्य उपाधिक ब्रह्माकी उत्पत्तिके कुछ पहिले प्रलयका अन्त और सृष्टिका आदि, इन दोनों सन्धियोंके मध्यमें प्राण शक्ति रूप शव भासा। उस माया शवमें रुद्रने चिदाभास रूपसे प्रवेश किया, सो कारणात्मक अव्याकृत्त मुर्दा अपने तादात्म्य चेतनको गर्भ के समान धारण करता हुआ सूत्रात्माके रूपमें प्रगट हुआ। इस कल्पित मायाकी सूक्ष्म उपाधिसे मायिक महेश्वरका ब्रह्मा रूपसे जन्म हुआ। यही ब्रह्मा रूपसे अव्याकृत शवमें रुद्रका वास है॥ और विकारी माया शवको निर्विशेष रूपसे भस्म करके महाप्रलय समाधिमें एक ज्ञान रूपसे भस्मको धारण करता है, सो ही महेश्वर है। जिस रुद्रमें प्रलय के समय भस्म रूपसे अव्यक्त शयन करता है, इस लिये ही रुद्रका नाम शिव है। उस रुद्रकी सत्तासे ही अव्याकृत शव विश्वके आकारमें विकाश करता है। उस कारण अवस्थाकी उपाधिसे चेतनका नाम मायिक, सूत्रात्माकी उपाधिसे हिरण्यगर्भ, स्थूल विराट्की उपाधिसे प्रजापति है। सत्यस्वरूप ब्रह्मा ही प्रजापति रूपसे इन अग्नि वायु सूर्यादि अधिदैवोंके सहित वाणी आदि अध्यात्म देवताओंका उत्पत्ति कर्त्ता है [यस्य ब्रह्म च क्षत्रंच उभे भवत ओदनं ॥ जिस रुद्रका (ब्रह्म) व्यापक कारण अव्याकृत और (क्षत्रं) सूक्ष्म सूत्रात्मा ये दोनों देह अन्न होते हैं। ब्रह्म नाम मायाका है॥ कठोपनिषद्० २। २५] ब्रह्म वै पर्णं॥ माया ही अव्याकृत है॥ तैत्तरीय सं० ३। ५। ७। २।] असद्वा इदमग्रा

आसीत् ॥ ततो वैसद जायत ॥ प्रसिद्ध यह जगत् पहिले प्राणशक्ति रूप ही था। उस अव्यक्तसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ ॥ तैत्तरीयारण्यक ८। २। ७।] ब्रह्म ॥ ब्रह्म नाम माया देहका है ॥ ऋग्० ९। ६७। २३।] शवः ॥ बल शक्ति है ॥ ऋग्० ॥ १०। २३। ५।] ब्रह्म ॥ ब्रह्म नाम सूत्रात्मा देहका है उस देहमें ब्रह्मा स्थित है ॥ शवः ॥ बलात्मक सूत्रात्मा देह है ॥ अथर्वण ११। १०। २३। ३४।] शत योनिः ॥ असंख्य प्राणशक्तिरूप बल है ॥ अथर्वण १९। ४६। ६।] बल वै मरुतः ॥ मरुत रूप प्राणशक्ति अनन्त बल रूपसे प्रसिद्ध है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४६। १।] अन्नं वै मरुतः ॥ अव्याकृत ही मरुत है ॥ तैत्तरीय सं० २। १। ५। २।] पशवो वै मरुतः ॥ अव्यक्त ही सब देहधारी पशु मात्र है ॥ मैत्रायणी सं० १। १०। २५।] पशवो वै सलिलं ॥ व्यष्टि समष्टि देहधारी प्राणीमात्र हीं अव्याकृत रूप हैं ॥ मैत्रायणी सं० १। ४। ९।] वीर्यं वै प्राणः ॥ बल ही प्राणशक्ति है ॥ काठक सं० ९। ११।] ब्रह्म ॥ ब्रह्म नाम अन्नका है ॥ ऋग्० १। १०। ४।] आपो देवी अग्रे ॥ व्यापक प्राण शक्ति ही सूत्रात्माके पहिले प्रगट हुईथी ॥ तैत्तरीय सं० ३। २। ५। १।] अव्याकृत अन्नका स्वामी महेश्वर है ॥ १६ ॥

देवानां युगे प्रथमेऽसतः सद्‍ जायत ॥ तदाशा
अन्वजायन्त तदुत्तान पदस्परि ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(देवानां) अग्नि इन्द्र आदि देवताओंकी (युगे) उत्पत्तिके (प्रथमे) पहिले (असतः) मायारूप प्राण शक्तिसे (सत्) चेतन पुरुष ब्रह्मा (अजायत) प्रगट हुआ

(तत्) उस ब्रह्माने अपने सूक्ष्म देहसे (आशाः) महा विराडात्मक पंच भूत (अजायन्त) प्रगट हुए (अनु) महा विराट्की उत्पत्तिके पीछे (तत्) उस महा विराट् अभिमानी प्रजापतिने अपने स्थूल देहवर्ति पंच भूतोंमें (उत्तानपदः) ऊँचे पगवाले नक्षत्र मण्डल (परि) प्रगट हुए॥ ऋग्० १० ७२। ३।]

व्याख्याः—देवताओंकी उत्पत्तिके पहिले प्राणशक्तिसे सत् स्वरूप ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, उस ब्रह्माने अपने सूक्ष्मदेहसे महा विराडात्मक पंचभूत प्रगट किये, ये अन्तरिक्ष आदि पंचभूत महा विराट्के अवयवहैं। महर्लोक शाखामें नीचेको फल के समान नक्षत्र मण्डलरूप फल लटकते हैं। प्रकाशयुक्त नक्षत्रोंका आधार रूप पग ऊँचा महर्लोक है। अपनी उत्पत्तिके पहिले सब नक्षत्र महर्लोक रूपही थे फिर उससे प्रगट हुए। और अन्तमें फिर उसीमें लय हो जाते हैं [श्यामा एकरूपा भवंति॥ सब देव गृह रूप नक्षत्र प्रलयमें एकतम शक्ति स्वरूप हो जाते हैं॥ तैत्तरीय ब्रा० १। ३। ४। ४।] देव गृहा वै नक्षत्राणि॥ नक्षत्र मण्डल चेतन देवताओंके देह रूप घर हैं॥ तैत्तरीय ब्रा० १। ५। २। ६।] तपलोक अमृत शक्तिरूप अग्निकी प्रधानता। जनलोक अग्निसोमकी प्रधानता। और महर्लोक सोम शक्तिकी प्रधानता है। इस सोम रूप प्रजापतिसे ही सब नक्षत्र प्रगट होते हैं उन नक्षत्रोंमें जडके सहित स्थूलता है सो ही सोमकी है। जो प्रकाश है सो ही अग्निका है। प्रत्येक् नक्षत्र अभिमानी देवता है सोही ब्रह्मा है। इस लिये ही सब देवता ब्रह्माकी विभूति हैं॥ १७॥

भूर्जज्ञ उत्तानपदो भुव आशा अजायन्त॥ अदितेर्दक्षो अजायत दक्षाद्वदितिः परि॥ १८॥

अन्वयार्थः—(भूः) भूमीसे (उत्तानपदः) ऊँचे पगवाले वृक्ष (जज्ञे) प्रगट हुए (भुवः) अन्तरिक्षसे (आशाः) पूर्वादिक दिशायें (अजायन्त) प्रादुर्हुईं (अदितेः) प्राणशक्तिसे (दक्षः) समर्थ ब्रह्मा (अजायत) उत्पन्न हुआ (ऊँ) ओर (दक्षात्) ब्रह्मासे (अदितिः) महा विराट् रूप सरस्वती (परि) प्रगट हुई ॥ ऋग्० १० । ७२ । ४ ॥

व्याख्याः—जैसे भूमीसे ऊँचे पगवाले वृक्ष उत्पन्न हुए। अन्तरिक्षसे दिशा पूर्वादिक प्रगट हुई तैसेही अव्यक्ताकाशसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ। ओर ब्रह्मासे महा विराट् रूप सरस्वती उत्पन्न हुई [प्रथमजा ब्रह्मणः ॥ सबकी उत्पत्ति करनेवाले ब्रह्माका जन्म पहिले हुआ ॥ ऋग्० ३ । २९ । १५ । **यः पूर्वं तपसो जात मद्भ्यः पूर्वमजायत। गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तं यो भूतेभि र्व्यपश्यत ॥ एतद्वैतत् ॥ या प्राणेन संभवति। अदिति र्देवतामयी ॥ गुहां प्रविश्य तिष्ठन्तीं या भूतेभिर्व्यजा-यत ॥ एतद्वै तत् ॥** अव्याकृत गुहामें प्रविष्ट होकर, अव्याकृतसे प्रथम उत्पन्न हुआ, महेश्वरके बहुतात्मक संकल्पसे प्रथम देहधारी जो ब्रह्मा प्रगट हुआ महा विराडात्मक पंच भूतोंके सहित उस जगत् कर्त्तारूपसे स्थित ब्रह्माको नाना स्वरूपसे जो मनुष्य देखता है, यह व्यष्टि उपाधिक देखनेवाला चेतन ही सो समष्टि उपाधिक चेतनरूप ब्रह्मा है। जो सर्व देवात्मक प्रजापतिरूप अदिति, सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्मासे, स्थूल महाविराट् देहधारी प्रगट हुई—अदिति ने अपने पंच भूतात्मक देहसे अनन्त त्रिलोकमय विराटोंको रचा, उस रचे हुए, प्रत्येक त्रिलोक फलरुप गुहामें प्रवेश करके, जो अग्नि वायु आदित्यादिके रुपोंसे प्रगट हुई, उस महा विराट् अभिमानी प्रजापति रुपसे स्थित हुई अदितिको जो मनुष्य ब्रह्माके स्वरुपसे

देखता है, यह अनुभव करनेवाला चेतन ही सो ब्रह्म रूप है ॥ कठोपनिषद् ४ । ६ । ७ ।] **सर्वं वा अत्तीति तददितेरदितित्वं** ॥ हिरण्यगर्भ अदितिरूप ब्रह्मा प्रत्येक कल्पके अन्तमें त्रिलोकमय फलोंकों खाता है। ओर महा प्रलयमें सूत्रात्मा देहको, अव्याकृत रूप अदिति खाती है, सबको भक्षण करनेसेही उस अव्यक्त ओर हिरण्यगर्भका अदितिपना है । अग्नि, सोम, सूर्य, वायु, भूमी, अन्तरिक्ष, द्यौ, विराट् सूत्रात्मा, अव्यक्त, इत्यादि नाम अदिति वाचक हैं ॥ बृ० उ० १ । २ । ५ ।] **अदितिः** ॥ अदिति नाम अग्निका है ॥ ऋग्० ४ । २ । २० ।] **अदितिः** ॥ भूमी है ॥ ऋग्० ५ । ६२ । ८ ।] **अदितिः** ॥ उषा है ॥ ऋग्० । १३ । १९ ।] **अदितिः ॥ देवः सविता** ॥ सूर्य है ॥ ऋग्० १ । १०७ । ७ ।] **अदितिः** ॥ बुद्धि है ॥ माध्यन्दिनी सं० ११ । ५६ ।] **अदिति सरस्वती** ॥ अदिति हीं सरस्वती है । मा० सं० ३८ । २] **अदित्यै विष्णु पत्न्यै** ॥ यज्ञसे (पत्न्यै) रक्षित अदितिरूप भूमिके लिये ॥ मा० सं० २९ । ६०] **विष्णुः** ॥ विष्णु नाम यज्ञका है ॥ मा० सं० २९ । ५६ ।] **अदितिः पुरुषो दिशः पतिः** ॥ अदिति पुरुष ही दिशाओंका स्वामी है ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३ । ११ । ६ । ३ ।] **अदितिं दक्षं** ॥ प्राणशक्ति रूप अव्यक्त, और सूत्रात्मा है ॥ ऋग्० १ । ८९ । ३ ।] **दक्षस्यवादिते जन्मनि** ॥ हे भूमी सूर्यके उदय रूप जन्ममें यहाँ दक्ष नाम सूर्यका है ॥ ऋग्० १० । ६४ । ५ ।] **दक्षं** ॥ सर्वज्ञ चतुर ब्रह्मा ॥ ऋग्० १ । १५ । ६ ।] **दक्षः** ॥ **सर्व सामर्थ संपन्न** ब्रह्मा है ॥ ऋग्० १ । ५९ । ४ ।] **दक्षं** ॥ वृद्ध पितामह सर्व व्यापी ब्रह्मा है ॥ ऋग्० । २५ । १ ।] अदिति शब्द ब्रह्मा ओर प्राणशक्तिका विशेषण है ॥ १८ ॥

अदि॑ति॒र्ह्यज॑निष्ट॒ दक्ष॒या दु॑हि॒ता तव॑ ॥ तां दे॒वा अन्व॑जायन्त भ॒द्रा अ॒मृत॑ बन्धवः ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(दक्ष) हे सर्वज्ञ ब्रह्मदेव (तव) आपकी (दुहिता) पुत्री (या) जो (अदितिः) विराट् (अजनिष्ट) प्रगट हुई (तां) उस वाणी रूप विराट्को (हि) आश्रयकरके (देवाः) देवता (अजायन्त) उत्पन्न हुए (अनु) उत्पत्तिके पश्चात् (अमृत बन्धवः) अधिदैव स्वरूप चिर स्थायी देवता (भद्राः) अध्यात्म प्रजारूप हैं ॥ ऋग्० १० । ७२ । ५ ।]

व्याख्याः—हे सर्वज्ञ विधाता जो आपकी महा विराट् पुत्री प्रगट हुई–उस माताको आधारकरके सब देवता प्रगट हुए। उत्पत्तिके पीछे, अधिदैव स्वरूप चिरस्थायी स्वभाव वाले देवता अध्यात्म रूप प्रजा हैं [**आपो देवानां प्रियं धाम** ॥ अदिति रूप विराट् सर्व देवताओंका उत्पत्ति स्थान प्रिय घर है ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३ । २ । ४ । २ ।] **प्राणा वा आपः** ॥ प्राणशक्ति रूप विराट् ही आप हैं ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३ । २ । ५ । १ ।] **मरुतो वै देवानामपराजितमायतनं** ॥ अव्याकृत ही देवताओंका पराजय रहित निवास स्थान है ॥ तैत्तरीय ब्रा० १ । ४ । ६ । २ ।] **द्यौ वै सर्वेषां देवाना मायतनं** ॥ विराट् रूप अदिति ही सब देवताओंका निवास स्थान है ॥ शतपथ ब्रा० १४ । २ । ३ । ८ ।] अव्याकृत अदितिकी ही सूक्ष्म स्थूल दोनों अवस्थाका नाम अदिति है ॥ १९ ॥

यद्दे॑वा अ॒दः स॑लि॒ले सुसं॑रब्धा॒ अति॑ष्ठत ॥ अत्रा॑ वो॒ नृत्य॑ता मिव ती॒व्रो रे॒णुरपा॑यत ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(यत्) जिस प्रकार (देवाः) हे देवताओ (अदः) उस (सलिले) महा विराट्में (सुसंरब्धाः) उत्तम अवस्थाको धारण करनेवाले तुम सब (अतिष्ठत) स्थित हुए। ओर (अत्र) इस सौरात्मक द्युलोकमें (नृत्यतां इव) नृत्य करनेके समान (वः) तुम्हारा सम्बन्धी (तीव्रः) तीक्ष्ण तेज युक्त (रेणुः) एक अंश रूप सूर्य है, उस सूर्यको (अपायत) त्याग दिया ॥ ऋग्० १० । ७२ । ६ ॥

व्याख्याः—जिस प्रकार हे देवताओ, उस महा विराट्के अन्तर गत असंख्य लोकवर्ती, उत्तम अवस्थाको धारण करनेवाले तुम सब स्थित हो। उसी प्रकार इस सौरात्मक द्यौमें, नाच करनेके समान, तुम्हारा सम्बन्धी तेज, अपने २ मण्डलके सदृशय पृथक् रूपसे, उस सूर्यको त्याग दीया ॥ २० ॥

यद्देवा यतयो यथा भुवनान्यपिन्वत ॥ अत्रा समुद्र आगूळ्हमा सूर्यमजभर्तन ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(देवाः) हे देवताओ (यथा) जिस प्रकार (यतयः) मेघ (भुवनानि) भूमीके सब भागोंको (अपिन्वत) जलसे पूर्ण करते हैं। उसी प्रकार (यत्) जो सूर्य मण्डल चराचर विश्वको, अपनी किरणोंसे प्रकाश करता है (अत्र) इस (समुद्रे) द्युलोकमें (आगूळ्हं) रात्रीके समय छिपे हुए (सूर्यं) सूर्यको दिनके (अजभर्तन) आगमन रुपसे सम्पादन करते हो ॥ ऋग्० १० । ७२ । ७ ॥

व्याख्याः—हे देवताओं जिस प्रकार मेघ भूमीके सब भागोंको जलवर्षासे पूर्ण करते हैं, उसी प्रकार सूर्यमण्डल सब

विश्वको अपनी किरणोंसे प्रकाशित करता है। इस द्यौरूप समुद्रमें रात्रिके समय अदृश्य हुए सूर्यको, दिनके आगमन रूपसे सम्पादन करते हो ।२१॥

अष्टौ पुत्रासो अदितेर्ये जाता स्तन्व१स्परि ॥
देवाँ उप प्रैत्सप्तभिः परा मार्ताण्ड मास्यत् ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(अदितेः) विराट्के (तन्व) देहसे (परि) सर्वत्र व्यापक (अष्टौ) आठ (पुत्रासः) पुत्र (ये) जे (जाताः) उत्पन्न हुए (सप्तभिः) सात पुत्रोंके सहित अदिति (देवान्) असंख्य प्रकाश सुख वाले लोकोंको (उपप्रैत्) प्राप्त हुई (मार्ताण्डं) आठमें विवस्वान्को (परा) सुखमय लोकोंसे दूर (अस्यत्) फेंक दीया ॥ ऋग्० १०। ७२। ८।]

व्याख्या:—महा विराट्के देहसे सर्वत्र व्यापक, आठ पुत्र जे प्रगट हुए-उनमेंसे सात पुत्रोंके सहित अदिति अनन्त सौरमय सुख, प्रकाशवाले, लोकोंके आकारको प्राप्त हुई, और आठमें विवस्वान् पुत्रको, सुखवाले लोकोंसे दूर फेंक दिया। अर्थात् जिस सूर्यके उदय अस्तसे प्राणियोंकी उत्पत्ति ओर मरण होवे सोही मार्ताण्ड नामका अपने लोकका सूर्य है। आठ भेद विराट्के है। सात भेद रूप शाखाओंमें असंख्य त्रिलोकमय फल लगे हैं। इन लोकोंमें वसनेवाले प्राण देवरूपसे सुखी हैं। और आठमें सूर्यके भेदवाले जे लोक हैं, वे सब सुख दुःख युक्त प्राणियोंसे भरे हुए हैं ॥ २२ ॥

सप्तभिः पुत्रैरदितिरुप प्रैत्पूर्व्यं युगम् ॥ प्रजायै मृत्यवे त्वत्पुनर्मार्ताण्डमा भरत् ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(युगं) अध्यात्म सृष्टिकी उत्पत्तिके (पूर्व्यं) पहिले (सप्तभिः) सात (पुत्रैः) पुत्रोंके स्वरूपको धारण करके (अदितिः) विराट् अभिमानी प्रजापति (उपप्रैत) सात भेदको प्राप्त हुआ—इन सात भेदोंसे असंख्य अधिदैव सृष्टि हुई (त्वत्) और (प्रजायै) प्रजाके (मृत्यवे) नाशके लिये (पुनः) फिर (मार्ताण्डं) विवस्वान्को (अभरत्) धारण किया ॥ ऋग्० १०। ७२। ९।]

व्याख्या—सात पुत्रोंके स्वरूपको धारण करके अदितिरूप प्रजापति, अध्यात्मकी उत्पत्तिके प्रथम, सातभेदको प्राप्त हुआ। उस सात भेदोंसे अपरिमित सुखमय लोक प्रगट हुए। और जन्म मरण वाली प्रजाकी उत्पत्तिके लिये फिर प्रजापतिने अपने देहसे मार्ताण्ड नामवाले सूर्यको प्रगट किया [**इयं वा अदितिः** ॥ यह प्रसिद्ध स्थूल ही अदिति है ॥ तैत्तरीय सं० ५। १। ७। ३।] **इयं वै प्रजापतिः** ॥ यही अदिति प्रजापति है ॥ तै० सं० ५। १। २। ५।] **इयं वै विराट्** ॥ यही प्रजापति विराट् है ॥ तै० सं० ६। ३। १। ४।] **अष्ट योनि रदिति रष्ट पुत्राष्टमीं रात्रिं** ॥ आठ भेद रूप कारण, आठ पुत्र, आठमी रात्री रूप अदिति है ॥ अथर्वण ८। ९। २१।] महा विराट्में आठ कारण स्वरूप स्थित हैं, वे ही आठ पुत्र हैं। उस अष्ट स्वरूप वाली महा विराट् रात्रीको जानों [**अदिति वैं प्रजा कामौदन मपचत्** ॥ **तस्योच्छिष्टमाश्नात्** ॥ **सा गर्भ मधत्त** ॥ **तत आदित्या अजायन्त** ॥ प्रसिद्ध विराट् देहधारी प्रजापति ने प्रजा रचनेकी कामनासे, अपने सोमात्मकदेहरूप अन्नको एक रूपसे आठ रूपमें विकाशमय परिपक्व किया। उस सोमके पूर्ण विकाशको प्रजापतिकी अग्नि देह खा गया, सो अग्नि

रूप अदितिने गर्भ धारण किया। अर्थात् सोमरूप आधारको पाकर, अग्नि आधेय विशेष स्वरूपमय गर्भको धारण करती हुई विस्तृत होने लगी। उस विकाशके फलसे आदित्य उत्पन्न हुए। अग्निके अंशसे अन्तरिक्ष, वायु, तेज, समष्ठिमन, बुद्धि प्रगट हुए, इस मनका नाम महासोम ओर बुद्धिका नाम बृहस्पति है। इनका सम्बन्ध जन ओर महर्लोकसे है। और सोमके अंशसे जल भूमी प्रगट हुई। इन अग्नि सोमात्मक सात कारणोंके मध्यमें असंख्य त्रिलोक अवस्थित हैं। और आठमें विवस्वात् सूर्य है। सो ही अपने त्रिलोकका स्वामी है॥ काठक सं० ७। १५।] कारण स्वरूप अग्नि सोमके, सूक्ष्म स्थूल समष्ठि व्यष्टि कार्य हैं। वे सबही कार्य अग्नि सोमके नामसे प्रसिद्ध है। [**विराट् वा इदमग्र आसीत् ॥ तस्या जातायाः सर्वमबिभेदियमेवेदं भविष्यतीति** ॥ सूत्रात्मा उपाधिक ब्रह्माके पीछे, ब्रह्माके संकल्पकी, क्रिया रूप अभिव्यक्ति विराट् स्त्री ही, इस अधिभौतिक, अधिदैव, अध्यात्म सृष्टिके पूर्व थी। उस विराट् अदितिके प्रगट होनेके पीछेसे, समस्त जगत् विराट् मातासे (अविभेत्) उत्पन्न हुआ, यह सरस्वती देवता ही वर्तमान संसार है। ओर यह अदिति भविष्यमें सब विश्व रूप होवेगी। सावित्री, सरस्वती, शतरूपा, अदिति, विराट्, विष्णु, धेनु, गायत्री, उषा, द्यौ, वाणी, इत्यादि शब्द विराट्के वाचक हैं॥ अथर्वण ८। १०। १।] **प्रजापति र्विराजमपश्यत् ॥ तया भूतं च भव्य चासृजत** ॥ ब्रह्माने अपने सूक्ष्म देहसे प्रगट हुए स्थूल विराट् रूप कन्याको विविध जगत् रचनेका साधन देखा। उस विराट् पत्नी के द्वारा, जो विश्व उत्पन्न हो गया, ओर वर्तमान कालमें प्रपंच प्रगट हो रहा है, ओर भविष्यमें प्रादुर्भाव होगा, उस

संसारको रचडाला ॥ तैत्तरीय सं० ३ । ३ । ५ । २ ।] प्रजापति वै हिरण्यगर्भः ॥ प्रजापति ही हिरण्यगर्भ है ॥ तै० सं० ५ । ५ । १ । २ ।] प्रजापति वै ब्रह्मा: ॥ प्रजापति ही ब्रह्मा है ॥ मैत्रयणी सं० १ । ११ । ७ ।] प्रजापति र्वा इदमासीत् ॥ तस्य वाग्द्वितीयासीत् ॥ तां मिथुनं समभवत्सागर्भमधत्त ॥ सास्मादपाक्रामत्सेमाः प्रजा असृजत ॥ सा प्रजापति मेव पुनः प्राविशत् ॥ यह सब जगत् ब्रह्मा रूप ही था, उस ब्रह्माकी वाणीरूप अदिति दूसरी अवस्था हुई, ब्रह्माके संकल्पकी अभिव्यक्ति क्रिया हुई सोही स्थूल विराट् जड देह है। जड क्रिया युक्त चेतन ही अदिति है। ओर चेतन युक्त जड संकल्प ही प्रजापति पुरुष है। मैं ब्रह्मा एक हूँ, वहुत स्वरूप धारी प्रजापति होऊँ। मैं ब्रह्मा एक हूँ, वहुत सूक्ष्म संकल्पका आधार रूप पिता है। वहुत होऊँ यही तादात्म्य चेतन संकल्पका आधेय रूप पुत्र है। ओर संकल्पकी अभिव्यक्ति रूप क्रिया ही पुत्री है। अर्थात् संकल्पकी पुत्री क्रिया है। उस अदिति पुत्री रूप जोडीको पाकर प्रजापत्ति उत्तम स्त्री पुरुष रूपसे जोडीवाला हुआ। पिताके वहुतात्मक वीर्यको उस सरस्वती पुत्रीने गर्भ रूपसे धारण किया। उस विराट् पुत्री रूप पत्नीने यह सब प्रजा रची। उस सावित्रीने कहा हे प्रजापते हमसे यह प्रजा प्रगट हुई, सोजड है। प्रजापतिको कह कर सो देवीने प्रजापतिके सहित जड शरीरोंमें फिर स्त्री पुरुष रूपसे प्रवेश किया। क्रिया उपाधिक चेतन स्त्री, और संकल्प उपाधिक पुरुष है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४२ । १ ।] अथयः स प्राण आसीत् ॥ स प्रजापति रभवत् सएष पुत्री ॥ जो महेश्वर था सो ही हिरण्यगर्भ हुआ। सो ही ब्रह्मा प्रजापति हुआ। ओर सो ब्रह्मा

यह प्रजापति रूप पुत्री है। संकल्प ओर क्रिया रूप ही प्रजापति है॥ सामवेदीय जैमिनीय ब्रा० २। १। १। १।] **एको हि प्रजापतिस्त्रय: ॥** एक ही ब्रह्मा तीन रूपसे अदिति, प्रजापति, ब्रह्मा है॥ काठक सं० ३३। ८।] जैसे वेतस नामकी लता, स्वयं ही वीज, अंकुर ओर लता रूप है। तैसे ही मायिक महेश्वर ही ब्रह्मा, प्रजापति, अदिति रूप है [**अदित्याः सप्त ॥** सात आदित्य हैं। बुद्धि, मन, आकाश, वायु, अग्नि जल, भूमी इन सात कारणों में ही अपरिमित लोक स्थित हैं॥ काठक सं० ११। ६।] **अदिते गर्भं भुवनस्य गोपां ॥** विराट्का गर्भ ब्रह्माण्डका रक्षक है॥ काठक सं० १५। १३।] अदिति के गर्भ रूप दो पुत्र–मित्र वरुण। मित्र बुद्धि और वरुण मन है। फिर दो पुत्र, धाता अर्यमा। आकाश धाता और वायु ही अर्यमा है। भग, दक्ष, अंश, फिर तीन पुत्र, भग अग्नि रूप, दक्ष जल रूप, अंश भूमी रूप है। ओर आठमाँ विवस्वान् है ॥ २३ ॥

सप्त दिशो नाना सूर्याः सप्त होतार ऋत्विजाः ॥
देवा आदित्या येसप्तते भिः सामाभिरक्षनः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(सप्त दिशः) सात कारण रूप शाखाओं में (नाना सूर्याः) असंख्य त्रिलोकवर्ती सूर्य हैं (सप्त होतारः) सात किरण रूप जलके पान करने वाले (ऋत्विजाः) ऋत्विक हैं (ये) जे (सप्त आदित्याः) सात आदित्य (देवाः) देवता हैं (तेभिः) उन सात देवोंके सहित (सोम) हे सोम (नः) हमारी (अभिरक्ष) सर्वत्रसे रक्षा कर॥ ऋग्० ९। ११३। ३।]

व्याख्याः—सात कारण रूप शाखाओंमें असंख्य त्रिलोक वर्ती सूर्यरूप फल लगे हैं, प्रत्येक सूर्यमें सात किरण जलके पान

करनेवाले ऋत्विक हैं। ये सात आदित्य देवता हैं, उन सात देवताओंके सहित हे आठमें आदित्य तुम हमारी सर्वत्रसे रक्षा करो **आदित्यो वै सोमः** ॥ सूर्य ही सोम है ॥ काठक सं. २६ । २] **असदेवेदमग्र आसीत् ॥ तत्सदासीत्तत्समभवत्तदाण्ड निरवर्तत ॥ तत्संवत्सरस्य मात्रामशयत तन्निर भिद्यत ते आण्ड कपाले रजतश्च सुवर्णं चाभवताम् ॥ तद्यद्रजतं सेयं पृथिवी यत्सुवर्णं सा द्यौ र्यज्जरायु ते पर्वता यदुल्बं समेघो नीहारो या धमनयस्ता नद्यो यद्वास्तेयमुदकं स समुद्रः ॥ अथ यत्तदजायत सोऽसावा-दित्यः** इस जगत्की उत्पत्तिके पहिले (असत्) प्राणशक्ति ही थी सो ही अव्यक्त व्यक्त स्वरूप ब्रह्मा हुई। उस ब्रह्माकी सूक्ष्म देहसे विराट् स्थूल अण्डाकृति देह हुई, सो अग्नि सोमात्मक देह पूर्ण परिपक्व होकर एक वर्ष पर्य्यन्त, हलन चलन रहित सुषुप्तिके समान सोती रही, फिर अण्ड फूटा तो उसके रजत ओर सुवर्ण कपाल दो हुए। दो कपालोंमेंसे जो रजत कपाल था सो ही यह भूमी हुई, ओर जो सुवर्ण कपाल था सो ही यह द्यौ हुई। जो जरायु सो ही पर्वत हैं। जो सूक्ष्म आवरण, सो ही मेघ युक्त नीहार धूम्मस है। जो नाडी वेही नदीयें हैं, जो मूत्रस्थानका जल, सोही समुद्र है, इस लिये ही अग्नि मुखमें लवण त्याज्य है ॥ छान्दोग्यो० ३ । १९ । १–२–३] **इयं वै रजतासौ हिरण्यं** ॥ यह अधो भागवर्ती रजत कपाल पृथिवी है। ओर ऊर्ध्व भागवर्ती यह सुवर्णमय कपाल द्यौ है ॥ काठक सं० ११ । ४ ।] विराट् रूप अदितिका मस्तक द्यौ ओर भूमी पग है । विराट् के सब अंगोंका नाम अदिति है । एक त्रिलोकमयी क्षुद्र विराट् रूप अण्डकी महिमासे, असंख्य अण्डवर्ती महा विराटकी महिमा जानने में आती है ॥ २४ ॥

गौरीर्मिमाय सलिलानि तक्षत्येकपदी सद्विपदी चतुष्पदी ॥ अष्टापदी नवपदी बभूवुषी सहस्राक्षरा परमे व्योमन् ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(गौरीः) उमा नित्य ज्ञान शक्तिने अपने (परमे व्योमन्) अनन्ताकाश स्वरूपमें (सलिलानि) बीज शक्ति रूप प्राण शक्तिको (मिमाय) जगदाकारके रूपमें :प्रेरित किया वह प्रेरित हुई अपनेको सूत्रात्माके आकारमें (तक्षती) सम्पादन करती हुई (एक पदी) समष्टि सूक्ष्म देह रूपवाली हुई (सा) सो अदिति (द्विपदी) मृत्यु अमृतात्मक सोम अग्नि स्वरूप हुई (चतुष्पदी) सत्यं, तपः जनः महः इन चार लोकसे चार पादवाली हुई (अष्ट पदी) आठ आदित्य रूपसे आठपदी हुई (नवपदी) तीन लोक भूमी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग, तीन देव, अग्नि, वायु, सूर्य। तीन सर्ग, स्थिति, प्रलय ये नौवद वाली (बभूवुषी) हुई (सहस्राक्षरा) असंख्य भौतिक, गुल्म, तृण, लता, वृक्ष, पर्वत, नदी आदिक और प्राणियोंके आकारमें अध्यात्मक रूपसे प्रगट हुई॥ ऋग्० १। १,४। ४१।]

व्याख्या:—उमा नित्य ज्ञान शक्तिने अपने अनन्ताकाश स्वरूप में जो एक तादात्म्यापन्न बीज शक्तिथी, उस निर्विशेषको सविशेष जगदाकारके रूपमें प्रेरित किया, वह क्षोभित हुई अपनेको सूत्रात्माके आकारमें विकाश करती हुई, एक समष्टि सूक्ष्म देह रूपवाली हुई। सो सूक्ष्म देहरूप अदिति अग्नि सोमात्मक अमृत मृत्यु रूपसे दो नामवाली हुई। ब्रह्मलोक। प्रजापति लोक, बृहस्पति लोक, इन्द्र लोक, इन लोक रूपसे चार रूपवाली हुई।

आठ आदित्य रूपसे आठ स्वरूपवाली हुई। भूलोक, भुवर्लोक, स्वर्ग। अग्नि, वायु, सूर्य सर्ग, स्थिति, प्रलय, ये नौ स्वरूपवाली हुई। असंख्य भौतिक गुल्म, तृण, लता, वल्ली, वृक्ष, पर्वत, नदी आदिक और प्राणियोंके शरीरोंको रचकर, प्राण, इन्द्रिय, मन बुद्धिके आकारको धारण करके शरीरोंमें प्रगट भई [अष्टपदी नवपदी ॥ आठ नौ रूपवाली गौरी है॥ ऋग्० ८। ६६। ७।] एक पदीं द्विपदीं त्रिपदीं चतुष्पदीं अष्टपदिं॥ माध्यान्दिनी सं० ८। ३०।] सोमो गौरीः॥ सो उमा ही गौरी है॥ ऋग्० ९। ११। ३।] यह सब जगत् उमा रुद्रकी महिमा है। उमाकी शक्ति माया, और मायाका अधिष्ठान महेश्वर ही रुद्र है। माया सूक्ष्म देह, और ब्रह्मा देहीरूप रुद्र है। माया विराट् ओर ब्रह्मा प्रजापति है ॥ २५ ॥

अदि॑ति॒ द्यौरदि॑ति र॒न्तरि॑क्ष॒ मदि॑ति मा॒ता स पि॒ता स पु॒त्रः ॥ विश्वे॑ दे॒वा अदि॑तिः पञ्चजना॒ अदि॑ति॒ जा॒तमदि॑ति जनि॑त्वम् ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(अदितिः) प्राणशक्तिरूप अव्यक्त ही (द्यौः) स्वर्ग है (अदितिः) अमृत शक्ति ही (अन्तरिक्षं) आकाश है (अदितिः) प्रजापति ही (माता) प्रगट करनेवाली है। (सः) सो ही प्रजापति रूप अदिति (पिता) पालन करने वाला ब्रह्मा है (सः) सोही ब्रह्मा (पुत्रः) प्रजापति रूप पुत्र है (अदितिः) अग्नि सोमात्मक अदिति ही (विश्वे देवाः) समस्त प्राणियोंके सहित अधिदैव स्वरूप देवता हैं (पच जनाः) पाँच पुरुष रूप ही (अदितिः) अव्याकृत है (जातं) जगत्

उत्पन्न हुआ, जो वर्तमान है, और जो (जनित्वं) उत्पन्न होगा, सो सब ही (अदितिः) कारण स्वरूप है॥ ऋग्० १। ८९। १०।]

व्याख्याः—माया रूप प्राणशक्ति ही प्रकाशमय स्वर्ग है, अमृतशक्ति ही आकाश है। अदितिरूप प्रजापति ही माता, और सो ही पालन करनेवाला पिता है सो ही ब्रह्मा प्रजापति रूप पुत्र है। समस्त प्राणियोंके सहित सब देवता स्वरूप ही अव्याकृत है, अग्नि सोमात्मक अव्यक्त ही पाँच पुरुष है। जगत् उत्पन्न हुआ जो वर्तमान है। ओर जो, उत्पन्न होगा सो सब ही अदिति कारण स्वरूप है। जड प्राणशक्तिके सहित चेतन ही मायिक महेश्वर है। प्राणशक्तिकी मृत्युशक्ति दिति है, ओर अमृतशक्ति ही अदिति है। ये दोनों शक्ति ब्रह्माकी देह हैं। अन्धकार मयी दितिसे दैत्य प्रगट हुए, ओर प्रकाशमयी अदिति से देव प्रगट हुए। दिति अदितिकी एक वाह्य अवस्था है। वाह्य अवस्थाके द्वारा अभ्यन्तर अदिति प्रकाश रूप देवोंके आकारमें विकाश करती है। ओर उस अदितिके साथ ही दिति भी, आवरणात्मक दैत्योंके आकारको धारण करनेमें समर्थ होती है [**अदितिः** ॥ द्यौ है॥ ऋग्० १०। ६३। १-४।] **अदितिः** ॥ अदिति महेश्वरकी महिमा है॥ अथर्वण ७। ७। २।] **अदितिरस्यु भयतः शीर्ष्णी** ॥ अग्नि सोमात्मक, अमृत ओर मृत्युशक्ति दो शिररूप जगत्का कारण मायाशक्ति है, ये दो शक्ति कार्य और क्रियाके नामसे प्रसिद्ध हैं॥ माध्यन्दिनी सं० ४। १९।] **अदिते रूपस्थे** ॥ मायाकी अव्यक्त गुहामें ब्रह्मा स्थित है॥ अथर्वण २। २८। ४।] **अदितिः** ॥ सब देवताओंकी माता है।] मा० सं० ११। ६१।] **अदितिं दितिं** ॥ अदिति अमृत रूप अक्षर

शक्ति, और दिति मृत्यु रूप क्षर शक्ति है ॥ ऋग्० ५ । ६२ । ८ ।] **दितेः पुत्राणामदिते रकारिषमवदेवानां बृहता मनर्मणाम् ॥ तेषां हि धाम गभिषक समुद्रियं ॥** दितिके पुत्रोंका ओर अदितिके पुत्रोंका स्थान निश्चय मैंने जाना है । उन दैत्योके मध्यमें बडे प्रकाशवाले नाश रहित देवताओंका स्थान (गभिषक्) अगाध अवस्थावाला स्वर्ग द्यौ है । ओर दैत्योंका स्थान (समुद्रियं) अन्तरिक्ष है ॥ अथर्वण ७ । ८ । १ ।] अन्धकार रूप अन्तरिक्ष ही दिति है, और प्रकाशमय द्यौ ही अदिति है । दितिकी प्रजा दितिमें ही रहती है । ओर अदितिकी प्रजा अदितिमें ही रहती है । [**समुद्रं ॥** समुद्र नाम अन्तरिक्षका है ॥ ऋग्० ५ । ८५ । ६ ।] **ये देवा असुरेभ्यः पूर्वे पञ्च जना आसन् ॥ य एवसावादित्ये पुरुषो यश्चन्द्रमसि यो विद्युति योऽप्सु योऽ यमक्षन्तरेष एतते ॥** देव दैत्योंसे पहिले जे पाँच पुरुष उत्पन्न हुए जो यह प्राणियोंके नेत्रके मध्यमें पुरुष है सोही सूर्य मण्डलमें है । जो मण्डलमें यह भर्ग पुरुष है । सो ही (चन्द्रं) महर्लोकवर्ती सोम मण्डलमें इन्द्र पुरुष है । जो पुरुष विद्युतात्मक जनलोकमें वृहस्पति है । सो ही वृहस्पति तप लोकमें प्रजापति है । जो प्रजापति तप लोकमें है, सो ही प्रजापति (अप्सु) अव्याकृत रूप ब्रह्मलोकमें ब्रह्मा है । नेत्र, सूर्य, सोममण्डल, विद्युत् अव्यक्त ये पाँच पुर प्राणशक्ति रूपही हैं । इन पाँच पुरोंमें, जो चेतन पुरुष पाँच प्रकारसे स्थित है । सो ही महेश्वर पञ्च वक्त्र रूपसे विराजमान है ॥ सामवेदीय जैमिनीय ब्रा० १ । १३ । २ । ७ ।] यह त्रिलोकवर्ती अपना चन्द्रमा है सो तो पितृलोकमें जानेका मार्ग है [**तृतीयस्यां वै दिवि सोम आसीत् ॥** तीसरे स्वर्ग में ही सोम है ॥

कपिष्ठल कठ सं० ४६ । ८ ।] जो सोम मण्डल है सो तो असंख्य त्रिलोकमय फलोंकी महाशाखा है । इस महर्लोकवर्ती सोममे, अपने त्रीलोकके समान अनन्त तीन लोकरुप क्षुद्र विराट उत्पत्ति ओर लय पाते हैं. [तृतीयस्यामितो दिवि सोमः ॥ तीसरे स्वर्गमें अपरिमित बलवाला सोम है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३७ । १ । अपने चन्द्रमा और सूर्यसे भिन्न तीसरा महर्लोकवर्ती सोम है [सोमो वै चन्द्रमा ॥ सोम ही चन्द्रमा है ॥ तैत्तरीय ब्रा० १ । ४ । १० । ७ ।] य एषोऽक्षिणि पुरुषो दृश्यते एष आत्मा ॥ जो यह पुरुष नेत्रमें दीखता है, सो ही यह आत्मा है ॥ आदित्याच्चन्द्रमसं चन्द्रमसो विद्युतं तत्पुरुषोऽमानवः स एनान् ब्रह्म गमयत्येष देवपथो ब्रह्म पथः ॥ चक्षु परुष सूर्यमें जाता है फिर सूर्यसे महर्लोकवर्ती सोमको प्राप्त होता हुआ सोमसे विद्युत् पुरुषको, उस विद्युत्से मनुष्य देह के धर्म रहित दिव्य तेजोमय प्रजापति पुरुषको प्राप्त होता है । सो प्रजापति उस ज्ञानी जीवात्माको ब्रह्मलोकमें ले जाता है । यह देवमार्ग और यही ब्रह्मलोकका मार्ग हैं । छान्दोग्यो० ४ । १५ । १-५ ।] स एतं देवयानं पन्थान मापद्याग्निलोक मगच्छति स वायुलोकं स आदित्यलोकं स वरुणलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापति लोकं स ब्रह्मलोकं ॥ सो उपासक स्थूल देहको त्याग कर इस देवयान मार्गको प्राप्त होता है फिर भूमीके देवता अग्निको प्राप्त होताहै अग्नि लोकसे सो अन्तरिक्षको प्राप्त होता है वायु देवतासे वह सूर्यको प्राप्त होता है सूर्यसे वह (वरुण) पाप नाशक सोमको प्राप्त होता [वरुणो वै सोमः ॥ वरुण ही सोम है ॥ कपिष्ठल कठ सं० २७ । ७ ।] सोम लोकमें इन्द्र देवता है, उस इन्द्र रूप सोमसे

वह (इन्द्रलोकं) परमैश्वर्य सम्पन्न बृहस्पति लोकको प्राप्त होता है उस बृहस्पतिसे. सो प्रजापति लोकको प्राप्त होता है। वह उपासक प्रजापतिके द्वारा ब्रह्मके लोकको प्राप्त करता है॥ कौषतकि ब्राह्मणारण्यक ६। ३।] ते येशतं देवा नामानन्दाः स एक इन्द्रस्यानन्दः॥ ते ये शत मिन्द्रस्यानन्दाः॥ स एको बृहस्पतेरानन्दः॥ ते ये शतं बृहस्पते रानन्दाः॥ स एकः प्रजापतेरानन्दः॥ ते ये शतं प्रजापतेरानन्दाः॥ स एको ब्रह्मण आनन्दः॥ श्रोत्रियस्यचाकामहतस्य॥ सैकडों देवताओंका, जे सुख हैं वे सब सुख एक इन्द्रका सुख है। जे सैकडों इन्द्रके सुख हैं, वे सब सुख एक बृहस्पतिका सुख है। जे असंख्य सुख बृहस्पतिका हैं, वे सब सुख एक प्रजापतिका है। जे सुख अवर्णित प्रजापतिके हैं, वे सब आनन्द, एक ब्रह्माका सुख है। जो ब्रह्माका सुख है। सोही सुख सर्व कामना रहित हिरण्यगर्भ उपासकका है। ब्रह्मा समष्टि व्यष्टिरूप संसार मण्डल व्यापी॥ शंकर भाष्य तै० उ० ब्रह्मानन्दवल्ली २। ८।] ब्रह्मा हिरण्यगर्भः कृत्स्न संसार मण्डल व्यापी समष्टि व्यष्टि रूपः सूत्रात्मा॥ समस्त विश्व मण्डल व्यापी समष्टि व्यष्टि रूप सूत्रात्मा देहधारी हिरण्यगर्भ नामवाला ब्रह्मा है॥ सायण भाष्य, तैतरीयारण्यक ८। २। ४।] ब्रह्मणो लोकं नाकं सप्तमं लोकानां॥ सब लोकोंके ऊपर दुःख रहित सातवाँ ब्रह्माका लोक है॥ शांखायन ब्रा० २०। १।] ये चत्वारः पथयो देवयाना अन्तरा द्यावा पृथिवी वियन्ति॥ महा विराटके चरण ओर मस्तकके मध्यमें चार देवयान मार्ग हैं। एक मनुष्य लोक, दूसरा पितृलोक, तीसरा सोम बृहस्पति प्रजापति लोक है ओर चोथा ब्रह्मलोक है। मनु-

ष्य, पितृ, देव इन तीनों लोकोंसे जीवका पुनरागमन होता है। और चतुर्थ ब्रह्मलोकसे पुनरागमन नहीं होता। सकामीजन इन तीनों लोकोमें विचरते हैं। और निष्कामी जन ब्रह्मलोकमें प्राप्त होकर जन्म मरणसे छूट जाते हैं॥ तैत्तरीय सं० ५। ७। २। ३।] **परो रजाः** ॥ महा विराट्का उत्तम शिर रूप ब्रह्मलोक है। और सब लोकोंसे श्रेष्ठ है॥ षड्विंश ब्रा० १। ३।] **तुरीयाय दर्शताय पदाय परो रजसे** ॥ सब लोकोंसे ऊपर चतुर्थ स्वयं प्रकाश स्वरुप ब्रह्मलोक है॥ बृ० उ० ५। १४। ७।] **नवै तत्र निम्लोचनो दियाय कदाचन** ॥ **देवास्तेना हं सत्येन मा विराधिषि ब्रह्मणेति** ॥ उस ब्रह्मलोकमें निःसंदेह कभी सूर्यका न उदय ओर न अस्त होता। अर्थात् सूर्यका प्रकाश जहाँ नहीं हैं॥ स्वमं प्रकाशी ब्रह्मलोक है॥ हे देवताओं मैं उस सत्य स्वरुप समष्ठि ब्रह्मके साथ व्यष्टि भेद रुप विरोध न करुं। अर्थत् मैं व्यष्टि उपासक समष्ठि स्वरुप हूँ॥ छान्दोग्यो० ३। ११। २।] जिन २ देवताओंके द्वारा उपासक ब्रह्मलोकको जा रहा है उन २ देवताओंसे वार्तालाप करता हुआ ब्रह्मलोक जा रहा है। जब उपासक ब्रह्माके पास पहूँच गया। तव ब्रह्मा भगवान् उपासकसे प्रश्न करते हुए। अपनें स्वरूपको उपासकसे पूछते हैं [**कोऽहम स्मीति** ॥ ब्रह्माने उपासकसे पूछा मैं कौन हूँ जब ऐसा प्रश्न किया। **सत्यमिति ब्रूयात्** ॥ तवं उपासकने उत्तर दिया हे ब्रह्मदेव तुम सत्य हो, इस प्रकार उपासकसे उत्तर मिला। **तमा हा यो वै खलु मेह्य सावयं त्ते लोकः** ॥ तव ब्रह्माने उस उपासकको कहा निःसंदेह प्रसिद्ध अव्याकृत ही मेरा निवास स्थान है। यह मेरा जो लोक है सो ही यह तेरा लोक है॥ कौषीतकि ब्राह्मणारण्यक १। ६।]

सलिल एको द्रष्टाऽद्वैतो भवत्येष ब्रह्मलोकः ॥ सर्वगत अव्याकृत प्राणशक्ति देहधारी एक साक्षी चेतन अद्वैत यह ब्रह्मलोक है ॥ बृ० उ० ४ । ३ । ३२ ।] आपो वा इदमासन् ॥ सलिल मेव स प्रजापति रेकः पुष्करपर्णे समभवत् ॥ यह सब विश्व पहिले प्राणशक्ति रूप ही थ सर्व व्यापक कारण ही था । उस प्राणशक्तिरूप ब्रह्ममें अद्वितीय ब्रह्मा अवस्थित हुआ ॥ तैत्तरीयारण्यक १ । २३ [१ ।] पूर्णो वै प्रजापतिः ॥ पूर्णः पुरुषः ॥ पूर्ण स्वरूप ही ब्रह्मा है । सो ही पूर्णः पुरुष है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ७ । ८ ।] मनसा ध्यायेति ब्रह्माणं ॥ मनसे ब्रह्माका ध्यान करे ॥ शतपथ ब्रा० १ । ४ । ३ । ५ ।] यस्मिन्पञ्च जना आकाशश्च प्रतिष्ठितः ॥ तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्म मृतोऽमृतं ॥ जिस प्राणशक्ति रूप अदितिमें चक्षु, सूर्य, चन्द्र, विद्युत, ब्रह्मलोक इन पाँच मण्डलोंके सहित पाँच पुरुष स्थित हैं । ब्रह्म लोकका मूल स्वरूप मायिक संकल्पमय आकाश भी स्थित है । यह संकल्प रूप आकाश बीज शक्तिका ही स्फुरण है इस लियेही मायारूप प्राणशक्तिमें स्थित है उस माया देहके देही व्यापक चेतन अविनाशी महेश्वरको ही स्व स्वरूपसे साक्षात्कार करनेवाला मैं याज्ञवल्क्य जन्म मरण रहित हूं ऐसा हे जनक मानता हूं ॥ बृ० उ० ४ । ४ । १७ ।] अदितिः पञ्चजनाः ॥ प्राणशक्ति ही पञ्च पुरुष रूप है । अदिति माया रूप देह ओर महेश्वर चेतन मायिक देही है ॥ ऋग्० ६ । ५८ । २ ।] पञ्च पुरुष ही सद्योजात, वामदेव, अघोर, तत्पुरुष, ईशान ये पाँच रुद्रके मुख हैं । इस प्राणशक्तिमें पंच मुखधारी रुद्र विराजमान है । माया जगत् कारण रूप योनि है और महेश्वर लिंग हैं कारणकी सूक्ष्म अवस्थाका नाम भी

अदिति, और प्रत्येक सौर जगत्के द्यावा भूमीका नामभी अदिति है ॥ २६ ॥

सोमः पवते जनिता मतीनां जनिता दिवो जनिता पृथिव्याः ॥ जनिताग्ने जनिता सूर्यस्य जनितेन्द्रस्य जनितोत विष्णोः ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(सोम) महर्लोक अभिमानी सोम (मतीनां) अनन्त त्रिलोकमय फलोंका (जनिता) उत्पादक है (दिवः) प्रत्येक त्रिलोकी अण्डके ऊर्ध्व द्यौकपालका (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (पृथिव्याः) प्रत्येक अण्डके अधो भागवर्ती भूमी कपालका (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (अग्नेः) भूमीसे अग्निका (जनिता) उत्पन्न करनेवाला (सूर्यस्य) द्यौसे सूर्यका (जनिता) प्रगट करनेवाला (विष्णोः) मेघस्थ विद्युत्का (जनिता) उत्पन्न करके (उत) और (पवते) धारण करता है । ऋग्० ९ । ९६ । ५ ॥

व्याख्याः—महर्लोकवासी सोम देवता रूप महाशाखा, अनन्त त्रिलोकमय फलोंका उत्पादक है, प्रत्येक त्रिलोकी अण्डके ऊर्ध्व द्यौकपालका उत्पन्न करनेवाला, प्रत्येक अण्डके अधोभागवर्ती भूमीकपालका प्रगट करता है। उस पृथिवीसे अग्निका उत्पन्न करनेवाला, स्वर्गसे सूर्यका उत्पन्न करनेवाला, अन्तरिक्षसे वायुका उत्पन्न करनेवाला, मेघमण्डलसे विद्युत्का प्रगट करनेवाला, वह विद्युत् मेघसे निकलकर अन्धकारको अपनी अग्रगतिरूप चरणसे दबाता हुआ पृथिवी में प्रवेश करता है, इसलिये ही विद्युत्का नाम विष्णु है । अन्तरिक्षरूप अदितिमें वायुरूप इन्द्रका और

विद्युतूरूप विष्णुका जन्म है। ओर सोम ही सबको धारण करता हुआ। पालन करता है [**विष्णुस्तद्य दन्तरिक्षा इन्द्र स्तद्यद्दिवि** ॥ विष्णु जिस मेघ मण्डलमें है, सो ही मेघ मण्डल अन्तरिक्षसे युक्त है। जो मेघ मण्डल अन्तरिक्षमें विचरता है उस मेघ मण्डलका स्वामी वायु है॥ मैत्रायणी सं० २। २। १३।] **ध्रूवादिग् विष्णु रधिपतिः** ॥ अधो भागवर्ती अचल दिशाका स्वामी विष्णु है॥ अथर्वण ३। २७। ५] **सोमो वै देवानां रेतो धाः** ॥ सोम देवता ही अग्नि वायु सूर्य आदि देवोंके निवासस्थान अण्डात्मक त्रिलोकको धारण करता है॥ काठक सं० ३२। ४] **सोमो वै शुक्रः** ॥ सोम ही सबका उत्पत्तिरूप वीर्य है॥ मैत्रायणी सं० १। ६। ८] **वरुणो वै देवानां राजा** ॥ सोम ही देवताओंका राजा है॥ मैं० सं० १। ६। ११।] **सोमो वै देवानां राजा** ॥ प्रसिद्ध सोम देवताओंका स्वामी है॥ काठक सं० १३। ३।] इस स्थापनमें सोभ देवताका ही ग्रहण है। अन्नात्मक सोमका ग्रहण नहीं है॥ २७॥

ब्रह्मा देवानां पदवीः कवीनामृषि र्विप्राणां महिषो मृगाणाम् ॥ श्येनो गृध्राणां स्वधिति र्वनानां सोमः पवित्र मत्येति रेभन् ॥ २८ ॥

अन्वयार्थः—(ब्रह्मा) ब्रह्मा (देवानां) सब देवताओंका स्वामी है (कवीनां) विविध पदार्थोंके यथार्थ स्वरूपको जानने वालोंके मध्यमें (पदवीः) अपने स्वरूपको प्राप्त करनेवाला ही उत्तम है (विप्राणां) उपमंत्रद्रष्टा वसिष्ठ विश्वामित्र वामदेवादिक ऋषियोंके मध्यमें (ऋषिः) मुख्य मंत्र द्रष्टा सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्मा है (मृगाणां) विचरनेवाले पशुओंके मध्यमें (महिषः) महान्

बली सिंह है (गृध्राणां) मांसके अभिलाषी पक्षीयोंके मध्यमें (श्येनः) वाज पक्षी है (वनानां) वन समुहके वृक्षोंका नाश करनेवाला (स्वधितिः) परशु है (सोमः) सोम देवता अपनी शक्तिके द्वारा असंख्य ब्रह्माण्ड रूप फलोंको (रेभन्) उत्पन्न करता हुआ (अत्येति) उस लोक समुहको धारण करता (पवित्रं) आधार स्वरूप उत्तम है ।। ऋग्० ९ । ९६ । ६ ।]

व्याख्याः—समस्त देवताओंके मध्यमें उत्तम ब्रह्मा हैं, नाना पदार्थोंके स्वरूपको जाननेवालोंके मध्यमें, अपने स्वरूपको प्राप्त करनेवालाही उत्तम है, उपमंत्र दृष्टा गृत्समद, वसिष्ठ, विश्वामित्र वाम देवादिक ऋषियोंके मध्यमें, मुख्य मंत्र समुह दृष्टा सर्वज्ञ भगवान् ब्रह्मा ऋषि हैं । विचरनेवाले पशुओंके मध्यमें अति बलवान् सिंह है । मांस भक्षणकी इच्छा करनेवाले पक्षीयोंके मध्यमें वाज पक्षी उत्तम है, वन समुदायके वृक्षोंका नाश करनेवाली कुलाडी-परशा है । सोम देवता अपनी शक्तिके द्वारा अनन्त ब्रह्माण्ड रूप फलोंको, उत्पन्न करता हुआ, उस लोक समुहको धारण करता आधार स्वरूप उत्तम है [वज्रो वै स्वधितिः ॥ कुठार ही स्वधिति है ॥ तैत्तरीय सं० ६ । ३ । ३ । १ ।] चन्द्रमा वै ब्रह्मा ॥ ब्रह्मा स्वरूपही सोम देवता है ॥ शतपथ ब्रा० १३ । २ । ७ । ७ ।] सब ब्रह्माको ही विभूति हैं ॥ २८ ॥

ऋतंच॑ स॒त्यं चा॒भीद्धा॒त्तप॒सोऽध्य॑जायत ॥ त॒तो॒ रात्र्य॑जायत॒ तत॑ः समु॒द्रो अ॑र्ण॒वः ॥ २९ ॥

अन्वयार्थः—(अभितः) स्वयं प्रकाशी महेश्वरके (तपसः) सृष्टि संकल्पसे (अधि) कारणोन्मुख माया (ऋतं) अव्याकृत (अजायत) प्रगट हुआ (च) उस अव्यक्तसे (सत्यं) हिरण्यगर्भ

उत्पन्न हुआ (च) ओर (ततः) उस विधातासे विराट् प्रगट हुआ (ततः) उस विराट्से (रात्रिः) भूमी (समुद्रः) अन्तरिक्ष (अर्णवः) द्यौ (अजायत) प्रगट हुआ । ऋग्० १० । १११ । १ ॥

व्याख्या:—सर्व व्यापक स्वयं प्रकाशी महेश्वरके विश्व रचनामय संकल्पसे कारणोन्मुख माया ही अव्यक्त-सलिल कारण प्रगट हुआ, उस अव्याकृतसे ब्रह्मा उत्पन्न हुआ, ओर उस परमेष्ठीसे विराट् उत्पन्न हुआ। उस विराट् देहसे भूमी, अन्तरिक्ष, स्वर्ग उत्पन्न हुआ [द्यौ रन्तरिक्षे प्रतिष्ठिता अन्तरिक्षं पृथिव्यां पृथिव्यप्स्वापः सत्येसत्यं ब्रह्मणिब्रह्म तपसि ॥ स्वर्ग अन्तरिक्षमें प्रतिष्ठित है, मध्यलोक भूमीमें अवस्थित है, पृथिवी विराट्रूप जलमें प्रतिष्ठित है, विराट् हिरण्यगर्भ में स्थित है, विधाता अव्याकृतमें विराजमान है, प्राणशक्तिरूप अव्यक्त, महेश्वरके संकल्पमें स्थिर है ॥ ऐतरेय ब्रा० ११ । ६ ।] संकल्पका अन्तिम विकाश स्वर्ग है। ओर स्वर्गके सहित सबका लय स्थान संकल्प हैं। यह संकल्प बीज सविशेष और निर्विशेष है। सविशेष विकारी माया प्राणशक्ति रूप, और निर्विशेष बीज सत्ताही महा प्रलयकी घोर अवस्था है [ब्रह्म ॥ जगत् कार्यका उपादन मूल कारण प्राणशक्ति ही ब्रह्म नामसे प्रसिद्ध है ॥ ऋग्० १० । ११४ । १० ।] ब्रह्म ॥ ब्रह्म नाम प्राणशक्ति रूप देहका है ॥ ऋग्० ९ । ६७ । २३ ।] ऋतेन ऋतमपिहितं ॥ विकारी प्राणशक्तिके द्वारा (ऋतं) स्वयं प्रकाशी रुद्र चेतन आच्छादित हुआ ॥ ऋग्० ५ । ६२ । १] ऋतस्य योनौ ॥ अव्यक्तकी मध्य अवस्थारूप सूक्ष्म देहमें ॥ ऋग्० १ । ७९ । ३ ।] ऋतस्य नाभौ ॥ अव्यक्तकी योनिमें ऋग्० १० । १३ । २-३]

ऋतस्य नाभिः ॥ प्राणशक्ति कारणकी सूक्ष्म अवस्थारूप योनि है ॥ ऋग्० ९ । ७४ । २ ।] ऋतस्य गर्भः ॥ अव्यक्तका गर्भ ब्रह्मा है ॥ ऋग्० ९ । ६ । ८ । ३ । अपां नाभौ ॥ अव्यक्तकी योनिमें ऋग्० ९ । ७४ । २ ।] ऋतं प्रथमं ॥ जल प्रथम प्रगट हुआ यही अव्यक्त है ॥ ऋग्० ९ । ७० । ६ ।] ऋतस्य तन्तुर्विततः वरुणस्य मायया ॥ प्रलय वारक महेश्वरकी मायाके द्वारा रुद्रकी सन्तान फैल गई । ऋत शब्द माया ओर महेश्वरका वाचक है । ऋग्० ९ । ७३ । ९ । ब्रह्म योनिं ॥ मायाका अधिष्ठान महेश्वर है ॥ कैवल्यो० ६ ।] ऋतस्य योनिं ॥ मायाके कारणको ॥ ऋग्० ६ । १६ । ६५ ।] बृहत ऋतस्य ॥ महा उपादान कारण वारीका नाम ऋत है ॥ ऋग्० ६ । १२ । १ ।] ब्रह्मैतत्सत्यमेत्त द्दतं ॥ ब्रह्म नाम प्राणशक्तिका है । इस प्राणरूप अव्याकृतकी उपाधिसे यह माया अधिष्ठान चेतन स्वयं प्रकाशी ही, वह सत्यनामवाला ब्रह्मा हुआ ॥ मैत्रायणी सं० १ । ८ । ५ ।] ब्रह्मवा ऋत ॥ रुद्र ही ऋत है ॥ शतपथ ब्रा० ४ । १ । ४ । १० ।] आपो वै रात्रिः ॥ व्यापक जल द्रव्य ही रात्री है ॥ जलकी घनी भूत अवस्था ही पृथिवी है ॥ मैत्रायणी सं० ४ । ५ । १ ।] असुर्या वै रात्रिः ॥ भूमी लोक ही रात्री है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ६ । ८ ।] समुद्रात् अन्तरिक्षसे ॥ ऋग्० ४७ । १ ।] अर्णवः ॥ अन्तरिक्ष है ॥ ऋग्० १० । ६६ । ११ । असौ वै लोकः समुद्रः ॥ वह द्यौही समुद्र है ॥ शतपथ ब्रा० ९ । ४ । २ । ५ ।] अपः ॥ अपनाम द्यौका है ॥ ऋग्० ८ । ३ । २४ ।] समुद्रे ॥ द्यौमें ॥ माध्यन्दिनी सं० १७ । ९९ ।] द्यौः समुद्र समं सरः ॥ द्यौ समुद्रके समान सरोवर है ॥ मा० सं०

२३ । ४८ ।] समुद्र, अर्णव शब्द द्यौके ओर अन्तरिक्षके वाचकहैं ॥ २९ ॥

समुद्रादर्णवा दधि सम्वत्सरो अजायत ॥ अहो रात्राणि विदध द्विश्वस्य मिषतो वशी ॥ ३० ॥

अन्वयार्थः—(समुद्रात्) अन्तरिक्षसे (अर्णवात्) द्यौसे (अधि) पीछे (सम्वत्सरः) रूप सूर्य चन्द्रमा (अजायत) उत्पन्न हुआ (मिषतः) स्वास प्रस्वास आदि क्रिया करनेवाले (विश्वस्य) समस्त जगत्का (वशी) नियंता स्वामीने (अहोरात्राणि) निमिष काष्टा, कला मूहुर्त दिनादियोंको (विदधत्) बनाया ऋग्० १० । १९१ । २ ॥

व्याख्याः—अन्तरिक्ष द्यौकी उत्पत्तिके पीछे सम्वत्सर रूप सूर्य चन्द्रमा प्रगट हुआ [**सम्वत्सरो वै देवानां जन्मः** ॥ सम्वत्सर ही देवताओंका जन्म है ॥ शतपथ ब्रा० ८ । ७ । ३ । २१ ।] स्वास प्रस्वास आदि क्रिया करनेवाले, समस्त जगत्का, नियंता स्वामी ब्रह्माने, निमिष, काष्टा, कला, मूहुर्त, दिन रात, पक्ष, मास, ऋतु, अयन, वर्ष बनाया ॥ इन दोनों मंत्रोंने महा प्रलयके अन्तर, उत्तर सृष्टिका वर्णन किया । अब प्रत्येक् कल्प सृष्टिका वर्णन करनेवाला तीसरा मंत्र ॥ ३० ॥

सूर्या चन्द्रमसौ धाता यथा पूर्व मकल्पयत् ॥ दिवं च पृथिवी चान्तरिक्ष मथो स्वः ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(धाता) ब्रह्माने (पूर्व) प्रथम कल्पसे लेकर प्रत्येक कल्पमें (सूर्या चन्द्र मसौ) सूर्य चन्द्रमा दोनोंको (यथा) जिस प्रकार रचाथा । उसी प्रकार, इस वर्तमान कल्पमें (पृथिविं)

भूमीको (च) और (अन्तरिक्षं) मध्यलोकको (च) और (दिवं) द्यौको रचा (अथ) इन लोकोंकी उत्पत्तिके अनन्तर (स्वः) सूर्यको (अकल्पयत्) रचा ऋग्० १० । १९१ । ३ ॥

व्याख्याः—ब्रह्माने प्रथम कल्पसे आरम्भ करके, प्रत्येक्, कल्पमें, दोनों सूर्य चन्द्रमाको जिस प्रकार रचाथा। उसी प्रकार, इस वर्तमान कल्पमेंभी-भूमीको और आकाशको और स्वर्गको रचा, इन लोकोंकी उत्पत्तिके अनन्तर सूर्यको रचा यह सृष्टि अनादि शान्त प्रवाह स्वरूप है ॥

इति श्री ऋग्वेदीय रुद्र प्रथम सूक्त ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत् परम हंस परिव्राजकाचार्य स्वामी शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्याख्या समाप्त ॥

॥ अथ ऋग्वेदीय द्वितीय सूक्त ॥

ॐ यइमा विश्वा भुवनानि जुह्वदृषि र्होता न्यसीदत्पिता नः ॥ स आशिषा द्रविण मिच्छमानः प्रथमच्छद वराँ आविवेश ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (ऋषिः) सर्वज्ञ (नः) हम सबका (पिता) उत्पन्न करके पालन करनेवाला है। सो ही (होता) संहार कर्ता (इमा) इन (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) भुवनोंको (जुह्वत्) संहार करके महा प्रलयमें (न्यसीदत्) अवस्थित होता है। जब सृष्टिका समय आता है, तब (प्रथमच्छद) अपने शुद्ध प्रथम स्वरूपको–मायिक स्वरूपसे अच्छादन कर लेता है (आशिषा) अधिष्ठानकी आशिर्वाद रूप आश्रित मायाके द्वारा (सः) सो महेश्वर (द्रविणं) जगत् रूप धनको रचनेके लिये (इच्छमानः) इच्छा करता हुआ, ब्रह्माको रचा–उस ब्रह्माने (अवरान्) विराट्के विविध अंगरूप पंचभूतोंके सहित अधिदैव, अधिभौतिक, अध्यात्मको

रचकर, उनमें (आविवेश) जीव रूपसे प्रवेश कर गया ॥ ऋग्० १०। ८१। १।

व्याख्याः—जो सर्वज्ञ हम सबका उत्पन्न करके पालन करनेवाला है। सो ही संहार कर्त्ता, इन समस्त प्राणियोंके सहित भुवनोंको, संहार करके महा प्रलय में विराजमान होता है। जब जगत् रचनाका समय आता है, तब अपने प्रथम शुद्ध तुरीय स्वरूपको, मायिक स्वरूपसे ढाक लेता है, मायिक आधारकी आशियात्मक, आश्रित मायाके द्वारा सो महेश्वर संसार रूप घनको प्राप्त करनेके लिये इच्छा करता हुआ, ब्रह्माको रचा, उस ब्रह्माने, महा विराट्के नाना अवयवरूप पंच भूतोंके सहित, अधिदेव, अधिभौतिक, अध्यात्मको रचकर, उनमें विसेव चेतन रूपसे प्रविष्ट हुआ। जैसे नट अपनी मायाके द्वारा, जन समाजको मोहित करता हुआ। अपने देहको खण्ड २ करके मरणको प्राप्त होता हुआ भी, अखण्ड जीवित होता है। तैसे ही महेश्वर मायाके द्वारा विशेष रूपसे खण्ड २ प्रतीत होता हुआ भी, सर्वदा एक रस अखण्ड परिपूर्ण है। सर्व व्यापक सामान्य चेतनका विशेष चेतन रूपसे प्रतीति होना ही प्रवेश करना है ॥ १ ॥

किं स्विदासी दधिष्ठानं मारम्भणं कतमत्स्वित्कथासीत् ॥ यतो भूमिं जनयन्विश्वकर्मा विद्यामौर्णोन्महिना विश्व चक्षाः ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(स्वित्) प्रश्न—इस विश्वका (अधिष्ठानं) आधार (किं) कौन (आसीत्) हुआ (आरम्भणं) आश्रयके पीछे कार्यके आरम्भ करनेवाली (कतमत्) कौन (कथा) क्रिया (आसीत्) हुई (स्वित्) ओर (यतः) जिससे (विश्व चक्षाः)

सर्वदर्शी (विश्वकर्मा) जगत् कर्त्ताने (भूमिं) पृथिवीको (द्यां) द्यौको (जनयन्) रचकर (वि) विशेष (महिना) प्रभावसे (और्णोत्) ढक दिया ऋग्० १०। ८१। २॥

व्याख्याः—प्रश्न इस संसारका आधार कौन हुआ, आश्रयके पीछे कार्यके आरम्भ करनेवाली कौन साधन रूप क्रिया हुई, और जिस कारणसे महा विराट्के शिर रूप द्यौको और पाद रूप भूमी कपालको सर्वद्रष्टा विश्वकर्त्ताने रचकर अपनी विशेष महिमाके द्वारा महा विराट्को ढक दिया [प्रजापति र्विश्वकर्मा ॥ पशुपति ही ब्रह्मा है॥ माध्यन्दिनी सं० १८। ४३।] प्रजा वै पशवः ॥ प्रजामात्र ही पशु हैं तैत्तरीय सं० ३।४।१।२।]. येषामीशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पादउतये द्विपादः ॥ जे चार पग वाले पशु, और जे दो पगवाले देव, दैत्य, पितर, मनुष्य हैं। उन पशुओंका स्वामी पशुपति रुद्र है॥ काठक सं० ३०। ८।] यह सब संसार रुद्रके वशमें हैं ॥ २ ॥

विश्व तश्चक्षुरुत विश्वतो मुखो विश्वतो बाहुरुत विश्वतस्पात् ॥ सम्बाहुभ्यां धमति सम्पतत्रै र्द्यावा भूमी जनयन् देव एकः ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(एक) अद्वितीय (देवः) रुद्र स्वरूप ब्रह्माने (बाहुभ्यां) कार्य क्रियामय दोनों हाथोंसे (द्यावा भूमी) द्यौ भूमीरूप विराट्को (जनयन्) उत्पन्न करके अण्डके तीन भाग किये, भूमी, अन्तरिक्ष, द्यौ (पतत्रैः) उत्पत्ति विनाशवाले उन तीनोंसे (सं) क्रम पूर्वक, अग्नि वायु सूर्यको (संधमति) सम्पादन करता है। उस महा विराट् वृक्षमें असंख्य त्रिलोकात्मक फल लगे हैं। उन क्षुद्र विराटोंके मध्यमें अग्नि वायु सूर्य देवता हैं। प्रत्येक

ब्रह्माण्डोंके भेदसे अनन्त सूर्यरूप चक्षु, अग्नि मुख, वायु हाथ, विष्णु पग अपने २ ब्रह्माण्डोंमें व्यापक हैं (विश्वतः) अधिदेव रूपसे सर्वत्र व्यापक विद्युतात्मक विष्णु समस्त जीवोंका अध्यात्म रूप (पात्) पग है॥ ऋग्० १०। ८१। ३॥

व्याख्या:—अद्वितीय रुद्र स्वरूप भगवान् ब्रह्माने अपने कार्य क्रियात्मक मृत्यु अमृतमय दोनों हातोंसे, निःकृष्ट उत्कृष्ट, भूकपाल, द्यौकपाल उपमस्तक चरणके सहित समग्र विराट्को उत्पन्न करके उस विराट्के तीन भाग किये, भूमी, आकाश, स्वर्ग, इन उत्पति विनाशवाले लोकोंसे, क्रम पूर्वक, अग्नि, वायु, सूर्यको यथा स्थानमें प्रगट करके स्थापन किया। उस महा विराट्के मुख्य तीन भेद, द्यौ रूप तेज, अन्तरिक्ष रूप आप, भूमीरूप अन्न हैं। इन तीनों स्कन्धोंने अनन्त त्रिलोकमय फलोंको उत्पन्न किया। ये ही तीनों त्रिवृत रूपसे क्षुद्र ब्रह्माण्डोंके आकारोंमें व्याप्त हो रहे हैं। प्रत्येक त्रिलोकका जो त्रिवृत सार है। सो ही अग्नि वायु सूर्य है, अनन्त लोकके भेदसे, अनन्त सूर्य अग्नि वायु ही, महा विराट्के असंख्य नेत्र, मुख, हात, पग हैं। जसे जीवका, कारण, सूक्ष्म, स्थूल देह है। उस स्थूल देहमें बहुत रोम कूप हैं। तैसे ही ब्रह्माका अव्याकृत, सूत्रात्मा विराट् देह है। उस विराट् देहमें अनन्त रोम छिद्रोंके समान त्रिलोकमय क्षुद्र विराट् हैं। इस हेतुसे ही रुद्र मुण्ड मालाधारी है। ओर उन विराट् मुण्डोंमें सूर्य वायु अग्नि रूप अनन्त नेत्र, हाथ, मुख हैं। इस लिये ही मायिक अधिष्ठान महेश्वर ओर अव्याकृत, तादात्म्यचेतन ब्रह्मा, अनन्त नेत्र, हात, पग, मुखवाला है। प्रत्येक ब्रह्माण्डवर्ति अग्नि वायु सूर्य अधिदैव और अध्यात्म रूप हैं। अधिदैव रूपसे सर्वत्र व्यापक सूर्य सब प्राणियोंका अध्यात्म रूप नेत्र है, और अधिदैव रूपसे

सर्वत्र व्यापक अग्नि, सम्पूर्ण जन्तुओंका, अध्यात्मरूप मुख सहित वाणी है। अधिदैव रूपसे सर्वत्र व्यापक वायु, सब देहधारीयोंका अध्यात्म रूप, बल युक्त हस्तक्रिया है। ओर विद्युतात्मक विष्णु अधिदैव रूपसे सर्वत्र व्यापक, समस्त जीवोंका अध्यात्मरूप पग शक्ति है। यही विष्णु मेघोंके अन्धकाररूप दैत्यराजको अपने प्रकाशकी अग्र गति रूप चरणसे दबाता हुआ स्वयं ही भूमीमें प्रवेश कर जाता है [**इयं वै रजता असौ हरिणी** ॥ यह विराट्का नीचला भाग ही चाँदी मय कपाल है। ओर विराट्का ऊँचा भाग ही यह सुवर्ण कपाल है॥ तैत्तरीय ब्रा० १। ८। ९। १।] **इयं वा अन्नं ॥ अमृतं वै हिरण्यं** ॥ यह रजत कपाल भूमी ही अन्न है। प्रकाश ही सुवर्ण कपाल द्यौ है॥ तै० ब्रा० १। **तेजो वा अग्निः** ।। तेज रूप ही अग्नि है ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३। ३। ४। ३।] **शुक्रो हि वायुः** ॥ श्वेत जल रूप ही वायु है ॥ शतपथ ब्रा०।] **वायु र्वै पशूनां प्रियं धाम** ॥ वायु ही सब प्रजाओंका प्रियधाम है॥ काठक सं० १९। ८।] **प्राणो वै वायुः** ॥ सबका जीवन ही वायु है॥ काठक सं० ३४। १।] **स देव सोम्येदमग्र आसीदेकमेवाद्वितीयं ॥ तद्धैक आहु रस देव देक मग्र आसीदेक मेवा द्वितीयं तस्माद सतः सज्जायत** ॥ उद्दालकने कहा हे प्रियदर्शन श्वेतकेतो यह जगत् पहिले अद्वितीय एक ही हिरण्यगर्भ स्वरूप ही था। जो एक सूक्ष्म देहधारी ब्रह्मा है। सो ही अपनी उत्पत्तिसे प्रथम एक प्राण शक्ति रूप ही था। वह प्राणशक्ति अपनी विकारी अवस्थामें आनेके पूर्व निर्विशेष सत्तामें अद्वितीय स्वरूपथी। प्रलयकी निर्विशेष अवस्था ही सृष्टि रचनाके कुछ पहिले, सविशेष अवस्थामें आई। उस विकारी कारण अव्याकृत प्राणशक्तिसे (सत्) सूक्ष्म

कार्योपाधिक ब्रह्मा प्रगट हुआ, इस प्रकार मंत्र द्रष्टा ऋषि कहते हैं। **कुतस्तु खलु सौम्यैवंस्यादिति होवाचकथमसतः सज्जायेतेति ॥ सत्त्वे वसो सोम्ये दमग्र आसीदेक मेवा द्वितीयं ॥** हे प्रिय पुत्र इस आत्माके विषयमें किस प्रकार निश्चय किया जाये, ऐसा उद्दालकने कहा, अस्पष्ट शब्द रहित अव्याकृतसे विशेष अवस्था स्वरूप चेतन, कैसे आविर्भाव होवेगा। हे सौम्य इस प्रकार विचार किया जाय तो, निश्चय होता है, यह विशेष चेतन ही अव्याकृतके पहिले, निर्विशेष सामान्य एक अद्वितीय अखण्ड सत् चेतन घन स्वरूप ही था। फिर विकारी अवस्थाके संयोगसे निर्विशेष चेतन ही सविशेष चेतन ब्रह्मा हुआ। **तदैक्षत बहुस्यां प्रजायेयेति ॥ तत्तेजोऽसृजत ॥ तत्तेज ऐक्षत बहुस्याँ प्रजायेयेति तदपोऽसृजत ॥ तस्माद्यत्र क्वच शोचति स्वेदतेवा पुरुषस्तेजस एव तदध्यापो जायन्ते ॥** उस ब्रह्माने अपने सूक्ष्म देहसे स्थूल देहको उत्पन्न करनेकी इच्छा किया, मैं बहुत उत्पन्न होऊँ, ऐसी इच्छा हुई। उस धाताने अपनी अमृत शक्तिसे तेज रूप प्रकाशको रचा। उस तेज युक्त चेतन ब्रह्माने इच्छा किया। मैं तेजसे विशेष स्थूल होऊँ, इस संकल्पके होते ही उस ब्रह्माने तेजसे जलरूप अन्तरिक्षको रचा। उस तेजसे अन्तरिक्ष कैसे प्रगट हुआ। जैसे जिस किसी स्थानमें मनुष्य सन्ताप युक्त होता है। निश्चय वह मनुष्य पसीनेसे युक्त होता है। उसी प्रकार प्रकाश शक्तिके तेजसे ही जल उत्पन्न होता है। जलोंका समष्टि स्थान अन्तरिक्षसे ही मेघोंके द्वारा वर्षा होती है। **ता आप ऐक्षन्त बह्व्यः स्याम ॥ प्रजाये महीति ता अन्नमसृजंत ॥** इस अन्तरिक्ष अभिमानी सप्तात्मक वायुओंने इच्छा किया हम बहुत भूमीधारी हो जायँ इस

प्रकार संकल्प करते हुए उन वायुओंने अपने आकाश देहसे अन्नमयी भूमीको रचडाला॥ छान्दोग्यो० ६। २। १-२-३-४]
असद्वाइदमग्र आसीत् ॥ ततोवैसदजायत तदात्मान स्वयमकुरुत ॥ यह विश्व पहिले अव्याकृत कारणरूप हीथा। उस प्राणशक्ति कारणसे ही, सूक्ष्म देहधारी ब्रह्मा प्रगट हुआ। उस ब्रह्माने अपनी कार्य क्रियामय देहको स्वेच्छासे ही स्थूल विराट्के आकारमें प्रगट किया॥ तैत्तरीयारण्यक ८। ७। २।]
यदिदं किंच ॥ तत्सृष्ट्वा ॥ तदेवानु प्राविशत् ॥ जो कुछ यह ब्रह्माण्ड है, उसको रचकर फिर पीछेसे उस जगत्के सर्व पदार्थों में, विशेष चेतन रूपसे प्रवेश किया। तप लोकमें प्रजापति रूपसे। जन लोकमें बृहस्पति रूपसे। महर्लोक में सोम रूपसे। प्रत्येक् क्षुद्र ब्रह्माण्डोंके मस्तक द्योमें सूर्यरूपसे। अन्तरिक्षमें वायु रूपसे भूमीमें अग्निरूपसे प्रविष्ट हुआ। व्यष्टि शरीरोंमें जीव रूपसे विराजमान हुआ॥ तैत्तरीयारण्यक ८। ६] प्राणेनाग्निं संसृजति वातः प्राणेन संहितः ॥ प्राणेनविश्वतो मुखं सूर्यं देवा अजनयन् ॥ ब्रह्माने महाविराट्के प्रजापति सूर्यको, बृहस्पति रूप अग्निको, सोम रूप प्राण देवता वायुको रचा। इन तीनो देवताओंने प्रत्येक् त्रिलोकके देवताओंको रचा। सोम अपनी मृत्युके सहित अमृत देहसे भूमी ओर अग्निको रचता है, बृहस्पति अपने दोनों देहसे अन्तरिक्ष और वायुको उत्पन्न करता है। प्रजापति भी अपने दोनों देहसे द्यौ ओर सूर्यको रचता है। फिर अग्नि वायु सूर्य तीन व्यापक स्वरूपको प्रगट करते हुए स्वयं उनके देवता बन जाते हैं॥ अग्नि तत्वका अग्नि देवता। वायु तत्त्वका वायु देवता। सूर्यका सविता देवता है॥ अथर्वण १९। २७। ७।]
कार्य मृत्यु ओर क्रिया अमृत, इन दोनों शक्तियोंकाही विकाश

सूत्रात्मासे लेकर पिप्पिलिका पर्य्यन्त है। इनमें जो सामान्य चेतन व्यापक है सो ही रुद्र है। और विशेष चेतन देवता क्षेत्रज्ञ रूपसे स्थित है। सो ही अभिमानी चेतन है। वही सविशेष चेतन अभिमान रहित होनेसे निर्विशेष चेतन रुद्र हो जाता है। ब्रह्माकी सब देवता महिमा है। उन देवताओंकी महिमा प्राणिमात्र हैं। अग्नि वायु सूर्य अपने २ ब्रह्माण्डकी प्रजाओंकी उत्पत्ति स्थित लय तिरोधान अनुग्रह करनेमें समर्थ हैं। उन देवताओंके सहित ब्रह्माण्डोंकी उत्पत्ति आदि करनेमें, सोम, वृहस्पति, प्रजापति समर्थ हैं। उनकी उत्पत्ति आदि करना ब्रह्माके हाथ है। ओर ब्रह्मा महा प्रलयमें रुद्रमय हो जाता है, फिर उत्तर सृष्टिमें महेश्वरसे प्रगट होता है। ब्रह्मासे प्रजापति, वृहस्पति, सोम प्रगट होते हैं। सोमसे अपरिमित त्रिलोकमय विराट् उत्पन्न होते हैं। प्रत्येक् विराट्का शिर स्थानीय द्यौ माता इच्छा करती है, मैं सूर्य रूपसे प्रगट होऊँ। द्यौ शरीरका जो चेतन अभिमानी है। सो ही द्यौ देवता अदिति, प्रजापति, ब्रह्मा आदि नामवाला है [**आपस्तपोऽतप्यन्त तास्तपस्तप्त्वागर्भमादधत ततएष आदित्योऽजायत ॥** अदिति माता विचार करती भई मेरे देहसे सूर्य प्रगट होवे, इस संकल्पको विचार कर। गर्भ धारण किया, उस गर्भ रूप संकल्पसे यह सूर्य प्रगट हुआ ॥ शांखायन ब्रा० २५ । १ ।] **यो देवेभ्य आतपति यो देवानाम्पुरोहित: पूर्वो यो देवेभ्यो जातो नमो रुचाय ब्राह्मये ॥** जो सूर्य बारा आदित्य मास अभिमानी देवतोंसे प्रथम उत्पन्न हुआ, जो आदित्योंके रूपसे तपता है ॥ जो बारा महिनाओंके देवताओंका मुख्य स्वरूप है। उस प्रकाशमय (ब्राह्मये) द्यौके पुत्रके लिये हमारा प्रणाम हो ॥ शुक्ल यजु काण्व सँहिता ४ । ५ । २ । ५ ।]

अद्भ्यस्सम्भृतः पृथिव्यै रसाच्च विश्वकर्मणः समवर्तताग्रे ॥ जो प्रथम प्रगट होनेवाला ब्रह्मा है, उस विधाताके स्थूल विराट् देहके (पृथिव्यै) भूमीके (रसात्) जलके सारसे (अद्भ्यः) अन्तरिक्ष, वायु अग्नि इन तीनोंके सारसे सूर्यको सम्पादन किया। एक सूर्यकी उत्पत्तिसे सब ब्रह्माण्डोंके सूर्योंकी उत्पत्ति जान लेना। काण्व सं० ४। ५। २। १।] द्वेवाव ब्रह्मणो रूपे मूर्त्तं चैवा मूर्त्तंच्च मर्त्यंच्चामृतञ्च स्थितंच यच्च सच्चत्यञ्च॥ ब्रह्माके विराट् देहकेही दो रूप हैं कार्य क्रियात्मक क्षर अक्षर हैं। कार्य शक्ति सर्वदा परिवर्तनशील अन्तवाली और क्रिया अपरिवर्तन शील अनन्त है। तदेतन्मूर्तं यदन्य द्वायोश्चान्तरिक्षाच्चैतन्मर्त्यं ॥ जो वायु ओर आकाशसे भिन्न है, सो ही अग्नि जल भूमी रूप मूर्त कार्य है। अग्नि अमृतकी शक्ति होने पर भी, स्थूल आकारको जल भूमीके द्वारा ही धारण करता है। इस लिये ही मूर्त्त द्रव्य कहा है। सत एष रसो य एष तपति ॥ प्रत्यक्ष मूर्तका जो यह सूर्य मण्डल सार है। सो यह तप रहा है। अथा मूर्त्तं वायुश्चान्तरिक्षं चैतदमृतं०००त्यस्यैषरसोय एष एतस्मिन् मण्डले पुरुषः ॥ उस स्थूल मण्डलके अनन्तर जो मण्डलमें सूक्ष्म तेज है। सो ही आकाश वायुमय अमृतका सार है। यह आकाश वायु अमृत रूप अमूर्त है। इस प्रत्यक्ष अमूर्त्तका यह सार है। जो यह सूक्ष्म सार है, इस सार रूप मण्डलमें पूर्ण पुरुष भर्ग है॥ बृ० उं० २। ३। १ २—३।] प्रत्येक् सौर जगत्के प्राणिमात्र परस्पर कहते हैं, यह सूर्य हम सबका उत्पादक और पालन करनेवाला पिता है ॥ ३ ॥

किं स्विद्वनंकउस वृक्ष आस यतो द्यावा पृथिवी

निष्टतक्षुः ॥ मनीषिणो मनसा पृच्छतेदु तद्य दध्यतिष्ठद्भुवनानि धारयन् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(स्वित्) प्रश्न (वनं) उपादान कारण रूप वन (किं) किस प्रकारका (आस) था (ॐ) और (सः) वह कार्य रूप (वृक्षः) वृक्ष (कः) कौनथा (यतः) जिससे (द्यावा पृथिवी) सुवर्ण रजत कपालको (निष्टतक्षुः) वनाया (यत्) जिस ब्रह्माण्ड घरको (धारयन्) धारण करता हुआ (भुवनानि) असंख्य लोकोंको (अधि) वशमें करके (अतिष्ठत्) विराजमान हुआ (मनीषिणः)) हे बुद्धिमान ऋषियो (मनसा) शुद्ध अन्तःकरणके द्वारा (तत्) उस कारणके विषयमें (पृच्छत्) पूछो (ॐ) ओर (इत्) निश्चय करो ॥ ऋग्० १० । ८१ । ४ ॥

व्याख्याः—भगवान् ब्रह्मा, प्रजापति आदियोंको वेदका उपदेश करता हुआ प्रश्न करता है । प्रश्न उपादान कारण रूप वन किस प्रकार था ओर वहकार्य रूप वृक्ष कौन था । जिस वन वृक्षसे, स्वर्ग भूमीको निर्माण किया, जिस ब्रह्माण्ड घरको धारण करता हुआ, अनन्त लोकोंको वशमें करके विराजमान हुआ, ब्रह्माने कहा हे बुद्धिमान् ऋषियो तुम सब अन्तःकरणके द्वारा उस कारणके विषयमें मेरेसे पूछो । ओर मेरे कहे हुए उत्तरको वारंवार स्मरण करते हुए निश्चय करो [ब्रह्म वनं ब्रह्मस वृक्ष आसीत् ॥ प्राणशक्ति रूप माया ही उपादान कारण है, सो ही अव्याकृत रूप वन सूक्ष्म स्थूल कार्यात्मक वृक्ष हुआ ॥ तैत्तरीय ब्रा० २ । ८ । ९ । ६ ।] प्रजापतिर्वावतत् ॥ आत्मनाऽऽत्मानं विधाय ॥ तदेवानु प्राविशत् ॥ उस ब्रह्मा चेतनने ही, अपने मृत्यु अमृत देहके द्वारा, विविध स्वरूपोंसे विराजमान विराट् देहको रचकर पीछेसे उस विराट्के अधिदैव सूर्यादि, अधिभौतिक वृक्षः

लता आदि, अध्यात्म मन बुद्धिमें विशेष चेतन रूपसे स्थित हुआ॥ तैत्तरीयारण्यक १। २३। ८।] अर्थात् चेतन देव अपनी शक्ति के द्वारा विविध स्वरूपोंमें विराजमान होता भी अद्वैत है ॥ ४॥

परो द्विवा पर एना पृथिव्या परो देवेभिरसुरैर्यदस्ति ॥ कं स्विद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समपश्यन्त विश्वे ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(स्वित्) प्रश्न (दिवा) द्यौसे (परः) उत्तम (एना) इस (पृथिव्या) भूमीसे (परः) श्रेष्ठ (देवेभिः असुरैः) देव दैत्योंसेभी (परः) उत्कृष्ट (अस्ति) है (यत्र) जिसमें (विश्वे) सब (देवाः) देवता (समपश्यन्त) एक समष्टि सूत्रात्मासे बँधे हुए अपने २ कार्यको करते हुए परस्पर अभेद रूपसे देखते हैं (यत्) जिस (गर्भं) गर्भको (प्रथम) पहिले (आपः) प्राणशक्ति माताने (दध्रे) धारण किया॥ सो गर्भ (कं) कौन है ॥ ऋग्० १०। ८१। ५॥

व्याख्याः—प्रश्न द्यौसे उत्तम इस भूमीसे श्रेष्ठ, देव दानवोंसे परम श्रेष्ठ है। जिस गर्भमें सब देवता एक सूत्रात्मासे बँधे हुए अपने २ कार्यको करते हुए परस्पर अभिन्न रूपसे देखते हैं, जिस गर्भको प्रलयके अन्त ओर सृष्टि रचनाके पहिले अव्याकृत माताने धारण किया सो गर्भ कौन था। द्यौ भूमी शब्दसे महा विराट्‌का शिर ओर पग है ॥ ५॥

तमिद्गर्भं प्रथमं दध्र आपो यत्र देवाः समगच्छन्त विश्वे ॥ अजस्य नाभावध्येकमर्पितं यस्मिन् विश्वानि भुवनानि तस्थुः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(अजस्य) मायाका प्रेरक मायिकने (एकं) मैं एक हूं (अधि) वहुत होऊँ इस संकल्प बीजको (नाभौ) अव्याकृत योनिमें (अर्पित) स्थापन किया (तं) उस चिदाभास (गर्भं) हिरण्य गर्भको (इत्) ही (प्रथम) पहिले (आपः) प्राणशक्ति माताने (दध्रे) धारण किया (यत्र) जिस सूत्रात्मामें (विश्वे) सब (देवाः) देवता (समगच्छन्त) एक भावसे स्थित हैं (यस्मिन्) जिस ब्रह्माके सूक्ष्म देहमें (विश्वानि) महा विराट् के सहित सब (भुवनानि) भुवनमात्र प्राणि (तस्थुः) स्थित हैं ॥ ऋग्० १० । ८२ । ६ ॥

व्याख्याः—माया देहका प्रेरक महेश्वरने विश्व रचनाके लिये इच्छा किया, मैं एक मायिक हूं अनन्त शरीरधारी ब्रह्मा होऊँ। इस सत्य संकल्प बीजको माया देहकी मध्य अवस्थारूप अव्याकृत प्राणशक्तिमें स्थापन किया, उस चिदाभास रूप हिरण्य गर्भकोही प्रलयका अन्त ओर जगत् रचनाके आदिमें अव्यक्तमाताने धारण किया। जिस सूत्रात्मामें सब देवता अपनी उत्पत्तिके पहिले ब्रह्मामय होते हैं, ब्रह्माके दिनरूप कल्पके आदिमें सब देवता ब्रह्मासे प्रगट होकर, अपने २ कार्यको करते हुए, फिर कल्पके रात्री रूप अन्तमें ब्रह्मामें लय होते हैं। इस प्रकार ही ब्रह्माके दिनरात में उत्पन्न और लय होते रहते हैं। जिस ब्रह्माकी सूक्ष्म देहमें महा विराट्के सहित समस्त क्षुद्र विराट् स्थित हैं, उन भुवनोंमें सब प्राणिमात्र स्थित हैं [**अपामजः** ॥ प्राणशक्तिका प्रेरक मायिक महेश्वर है ॥ ऋग्० ३ । ४ । ५ ।] **अजः** ॥ अजति गच्छति अजः ॥ अधिष्ठानसे प्रेरित हुई संकल्प क्रिया अव्यक्त कारणके आकारमें विकाश करती है सो ही कारणमें जानेवाली अव्याकृत माता है ॥ ऋग्० १ । ६ । ७ । ६ ।] **नाभिः** ॥

मध्य अवस्थामें। माध्यन्दिनी सं० २७। २०।] आपो वै सर्वा देवताः ॥ प्राणशक्ति ही सर्व देवस्वरूप है॥ तैत्तरीय सं० २। ६। ८। ३।] अन्नं वा आपः॥ अव्यक्त ही प्राणशक्ति है॥ तैत्तरीय ब्रा० ३। ८। २। १३।] आपो मातृतमः॥ प्राणशक्ति उत्तम माता है॥ ऋग्० ६। ५०। ७।] आपो मातरः॥ अव्यक्त ही माता है॥ ऋग्० १०। ९२। ६।] आपो देवीः॥ प्राणदेवी॥ ऋग्० ७। ५०। १।] यो वा आपोऽग्रं हिरण्यगर्भोऽसि॥ जो प्रसिद्ध ब्रह्मा अव्यक्तका विकाशस्वरूपऽव्याक्तमें स्थित है। सो ही (अपः) व्यापक सूक्ष्म देहधारी है। अथर्वण १०। ५। ११] अप्स्वन्तरमृतं॥ कारण रूप प्राणशक्तिके मध्यमें, सूक्ष्म देहधारी अविनाशी ब्रह्मा है॥ माध्यन्दिनी सं० ९। ६] अपांयो अग्रे प्रतिमा बभूव॥ अव्याक्तका प्रथम विकाश, जो ब्रह्मा देहधारी हुआ। अथर्वण ९। ४। २] पुष्करे मधुः॥ अव्याक्ताकाशमें ब्रह्मा सुख स्वरूप है॥ तैत्तरीयारण्यक ५। ४। ११] प्राणो वै मधु॥ सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्मा ही सुख स्वरूप है॥ तैत्तरीयारण्यक ५। ४। ११] सहो वाच यदूर्ध्वं गार्गि दिवो यदर्वाक पृथिव्या यदन्तराद्यावा पृथिवी इमे यद्भूतं च भवच्च भविष्य च्चेत्याचक्षते॥ आकाशे तदोतश्च प्रोतश्चेति॥ प्रसिद्ध वह याज्ञवल्क्यने कहा हे गार्गी जो स्वर्गके ऊपर ओर भूमीके नीचे है। और द्यावाभूमो ये दोनों जिस सूत्रात्माके मध्यमें हैं, जो ब्रह्मा पहिले जगत् रूपथा, इस वर्तमानमें हैं, ओर आगेको रहेगा, एसा वेद वेत्ता कहते हैं, सो ब्रह्मा एक ज्ञानाकार से अव्याक्तमें ओतप्रोत है॥ बृ० ५० ३। ८। ७] देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपाः॥ एक अद्वितीय (कः) ब्रह्मा देवता अमि

वायु सूर्य चन्द्रमाको प्रलयमें निगल जाता है, सो ही सृष्टिको रचकर समस्त प्राणि मात्रका पालन करता है ॥ छान्दोग्यो० ४। ३। ६] ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्य गोप्ता ॥ ब्रह्मा सब देवताओंसे प्रथम प्रगट हुआ समस्त ब्रह्माण्डका उत्पादक और रक्षा कर्त्ता है ॥ मुण्डकउ० १। १। १ कस्मिन्नु खल्वाकाश ओतश्च प्रोतश्चेति ॥ गार्गीने कहा हे याज्ञवल्क्य अव्यक्त किसमें ओत प्रोत है। एसा प्रश्न गार्गीने किया ॥ सहो वाचैतद्वैतदक्षरं गार्गि ब्राह्मणा अभिवदन्त्यस्थूलमनण्वह्रस्वम दीर्घमलोहितमस्नेहमच्छायमतमः ॥ याज्ञवल्क्यने कहा हे गार्गी सूक्ष्म तत्त्व दर्शी मुनियोंने उस कृत प्राणशक्तिका आधार (अक्षरं) महेश्वरको कहा है यह मायिक पुरुष चार विशेषणोंसे रहित, मोटा, पतला, ठिङ्गणा, लम्बा नहीं है और अग्नि जल भूमीके धर्मोंसे रहित शुद्ध ज्ञान स्वरूप स्वयं प्रकाशी है ॥ वृ० उ० ३। ८। ७-८।] उसी महेश्वरसे माया विकाश पाती है [तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते ॥ अन्नात्प्राणो मनः सत्यं लोकाः कर्मसु चामृतं ॥ (ब्रह्म) व्यापक स्वरूप मायिकने इच्छा किया मैं एक हूँ वहुत होऊँ। उस महेश्वरके संकल्पसे (अन्नं) अव्याकृत प्राणशक्ति प्रगट हुई, अर्थात् संकल्पकी क्रियाकी जो अभिव्यक्ति है। सो ही अव्यक्तकी उत्पत्ति है। अव्याकृत आकाशसे सूत्रात्मा हिरण्यगर्भसे महा विराट् विराट्से (सत्यं) प्रत्यक्ष दृष्टि गोचर वाले (लोकाः) असंख्य त्रिलोक प्रगट हुए उन कर्ममय लोकोंमें प्रलय पूर्वके अक्षयकर्म फलको भोगनेके लिये प्राणि उत्पन्न हुए ॥ मु० उ० १। १। ८] स प्राण म सृजत प्राणाच्छ्रद्धां खं वायु र्ज्योतिरापः पृथिवीन्द्रियं ॥ उस महेश्वरने सूत्रात्माको रचा, सूत्रात्मा देहसे

ब्रह्मा ने (श्रद्धा) विराट् रूप जलको रचा। उस विराट्में अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, जल, भूमी इन्द्रिय समूहको रचा ॥ प्रश्नोपनिषद् ६।४।] आपः श्रद्धा॥ व्यापक विराट्ही श्रद्धा है॥ कपिष्ठल कठ सं० ४७।३।] श्रद्धा वा आपः॥ श्रद्धा ही व्यापक विराट् है॥ तैत्तरीय ब्रा० ३।२।४१] विराड्वाग् विराट् पृथिवी विराडन्तरिक्षं विराट् प्रजापतिः। विराण्मृत्युः साध्यानामधिराजो बभूव॥ विराट् ही वाणी, विराट ही भूमी, विराटही आकाश, विराट्ही प्रजापति, विराट् ही मृत्यु है, और सब देवताओंका अध्यक्ष स्वामी विराट् हुआ॥ अथर्वण ९।१५।२५] ब्रह्माकी स्थूल देहका नाम विराट है, इसकी उपाधिसे ब्रह्माका नाम प्रजापति है ॥ ६॥

हिरण्यगर्भः समवर्तताग्रे भूतस्य जातः पतिरेक आसीत्॥ सदाधार पृथिवीं द्यामुतेमां कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ ७॥

अन्वयार्थः—(अग्रे) सबके पहिले (हिरण्यगर्भः) ब्रह्मा (समवर्तत) समग्रज्ञानादि ऐश्वर्यके सहित प्रगट हुआ (जातः) उत्पन्न होने वाले (भूतस्य) प्राणि मात्रका (एकः) अद्वितीय (पतिः) स्वामी (आसीत्) हुआ (सः) सो विधाता (इमां) इस जड कार्यरूप भूमीको (उत) और (द्यां) प्रकाशवाले क्रियारूप द्यौको (दाधार) धारण करता है (कस्मै) तस्मै—उस (देवाय) प्रजापतिके निमित्त (हविषा) क्षीर आदि हविको (विधेम) हम अर्पण करते हैं॥ ऋग्० १०।१२१।१॥

व्याख्याः—सब जगत्की उत्पत्तिके पहिले प्राणशक्तिसे सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न ब्रह्मा उत्पन्न हुआ॥ और प्रगट होनेवाले चरा-

चर विश्वका अद्वितीय नियंता स्वामी हुआ. सो परमेष्ठी कार्यात्मक प्रकाश रहित आधार भूरूपालको, और क्रियात्मक प्रकाशवाले आधेय द्यौको धारण करता है, उस ब्रह्मा के लिए क्षीर घृत मिश्रित हविको हम उपासक अर्पण करते हैं [क इदं कस्मै] ॥ कनाम ब्रह्माका है (कस्मै) ब्रह्माके लिये यह हवि द्रव्य है ॥ अथर्वण १० । ३० । ७] प्रजापति वैं ब्रह्मा ॥ ब्रह्माही प्रजापति है ॥ काठक सं० १४ ।] प्रजापति वैं हिरण्यगर्भः ॥ ब्रह्माही हिरण्यगर्भ है ॥ तैत्तरीय सं० ५ । ५ । १ । २ ।] प्रजापति वैं यदग्रे समभवत् सः ॥ जो प्रथम उत्पन्न हुआ सोही प्रजापति है ॥ कपिष्ठलकठ सं० ४७ । ६] अमृतानां देवस्य अमर देवताओंके स्वामी ब्रह्माकी स्तुति करूँ ॥ ऋग्० १ । २४ । १] स प्रजापतिमेव प्रथमं देवतानां ॥ सो ब्रह्मा सब देवताओंके मध्यमें ही उत्तम पूज्य है ॥ ऐतरेय ब्रा० ३३ । ४ १] ऋतं वै सत्यं ॥ रुद्र स्वरूप ही ब्रह्मा है ॥ मैत्रायणी सं० १ । ८ । ७] ब्रह्म वै ब्रह्मा ॥ तेजो वै हिरण्यं इयं वै रजतासौ हिरण्यं ॥ रुद्र हीं ब्रह्मा है। प्रकाश अमृतशक्ति सूक्ष्म समष्टि देह रूप हिरण्य है। प्रसिद्ध स्थूल समष्टि देहही यह रजत आधार है॥ और अमृत आधेय रूपही यह हिरण्य है ॥ काठक सं० १९ । ४] सत्यं वै हिरण्यं ॥ अमृतं वै हिरण्यं ॥ रेतो वै हिरण्यं ॥ ब्रह्माही सूक्ष्म देहरूप है। अमृतशक्तिही सूत्रात्मा देह है। (रेतः) आव्याकृत प्राणशक्तिही सूक्ष्म देहरूप आधेय प्रकाश है ॥ काठक सं० २४ । ६] ब्रह्म वा ऋत ॥ व्यापक रुद्र स्वरूपही ऋत है। सो ही ब्रह्माका जनक है। शतपथ ब्रा० ४ । १ । १०] ब्रह्मदेवा वास्तोष्पति ॥ देवताओंने उमाके स्वामी (ब्रह्म)

व्यापक रुद्रको प्रसन्न किया ॥ ऋग्० । १ । ६१ । ७] सो ही रुद्र ब्रह्मा हुआ [एको वै प्रजापतिः ॥ अद्वितीय स्वरूप एक ही ब्रह्मा है ॥ मैत्रायणी सं० १ । ६ । १३] प्रजापति र्वाइद-मासीत् ॥ यह सब जगत् रूप ही पहिले ब्रह्मा था कपिष्ठलकठ सं० ३ । १२] भूतो वै प्रजापतिः । प्रगट होनेवाला सब प्रपंच स्वरूप ही ब्रह्मा था ॥ कपि० सं० ४८ १५] त्रिवृद्भु-वनं ॥ त्रिवृत रूप ब्रह्माण्ड है । स्थूल कार्य, सूक्ष्म क्रिया, और चेतन है । भूमीमें अग्नि, और अग्निका चेतन । अन्तरिक्षके सहित वायु और वायुका चेतन । द्यौके सहित सूर्य और सूर्यका अन्त-र्यामी भर्ग, ये नौ भेदवाला विराट् है ॥ कपि० सं९ ४८ । १३] त्रिवैं विराट् ॥ त्रिवृत रूप ही विराट् है ॥ कपि० सं० ७ । ४] अग्नि वैं प्रजापतिः ॥ विराट् ही प्रजापति है ॥ कपि० सं० ७ । १] अन्नं वै विराट् ॥ स्थूल माया भाग ही विराट् है ॥ मैत्रायणी सं० १ । ६ । ११] अग्नि वैं विराट् ॥ अग्नि वि-राट् है ॥ कपि० सं० २९ । ७] मृत्यु र्वा अग्निः ॥ मृत्युशक्ति विराट् है । अमृतं हिरण्यं ॥ अमृतशक्ति ही सूत्रात्मा है ॥ अग्निः सर्वा देवताः ॥ (अग्निः) व्यापक अमृत मृत्युशक्ति ही सब देवता स्वरूप है ॥ कपि० सं० ३१ । १] ओजोवा अग्निः॥ अमृतशक्ति ही बल है । कपि० सं० ३१ । १३] रेतो वै हिरण्यं ॥ स्थूलका कारण सूत्रात्मा है । कपि० सं० ३७ । ६] रेतो वै प्रजापतिः ॥ व्यष्टि प्रजाकी उत्पत्ति कारण रूप ही प्रजापति है ॥ प्रश्नो० १ । १४] प्रजापतिर्वैकः ॥ ब्रह्मा, कः नामसे प्रसिद्ध है ॥ तैत्तरीय सं० १ । ७ । ६ । ६] पूर्णो वै प्रजापतिः ॥ ब्रह्मा षोडशकला सम्पन्न है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ७ । ८] ब्रह्म वैत्रिवृत् ॥ सूक्ष्म देह ही त्रिवृत् है । जैमिनीय

ब्रा ३।१।४ ११] प्राणो वै ब्रह्म ॥ सूत्रात्मा ही ब्रह्म है ॥ अर्थात् समष्टि सूक्ष्म देह है। षोडशकलं वै ब्रह्म ॥ कलाश एवैनं तदब्रह्माऽऽ विशत् ॥ षोडशकला (वै) सम्पन्न (ब्रह्म) सूत्रात्मा देह है। इस देहको ही, तादात्म्य अध्याससे उस मायिकने ब्रह्मारूपसे प्रवेश किया, सो ब्रह्मा षोडश कलामय हिरण्य पुरमें गर्भके समान शयन करता है। इस लिये ही अव्यक्त पुरमें शयन करनेसे पुरुष कहलाता है॥ प्रजापतिं ब्रह्माऽसृजत ॥ तमपश्यममुखमसृजत ॥ तमप्रपश्य ममुखं शयानं ब्रह्माऽऽविशत् ॥ ब्रह्मा विराट्को रचता हुआ, उस अचेतनको देखने लगा। मूर्दाके समान शयन करनेवाले जडात्मक अण्डको देखकर उस विराट्में चेतन रूपसे ब्रह्मा प्रविष्ट हुआ॥ जै० ब्रा० ३।७।१।२-१।] षोडशकलो वै पुरुषः ॥ षोडशकला युक्त ब्रह्मा पुरुष है॥ जैमिनीय ब्रा० ३।७।२।१।] एको हि प्राणः ॥ एक सूत्रात्मा देहधारी ही ब्रह्मा है॥ २।२।४।१।] अपरिमितः प्रजापतिः ॥ सृष्टि व्यवहारसे रहित पहिले ब्रह्मा, निराकार महेश्वर स्वरूप ही था॥ कपिष्ठल कठ सं० ८।१।] अनिरुक्तं ॥ सृष्टेःप्राग् रूपविशेषा भावात् अनिरुक्तं ॥ सृष्टि उत्पत्तिके पहिले विशेष स्वरूपका अभाव होनेसे ही चेतनको अनिरूक्त कहा है॥ सायणभाष्य तैत्तरीय सं० २।५।७।३।] जो प्रथम देहधारी है सो ही निरुक्त रूप ब्रह्मा है [प्रजापतिर्वाव ज्येष्ठः ॥ ब्रह्मा सबके पिता रूपसे उत्तम हैं॥ तै० सं० ७। १।१।४।] आत्मैवैषां रथो भवत्यात्माश्व आत्मायुधमात्मेषवआत्मा सर्वं देवस्य देवस्य ॥ इन जड शरीरोको अपनी मृत्यु शक्तिसे रचकर स्वयं रथ रूप देह बन जाता है, उस देहका वाणी आदि

इन्द्रियाँ रूप आपही अश्व बन जाता, आप ही मन रूप धनुष बन जाता आप ही बहिर्मुख विषयाकार वासनामय बाण बन जाता है समस्त प्रपंच ही आत्मा है ॥ उस देवकी निर्विशेष बीज सत्ता ही कार्य, क्रिया–करणात्मक विकारी अवस्थाको धारण करके अपने अधिष्ठान चेतनमें ओतप्रोत हो रही है ॥ उस सत्तामें जो चेतनकी विशेष रूपसे स्फूर्ती हो रही है सो ही ब्रह्मासे लेकर पिपीलिका पर्य्यन्त प्राणि हैं। जैसे समुद्रजलमें महातरंग उपतरंग बुद्बुदा आदि नाना रूपसे भिन्न, प्रतीत होते हुएभी, अभेद जल स्वरूप ही हैं। तैसे ही माया देहधारी महेश्वरमें, ब्रह्मा, प्रजापति, मनु, सूर्य, अग्नि, इन्द्रादि देवता, मनुष्य, पशु, पक्षी, मत्स्य, वृक्षादिके सहित सब प्रपंच भिन्न दीखता हुआ भी अद्वैत महेश्वर स्वरूप ही है॥ निरुक्त ७ । ४ । १५ ।] जड मात्र प्राणशक्तिका विकाश। और चेतन मात्र महेश्वरका स्वरूप है ॥ ७ ॥

य आ॑त्म॒दा ब॑ल॒दा यस्य॒ विश्व॑ उ॒पास॑ते प्र॒शिषं॒ यस्य॑ दे॒वाः ॥ यस्य॑ छा॒याऽमृतं॒ यस्य॑ मृ॒त्युः कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(यस्य) जिस ब्रह्माकी (छाया) छायारूप (अमृतं) सूत्रात्मा देह है। ओर प्रति छायामय (यस्य) जिस विधाताकी (मृत्युः) विराट् देह है (यः) जो ब्रह्मा अग्नि आदि देवोंके स्वरूपको धारण करके व्यष्टि शरीरोंको रचता है। सो ही ब्रह्मा जड शरीरोंमें में (बलदाः) प्राणरूप बलशक्तिका पहिले स्थापन करता है। फिर (आत्मदाः) चेतन रूपसे स्वयं प्रकाशित होता है (यस्य) जिस ब्रह्माकी (प्रशिषं) अज्ञाको (विश्वे) (देवाः) देवता मानता हैं। ओर (यस्य) जिसकी (उपासते)

उपासना करते हैं (कस्मै) तस्मैउस (देवाय) आदि पुरुष ब्रह्माके लिये (हविषा) हुत द्रव्यकी आहुति देकर (विधेम) हम सेवा करते हैं ॥ ऋग्० १० । १२१ । २ ॥

व्याख्याः—जिस ब्रह्माकी छाया रूप सूत्रात्मा देह है। और जिसकी प्रतिछाया रूप विराट् देह है। जो ब्रह्मा अग्नि आदि देवताओंके आकारको धारण करके, व्यष्टि शरीरोंको रचता है। सो ही जड शरीरोंमें, प्रथम रूप बलका स्थापन करता है। फिर उस प्राणके पूर्ण विकाशरूप बुद्धिमें, स्वयं क्षेत्र रूपसे प्रकाशित होता है। जैसे शाखा स्थित कलीयोंकी विकसित अवस्था पुष्पोंमें सुगंधिका आविर्भाव होता है. तैसे ही अधिदैवोंकी अध्यात्म अवस्था हैं उस प्राणकी बुद्धि विकास अवस्थामें चेतन सुगन्धि है। जिस ब्रह्माकी आज्ञाको सब देवता मानते हैं। और सब देवता जिस ब्रह्माकी उपसना करते हैं, उस विधाताके लिये हवन करके हम सेवा करते हैं। सुत्रात्माकी अवस्थान्तर प्रतिछाया रूप विराट् देह है [**अमृतं मर्त्यं** ॥ अग्नि सोमात्मक अमृत सूक्ष्म अक्षर देह है। और मृत्युरूप क्षर स्थूल देह है ॥ ऋग्० १। ३५। २।] **अर्द्धं वै प्रजापतेरात्मनो मर्त्यमासींदर्द्धममृतं ॥** प्रसिद्ध ब्रह्माका आधा देह कार्यात्मक विराट् है। और क्रियामय आधा देह सूत्रात्मा है, यह ब्राह्मण श्रुति है] **अर्धेन विश्वं भुवनं जजान यदस्यार्धंकतमः सकेतुः ॥** (अर्धेन) चतुर्थांशसे समस्त चराचर जगत् उत्पन्न हुआ, और जो इस प्रजापतिका (कतमः) सुख स्वरूप (अर्ध) तीन पाद हैं सो ही (केतुः) लिंगरूप अमृत देह है, अमृत देहकी मृत्यु देह एक पाद रूप है। अथर्वण १०। ८। १२] **प्रजापति र्वाइदमेक एवाग्र आस सोऽकामयत प्रजायेय भूयांस्यामिति ॥ सतपोऽतप्यत ॥**

इस स्थूल प्रपंचसे पहिले एक सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्मा ही था। उसने इच्छा किया बहुत रूप धारण करनेवाला मैं होऊँ। इस संकल्पके अनन्तर सो ब्रह्मा सृष्टिके क्रम पूर्वक विचारको विचार कर निश्चय करके शान्त हुआ॥ ऐतरेय ब्रा० १०। ११।] **प्राणेभ्यो वै प्रजापतिः प्रजा असृजत॥** ब्रह्माने अपने त्रिपादरूप सूत्रात्मा देहसे ही एक पादमय मृत्यु विराट्को रचा। उस त्रिवृत् विराट्से विविध प्रजा रची॥ काठक सं० ८। १२।] **आपो हिरण्यं त्रिवृद्धिः॥** अमृत तीन पादोंसे व्यापक है॥ अथर्वण १९। २७। ९।] **ब्रह्मणः प्रजाः प्रजायन्ते॥** ब्रह्मासे सब प्रजा उत्पन्न होती हैं॥ कपिष्ठल कठ सं० ४४। ८।] तीन पाद रूप सूक्ष्म देहका और एक पादरूप स्थूल विराट देहका स्वामी चेतन्न पुरुष ब्रह्मा है॥ ८॥

यः प्राणतो निमिषतो महित्वैकइद्राजाजगतोबभूव॥ यईशे अस्यद्विपदश्चतुष्पदः कस्मै देवाय हविषा विधेम॥ ९॥

अन्वयार्थः—(प्राणतः) प्राणसे (निमिषतः) उपप्राणसे व्यापार करनेवाले (जगतः) प्राणिमात्रका (यः) जो ब्रह्मा (एकः) अद्वितीय (राजा) स्वामी (महित्वा) अपनी महिमाके द्वारा (इत्) ही (बभूव) हुआ (अस्य) इस (द्विपदः) दो पगवाले मनुष्योंका। और (चतुष्पदः) चार पगवाले पशु मात्रका (यः) जो ब्रह्मा (ईशे) नियंता स्वामी हुआ (कस्मै) तस्मैउस (देवाय) ब्रह्माको (हविषा) विविध भावनासे (विधेम) हम प्रसन्न करते हैं॥ ऋग्० १०। १२१। ३।]

व्याख्या:—प्राणसे स्वास प्रस्वास आदि पंच वृत्ति, और नेत्रके पलक भींचना आदि उपप्राणसे व्यापार करनेवाले प्राणि मात्रका जो ब्रह्मा अद्वितीय स्वामी, अपनी महिमाके द्वारा ही हुआ। इस दो पगवाले मनुष्यका, और चार पगवाले पशु मात्रका जो ब्रह्मा नियंता स्वामी हुआ, उस ब्रह्माको विविध भावनासे हम उपासक प्रसंन करते हैं [आत्मा वै हविः ॥ अपनी व्यष्टि उपाधिक आत्माको ही समष्टि ब्रह्मामें लय करना ही हवि है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ७। १।] आत्मा पशुः ॥ जीवात्मा ही व्यष्टि देह उपाधिक पशु है, अल्पज्ञ भावको छोडकर, सर्वज्ञ ब्रह्मा भावको प्राप्त होता है। तव भव वन्धनसे मुक्त हो जाता है ॥ कपि० सं० ४१। ६।] प्रजापति र्वै पिता: ॥ ब्रह्मा सबका पिता है ॥ ऐतरेय ब्रा० १८। ४।] सब जगत् ब्रह्मा स्वरूप है ॥ ९ ॥

यस्ये॒मे हि॒मव॑न्तो महि॒त्वा यस्य॑ समु॒द्रं र॒सया॑ स॒हाहुः ॥ यस्ये॒माः प्र॒दिशो॒ यस्य॑ बा॒हू कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(यस्य) जिसकी (इमे) इन प्रत्यक्ष (हिमवन्तः) हिमालयके सब उच्च शृंगोको, और (रसया) सरस्वतीके (सह) सहित (समुद्रं) समुद्रको (यस्य) जिसकी (महित्वा) महिमाके द्वारा उत्पन्न हुआ (आहुः) ऋषि कहते हैं (यस्य) जिसकी (इमाः) इन पूर्वादिक मुख्य दिशाओंके सहित (प्रदिशः) उपदिशाओंको, और (यस्य) जिसकी (बाहू) क्रिया कार्यात्मक पंच भूतरूप दोनों भुजाओंको कहते हैं (कस्मै) उस (देवाय) ब्रह्माका (हविषा) अन्तर्मुख द्वारा (विधेम) हम ध्यान करते हैं ॥ ऋग्० । १० । १२१ । ४ ॥

व्याख्याः—जिस विधाताकी विराट् रूप महिमाके द्वारा प्रगट हुए, इन प्रत्यक्ष हिमालयके उँचे शिखरोंको और सरस्वती महानदीके सहित समुद्रको ऋषि कहते हैं। जिसके प्रभावसे उत्पन्न हुई पूर्वादि मुख्य दिशाओंके सहित अग्नि आदि उपदिशाओंको, और अन्तरिक्ष, वायु, अग्नि, रूप क्रिया एक हातके सहित जल भूमी कार्यमय दूसरे हातको कहते हैं। उस परमेष्ठीका अन्तर्मुख वृत्तियों के द्वारा हम ध्यान करते हैं। कस्मै सर्व नामका वेदमें काय प्रयोग होता है। कः नाम ब्रह्माका है [कः ॥ कः नाम ब्रह्माका है ॥ ऋग्० १। ८४। १६ ॥ **प्रजापति वै कः** ॥ ब्रह्माका नाम ही कः है॥ ऐतरेय ब्रा० ६। ७॥ शांखायन ब्रा० २४। ५॥ मैत्रायणी सं० १।१०।१०।] **काय स्वाहा कस्मै स्वाहा कतमस्मै स्वाहा** ॥ (काय) सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्माके लिये हमारी दी हुई आहुतियें प्राप्त होवें (कस्मै) सूक्ष्म स्थूल विराट् देहधारी उत्तम ब्रह्माके निमित्त (स्वाहा) यह उपासनामयी प्रार्थना स्वीकृत होवे (कतमस्मै) दोनों छाया रूप देहसे श्रेष्ठ अत्यन्त सुख स्वरूप चेतन ब्रह्माके स्वरूपको प्राप्त होनेके लिये हमारी (स्वाहा) दृढ भावना होवे॥ काण्व सं० ३। ४। ७। १॥ माध्यन्दिनी सं० २२। २०।] चतुर्थी विभक्तिमें ब्रह्माके लिये काय और कस्मै दोनों विकल्प रूप प्रयोग हैं [**कस्मै तस्मै** ॥ किस लिये उस लिये ॥ काण्व सं० १। १। ३। २।] **दिशोयस्य प्रदिशः पञ्चदेवीः** ॥ जिस ब्रह्माके महिमासे दश दिशायें और पाँच महा भूत देवता प्रगट हुए ॥ कृष्ण यजु चरक शाखान्तर गत काठक संहिता, स्थान ४०। अनुवाक् १।] जगत् पिता सबका परम पूज्य देवता ही ब्रह्मा है ॥ १०॥

ये न॒द्यौ रु॒ग्रापृ॑थि॒वी च॑ दृ॒ह्ळा येन॒ स्वः॑ स्तभि॒तं येन॒ नाकः॑ ॥ यो अ॒न्तरि॑क्षे॒ रज॑सो वि॒मानः॒ कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(येन) जिसकी सामर्थ्यसे (द्यौः) द्यौ रूप अदिति (उग्रा) प्रकाशित हो रही हैं (च) और (पृथिवी) सबको धारण करने में भूमी कपाल (दृळ्हा) दृढ है (येन) जिससे (स्वः) सूर्य (स्तभितं) स्थिर है (येन) जिसकी सत्तासे (नाकः) सर्व दुःख रहित ब्रह्मलोक सुख धाम है (यः) जो ब्रह्मा (अन्तरिक्षे) आकाशमें (रजसः) जलकी (विमानः) रचना करता है (कस्मै) श्रेष्ठ स्वरूप (देवाय) विभूको (हविषा) मनके द्वारा (विधेम) हमारा प्रणाम हो ॥ ऋग्० १० । १२१ । ५ ॥

व्याख्याः—जिस धाताके महिमासे अदिति रूप द्यौ प्रकाशित हो रही है, और सब चराचर विश्वको अदिति रूप भूमी धारण करती हुई वही दृढ है । जिसकी सत्तासे सूर्य अपनी गति पर स्थिर है, और जन्म मरणादि दुःखरहित उत्तम सुखधाम ब्रह्म लोक जिस ब्रह्माकी कृपासे सुशोभित है । जो ब्रह्मा अन्तरिक्षमें सूर्य वायु अग्निरूपसे जलको रचता है, उस श्रेष्ठ स्वरूप व्यापकको हम शुद्ध मनसे प्रणाम करते हैं [मनसा ध्यायेति ब्रह्माणं ॥ ब्रह्माको शुद्ध मनसे चिन्तवन करे ॥ शतपथ ब्रा० १ । ४ । ३ । ५]

महात्मनश्चतुरो देव एकः कः स जगार भुवनस्य गोपाः ॥ तंकापेयन विजानन्ति मर्त्या प्रतारिन् बहुधा निविष्टम् ।। मनुष्य तर्क बुद्धिसे ब्रह्माको नहीं जानते हैं । एक अद्वितीय (कः) ब्रह्मा ही, अग्नि वायु चन्द्रमा सूर्यरूप चार महा अधिदैवोंको (जगार) अपने दिनके अन्तरूप प्रलयमें खा जाता है,

और कल्पके आदिमें उन चारोंको रचकर फिर अग्नि आदि देवोंसे विविध जगत्को रचकर सब चराचर मात्रका पालन करता है। सो ही ब्रह्मा अनन्त स्वरूपोंको धारण करके व्यापक हो रहा है। उस ब्रह्माको, हे कापेय प्रतारिन् तुम दोनों जानों । **आत्मा देवाना मुतमर्त्यानां हिरण्य दन्तोरपसोऽनसूनुः ॥ महान्तमस्य महिमानमाहुरनद्यमानो यदनन्नमत्ति ।** (आत्मा) जो व्यापक ब्रह्मा देवताओंका और मनुष्योंका उत्पादक है सो ही (हिरण्यदन्तः) सूत्रात्मारूप दृढ दाँतवाला (अनसूनुः) कल्प रात्रीमें सब प्रजाको लय रूपसे चेष्टा करनेवाला (रपसः) खानेवाला है। इस ब्रह्माको कोई भक्षण नहीं कर सकता अभक्ष स्वरूप ब्रह्मा विराट् रूप अन्नको खाता है। उस बडे भारी महिमावाले ब्रह्माको जानें ऐसा ऋषि कहते हैं। **प्रजापति वैं कः ॥ सहैतज्जगार ॥** ब्रह्माही कः नाम वाला है। सो ब्रह्मा निश्चय उस विराट्को भक्षण करता है। जैसे (ऊर्णनाभी) मकरी–करोलिया अपने मुखसे जाल तन्तुओंको रचकर फिर खा जाती है । तैसे ही प्रजापतिरूप अदिति जगत् जालको रचकर फिर प्रलयमें खा जाती है ॥ जैमिनीय ब्रा० ३ । १ । २ । २ ।] **येनाऽवृतं खंच दिवं महीं च येनाऽऽदित्य स्तपति तेजसा भ्राजसा च ॥ यमन्तः समुद्रे कवयो वयन्ति तदक्षरे परमे प्रजाः ॥** जिस ब्रह्मासे अन्तरिक्ष, द्यौ, और भूमी व्याप्त है, और जिसके द्वारा विस्तृत रश्मि जालरूप तेजसे सूर्य तपता है, ब्रह्मलोक रूप समुद्रके मध्यमें जिस ब्रह्माको अतीन्द्रिय दर्शी ऋषि देखते है, उस सत्य स्वरूप ब्रह्माको (अक्षरे परमे) नाश रहित उत्तम ब्रह्मलोकमें उपासक प्रजा प्राप्त होती हैं॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १ । ३ ।] ब्रह्मा ही सर्वत्र ओतप्रोत रूपसे व्यापक है ।। ११ ॥

यं क्रन्दसी अवसा तस्तभाने अभ्यैक्षेतां मनसा रेजमाने ॥ यत्राधि सूर उदितो विभाति कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(अभ्यैक्षेतां) सर्वत्र विकाश पाते हुए (रेजमाने) कार्य क्रिया रूपसे शोभायमान (तस्तभाने) चराचरके शरीरोंको धारण करनेवाले (क्रन्दसी) द्यावा भूमीमय (यं) जिस विराट्की (अवसा) रक्षा करनेके लिये (मनसा) संकल्पके द्वारा ब्रह्माने अग्नि, वायु सूर्यको रचा (यत्र) जिस महा विराट्के प्रत्येक् क्षुद्र त्रिलोकी विराट्में (सूरः) सूर्य (उदितः) उदित होता हुआ (अधि) विशेष ऋतुओंके सहित (विभाति) प्रकाशित होता है (कस्मै) उत्तम ब्रह्मा (देवाय) देवकी प्राप्तिके लिये (हविषा) वैदिक कर्मसे (विधेम) प्रार्थना करते हैं ॥ ऋग्० १० । १२१ । ६ ॥

व्याख्या:—सर्वत्र विकाश पाते हुए कार्य क्रिया रूपसे शोभायमान, चराचरके शरीरोंको धारण करनेवाले, द्यौ भूमीमय, जिस विराट्की रक्षा करनेके लिये संकल्पके द्वारा ब्रह्माने अग्नि, वायु, सूर्य समुहको रचा जिस महा विराट्के मध्यमें असंख्य त्रिलोकी विराट् हैं उन प्रत्येक् विराटोंमें सूर्य भी पृथक् २ हैं, अपने २ सौर जगत्में सूर्य उदय होता हुआ, विशेष ऋतुओंके सहित प्रकाशित होता है। उस जगत् कर्त्ता ब्रह्माकी उत्तम देवकी प्राप्तिके लिये वैदिक कर्मसे हम प्रार्थना करते हैं । १२ ॥

आपो ह यद्बृहतीर्विश्वमायन् गर्भं दधाना जनयन्तीरग्निम् ॥ ततो देवानां समवर्ततासुरेकः कस्मै देवाय हविषा विधेम ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(बृहतीः) महान् (आपः) व्यापक प्राणशक्ति (विश्वं) पूर्णकारणके (आयन्) आकारको प्राप्त हुई (यत्) जिस (अग्निं) व्यापक (गर्भं) सूत्रात्म देहको (दधानाः) धारण करती हुई (जनयन्तीः) उत्पन्न करनेवाली हुई (ततः) उस (ह) प्रसिद्ध समष्टि सूक्ष्म देहसे (देवानां) देवादि मनुष्योंका (असुः) सूत्रात्मा देहाभिमानी (एकः) एक ब्रह्मा पिता (समवर्तत) आविर्भाव हुआ (कस्मै) उस (देवाय) विधाताके निमित्त (हविषा) हवि आदि नमस्कारको (विधेम) हम करते हैं ॥ ऋग्० १० । १२१ । ७ ॥

व्याख्याः—महा माया व्यापक पूर्ण कारणके रूपमें प्राप्त हुई, सो ही अव्यक्त जिस अपने क्रियामय व्यापक सूक्ष्मकार्य गर्भको स्थूलके आकारमें आनेके लिये, धारण करती हुई प्रगट करती है। उस प्रसिद्ध सूत्रात्मा देहसे, देव दैत्य पितर मनुष्यादिकोंका उत्पत्ति कर्त्ता एक सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्मा पिता आविर्भाव हुआ, उस विधाताके प्रति नमस्कार आदि हविको विधान करते हैं [अग्नि वै प्रजापतिः ॥ अग्नि नाम ही ब्रह्माका है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ७ । १ ।] निराकार रुद्रके जितने स्वरूपमें निर्विशेष सत्ता ही सविशेष माया आश्रित हुई। उतना चेतन, माया देहका स्वामी हुआ। सृष्टि रचनात्मक संकल्पमें जो जड क्रिया है, सो माया है, उसका प्रेरक जो चेतन है, सो ही मायिक है, । महेश्वरसे प्रेरित हुई माया कारणके रूपमें प्रगट होती है, उस प्राणशक्तिमें अधिष्ठित चेतन, चिदाभास है, सो ही अव्यक्तका गर्भ है। माया के तीन रूप, कारण अव्यक्त, सूक्ष्म सूत्रात्मा, स्थूल विराट् है । निर्विशेषसे विकारी अवस्थामें आनेके लिये सन्मुख हुई, सो ही माया है, इस मायाकी उपाधिसे रुद्रका नाम महेश्वर हुआ। जब माया मायिकसे

कारणके रूपमें प्रेरित हुई अर्थात् तादात्म्य चेतनको गर्भ रूपसे धारण करनेमें समर्थ हुई सो ही मायाकी कारण अवस्था है। इसकी उपाधि से ही महेश्वरका नाम अन्तर्य्यामी हुआ। प्राणशक्ति कारणकी सूक्ष्म अमृत क्रियाशक्तिमें अधिष्ठित चेतन गर्भका नाम ब्रह्मा हुआ। इस अमृत शक्तिकी स्थूल कार्यात्मक मृत्यु शक्तिकी उपाधिसे ब्रह्माका नाम विराट् अभिमानी वैश्वानर, प्रजापति हुआ। जैसे व्यष्टि तीनों अवस्थाके भेदसे चेतनका नाम विश्व, तैजस प्राज्ञ है। तैसे ही कारण, सूक्ष्म क्रिया, स्थूलकार्य, इन समष्टि मायाके तीनों स्वरूपोंकी उपाधिसे महेश्वरका नाम अन्तर्यामी, ब्रह्मा, प्रजापति हुआ। महा प्रलयके समय जीवोंके अभोग्य कर्म संस्कार विकारी होने पर भी, अविकारी समान एक बीज शक्तिके रूपसे अनन्त शक्ति स्वरूप रुद्रमें रहते हैं। जिस बीज सत्तामें संस्कारअभिमानी जीव पुरुष शयन करता है। जब बीज सत्ता कर्ताको फल देनेके लिये सृष्टि रूपसे उपक्रम करती हुई अधिष्ठानमें संकल्प रूपसे स्फूरित होती है। जैसे नदीका तट जड होने परभी, गिरते समय चेतनके समान प्रतीत होता है। तैसेही बीज सत्ता अपने आधार चेतनमें संकल्प रूपसे स्पन्दन होती हुई भी जड है। यही निर्विशेष सत्ताकी विकारी कारणोन्मुख माया प्राणशक्ति है। इस तैयारी के अनन्तर कारणके रूपमें भासी सो ही मायाकी कारण अव्याकृत अवस्था है। जैसे रजो दर्शनके कुछ पहिले और ऋतु धर्मके पीछे एक ही स्त्रीकी दो अवस्था हैं। तैसे ही मायाकी संकल्प पूर्व अवस्था, और कारण उत्तर अवस्था है। वैदिक भाषामें मायाका प्राण, शव, आप, नाम है। उसकी उपाधिसे निराकार रुद्रका नाम असुर हुआ यह वैदिक शब्द है। और आरण्यक उपनिषदमें मायिक महेश्वर है। अनादि शान्त प्रवाह रूपसे रुद्रके दो रूप अधिष्ठान मायिक, और अधिष्ठित

ब्रह्मा है। यही ब्रह्मा प्रलयके समय बीज सत्तारूप जलमें शयन करता है। संस्कारकी प्रबलतासे अभेद स्वरूप होता हुआ भी सृष्टि भेदको प्राप्त होता है। अर्थात् कर्म फलके भोगे विना जीवकी प्रलयमें भी मुक्ति नहीं होती। उस समष्ठि जीवके दो रूप, एक ज्ञानी समष्ठि स्वरूप ब्रह्मा। ओर दूसरा अज्ञानी व्यष्टि स्वरूप प्राणी मात्र है। ब्रह्मा सबका नियंता महेश्वरकाही स्वरूप है। माया अधिष्ठान महेश्वर ही, माया अधिष्ठित ब्रह्मा है। नित्य ज्ञानस्वरूप ब्रह्माकी जो व्यष्टि जीव अभेद रूपसे उपासना करता हुआ ब्रह्म लोकमें मुक्त हो जाता है। फिर जन्म मरण दुःखसे छूट जाता है। जब अपने रुद्र स्वरूपका यथार्थ ज्ञान हो जाता, उस ज्ञानीके प्राण किसी लोकमें गमन नहीं करते, इस देहके पात होते ही ज्योति रूप होता है। जिसको पूर्ण ज्ञान नहीं हुआ, उसके प्राण ब्रह्मलोकमें जाते हैं। यही सोपान क्रम मुक्ति है। व्यवहार दृष्टिसे माया जगत् कार्यका उपादान कारण है। और परमार्थ दृष्टिसे निर्विशेष सत्ताकी एक विकारी अवस्थान्तर मात्र है। इस लिये ही ज्ञानीयोंकी दृष्टिमें सर्वदा मिथ्या है। और व्यवहार दृष्टिमें निर्विशेष सत्ताका सविशेष माया सत्तामें अप्रत्यक्ष अभाव प्रतीत होता है। इस लिये अज्ञानीयोंकी दृष्टिमें सर्वदा माया सत्य है। ज्ञानी ओर अज्ञानीकी विरुद्ध मान्यतामें सत्य क्या है। जो वस्तु है, वह असत्य कभी नहीं होती। जो असत्य है, सो कभी सत्य नहीं होती है। जो रुद्र चेतनकी अनन्त शक्ति उमा नित्य अविक्रीय ज्ञानरूप सत्य है। अपने अनन्त स्वरूपके परिचयार्थ एक बीज सत्ता रूप सेविका मायाको धारण करती है। इस छायारूप प्राणशक्तिमयी सेविकाको सत्यमाने तो क्षण क्षणमें परिवर्तनशील न होना चाहिये। क्योंकी सत्यका कभी परिवर्तन नहीं होता। यदी होवे तो उसको

एक रस सत्य नहीं कह सकते। जो परिवर्तन शील है सो कभी सत्य नहीं हो शकता। जैसे वृक्षकी छाया दिन भर परिवर्तन शील देखनेमें आती है, और वृक्षतो दिनभर एक स्वरूप रहता है। तैसे ही उमाकी छाया रूप प्राण तो सदा कारण कार्यके आकारमें परिवर्तन शील प्रत्यक्ष देखनेमें आती है, और अनन्त ज्ञान स्वरूप रुद्र तो, अखण्ड एक रस परिपूर्ण अस्ति भाति प्रियरूपसे ओत प्रोत हो रहा है। जैसे समुद्रमें एक कोटीमन शक्कर डालनेसे अनन्त क्षार मन स्वरूप समुद्रकी कुछ भी हानी नहीं होती। अर्थात् क्षारको मीठा नहीं करता है। तैसे ही एक प्राणशक्ति, अनन्तशक्ति निर्विकारी स्वरूपको विकारी नहीं बना सकता, आप निर्विकारी नहीं बन सकता तो, अनन्त ज्ञानकी अपेक्षासे, एक विपरीत ज्ञान मायाको सत्य कहना। और अनन्त स्वरुपको असत्य कहना ठीक नहीं। यदि दोनोंको सत्य कहें तो शुक्ति और रजतभासका एक ही कालमें बोध होना चाहिये सो देखनेमें नहीं आता। यथार्थ शुक्तिके ज्ञानसे रजत भास ही मिथ्या है। तैसे ही अधिष्ठानके ज्ञानसे अधिष्ठित माया मिथ्या है। माया मूल कारणसे ही असत्य, मिथ्या, मोह, ठगना, कपट, छल, जाल, आदि शब्द रूप कार्य प्रगट हुए है [मायया ॥ अद्भुत शक्तिसे। अर्थात् अघटित घटना पटीयसी माया ॥ ऋग्० १। १४४। १।] मायया ॥ शक्तिसे ॥ ऋग् १। १६०। ४।] मायया ॥ मोह स्वरूप ॥ अथर्वण ॥ ऋग्० ४। ३८। ३।] मायाः ॥ माया कार्य दुःखोंके कारण है ॥ ऋग्० १। ११७। ३।] मायाः ॥ अदेवीः ॥ तमरूप है ॥ ऋग्० ७ [१। १०।] माया ॥ चातुर्य्य शक्ति ही माया है ॥ ऋग्० १०। ५३। ९।] मायया ॥ छल करने वालीसे ॥ ऋग्० ७। १०४। २४।] मायया ॥ अपनी शक्तिसे ॥ ऋग्० १०।

८५ । १८ ।] माया ॥ प्राणशक्ति रूप माया है ॥ ऋग्० १० । ९९ । २ ।] मायाः ॥ प्राण ही माया है ॥ ऋग्० ६ । २३ । १० ।] मायया ॥ मायासे वृद्धि पाने वाला ॥ ऋग० ६ । २२ । ६ ।] मायया ॥ अपनी अद्भुत आश्चर्य्यमयी सामर्थ्यसे ॥ मायया ॥ प्रज्ञारूप प्राणशक्तिसे ॥ ऋग्० ३ । ६२ । ८] माया ॥ कल्पित रूप ही प्रतिरूप माया है ॥ ऋग्० ३ । ६२ । ८] मायया ॥ ज्ञान है ॥ ऋग्० ३ । २७ । ७ ॥ ८ । ३३ । १५] मायया ॥ प्रज्ञा है ऋग्० ९ । ८४ । ३] मायया ॥ कर्मसे ॥ ऋग्० ८ । ४१ । ३-८ ॥ ९ । ७४ । ३०] मायिनं ॥ असुर है ॥ ऋग्० १ । ५३-५४ । ७-४] मायी ॥ बुद्धिमान् वरुण है ॥ ऋग्० ७ । २९ । ४] मायावान् ॥ कपटवान् ॥ ऋग्० ४ । १६ । ९] सुमायाः ॥ उत्तममार्गकी बुद्धि ॥ ऋग्० १ । ८८ । १] मायिनः ॥ प्रशंसनीय गमन है ॥ ऋग्० ५ । ४४ ।] मायिनं ॥ बुद्धिमान इन्द्र है ॥ ऋग्० ८ । ६ ५ । १] आसुं ॥ प्राणको ॥ ऋग्० १० । ५९ । ७] महींमायां ॥ बडी प्राणशक्ति माया है । ऋग्० ५ । ८५ । ५ ।] आत्मा वै बृहतीः प्राणाः ॥ माया देह ही बडी प्राणशक्ति है । एतरेय ब्रा० ३० । ३ । द्यौर्ब्रह्म द्यौर्नाम मायाका है. ता. १९-१२-१७ ब्रह्मवत्रिवृत् माया वाली है ता. १९-१७-३ आपो वै समुद्रः ॥ व्यापक प्राणशक्ति ही समुद्र है ॥ शतपथ ब्रा० ३ । ९ । २७] प्राणो वा अर्णवः ॥ प्राणशक्ति ही समुद्र है । शतपथ ब्रा० । ७ । ५ । २ । ५०] प्राणा वा आपः ॥ प्राणशक्ति ही आपः है ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३ । ८ । ३ । ९] द्रयाविनः ॥ माया है । द्रयाविन नाम मायाका है ॥ अथर्वण १ । २८ । १] प्राणो वा असुर स्तस्यैषा माया ॥ प्राणशक्ति का अधिष्ठान मायिकः

महेश्वर ही असुर है, उस महेश्वरकी यह माया देह है ॥ शतपथ ब्रा० ६।२।६] असुरस्य मायया ॥ रुद्रकी मायासे ॥ अथर्वण ६।७२।१] असुरस्य ॥ रुद्रका ॥ ऋग्० ३।५३। ७] द्वयाविनः ॥ दोपापवाली मायाऔर अविद्या है ॥ ऋग्० १।४२।४] अद्वयाविनं ॥ माया रहित ॥ ऋग्० ५।७५। ९ ॥ १।१५९।३] अद्वयाः ॥ कपट रहित ॥ ऋग्० ८। १८।६] अद्वयाः ॥ कपट रहित ॥ ऋग्० १।१८७।३] कविमद्वयन्तं प्रचेतसममृतं ॥ सर्वज्ञ (अद्वयन्तं) अद्वितीय उत्तम ज्ञान स्वरूप जन्म मरण रहित रुद्रको भजो । ऋग्० ३। २९। ५] माया रहित अद्वितीय रुद्र है। और माया द्वया नामवाली अद्वैत अधिष्ठानसे भिन्न न होती हुईभी, भिन्न रूपसे भासती है ॥ सोही माया नामकी अद्भुत शक्ति है अद्भुतं ॥ न भुतं अद्भुत।: तीन कालमें जो चेतन आधारसे भिन्न कोई वस्तु न होवे, सो ही अद्भुत है ॥ ऋग्० १।१७०।१] सत्यो अरतिः ॥ जो मायासे रहित है. सो ही सत्य स्वरूप (अरति) ईश्वर है। ॥ ऋग्० । ६७।८] तमसः पारं ॥ माया अज्ञानके पार ॥ ऋग्० ६।७३।१] सत्य स्वरूप रुद्र है। और असत्य रूप माया है॥ इस मायासे तरनेके लिये निरंतर सत्य स्वरूपका ध्यान करे ॥ १३ ॥

यश्चि॒द् आपो॑ महि॒ना प॒र्यप॑श्य॒द् दक्षं॒ दधा॑ना ज॒नय॑न्ती य॒ज्ञम् ॥ यो दे॒वेष्वधि॑ दे॒व एक॒ आसी॒त् कस्मै॑ दे॒वाय॑ ह॒विषा॑ विधेम ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो महेश्वर अपने मायामय देहको (पर्यपश्यत्) सर्वत्रसे कारणके रूपमें विकाश होनेके लिये देखता

है (महिना) सृष्टि पर्य्यालोचनाके द्वारा अव्यक्त प्रगट हुआ उस अव्याकृतमें (यत्) जिस बहुतात्मक बीजको स्थापन किया उस (दक्षं) ब्रह्माको (आपः) प्राणशक्ति (दधानाः) धारण करती हुई (यज्ञं) पूज्य ब्रह्माको (जनयन्तीः) उत्पन्न करने वाली हुई (चित्) निश्चय (देवेषु) देवताओंकी उत्पतिके (अधि) पहिले (यः) जो (एकः) अद्वितीय (देवः) ब्रह्मा (आसीत्) प्रगट हुआ (कस्मै) तस्मै उस (देवाय) स्वयम्भू ब्रह्माकी प्रसन्नताके लिये (हविषा) त्रिविध वैदिक मार्गके द्वारा (विधेम) परिचर्य्या करते हैं ॥ ऋग्० १० । १२१ । ८ ॥

व्याख्या:—जो असुर अपने मायामय देहको सर्वत्र व्यापक रूपसे विकास होनेके लिये देखता है, सृष्टि रचनामय विचारके द्वारा, अव्याकृत आकाश प्रगट हुआ, उस प्राणशक्तिमें, जिस बहुतात्मक बीजको स्थापन किया, सर्वज्ञ समर्थ ब्रह्माको (आपः) व्यापक प्राणशक्ति धारण करती हुई फिर गर्भ धारण करनेके अनन्तर, पूज्य भगवान् ब्रह्माको उत्पन्न करती है, निश्चय सब देवोंकी उत्पत्ति प्रथम, जो एक विधाता प्रगट हुआ, उस स्वयम्भूकी प्रसन्नताके लिये त्रिविधकर्म, उपासना, ज्ञानके द्वारा आराधना करते हैं **ऋतं बृहतं** ॥ ब्रह्मा रूप सत्यकाभी सत्य महा रुद्र है ॥ ऋग्० १ । ७५ ५] **ऋतं** ॥ ऋतही सत्य है ॥ ऋग्० १ । १८५ । १०] **ऋतस्ययोषा** ॥ असुरकी पत्नी ॥ ऋग्० १ । १२३ । ९) **ऋतस्य देवस्य योनौ सदने अपां** ॥ प्राणशक्तिके मध्यस्थान रूप योनिमें सत्य स्वरूप असुरका पुत्र ब्रह्मा है ॥ ऋग्० १ । १४४ । २] **अस्य मायया** ॥ इसकी अद्भुत शक्तिसे ॥ ऋग्० १ । १४४ । १] **दक्षं** ॥ समर्थ ब्रह्माको ऋग्० १ । १४१ । ११ ।] **प्रसम्राजी असुरस्य** ॥ सब

भुवनका स्वामी (असुरस्य) प्राण शक्तिकामी अधिष्ठानरूप बलवान महेश्वर है॥ ऋग्० ७। ६। १।] ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ अद्वितीय ज्योती स्वरूप हर ही अपनी प्राणशक्तिके द्वारा अनन्त शरीरोंको धारण करनेके लिये ब्रह्मा है ॥ ऋग्० १। ९३। ४] ज्योतिर्हरः ॥ ज्योति ही हर है ॥ निरुक्त ४। १९।] अग्नि र्ब्रह्मा ॥ व्यापक रुद्र ही ब्रह्मा हुआ ॥ ऋग्० ७। ७। ५।] महो अर्णः ॥ महा आकाश है, यही अव्याकृत है ॥ ऋग्० २। ३। १२।] निषिक्तं पुष्करे मधु ॥ अव्याकृत आकाश योनिमें महेश्वरने सुखरूप वीर्यको सिंचन किया, सो ही ब्रह्मा है ॥ ऋग्० ८। ६१। ११।] आपो वै पुष्करं ॥ व्यापक प्राण ही पुष्कर है ॥ शतपथ ब्रा० ६। ४। २। २।] यज्ञो वै प्रजापतिः ॥ ब्रह्मा ही यज्ञ है ॥ काठक सं० ३३। ७।] स इन्द्रः स भूताना मधिपतिः ॥ सो महेश्वर है सो ही प्राणियोंका स्वामी ब्रह्मा रूप है। ऐतरेयारण्यक २। ३। ७।] मनसा वै प्रजापतिर्यज्ञं ॥ संकल्पसे ब्रह्माने प्रसिद्ध विराट्को रचा ॥ काठक सं० ३२। ७] ब्रह्मा ही सब विश्वकर्त्ता है ॥ १४ ॥

मानो॑ हिंसीज्जनि॒तायः पृ॑थि॒व्यायोवा॒दिवं॑ स॒त्यधर्मा॒ ज॒जान॑ ॥ यश्चा॒पश्च॒न्द्रा बृ॑ह॒ती र्ज॒जान॒ कस्मै॑दे॒ वाय ह॒विषा॑ विधेम ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जिस मायिक असुरने (आपश्चन्द्राः) कार्य क्रियासे विकाश पाने वाली (बृहतीः) कारण रूप अव्यक्ता काश देवीको (जजान) उत्पन्न किया। सो ही महेश्वर (सत्य-धर्मा) ब्रह्मारूप (जजान) प्रगट हुआ (यः) जो ब्रह्मा (पृथि-व्याः) रजतमयी भूमीका (जनिता) उत्पन्न करता है (यः) जो

ही (दिवं) स्वर्णात्मक द्यौको प्रगट करनेवाला है (वा) सो ही ब्रह्मा (नः) हमको असंख्य योनियोंमें डालकर हमारी (हिंसीत्) हिंसा (मा) न करे (च) और हम उपासकोंको भव वन्धनसे छुडाकर अपने स्वरूपकी प्राप्ति करावे (कस्मै) उस (देवाय) सर्वज्ञ परमेष्ठीके प्रति (हविषा) कायिक वाचिक मानसिकमयी प्रार्थनाके सहित (विधेम) वारंवार प्रणाम करते हैं ॥ ऋग्० १० । १२१ । ९ ॥

व्याख्या:—जिस रुद्रने कार्य क्रियाके रूपसे विकास पाने-वाली अव्याकृत माताको प्रगट किया, उस पुष्कर नाभीमें संकल्प बीज रूप आप ही, प्रत्यक्ष चराचरके धारणकरनेवाला ब्रह्मा स्वरू-पसे प्रादुर्भाव हुआ जो महेश्वररूप ब्रह्मा रजत कपाल भूमीका उत्पन्न करता है, जो ही द्यौ कपालका उत्पन्न करनेवाला है। सो ही विधाता हमको अनन्त योनियोंमें जन्म मरण देकर, हमारा नाश न करे। और सब दुःखसे हमको छुडाकर अपने सत्य लोककी प्राप्ति करावे। उस सर्वज्ञ परमेष्ठीके प्रति, कायिक वाचिक मानसिक-मयी प्रार्थनाके सहित हम उपासक वारंवार प्रणाम करते हैं [**देव-स्य नामकः** ॥ ब्रह्माका नाम कः है ॥ ऋग्० १ । २४ । १ ।] **असौ यः पन्था आदित्यः** ॥ यह जो सूर्य है, सो ही ब्रह्म लोकमें जानेके लिये संन्यासीयोंका मार्ग है ॥ ऋग्० १ । १०५ । १६ ।] **देवयतीनां** ॥ संन्यासीयोंका समष्टि स्वरूप देव है ॥ ऋग्० १ । ३६ । १ ।] **यतीनां ब्रह्मा भवति** ॥ संन्यासीयोंका स्वामी ब्रह्मा है । अर्थात् ब्रह्मलोकमें जाने वालोंका पूज्य स्वरूप है ॥ ऋग्० १ । १५८ । ६ ।]**ब्रह्मा पूर्वः** ॥ प्रथम पूज्य देव ब्रह्मा है ॥ ऋग्० ४ । ५० । ८ । **ऋते** ॥ ऋत नाम ब्रह्म लोकमें ॥ ऋग्० ५ । ४४ । २ ।] **सत्यं पदं ब्रह्मा विनः** सत्यलोक-

स्थान अविद्या रूप मायासे रहित है ॥ ऋग्० १ । १५९ । ३] **मायिनः सुप्रचेतसो दिवि समुद्रे अन्तः कवयः सुदीतयः ॥** अभेद मनवाले (सुमायिनः) उत्तम बुद्धिवाले ब्रह्माके तेजसे अति प्रकाशमान संन्यासी, ब्रह्मलोक समुद्रके मध्यमें विराजमान् ब्रह्माको प्राप्त करते हैं ॥ ऋग्० १ । १५९ । ४ ।] **परमे व्योमन् ॥** सब लोकोंसे दूर ब्रह्म लोकमें ॥ ऋग्० ७ । ५ । ७] **परावतः ॥** दूर स्थित ब्रह्म लोकका स्वामी ऋग० ६ । ८ । ४] **ब्रह्मा ॥** विधाता सबसे उत्तम देव है ॥ ऋग० ८ । १६ । ७ ।] **सत्येन ब्रह्मणा अनन्तात्मना ब्रह्मा खलु देवानां मध्ये सत्य भूतः ॥** सत्य शब्द वाच्य ब्रह्मा निश्चय सब देवोंके मध्य में सत्य स्वरूप है उस अनन्त आत्मा ब्रह्माके द्वारा यह सब है ॥ सायण भाष्य ऋग्० १० । ८५ । १ ।] **यतिभ्यः ॥** सर्व कर्म फलसे उपराम होनेवाले संन्यासी ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं ॥ ऋग० ८ । ३ । ९ ।] **योनिं हिरण्यं ॥** अव्याकृतकी अमृत अवस्था रूप स्थान हिरण्य नामसे प्रसिद्ध ब्रह्मलोक है ॥ ऋग० ५ । ६७ । २ ।] **अष्टा चक्रा नवद्वारा देवानां पूरयोध्या ॥ तस्यां हिरण्ययः कोशः स्वर्गो ज्योतिषावृतः ॥** पंच भूतमन बुद्धिके सहित अष्टमसमुदायरूप महा विराट् देहके मध्यमें तपः जनः महः द्यौ, अन्तरिक्ष, भूमी, अग्नि वायु सूर्य । ये नव द्वार स्थित हैं । समस्त देवताओंकी (अयोध्या) पराजय रहित (पूः) नगरी है, उस नगरीमें तेजोमयकोशरूप स्वर्ग है । वह चेतन सुख अमृतशक्तिमय सूत्रात्मा देहसे आच्छादित है ॥ **तस्मिन् हिरण्ययेकोशेऽयरे त्रिप्रतिष्ठिते ॥ तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्म विदो विदुः ॥** महा विराट् कार्यसे आच्छादित सूत्रात्मा है, उस सूत्रात्मा अमृत परम तीन उत्पत्ति स्थिति,

लय रूप आरे लगे हुए हैं, उन आरोंके मध्यमें भी तीन अन्तर्य्यामी, ब्रह्मा, प्रजापति नामवाला चेतन अवस्थित है। उस त्रिविध उपाधिक चेतनमें निरूपाधिक चेतन स्थित है। अर्थात् तीनों विशेष स्वरूपोंका सामान्य निर्विशेष स्वरूप है सो ही महेश्वर है। अकार रूप विराट्को सूत्रात्मामें लय करे। उकार रूप हिरण्य गर्भको अन्तर्य्यामीमें लय करे। अन्तर्य्यामी मकारको तुरीय महेश्वरमें लय करे। उपाधियोंका लय होनाही, तीनों औपाधिक चेतनोंके निरुपाधिक स्वरूपका नाम ही महेश्वर है, उस तुरीय अवस्थामें जो पूज्य स्वरूप अपनी उमाके सहित है उस यक्षको स्वात्मरूपसे साक्षात्कार करते हैं निश्चय वे ही मुमुक्षु ब्रह्मके जानने वाले हैं॥ **प्रभ्राजमानां हरिणीं यशसासंपरिवृतां ॥ पुरं हिरण्ययिं ब्रह्माऽऽविवेशापराजिताम् ॥** प्रकाशात्मक देवताओंके समष्टि रूप यशके द्वारा उत्तमतासे सर्वत्र घिरी हुई शुद्ध प्रकाशमयी उस निर्मल अजितात्मक अमृत पुरीमें रुद्र ब्रह्मा रूपसे विराजमान हुआ है॥ अथर्वण १०।२।३१-३२-३३।] **योवैतां ब्रह्मणो वेदामृतेनावृतां पुरं ॥ तस्मै ब्रह्म च ब्राह्माश्च चक्षुः प्राणं प्रजां ददुः ॥** ब्रह्माकी सूत्रात्मा देहसे ढकी हुई उस ब्रह्म लोक पुरीको जो जानता है उस मनुष्यके लिये ही ब्रह्मा, ब्राह्मश्री, सर्व सामर्थ्यके सहित सब इन्द्रियसमुहको, दीर्घ जीवनको प्रजाके सुखको देता है। यह सकामी जनोंको फल मिलता है। और ब्रह्मज्ञान देकर मरणके अनन्तर अपना लोक देता है॥ अथर्वण १०।२।२९।] **पुण्डरीकं नव द्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतं ॥ तस्मिन् यद् यक्षमात्मन्वत् तद्वै ब्रह्मविदो विदुः ॥** जैसे समष्टि हृदयाकाश ब्रह्मलोक है। तैसे ही प्रत्येक प्राणिमात्रका हृदय भी व्यष्टि ब्रह्मलोक है। व्यष्टि हृदय कमल चक्षु

आदि नौद्वार वाला है। और कारण सूक्ष्म स्थूल देहरूप आवरणोंसे ढका है। उस अल्प हृदय कमलमें अपनी शक्ति उमाके सहित जो पूज्य स्वरूप रुद्र है, उस रुद्रको अपने हृदयमें देखते हैं वे ही निश्चय वेद वेत्ता हैं॥ अथर्वण १०। ८। ४३।] **ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनं॥ यो वेद परमेष्ठिनं यश्च वेद प्रजापतिं॥** जे मनुष्य (पुरुषे) अपने शरीरमें आत्माका साक्षात्कार करते हैं वे ही ब्रह्माको जानते हैं जो विराट्को जानता है सो ही ब्रह्माको जानता है॥ अथर्वण १०। ७। १७।] यहाँ परमेष्ठी विराट् पुरुषका नाम है, और प्रजापति नाम ब्रह्माका है, जब अपने व्यष्टि उपाधिक चेतनको, सूर्यस्थ पुरुषके साथ अभेद देखता है तब वह मुमुक्षु देह त्याग करके सूर्य मण्डलको भेदकर ब्रह्माको प्राप्त होता है **एको हि प्रजापति स्त्रयः॥** जीव, भर्ग, प्रजापति येतीन रूप ही एक ब्रह्माके है॥ काठक सं० ३३। ८।] **स एतं देवयानं पन्थानमापद्याग्निलोक मगच्छति सवायुलोकं स आदित्यलोकं स वरुणलोकं स इन्द्रलोकं स प्रजापतिलोकं स ब्रह्मलोकं॥ तस्य हवा एतस्य ब्रह्मलोकस्य आरोहूदो मुहूर्त्तो येष्टिहा विरजानदील्योवृक्षः सालज्यं संस्थानमपराजितमायतन मिन्द्रप्रजापती द्वारगोपौ॥ विभुप्रमितं विचक्षणाऽऽसंदयमितौजाः पर्यङ्कप्रिया चमानसी प्रतिरूपाच चाक्षुषी पुष्पाण्यावयतो वैच॥ जगान्यम्बाश्चाम्बाय वीश्चाप्सरसः॥** ब्रह्माकी उपासना करने वाला मरणके अनन्तर, सो इस प्रसिद्ध देवायन मार्गको प्राप्त होकर, प्रथम भूमी अभिमानी अग्नि देवताको प्राप्त होता है, फिर सो ज्ञानी अन्तरिक्ष लोकके वायु देवको प्राप्त होता है। सोपुनः

द्यौ लोकके देवता सूर्यको प्राप्त होता है फिर सो उपासक महर्लोक वासी सोमको प्राप्त होता है फिर सो पुरुष जनलोक स्थित विद्युत् देव बृहस्पतिको प्राप्त होता है, फिर वह तपलोक वासी प्रजापतिको प्राप्त होता है। सो विराट् देहाभिमानी पुरुष उस उपासकको ब्रह्माके लोकमें पहुँचा देता है। सो उपासक ब्रह्माके परमव्योम स्थानको प्राप्त होता है, इस ब्रह्माके लोकसे पर और कोई भी लोक नहीं, उस ब्रह्मलोकके मध्यमें प्रवेश करनेके पहिले, आर नामका सरोवर है, उस परम शुद्ध सरोवरके तट पर, कला, काष्ठा, मुहूर्त्त आदिके अभिमानी देवता रहते हैं। इस सरोवरमय विरजा नदीमें उपासकको स्नान करा कर, वे देवता नदीके परही रहते हैं, यह सरोवर ज्ञानीके पाप पुण्यको पृथक् करके, ज्ञानीको संकल्प विकल्प रहित कर निर्मल करनेवाली ज्ञान शक्तिकी अमित प्रभातमक विरजा नदी है। और सोमसवन नामका इल्य वृक्ष है। यही समस्त भोगोंका मूल कारण वृक्ष है, इस भोग्य समूहसे असंख्य ताल वृक्षके समान सुख विस्तृत हो रहे हैं। वे भोग्य पदार्थ नाना धनुषकी दोरीके आकारसे भरे हुए हैं। अर्थात् तत्कालके समान ब्रह्माके संकल्पसे रचे हुए हैं, जहां सूर्य चन्द्रमा विद्युत्की गति नहीं है। तहां स्वयं प्रकाशी ब्रह्मलोक है, जिस प्रकाशकी महिमासे असंख्य सूर्य चन्द्रमा आदि प्रकाशित हो रहे हैं, उस लोकको देव दैत्य पितर आदि कोईभी पराजय नहीं कर सकता, और अल्प वैदिक पुण्य कर्मसे तो, उसका स्वप्नमेंभी दर्शन नहीं होता है। तो अवैदिक मनुष्य रचित पन्थोंसे तो गन्धर्व पितर इन्द्रलोकभी दुर्लभ है। फिर ब्रह्माके सुखकी प्राप्ति होना महा कठिन है। सब प्रकारके मोहरूप मायाके आवरणोंसे राहत निर्मल मायासे आच्छादित अपराजित नामकी पुरी ब्रह्माका धाम है। क्रियात्मक अमृतशक्तिका

पूर्णरुप ब्रह्मलोक हैं। सो ही निर्मल माया है। और अमृत शक्ति मृत्यु कार्यसे ढकी हुई अपूर्ण रूपसे प्रकाशित है। कार्यरूप मोहमयी मायासे चराचर जगत् प्रगट हुआ है। सो ही दुःखरूप है। इस कार्य मिश्रित भोगोंसे उपराम होकर ब्रह्मचारी सन्यासी, ब्रह्माको उपासना करनेसे ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं। जिस ब्रह्मलोकके द्वाररक्षक इन्द्र और प्रजापति है। विभु विज्ञान इस लोकका सभा स्थान है। मन बुद्धि आदि इस सभाका मध्य स्थान है। अतिबली प्राण उस सभाका सिंहासन है, स्वयं अमृतशक्ति चेतन ब्रह्माकी पत्नी है, और अमृत शक्तीकी प्रति छायारूप मृत्यु शक्तीकी देवता दूसरी पत्नी है। सकाम निष्काम पुण्योंके दोनों देवता पुष्प और वस्त्र हैं। सोम मातासे रची हुई असंख्य भोगोंकी अधिष्ठातृ देवता रूप माता अप्सरा हैं। भेद बुद्धि वाले अज्ञानी बडे भारी वैदिक कर्मके प्रभावसे और सरोवर तक जाकर पीछे लौट आते हैं यही ब्रह्मलोकसे अज्ञानीयोंका पुनरागमन है। और ज्ञानीको तो अप्सरा मातायें हारवस्त्रसे सुसज्जित करके ब्रह्माके पास ले जाती हैं। इस समय ब्रह्मलोकके आभूषणोंको धारण करते ही [स आगच्छति विरजांनदींतां मनसै वात्येति तं सुकृत दुष्कृते धूनुते ॥ तस्य प्रिया ज्ञातयः सुकृतमुपन्त्यप्रिया दुष्कृतं ॥ सो ज्ञानी पाप और पुण्यको अपनी आत्मासे त्याग देता है। मनसे ही उस विरजा नदीको पारकरके स्वयंभू भगवान् ब्रह्माके पास जाता है। उस ज्ञानीके पुण्य विरजा नदी से लौट कर शिष्य आदि स्नेहीयोंको प्राप्त होते हैं। और पाप निन्दक दुष्ट जनोंको प्राप्त होते हैं। उस ज्ञानीको छोड कर पुण्य ज्ञानीके सेवकोंको तारते हैं। और पाप निन्दकोंको नरकमें डालता है। जैसे अग्नि शीत निवारणके लिये सुखरूप है।

हाथ पग डालने वालेके लिये दुःखरूप है। तैसे ही ज्ञानी अपने सेवक और निन्दकोंके लिये है॥ स आगच्छतील्यं वृक्षं तं ब्रह्म गन्धः प्रविशति ॥ स आगच्छति सालज्यं संस्थानं तं ब्रह्मरसः प्रविशति ॥ स आगच्छत्यपराजितमायतनं तं ब्रह्म तेजः प्रविशति ॥ स आगच्छति इन्द्र प्रजापति द्वारगोपौ तावस्मादपद्रवतः॥ स आगच्छति विभु प्रमितं तं ब्रह्मतेजः प्रविशति ॥ उपासक इल्य वृक्षके समीपमें आता है, उस समय पहिले कभी अनुभव नहीं किया हुआ (ब्रह्म) व्यापक सुगंध उसकी नासिकामें प्रवेशकरता है, वह सालज्य स्थानमें आता है, उस समय व्यापक भोग्य रस उसके मुखमें प्रवेश करता है। वह ज्ञानी अपराजित पुरीमें आता है उस समय व्यापक तेज उसके शरीरमें प्रवेश करता है, ब्रह्मतेजके प्रवेश करने पर वह व्यापक स्वरूपको प्राप्त होता है। उस समय द्वारकी रक्षा करनेवाले इन्द्र और प्रजापति चले जाते हैं॥ तदन्तर सो ज्ञानी विभु नामक सभामण्डपमें आता है, फिर उसकालमें ब्रह्माका तेज प्रवेश करता है॥ ब्रह्मा पृच्छति कोऽसीति तं प्रतिब्रूयात्॥ ब्रह्मा उपासकसे प्रश्न करते है। उपासक उस विधाताको प्रतिउत्तर देता है॥ ऋतुरस्म्यार्तवोऽस्म्याकाशाद्योनेः संभूतो भार्यायारेतः संवत्सरस्य तेजोभूतस्य भूतस्य भूतस्यात्मात्वमात्मासियस्त्वमसि सोऽहमस्मीतितमाह कोऽहमस्मीति ॥ सत्यमिति ब्रूयात्किं तद्यत्सत्यमिति यदन्यद्देवेभ्यश्च प्राणेभ्यश्च तत्सदथ॥ यद्देवाश्च प्राणाश्च तत्यत देतयावाचाभिव्याहृतये॥ सत्यमित्येतावदिदं सर्वमिदं सर्वमसि॥ वसन्त आदि ऋतु स्वरूप मैं हूँ। ऋतुओंसे सम्बंध रखने वाला मैं हूँ (आका-

मातृयोनेः भार्यायाः) अव्याकृत स्त्रीरूप योनिसे उत्पन्न हुआ हूँ अग्नि वायु सूर्यादिक सम्वत्सरका (रेतः) कारण मैं हूँ (भूतस्य) समष्टि प्रगट होनेवाले विराट्का (तेजः) कारण मैं हूँ (भूतस्य) व्यष्टि चराचर उत्पन्न होने वालेका स्वरूप मैं हुँ वह तू ब्रह्मा है जो तू व्यापक आत्मा हैं। सो ही मैं हूँ इस प्रकार समष्टि व्यष्टि उपाधिक चेतनके अभेद स्वरूप उत्तरको सुन कर भगवान् ब्रह्माने उस उपासकसे पूछा, मैं कौन हूँ, उसने उत्तर दिया तुम सत्य हो। ब्रह्माने कहा के उपासक तू जिसको सत्य बताता है वह सत्य क्या वस्तु है। उत्तर हे भगवन् अधिदैव अग्नि इन्द्र आदि देवता, और अध्यात्म वाणी मन आदि इन्द्रियरूप देवताओंसे भिन्न है। अधिदैव वृत्र नमुची शुष्मिणादिक दैत्य, और देहमें स्थित प्राणवृत्तियोंसे पृथक् है सो ही सत् हैं, और देवता तथा दैत्य, त्यहैं कार्यक्रियात्मक क्षरअक्षरमय जगत्, त्य शब्द से ही व्यवहार किया जाता है। यह कार्यक्रिया मृत्यु अमृतमयत्यरूपछाया, सत्रूप चेतनमें ओतप्रोत है, इसप्रकार यह जो कुछभी दृश्य अदृश्य प्रपंच है सो सब ही सत्य है। अर्थात् चेतन अधिष्ठानमें नाम रूपात्मक छाया प्राणशक्ति कल्पित है। जब हम बुध्याकारके सहित घट नामके आधार मृतिकाको देखते हैं तो हमको घट नामके सहित घट आकार, मृतिकासे भिन्न न प्रतीत होता हुआ सर्वत्र मिट्टी दिखाई देती है। तैसे ही विशेष छाया प्राण निर्विकारी चेतनमें मायारूपसे कल्पित है। सो तुम ब्रह्मा ही सत्य स्वरूप हो ॥ इत्ये वैनं तदाह तदेतच्छ्लोकेनाप्युक्तं ॥ यजूदरः साम शिरा असावृङ् मूर्तिरव्ययः ॥ ब्रह्मेति सविज्ञेय ऋषिर्ब्रह्ममयो महान् इति ॥ इस प्रकार आप्त पुरुषके वाक्यको सुनकर, ब्रह्माने उसके प्रति कहा यह

ऋग्वेदकी ऋचाभी ऐसा ही कहती है॥ जिसका यजुर्वेद उदर है, सामवेद जिसका शिर है। सो ही (अव्यय) परिणाम रहित ब्रह्म है, वही ब्रह्मा है उसको ही ब्रह्ममय महाऋषि रुद्र जानो। यह २१ ऋग्वेदीय शाखाओंमेंका मंत्र है **तमाह केनमे पौंस्यानि नामान्याप्नोषीति प्राणेनेतिब्रूयात्** ॥ ब्रह्माने कहा तूने मेरे पुंल्लिङ्ग सम्बंधी सकल नामोंको कैसे जाना॥ उपासकने कहा प्राणके द्वारा जाना ॥ **केनस्त्रीनामानीतिवाचेति केन नपुंसकानीति मनसेति केन गन्धानिति प्राणे नेत्येव ब्रूयात्** ॥ ब्रह्माने कहा, तूने मेरे स्त्री नामोंको कैसे जाना, उपासकने कहा-वाणीके द्वारा। ब्रह्माने कहा तूने सूगन्धिओंको कैसे जाना, उपासकने कहा, नासिकाके द्वारा जाना॥ **केन रूपाणीति चक्षुषेति केन शब्दानितिश्रोत्रेणेति केनान्नरसानिति जिह्वयेति केन कर्माणीतिहस्ताभ्यामिति केन सुख दुःखे इति शरीरेणेतिकेनानन्दं रतिं प्रजातिमित्युपस्थेनेति** ॥ ब्रह्मानेकहा, रूपोंको कैसेजाना, उपासक-नेत्रसे जाना। ब्रह्मानेकहा। शब्दोंको कैसे जाना, उपासक-कानसे जाना, ब्रह्मा अन्नके सब रसोंको कैसे जाना, उपासक-जिह्वासे जाना। ब्रह्मा-सकल कर्म किस प्रकार सिद्ध होते हैं, उपासक-हाथों करके। ब्रह्मा-सुख दुःखको जाननेमें हेतु क्या है, उपासक-शरीर। ब्रह्मा-आनन्द रतिका और सन्तानोत्पत्तिका कारण कौन है, उपासक-उपस्थेन्द्रिय॥ **केनेत्या इति पादाभ्यामितिकेनधियो विज्ञातव्यंकामानिति प्रज्ञयेति प्रब्रूयात् तमाह** ॥ ब्रह्मा-गति कैसे होती है, उपासक-पगोंसे। ब्रह्मा-सकल विषयोंका ज्ञान और कामोंका ज्ञान किस प्रकारकी बुद्धिकी वृत्तिसे होता है, उपासक मेधाप्रज्ञासे। यह सुनकर स्वयम्भूने उस उपासकसे कहा॥ **आपो वै खलु मेद्धा**

सावयं तेलोक इति सायां ब्रह्मणो जितिर्या व्यष्टिस्तां-जितिंजयतितां व्यष्टिं व्यश्नुतेयएवं वेद ॥ अव्याकृत प्राणशक्ति ही निश्चय मेरे निवास स्थान हैं। मेरा जो यह लोक है यही आकाशरूप कमल है, इस लिये ही तेरा लोकरूप देह भी अव्यक्त आकाशमय है, जो उपासक इस रहस्यको जानता है समष्टि स्वरूपकी विजय और व्याप्ति उसके वशमें हो जाती हैं ॥ ऋग्वेदीयकौषीतकि ब्राह्मणारण्यक अध्याय ६। ३-४-५-६]। आकाशो वै नाम रूपयोर्निर्वहिता ते यदन्तरा तद्ब्रह्म तदमृतं॰ स आत्मा प्रजापतेः सभां वेश्म प्रपद्ये यशोऽहं भवामि ब्राह्मणानां॰ ॥ प्रसिद्ध जगत् कारण प्राणरूप अव्यक्त ही नाम रूपका स्पष्ट करनेवाला है, वे कार्य किया करण जिस अव्याकृतके मध्यमें है उसमें ही सो (ब्रह्म) ब्रह्मा नाम रूपसे विलक्षण चेतन घन अविनाशी है, उस ब्रह्माकी ब्रह्मलोकमय सभामें प्राप्त होऊँ मैं सब ज्ञानीयोंका यशरूप आत्मा हूँ ॥ मैं सर्व व्यापक ब्रह्मा हूँ ॥ ब्रह्मलोकमभिसम्पद्यते न च पुनरावर्त्तते न च पुनरावर्त्तते ॥ ज्ञानी देह त्याग करनेके उपरान्त ब्रह्माके सत्यलोकको प्राप्त होता है फिर जन्म मरणके चक्रमें नहीं आता है ॥ छान्दोग्यो० ८। १४-१५) ब्रह्मचर्येणानुविन्दन्ति तेषामेवैष ब्रह्मलोकः ॥ वैदिक विधिके अनुसार ही ब्रह्मचर्यके द्वारा ब्रह्मलोक प्राप्त होता है उन ब्रह्मचारी यतियोंका ही यह अति दुर्लभ ब्रह्मलोक है ॥ छा० उ० ८। ४। ३]। परम आनन्द एषब्रह्मलोकः ॥ देव, दैत्य, गन्धर्व, पितर, मनुष्यादिके परिमित सैकड़ों आनन्दोका समष्टि अपरिमित एक उत्तम आनन्द ब्रह्माका है यही ब्रह्मलोक है ॥ बृ० उ० ४। ३। ३३]। परमेष्ठी ब्रह्मणो ब्रह्मस्वयंभु ब्रह्मणेनमः।

विराट पुरुष रूप प्रजापतिने ब्रह्मासे वेद पढे व्यापक स्वयंभु ब्रह्माके प्रति मेरा प्रणाम हो ॥ बृहदारण्यको० २ । ६ । ३] तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापतिर्मनवे मनुः प्रजाभ्यः ॥ सो सत्य स्वरूप यह प्रसिद्ध ब्रह्माने विराट् पुरुषके प्रति वेद कहा, प्रजापतिने मनुके लिये उपदेश किया, मनुनें प्रजाओंके प्रति कहा ॥ छा० उ० ८ । १५ । २] तदेतद्ब्रह्म प्रजापतयेऽब्रवीत् प्रजापतिः परमेष्ठिने प्रजापत्याय परमेष्ठी प्रजापत्यो देवाय सवित्रे देवः सविता अग्नयेऽग्निरिन्द्रायेन्द्रः काश्यपाय ॥ उस महेश्वरने यह वेदका उपदेश (प्रजापतये) ब्रह्माको कहा, ब्रह्माने विराट् पुरुषको कहा, परमेष्ठीने सविता देवके प्रति कहा, भर्गने अग्निको कहा, अग्निने इन्द्रको कहा, इन्द्रने काश्यपको कहा ॥ सामवेदीय जैमिनीय ब्रा० ३ । ७ । ३ ३ ।] प्रजापति शब्द रुद्रसे लेकर सब अधिदैवोंका वाचक है । परमेष्ठी शब्द भी—ब्रह्मा—प्रजापति—सविताका वाचक है । ब्रह्म शब्द व्यापकका वाचक है ॥ १५ ॥

प्रजापते नत्वदेतान्यन्यो विश्वा जातानि परिता बभूव ॥ यत्कामास्ते जुहुमस्तन्नो अस्तु वयं स्याम पतयो रयीणाम् ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(प्रजापते) हे ब्रह्माजी (त्वत्) आपसे (अन्यः) दूसरा (एतानि) इस (विश्वा) समस्त जातानि) उत्पन्न होनेवाले जगत्को उत्पत्ति, पालन संहार आदि कर्मको करनेमें (परिंतः) समर्थ (न) नहीं (बभूव) हुआ (यत्) जिस (कामाः) कामनाओंकी इच्छासे (ते) आपके प्रति (जुहुमः) आहूतियें देते हैं (नः) हमारा (तत्) सोमनोरथ, (अस्तु)

पूर्ण होवे (वयं) हम (रयीणं) सुख पूर्वक धनोंके (पतयः) स्वामी (स्याम) होवें ॥ ऋग्० १० । १२१ । १० ॥

व्याख्याः—हे विधाता आपसे दूसरा इस समस्त ब्रह्माण्डका सृजन पालन प्रलय आदि कर्म करने में कोई भी समर्थ नहीं हुआ । और न होगा जिस अभिलाषाओंकी प्रबल इच्छासे आपके प्रति हवन करते हैं, हम उपासकोंका सो मनोरथ पूर्ण होवे । और हम पशु सुवर्ण धनके सहित पुत्र पौत्र शिष्यादिकोंके प्रतिपालक स्वामी बनें [**रयिं** ॥ रयि नाम पुत्रका है ॥ ऋग्० ८ । १३ । ८] **उभयं वाएतत्प्रजापति निरुक्तश्चानिरुक्तश्च** ॥ यह प्रजापति ही दोस्वरूपवाला निरुक्त और अनिरुक्त है जो चेतन अव्याकृत उपाधिक है सोही वाणी मनका विषय निरुक्त परिमित ब्रह्मा है । और जो अव्यक्तसे परे महेश्वर अनिरुक्त अपरिमित स्वरूप है, सो ही मनवाणीका अविषय शुद्ध मनसे प्राप्त करने योग्य है । एक अद्वितीय अखण्ड चेतन रुद्र ही प्रजापति है । सो ही पशुपति महेश्वर और ब्रह्मा स्वरूप है ॥ शतपथ ब्रा० १४ । १ । २ । १८ ।] **अनिरुक्तो वै प्रजापतिः** ॥ पशुपति ही अनिरुक्त है । यही निरुपाधिक मायासे सोपाधिक है ॥ ऐतरेय ब्रा० २९ । ५ ।] **अपरिमितो वै प्रजापतिः** ॥ सोपाधिक ब्रह्मा ही निरुपाधिक रुद्र है । ज्ञान अवस्थावालोंके लिये ब्रह्मा रुद्र है ॥ ऐतरेय ब्रा० २ । ७] **अपरिमितः प्रजापतिः** ॥ ज्ञानी मुनियोंकी दृष्टिमें चेतन सर्वदा निरुपाधिक अनन्त स्वरूप ही ब्रह्मा है । जैसे पिता अपने पुत्रको वृद्ध होने परभी पुत्र ही कहता है । तैसे ही विरक्त संन्यासी कार्य क्रिया करण उपाधिक ब्रह्माको रुद्र ही कहते हैं ॥ कृष्ण यजु कपिष्ठल कठ सं० ८ । १ ।] **महान्तमपरिमितं** ॥ सबका पितामह ब्रह्मा अनन्त रूप है ॥ कृष्ण यजु काठक सं० ८ ।

१३ ।] अनन्तः ॥ सब प्रकारके नाशवान् पदार्थोंकी सीमा रहित ही अनन्त अखण्ड रूप है ॥ ऋग्० १ । ११३ । ३ ।] अव्ययः ॥ विकारी मायाके परिणाम धर्मसे रहित निर्विकारी अपरिणामी अविनाशी है ॥ ऋग्० ८ । ८६ । २१ ।] रुद्रं बृहन्तं ॥ महान् व्यापक रुद्रको ब्रह्मा जानों ॥ ऋग्० ७ । ११ । ४ ।] यो यज्ञो विश्वतस्तन्तुभिस्तत एकशतं ॥ जो एक अद्वितीय अपनी संख्यासे दो परार्ध सौ वर्ष पर्य्यन्त देहको धारण करता हुआ अधिदैव देवताओंके सहित चराचर प्रजाका विस्तार करता है सो ही (यज्ञः) उत्पत्ति पालन संहार करनेवाला ब्रह्मा है उस ब्रह्माके निर्मित सूर्यके उदय अस्त रातदिनसे मनुष्योंकी भी सौ वर्षकी आयु है ॥ ऋग्० १० । १३० । १ ।] प्रजां तन्तुं ॥ प्रजा ही तन्तु है ॥ तत्तरीय सं० ६ । ३ । १० ।] पुमां एनं तनुते ॥ आदि पुरुष ब्रह्मा इस विराट् यज्ञको विस्तार करता है ॥ ऋग्० १० । १३० । २ ।] आसते ॥ सत्य लोकवासी ब्रह्माकी परिव्राजक उपासना करते हैं । ऋग्० १० । १३० । १ ।] मुनयो वातरशनाः पिशंगा वसते मला ॥ प्राणके द्वारा इन्द्रियोंको जीतने वाले सत्य स्वरूपका मनन करनेवाले संन्यासी गण (मला) वल्कल-वृक्षोंकी छाल (पिशङ्ग) काषायवस्त्र (वसते) आच्छादन करते हैं ॥ मुनिर्देवस्य देवस्यसौकृत्याय सखाहिताः ॥ मनन शील मुनि समुह उत्तम मोक्षके लिये देव देव ब्रह्माका (सखाहितः) समष्टि व्यष्टि मित्रतारूप अभेद स्थिति मय ध्यान करते हैं ॥ ऋग्० १० । १३६ । २-४ ।] वास्तोष्पते...भेत्ता पुरांशश्वतीनामिन्द्रो मुनीनां सखा ॥ हे ब्रह्माण्ड घरके स्वामी रुद्र अजित त्रिपुर नगरोंके नाश करनेवाले (इन्द्रः) परम ऐश्वर्य्य सम्पन्न ब्रह्मा स्वरूप तू संन्यासीयोका परम

इष्ट देव है ॥ ऋग्० ८। १७। १४।] यहाँ इन्द्र शब्द रुद्र रूप ब्रह्माका विशेषण है। और यही रुद्रमें आरूढ है ॥ परिव्राड्विवर्णवासा ॥ संन्यासी भगवाँ वस्त्र धारण करे ॥ जाबालोपनिषत् ॥ ५] तुरीय रुद्रकी उपासनासे कैवल्य मोक्ष है ॥ ब्रह्माकी उपासनासे क्रम मोक्ष है ॥ १६ ॥

सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ सभूमिं विश्वतो वृत्वात्यतिष्ठद्दशाङ्गुलम् ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(पुरुषः) पूर्ण स्वरूप ब्रह्मा (सहस्र शीर्षा) अनन्त मस्तकवाला (सहस्राक्षः) अपरिमित नेत्रवाला (सहस्रपात्) असंख्य पगवाला (सः) उस प्रजापतिने अपनी अमृत देहके (विश्वतः) विस्तारसे (भूमिं) कार्यात्मक मृत्यु महाविराट्को (वृत्वा) व्याप्त करके (दशाङ्गुलं) सूर्य मण्डलके मध्यमें (अति) विशेष भर्गरूपसे (अतिष्ठत्) विराजमान् हुआ ॥ ऋग्० १०। ९०। १॥

व्याख्याः—पूर्ण षोडशकला स्वरूप ब्रह्मा, अव्याकृताकाश कमल ब्रह्मलोक पुरमें शयन करनेसे पुरुष है, यही समष्टि पुरवासी, व्यष्टि शरीरमय पुरोंमें क्षेत्रज्ञ रूपसे शयन करता है ॥ अर्थात् उपलब्ध होता है। असंख्य शरीरोंके मुख नाक कान आँख गला हात पग शिर. आदि अवयव समष्टि देहधारी ब्रह्मामें कल्पित हैं। इस लिये ही ब्रह्मा अनन्त मुख शिर नेत्र पग वाला है। जिस चेतन विधाताने अपनी क्रियामय देहकी तारतम्यताके विस्तृत स्वरूपसे, कार्यात्मक स्थूल विराट्को व्याप्त करके सो ब्रह्मा स्वयं ही प्रत्येक् ब्रह्माण्डवर्ती सूर्यमण्डलके मध्यमें विशेष चेतन लिंगमय भर्ग स्वरूपसे विराजमान् हुआ [पूर्णो वै प्रजापतिः ॥ सर्व कला

सम्पन्न निश्चय ब्रह्मा है॥ काठक सं० ८। ११।] इमे वै लोकाः पूरयमेव योऽयं पवते सोऽस्यां पुरिशेते तस्मात्पुरुषः॥ इन ब्रह्माण्डवर्ती लोकोंमें चेतन रूपसे जो व्यापक हो रहा ह सो वह ब्रह्मा समष्टि व्यष्टि पुरीमें विशेष स्वरूपसे प्रकाशित हो रहा है, इस हेतुसे पुरुष कहा है॥ शतपथ ब्रा० १३। ६। २। १।] पुरं यो ब्रह्मणो वेद यस्याः पुरुष उच्यते॥ जो मुमुक्षु ब्रह्माके समष्टि व्यष्टिमय पुरीको अभेद रूपसे जानता है, सो ही ज्ञानी उस समष्टि ब्रह्मलोक पूरीका पुरुष कहा जाता है। अर्थात् ज्ञानी देह त्याग करके ब्रह्मलोकमें ब्रह्माको प्राप्त होता है॥ अथर्वण १०। २। २८।] ये पुरुषे ब्रह्मविदुस्ते विदुः परमेष्ठिनं। जे मुमुक्षु (पुरुषे) देहमें (ब्रह्म) व्यष्टि उपाधिक चेतन जीवको और समष्टि उपाधिक ब्रह्माको अभेदरूप जानते हैं, वे उपासक मरणके वाद सत्यलोकवासी ब्रह्माको प्राप्त होकर साक्षात्कार करते हैं॥ अथर्वण १०। ७। १७] ब्रह्म सूर्यसमं ज्योतिः॥ सूर्य के प्रकाशके समान देहमें पगसे लेकर मस्तक पर्य्यन्त (ब्रह्म) जीव व्यापक है॥ शुक्ल यजु काण्व सं० ३। ५। ९। ४॥ माध्यन्दिनी सं० २३। ४८।] ऋतस्य तन्तुं विततं विचृत्य तदपश्यत्तदभव त्तदासीत्॥ रुद्रके व्यापक सन्तान ब्रह्माको ज्ञानके द्वारा विचार करके उपासक उस ब्रह्माको अभेद रूपसे देखता है सो ही हो जाता है, जीवरूपके पहिले ब्रह्मा स्वरूप ही था॥ काण्व सं० ४। ५। ३। ९।] अग्निर्वा अपामायतनं॥ आपो वा अग्नेरायतनं॥ रुद्र ही प्राण शक्तिका आधार है। और व्यापक प्राण शक्तिरूप अव्याकृत ही ब्रह्माका आधार रूप देह है। अग्नि चेतनका वाचक है॥ तैत्तरीयारण्यक १। २२। १।] सतपोऽतप्यत सतपस्तप्त्वा

शरीरमधुनुत तस्य यन्मा ऽ᳝ समासीत् ॥ ततोऽरुणाः केतवो वातरशना ऋषय उदतिष्ठन् ॥ येनखाः ते वै खानसा येवालाः तेवालखिल्याः यो रसः सोऽपां अन्तरतः कूर्मं भूत ऽ᳝ सर्पन्तं तमब्रवीत् ममवैत्वङ्मा ऽ᳝ सा समभूत ॥ नेत्यब्रवीत् पूर्वमेवाह मिहाऽऽसमिति तत्पुरुषस्य पुरुषत्वं ॥ सो ब्रह्मा सृष्टिके विचारको विचार करता हुआ सो सृष्टि पर्य्यालोचनाको ध्यान पूर्वक विचार कर, अपने अमृत मृत्युमय शरीरको कम्पित किया, उस कम्पित हुए देहके जिस माँससे अरुण आदि तीन प्रकारके संन्यासी प्रगट हुए ॥ देहमें मांस नख त्वचा भावना करी, सो ही भावना प्रजापतिका सृष्टि रचना रूप संकल्प है ॥ उसके जे नखथे उन ही नखोंसे वानप्रस्थ नामके ऋषि हुए, जे वाल स्थानीय संकल्पथे, उन ही वालोंसे वालखिल्य नामके ब्रह्मचारी प्रगट हुए। जो देहका त्वचारूप सार था सोही संकल्प रस व्यापकका कार्य क्रियामय जलोंके मध्यमें कूर्म देहको धारण करके विचरता भया उस भ्रमण शील कूर्मको ब्रह्माने कहा, निश्चय मेरे त्वचा माँससे तू उत्पन्न हुआ है। इस ब्रह्मासे परीक्षा रूप प्रश्नको सुनकर आदित्य रूप कूर्म बोला, हे प्रजापते आपके संकल्पमय त्वचा माँससे मेरा मण्डल रूप देह प्रगट हुआ है, किन्तु मैं चेतन उत्पन्न नहीं हुआ हूँ, इस देहमें आनेके पहिले मैं आपका अद्वितीय स्वरूप ही था। मैं इस देहकी उपाधीसे भिन्न और उत्पन्न हुआ प्रतीत होता हुआ भी, अनुत्पन्न आपका स्वरूप हूँ। इस प्रकार जो जानता है उस चेतन पुरुषका पुरुषपना है ॥ स सहस्रशीर्षा पुरुषः सहस्राक्षः सहस्रपात् ॥ भूत्वोदतिष्ठत् ॥ वह सूर्य असंख्य शिर नेत्र पग युक्त होकर प्रगट हुआ। अर्थात् अपने वास्तविक स्वरूपको

जानकर चराचर विश्वके आकारको धारण करनेमें समर्थ हुआ ॥ तमब्रवीत् त्वं वै पूर्वं ९ समभूः ॥ त्वमिदं पूर्वः कुरुष्वेति ॥ उस अभेददर्शी भर्गको ब्रह्माने कहा–निश्चय यदि तू मेरा प्रथम स्वरूपका ही स्वरूप उत्पन्न हुआ है, तो इस चराचर जगत्की रचना कर तू मेरा प्रथम विकाश है। इस प्रकार अव्यक्तके विकाश रूप विभु ब्रह्माने अपने प्रथम विकाश रूप कूर्मको कहा ॥ सइत आदायापः ॥ अञ्जलिनापुरस्ता दुपादधात् एवाह्येवेति ॥ तत आदित्य उदतिष्ठत ॥ (एवाह्येवेति) ब्रह्माकी आज्ञारूप वहुत अच्छा ऐसाही होगा इस प्रकार कह कर सो कूर्मने अपने चार पाद रूप जलमें से एक पाद रूप जलको वडे उत्सुख सन्मानके द्वारा ग्रहण कर तीन पादसे पृथक् करके उस आगले प्रथम पादको चराचरके आकारमें धारण करता है ॥ उस चतुर्थ पादके विभाग होनेके अनन्तर तीन पाद रूपसे सूर्य पूर्व दिशामें प्रगट होता है ॥ तैत्तरीयारण्यक १।२३।] प्राणो वै कूर्मः ॥ पंच भूतोंकी क्रिया शक्तिका साररूप प्राण ही सूर्य मण्डल कूर्म है शतपथ ब्रा० ७।५।१।७।] सकूर्मोऽसौ स आदित्यः ॥ सो ब्रह्मा कूर्म है–यह कूर्म सो सूर्य है॥ शतपथ ब्रा० ७।५।१।६।] सयत्कूर्मोनाम एतद्वैरूपं कृत्वा प्रजापतिः प्रजा असृजत् ॥ कूर्म रूपसेही भगवान् ब्रह्माने प्रजारची, जगत्की उत्पत्ति पालन संहार रूप कर्मको करनेसे ही सो ब्रह्मा कूर्म नामको धारण करता है यह कूर्म ब्रह्माका प्रथम विकाशरूप आदित्य है। जैसे कूर्म अपने अंगोको संकोच और फैलानेमें समर्थ है। तैसे ही ब्रह्माका पुत्र सूर्य प्राणि मात्रकी उत्पत्ति पालन रूप विकाश, और नाश रूपसे संकोच करता है। इस लिये ही सूर्यका नाम कूर्म अपने कूर्मके समान असंख्य महा विराट् वर्ती कूर्म हैं। ये

सब सूर्य ब्रह्माकी विभूति हैं॥ शतपथ ब्रा० ७। ५। १। ५।]
पुरुषोह वै नारायणं प्रजापति रुवाचयजस्व यजस्वेति॥ प्रसिद्ध (नार) द्यौ समुद्रमें (आयनं) निवासस्थान है जिसका सो ही सूर्य मण्डल नारायण है उस नारायण पुरुषको ब्रह्मा बोला हे कूर्म रूप पुरुष तू यज्ञ कर यज्ञ कर॥ गोपथ ब्राह्मण पूर्व भाग ५। ११। अर्थात् सृष्टि रच सृष्टि रच [**पुरुषोहवै नारायणो कामयत॥ अतितिष्ठेयं सर्वाणिभुतान्यहमेवेदं सर्वं स्याम्॥** प्रसिद्ध नारायण पुरुषने प्रजा रचनेकी इच्छा किया मैं त्रिपाद रूपसे स्थित हुआ हूँ—और अपने चतुर्थपादसे सम्पूर्ण चराचरके आकारको धारण करनेके लिये मैं यह सब जगत् स्वरूप होऊँ॥ शतपथ ब्रा० १३। ५। ५। १।] प्रत्येक त्रिलोकमें च्यार पाद हैं॥ और समष्टि चतुर्थपाद महा विराट् है॥ तीनपाद अमृत देहधारी ब्रह्मा है। ब्रह्माकी अपेक्षासे, सब त्रिलोकोंके सूर्य व्यष्टि तीन पाद हैं। और प्रत्येक् सूर्यका चतुर्थपाद अपने २ त्रिलोकीके अन्तर गत सब स्थावर जंगम है [**अथर्वाणं ब्रह्मा ऽब्रवीत् प्रजापतेः प्रजाः सृष्ट्वा पालयस्व॥** विराट् देहसे उत्पन्न हुए अथर्वणको ब्रह्माने कहा प्रजाओंको रचकर पालन कर॥ **अथर्वा वै प्रजापतिः॥** ब्रह्माका पुत्र अथर्वा प्रजापति है॥ गोपथ ब्रा० १। ४। पूर्वभाग] **अथर्वा प्रजापतिः** अथर्वा प्रजापति है॥ ऋग्० १। ८०। १६।] **अथर्वा** अथर्वा प्रजापति है॥ सामवेदीय कौथुमी सं० १। १। ९।] **अथर्वाय ज्येष्ठ पुत्राय प्राह॥** ब्रह्माने अपने बडे पुत्र अथर्व के प्रति ज्ञान कहा॥ मुण्डको० १। १। १।] यही अथर्वा सूर्यका पुरुष है॥ सब वेदोंकी संहिताओंमें जो अथर्वा प्रजापति है। सो ही गोपथ और शतपथ में दोवार नारायण नामसे कहा है [**असौ वै लोकः**

समुद्रः ॥ वह द्यु लोक ही समुद्र है। उस द्यौ रूप समुद्रमें अथर्वा नामवाला सूर्यात्मक नारायण है ॥ शतपथ ब्रा० ९। ४। २। ५।] समुद्रे ॥ द्यौ में ॥ माध्यन्दिनी सं० १७। ९९] प्राणएष स पुरिशेते स पुरिशेते इति ॥ पुरिशयं सन्तं प्राणं पुरुष इत्याचक्षते ॥ यह अथर्वा प्राण है सो प्राण पुरीमें सोता ह। यह पुरी वासी है उस प्राणको पुरुष नामसे देवता कहते हैं ॥ गोपथ ब्रा० १। ३९। पूर्व भाग] प्रजापति वै ब्रह्मा ॥ प्रसिद्ध प्रजापति ब्रह्मा है ॥ गोपथ ब्रा० उत्तर भाग ५। ८।] इयं वै विराट् ॥ यह भूमी ही विराट् है ॥ तैत्तरीय सं० ६। ३। १। ४।] दशास्य ॥ सूर्यका नाम दश है ॥ ऋग्० १०। ६४। ११।] दश शब्द सूर्य वाचक है और अङ्गुल-शब्द ज्योतिका वाचक है। सूर्य मण्डल प्रकश रूप है। सो ही दशाङ्गुल है। इस मण्डलमें जो चेतन हैं सो ही भर्ग है ॥ १७ ॥

पुरु॑ष॒ ए॒वेदं सर्वं॒ यद्भू॒तं यच्च॒ भव्य॑म् ॥ उ॒ताम॑त॒त्वस्ये॒शा॑नो॒ यदन्ने॑ना॒ति॒रोह॑ति ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(अमृतत्वस्य) अमृशक्ति रूप सूक्ष्म देहका (ईशानः) स्वामी है, सो ब्रह्मा अपनी अमृत देहकी आवरणात्मक (अन्नेन) मृत्युशक्ति विराट्के द्वारा (अति रोहति) विविध अधि-दैव सूर्यादिक, अध्यात्म विशेष स्वरूपोंको धारण करता है (उत) और (यत्) जो (इदं) यह वर्तमान जगत् है। इस विश्वके पहिले (यत्) जो संसार (भूतं) उत्पन्न हो गया (च) और (यत्) जो (भव्यं) प्रगट होगा (सर्वं) सो सब (एव) ही (पुरुषः) प्राण रूप ब्रह्मा है ॥ ऋग्० १०। ९०। २॥

व्याख्या:—सूत्रात्मा देहका स्वामी है सो ही ब्रह्मा अपनी सूक्ष्म देहकी कार्यात्मक मृत्यु रूप महाविराट्के द्वारा, नाना अधिभूत अन्तरिक्षके सहित अधिभौतिक पर्वत नदी, गुल्म, वृक्ष, स्थूल देह मात्र, अधि दैव अग्नि वायु सूर्य चन्द्रमा आदिके सहित, अध्यात्म वाणी मन चक्षु प्राणादिक विशेष स्वरूपोंको धारण करता है, जहाँ क्रिया शक्तिका विशेष प्राणरूपसे विकाश है, उस व्यष्टि प्राणमें, समष्टि प्राणका स्वामी ब्रह्मा जीव रूपसे प्रकाशित है। जहाँ अमृत शक्तिको कार्य शक्तिने ढाँक रखा है। वहाँ प्राणका विशेष विकाश न होनेसे चेतनका भी विशेष विकाश नहीं है, प्राण सामान्य रूपसे वृक्ष पर्वत नदी आदिमें व्यापक है, प्राणकी उपाधिसे चेतन भी सामान्य रूपसे व्यापक है। यह कार्य अमृतकी ही एक विकारी अवस्था है। और सर्वदा परिणामी विकारी नाशवान जड अन्धकार रूप है। इसकी तारतम्यतासे ही प्राणशक्ति भिन्न २ अग्नि वायु सूर्यादिके आकारमें अधिदैव रूपसे दीखती है। और वही अधिदैव पीछेसे स्थूल कार्यमय शरीरोंमे प्राण आदिके स्वरूपसे प्रगट हुई। इस प्राणकी तारतम्यतासे ही चेतनभी नाना रूपसे भासता है। [अन्नं वै विराट् ॥ अन्न नामसे प्रसिद्ध विराट् है ॥ ऐतरेय ब्रा० १। ६।] और जो यह नाम रूपात्मक प्रत्यक्ष प्रपंच है। इस संसारके पहिले जो विश्व उत्पन्न हो गया, और जो प्रगट होगा वह सब ही पुरुष है। अर्थात् स्थूल जड मात्र आधारमें सूक्ष्म प्राण आधेय रूपसे प्रकाशित हो रहा है, उस प्राणमें एक तादात्म्य स्वरूपसे विशेष चेतन अवस्थित है, सो ही पुरुषके नामसे प्रसिद्ध है—यदि चेतनका और अमृत शक्तिका परस्पर एक तादात्म्य संवन्ध होवे तो विश्वकी उत्पत्ति आदि व्यवहार सिद्ध न होवे। चेतनका अभेद संबन्ध होने परभी सर्वदा प्राणसे निर्लिप्त

पुष्कर पत्रवत् है [प्रजापति रथर्वा देवः सतपस्तप्त्वै तश्चातुष्प्राश्यं ॥ ब्रह्मौदनं निरमिमत ॥ चतुर्लोकं चतुर्देवं ॥ अथर्वा प्रजापति देवने विश्वको रचनेके लिये ध्यान पूर्वक विचारके उसने संकल्प रूप मुखमें व्यापक कार्य क्रिया रूप भोजनको चार रूपसे निश्चय रूप खा गया--उस निश्चय रूप भोजनसे चार लोक, भूमी आकाश द्यौ आपोंको रचा। और उन उन लोकोंसे अग्नि वायु सूर्य सोमको रचा॥ गोपथ ब्रा० २। १६।] यही अथर्वा महा विराट् है और अदिति नामसे वेदोंमें कहा है इस अदितिको गोपथ और शतपथ ब्राह्मण ग्रन्थमें नारायण कहा है। महा विराट् देहका अभिमानी जो चेतन अथर्वा अदितिनाम वाला प्रजापति है। सो ही प्रत्येक् अग्निवायु सूर्य सोम आदिके स्वरुपोंको धारण करता है। उसकी विभूतियें सब अथर्वा अदितिके नामसे ही प्रसिद्ध है इयं वै अदितिः॥ यह विराट् ही अदिति है॥ तैत्तरीय सं० ५। १। ७। ३।] इयं वै प्रजापतिः॥ यही अदिति प्रसिद्ध अथर्वा है॥ तैत्तरीय सं० ५। १। २। ५।] प्रजापति र्वा अथर्वा॥ प्रजापति ही अथर्वा है॥ कृष्ण यजु मैत्रायणी सं० ३। १। ५॥ काठक सं० १९। ४॥ तैत्तरीय सं० ५। ६। ७। ३।] पत्यो वै प्रजापतिः॥ ब्रह्माका पुत्र ही अथर्वा प्रजापति है॥ कूर्मो भूत्वा श्मशानं॥ सो ही अथर्वा सूर्य स्वरूप धारण करके (श्मशानं) विशेष प्राण शक्तिका विकाश द्यौ रूप श्मशानमें शयन करता है। इस सूर्य मण्डल रूप मूर्दामें चेतन भर्गवास करता है। सूर्य मण्डलका नाम हरि आधार रूप योनि है। उस आधार वेदिकामें चेतन आधेय लिंगरूप रुद्र है॥ तै० सं० ५। २। ८। ५।] असंख्य ब्रह्माण्डोंके अनन्त सूर्यरूप मुण्डमालाधारी एक अद्वितीय रुद्र है, तैत्तरोय

संहिता और अथर्वणमें श्मशान शब्द है । और ऋग्वेदमें [वैल स्थानं ॥ श्मशानका नाम वैल स्थान है ॥ (वै) निश्चयं जिस सूर्य मण्डलसे सब प्राणि मात्रकी उत्पत्ति रक्षा होती है। और उसीमें (ल) लय होती है सो ही वैलस्थान रूप श्मशान है ॥ ऋग्० १। १३३। १।] विष्णोर्नाभावग्निं ॥ यज्ञ वेदिमें अग्निरूप रुद्रको स्थापन करे। यज्ञ योनि है और अग्निलिंग है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३१। ९।] अग्नि वै रुद्रः ॥ रुद्र ही अग्नि है ॥ कपि० सं० ३८। २।] एषते योनिः विष्णो रुरुक्रमे ॥ यज्ञका अतिक्रमण ही तेरा स्थान है ॥ कपि० सं० ३। २।] विष्णु वैं यज्ञः ॥ विष्णु नाम यज्ञका है ॥ कपि० सं० ३५। ९।] अग्नि वैं यज्ञः ॥ अग्निही यज्ञ है। ताण्डय ब्रा० ११। ५। २।] आपो वै यज्ञः ॥ व्यापक स्त्री शक्ति ही यज्ञ है ॥ कपि० सं० ३५। ८।] स्त्री वै वेदिः-पुमान् वेदः ॥ स्त्री ही यज्ञ वेदि है। यही सूर्य मण्डल वेदि है ॥ और पुरुष ही यज्ञ वेदिमें अग्नि रूपलिंग है। यही रुद्र सूर्य योनिमें भर्गरूप लिंग है। वेदिरूप योनि आधार और चेतन ज्ञाता, रुद्र आधेयरूप चिन्ह है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४७। ११।] एक ही ब्रह्म बहुत महिमा रूपसे व्याप्त हो रहा है ॥ १८ ॥

एतावानस्य महिमातो ज्यायाँश्च पूरुषः ॥ पादोऽस्य विश्वा भूतानि त्रिपादस्यामृतं दिवि ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(एतावान्) इतना महा विराट् (अस्य) इस ब्रह्माकी स्थूल देहरूप एकपाद (महिमा) विभूति है (अतः) इस महा विराट् देहसे (ज्यायान्) ब्रह्माकी त्रिपादरूप सूक्ष्म देह अधिक है (पुरुषः) ब्रह्मा दोनों देहोंका स्वामी पूर्ण पुरुष है

(अस्य) इस चेतन ब्रह्माका कार्यात्मक (पादः) चतुर्थांश विराट् देह (विश्वा) समस्त (भूतानि) उत्पन्न होनेवाले चराचरके आकारोंको धारण करनेवाला है (च) और (अस्य) इस ब्रह्माकी (त्रिपात्) तीनपाद (अमृतं) अमृतदेह (दिवि) ब्रह्मलोकके स्वरूपमें प्रकाशित हो रही है ॥ ऋग्० १० । ९० । ३ ।

व्याख्याः—इतना महा विराट् स्थूल देहरूप एक पाद महिमा इस ब्रह्माकी है। इस मृत्युरूप विराट्से, सूत्रात्मा तीनपाद स्वरूप अधिक है तीनपाद सूत्रात्मा और एकपाद विराट् है इन दोनों शरीरोंका स्वामी ब्रह्मा चेतन पुरुष है। इस विधाताका समष्टि विराट् शरीर एक पाद चतुर्थ भाग है। सो ही विराट् शरीर एकपाद चतुर्थ भाग है। सो ही विराट् समस्त चराचरके विविध आकारोंको धारण करता है। इस विविध स्थूल पदार्थोंमें अमृत शक्ति गुप्त हुई प्राण इन्द्रियोंके रूपसे कहीं प्रकाशित और कहीं अप्रकाशित है। इस लिये ही एक कार्यकी स्थूल मात्र महिमा हैं। और इस ब्रह्माका तीन भाग रूप सूक्ष्म देह सूत्रात्माके आकारसे सर्वत्र व्यापक होती हुई भी विशेष ब्रह्म लोकके आकारमें अविनाशी रूपसे प्रकाशित हो रही है। इस अमृत शक्तिसे ही एकपाद विराट् समस्त जगत्के आकारमें प्रगट हो रहा है और अन्त समय व्यष्टि स्वरूपोंके सहित समष्टि विराट् अपने कारण स्वरूप तीन पाद अमृत शक्तिमें लय हो जाता है। फिर सृष्टि कालमें अमृतसे ही विकाश पाता है। चेतनमें भाग कल्पनाका सर्वदा अभाव है। इस लिये ही ब्रह्माकी कार्य देह एक भाग और क्रिया तीन भाग है। ये तीन भाग भी कार्यकी उत्पत्ति स्थिति लयके अस्तित्वसे कहे हैं। और अमृत शक्तिभी अपने एक पादरूप कार्यके आश्रयमें रह कर नाना क्रियारूप सूर्यादिक, अध्यात्म प्राण और करण रूप मन बुद्धि

इन्द्रियोंके आकारमें विकाश हो रही है ॥ अमृत एक रस सूत्रात्मा रूप है। कार्यात्मक मृत्यु विराट् रूपसे अनेक रस है। अनेक रस क्षर और एक रस अक्षर है ॥ १९ ॥

त्रिपादूर्ध्व उदैत्पुरुषः पादोस्येहाभवत्पुनः ॥
ततो विष्वङ्व्यक्रामत्साशनानशने अभिः ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(अस्य) इस पुराण पुरुष ब्रह्माकी (पादः) चतुर्थांश मृत्यु देह (अभवत्) आधार हुई (इह) इस कार्यमय स्थूल देहमें (त्रिपात्) अमृतात्मक तीन पाद सूत्रात्मा आधेय है (साशनानशने) सो प्रजापति भोक्ता अमृतके सहित योग्य मृत्युको धारण करके (उदैत्) विशेष चेतन रूपसे प्रकाशित हुआ (ततः) उस सूत्रात्माके अनन्तर अमृत देहसे अभिन्न मृत्यु पूर्ण स्थूलके आकारमें (विष्वङ्) नाना स्वरूपोंको धारण करनेवाले महा विराटको, (पुनः) फिर सूक्ष्म देहसे विकाश करनेके लिये (ऊर्ध्वः) उत्तम ब्रह्मलोक वासी (पुरुष) ब्रह्मा (अभिव्यक्रामत्) बहुत संकल्प युक्त हुआ ॥ ऋग्० १० । ९० । ४ ॥

व्याख्याः—इस आदि विधाताकी चतुर्थांश बाह्य कार्य देह-अव्याकृत कारणसे सूक्ष्म देहके आकारमें आधार रूपसे प्रगट हुई। अर्थात् यह कार्य क्रियाका आधार हुआ उस आश्रममें रह कर अव्याकृतकी अमृत सत्ता सूत्रात्मा आधेय रूपसे प्रगट हुई। इस सूक्ष्म बाह्य कार्य देहमें आवृत्त हुई अमृत शक्ति रूप तीन भाग आधेय नामवाली है। सो ब्रह्मा अपनी कार्यक्रियामयी सूक्ष्म देहोंको धारण करके परमेष्ठी नामसे विशेष प्रकाशित हुआ। अभ्यंतर देह भोक्ता, और बाह्य देह भोग्य है भोक्ता सूक्ष्म क्रिया सूर्य अग्नि वायु आदि प्रकाशवाले पदार्थोंका कारण है। और

भोग्य कार्य सूक्ष्मसे स्थूल महा विराट्मय जल भूमीका कारण है। उस पूर्ण सूक्ष्म देहके अनन्तर अमृतसे अभिन्न मृत्यु, पूर्ण स्थूलके आकारमें नाना रूपोंको धारण करनेवाले महा विराट्को प्रगट करनेके लिये, फिर सत्यलोकवासी ब्रह्माने अपनी सूत्रात्मा देहसे बहुत स्वरूप धारी संकल्प किया। मैं सूक्ष्म देहकी आवरण कार्य देहसे अनन्त स्थूल देहधारी विराट् होऊँ [**प्रजापतिर्वा एक आसीत् ॥ सोऽकामयत बहुः स्यां ॥ प्रजायेयेति सम-नसात्मानमध्यायत् ॥** भगवान् ब्रह्मा एक सूत्रात्मा देहधारी था। उस पुराण पुरुषने जगत् रचनेके लिये इच्छा किया मैं सूक्ष्म देह धारी ब्रह्मा हूँ, सो मैं स्थूल अनन्त देह धारी महा विराट् रूपसे उत्पन्न होऊँ। इस प्रकार उस स्वयंभुने अपनी कार्यमय सूक्ष्म देहको, अमृत देह रूप मनके द्वारा विराट्के रूपमें विचार किया ॥ मैत्रायणी सं० ४। २। १] **प्रजापति वै ब्रह्मा ॥** प्रसिद्ध प्रजापति ही ब्रह्मा है ॥ मैत्रायणी सं० १। ११। ७] **प्रथमाविश्वकर्मा ॥** महा विराट्की उत्पत्तिके पहिले सूत्रात्मा देहधारी जगत्की उत्पत्ति आदिका कर्त्ता ब्रह्मा ही था। कृष्ण यजुकपिष्ठल कठ सं० ३। ४] **तपसा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥** संकल्पके द्वारा प्रजाओंको ब्रह्मा रचता भया ॥ कपि० सं० ४। ६] जब अमृत देहके सहित मृत्युशक्ति स्थूलके आकारमें आनेके लिये विकाश करती हुई अपनी अमृतशक्तिको सर्वत्रसे अच्छादन करती हुई। उस अमृतसे ही विकाश करनेमें समर्थ होती है। जैसे २ मृत्यु अमृतका भोग्य बनती है, वैसे २ ही अमृतशक्ति मृत्यु आधारको पाकर प्रकाशके विशेष रूपमें प्रगट होती है। उस प्रकाशके साथ ही साथ मृत्युभी विशेष स्थूलके रूपमें घनीभूत होती है ॥ २० ॥

तस्मा॑द्वि॒राळ॑जायत वि॒राजो॒ अधि॒ पूरु॑षः ॥ स जा॒तो अत्य॑रिच्यत प॒श्चाद्भूमि॒मथो॑ पु॒रः ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(तस्मात्) उस हिरण्यगर्भसे (विराट्) महा विराट् (अजायत) उत्पन्न हुआ (सः) सो पुरुष ब्रह्मा ही (अधि) उस (विराजः) विराट् देहसे (जातः) प्रजापति अथर्वा प्रगट हुआ (अत्यरिच्यत) महा विराट्की उत्पत्तिके अतिरिक्त प्रत्येक क्षुद्र विराट्के मस्तक द्यौकी उत्पत्ति हुई (अथ) और प्रत्येक् क्षुद्र विराट्के (भूमिं) पगरूप भूमीकी उत्पत्ति हुई (पश्चात्) द्यौ अन्तरिक्ष पृथिवीके पीछे (पुरः) शरीर प्रगट हुए ॥ ऋग्० १० । ९० । ५ ॥

व्याख्याः—उस ब्रह्मासे महा विराट् उत्पन्न हुआ, उस विराट् देहकी उपाधिसे वह ब्रह्मा पुरुष ही अथर्वा प्रजापति प्रगट हुआ महा विराट्की उत्पत्तिके अतिरिक्त महा विराट् रूप वृक्षमें असंख्य क्षुद्र विराट् फल प्रगट हुए, विराटोंके मस्तक रूपद्यौ, उदरात्मक अन्तरिक्ष उत्पन्न हुआ, और पगमयी भूमी प्रगट हुई त्रिलोकके मध्यमें अधिभौतिक, अधिदैव, अध्यात्म शरीर प्रगट हुए। ब्रह्मा ही स्थूल देहकी उपाधिसे अथर्वा प्रजापति नामसे प्रगट हुआ **प्रजापतिं ब्रह्माऽसृजत** ॥ अथर्वाको (ब्रह्म) ब्रह्माने रचा। जैमिनीय ब्रा० ३ । ७ । १ । १] **एको हि प्राणः** ब्रह्मा एक सूत्रात्मा देहधारी है ॥ जै० ब्रा० २ । २ । ४ । १] **ब्रह्म वै ब्रह्मा** १ ब्रह्म ही नामवाला ब्रह्मा है। त्रिलिंगीशब्दवाला ब्रह्मा है। मैत्रायणी सं० २ । २ । २] **आपः सत्यमसृजंतसत्यं ब्रह्म ॥ ब्रह्म प्रजापतिं प्रजापति-र्देवान्** ॥ व्यापक प्राणशक्ति माताने (सत्यं) ब्रह्माको रचा

(सत्यं ब्रह्म) सत्यरूप ब्रह्माने (ब्रह्म) व्यापक प्रजापतिको रचा (प्रजापतिः) अथर्वाने देवोंको रचा ॥ बृ० उ० ५।५।१] **अनिरुक्तो हि प्रजापतिः** ॥ मन वाणीका अविषय महेश्वर ही ब्रह्मा है ॥ मै० सं० ३।६।५] **प्रजापतिर्वा एक आसीत् ॥ सोऽकामयत यज्ञो भूत्वा प्रजाः सृजेयेति** ॥ ब्रह्मा एक ही अथर्वा प्रजापतिकी उत्पत्तिके पहिले था। उस ब्रह्माने अथर्वा पुत्रकी कामना करी, मैं ब्रह्मा स्थूल देहका अभिमानी वैराज पुरुष अथर्वा होऊँ। उस अथर्वा रूपको धारण करके प्रजाओंको उत्पन्न करूँ। इस संकल्पके अनन्तर प्रजापति अथर्वा प्रगट हुआ ॥ मै० सं० १।९ ३] **वैराजो वै पुरुषः** ॥ विराट् देह अभीमानी चेतन ही वैराज पुरुष अथर्वा है ॥ मै० सं० १।१०।१३] **प्रजापति र्वा अथर्वा** ॥ प्रजापति ही अथर्वा है। कपिष्ठ० सं० ३०।१] **प्रजापति र्वै यज्ञः** ॥ अथर्वा ही यज्ञ पुरुष है ॥ ऐतरेय ब्रा० १९।४।] **पुरुषो वै यज्ञः** ॥ अथर्वाही वैराजरूप यज्ञ है ॥ तै० ब्रा० ३।८।२३।१।] महाविराट् देहका स्वामी अथर्वा है। सो ही असंख्य विराटोंका स्वामी है ॥२९॥

यत्पुरुषेण हविषा देवायज्ञमतन्वत ॥ वसन्तो अस्यासी दाज्यं ग्रीष्म इध्मः शरद्धविः ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(यत्) जब (देवाः) प्राण देवताओंने (पुरुषेण) विराट् देहमय (हविषा) हविसे (यज्ञं) यज्ञका (अतन्वत) विस्तार किया (अस्य) इस यज्ञका (वसन्तः) वसन्त ऋतु (आज्य) घृत (आसीत्) हुआ (ग्रीष्मः) ग्रीष्म ऋतु (इध्मः) ईधन हुआ ॥ ऋग्० १०।९०।६ ॥

व्याख्या:—जब सृष्टिके सहायक ऋषि गण देवताओंने स्थूल विराट् भोग्य रूप हविसे यज्ञात्मक प्रजापतिको विशेष रूपसे विस्तार किया। इस यज्ञका वसन्त ऋतु घृत हुआ॥ ग्रीष्म ऋतु ईंधन हुआ। शरद ऋतु हवनकी सामग्री हुई यज्ञो वै प्रजापतिः॥ प्रजापति ही यज्ञ स्वरूप है॥ तैत्तरीय सं० २।५।७।३।] साध्या वै देवाः॥ सृष्टि कर्मके साधक प्राणी देवता हैं॥ तै० सं० ६।३।४।८।] प्राणा वै देवताः॥ प्राण ही देवता हैं॥ काठक सं० १९।८।] विराट्के अंग अभिमानी देवो अपने अवयवोंके द्वारा समष्टि विराट् अभिमानी देवको प्रसन्न करते भये ॥ २२ ॥

तं यज्ञं बर्हिषि प्रौक्षन् पुरुषं जातमग्रतः ॥ तेन देवा अयजन्त साध्या ऋषयश्च ये ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(अग्रतः) पहिलेसे (जातं) उत्पन्न होनेवाले (तं) उस (यज्ञं) यज्ञ (पुरुषं) प्रजापतिको (तेन) उसके प्रत्येक अंगके द्वारा ही (बर्हिषि) मानस यज्ञमें (ये) जे (साध्याः) साध्य (देवाः) देवता (च) ओर (ऋषयः) ऋषि-गण (प्रौक्षन्) संस्कार युक्त प्रोक्षण करते हुए (अयजन्त) यजन करते भये॥ ऋग्० १०।९०।७॥

व्याख्या:—सबके पहिले प्रगट होनेवाले यज्ञ पुरुष ब्रह्माको उसके विराट् देहके अंगोंके द्वारा ही, मानस यज्ञमें जे साध्य देवता और ऋषि गण संस्कार युक्त प्रोक्षण करते हुए पूजन करते भये ॥ २३ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतः संभृतं पृषदाज्यम् ॥ पशूँस्ताँश्चक्रे वायव्यानारण्यान् ग्राम्याश्चये ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) समस्त भोग्यात्मक (यज्ञात्) विराट् देहसे (ये) जे (आरण्याः) वनमें विचरने वाले हरिण आदि (च) और (ग्राम्याः) ग्रामवासी गौ आदि (पृषदाज्यं) घृत दधिके कारण दूधको (संभृतं) सम्पादन करने वाले (तान्) उन (वायव्यान्) वायु देवतावाले (पशून्) पशुओंको (चक्रे) रचे ॥ ऋग्० १० । ९० । ८ ॥

व्याख्याः—उस समस्त भोग्यमय विराट् देहसे जे वनमें विचरनेवाले हरिण आदि, और ग्राममें वसने वाले गौ आदिक, घृत दधिके कारण दूधको सम्पादन करनेवाले, उन वायु देवतासे सुरक्षित रहने वाले पशुओंको रचा [पशवो वै पृषदाज्यं ॥ गौ अजा भैंस घृत दधिके उत्पत्ति कारण हैं ॥ मैत्रायणी सं० १ । १० । ७ ।] चतुष्पदो वै पशवः ॥ पशवो वै घृतं ॥ चार पग वाले ही पशु है । पशु ही दुध दहीं घृत रूप हैं ॥ मैत्रायणी सं० ३ । ७ । ५ ।] वायु वैं पशूनां प्रियंधाम ॥ वायु ही सब पशुओंका प्रिय धाम है ॥ काठक सं० १९ । ८ ।] चेतन प्रजापतिकि प्रेरणासे विराट् जड देहके द्वारा सब उत्पन्न हुआ ॥ २४ ॥

तस्माद्यज्ञात्सर्वहुतऋचः सामानि जज्ञिरे ॥ छन्दांसि जज्ञिरे तस्माद्यजुस्तस्मादयाजत ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(तस्मात्) उस (सर्वहुतः) सर्व भोग्यमय (यज्ञात्) विराट्से (ऋचः) छन्द बद्ध गायत्री आदि मंत्र समुह ऋग्वेद (सामानि) छन्द बद्ध मंत्रोको सप्त स्वरूपसे गायन करनेवाला सामवेद (जज्ञिरे) उत्पन्न हुए (छन्दांसि) औषधी व्यवहारके सहित अध्यात्म ज्ञान उपयोगी मंत्र समुदाय अथर्वण

(तस्मात्) उससे (जज्ञिरे) प्रगट हुआ (तस्मात्) उससे ही अनियत अक्षर गद्यात्मक मंत्र समुह (यजुः) यजुर्वेद (अजायत) प्रगट हुआ ॥ ऋग्० १० । ९० । ९ ॥

व्याख्याः—उस सर्व भोग्यरूप विराटसे छन्द वद्ध गायत्री आदि मंत्र समुहका नाम ऋग्वेद है। और उन प्रकृति मंत्रोंको विकृति रूपसे सात स्वरोंमें गायन करना ही सामवेद है ये दोनों उत्पन्न हुए ॥ औषधिका वर्णन, संसारी व्यवहारका वर्णन और अध्यात्म ज्ञानका वर्णन आदि जिस मंत्र समुहमें वर्णन है सो ही अथर्वण वेद, उस यज्ञ पुरुषसे उत्पन्न हुआ। और अनियत अक्षर गद्यात्मक अग्नि होत्रका प्रतिपादन करदेवाले जे मंत्र हैं सो ही यजुर्वेद समुदाय उस विराट् पुरुषसे प्रगट हुआ। जो यजु संहिताओंमें छन्दवद्ध मंत्र हैं वे सब ही ऋग्वेदकी इक्कीस शाखाओंमें के मंत्र हैं [प्रजापति रकामयत प्रजायेय भूयान्स्यामिति । सतपोऽतप्यत ॥ सतपस्तप्त्वा इमाँ ल्लोकान सृजत पृथिवीमन्तरिक्षं दिवं ॥ तांल्लोकानभ्यतपत्–तेभ्योऽभितप्तेभ्य स्त्रीणि–ज्योतींष्यजायन्ताग्निरेव पृथिव्या अजायत वायु रन्तरिक्षादादित्यो दिवस्तानि ज्योतींष्यभ्यतपत्–तेभ्योऽ भितप्तेभ्यस्त्रयो वेदा अजायन्त ॥ ऋग्वेद एवाग्नेरजायत यजुर्वेदो वायोः सामवेद आदित्यात् तान् वेदानभ्यतपत् तेभ्योऽभितप्तेभ्यस्त्रीणि शुक्राण्यजायन्त भूरित्येव ऋग्वेदाऽजायत भुवइति यजुर्वेदात्स्वरितिसाम वेदात् ॥ ब्रह्माने इच्छा किया प्रगट होऊँ बहुत होऊँ–उसने ध्यान पूर्वक विचार किया उसने विचार पूर्वक विचार कर भूमीलोक-अन्तरिक्षलोक और द्यु लोक–इन तीनों लोकोंको उत्पन्न किया। उन लोकोंको ध्यान पूर्वक

देखा–उन विचार पूर्वक देखे गये तीनों लोकोंसे तीन ज्योती उत्पन्न हुई-पृथिवीसे अग्नि-अन्तरिक्षसे वायु-द्यौसे सूर्य, उन तीनों ज्योतियोंको विचार पूर्वक देखा-उन विचार पूर्वक देखे गये तीनों ज्योतियोंसे तीन वेद उत्पन्न हुए अग्निसे ऋग्वेद–वायुसे यजुर्वेद आदित्यसे सामवेद प्रगट हुआ ॥ ऐ० ब्रा० २५ । ७ ।] तमृचश्चसामानि च यजूंषि च ब्रह्म चानूव्यचलन् ॥ उस ब्रह्मचारीके पीछे ऋग्वेद–यजुर्वेद–सामवेद–और (ब्रह्म) अथर्वण वेद चलते हैं अर्थात् वेदाभिमानी देवता चलते हैं ॥ अथर्वण १५ । ७ । ८ ।] चत्वारो वाइमेवेदा ऋग्वेदो यजुर्वेदः सामवेदो ब्रह्मवेदः ॥ ऋग्वेद–यजुर्वेद–सामवेद-(ब्रह्मवेद) अथर्वण निश्चय ये चारवेद हैं ॥ गोपथ ब्रा० पूर्वभाग २ । १६ ।] सैव ऋक् तत्साम तदुक्थं तद् यजुस्तद्ब्रह्म ॥ सो ही ऋग्वेद–सो ही साम–सो ही उकूथ-सो ही यजु–सो ही (ब्रह्म) अथर्वण है ॥ छान्दोग्यो० १ । ७ । ५ ।] ऋचामग्नि दैवतं पृथिवी स्थानं ॥ यजुषां वायु दैवतं मन्तरिक्षं स्थानं ॥ साम्नामादित्यो दैवतंद्यौः स्थानं अथर्वणां चन्द्रमा दैवतमापः स्थानं ॥ ऋग्वेदका अग्नि देवता–भूमी स्थान यजुर्वेदका वायु देवता अन्तरिक्ष स्थान सामवेदका सूर्य देवता द्युलोक ही स्थान है और अथर्वणका चन्द्रमा देवता जल लोक है ॥ गोपथ ब्रा० पू० १ । १९ ।] इष्ट प्राप्त्यनिष्टपरिहारयोर लौकिकमुपायं यो ग्रन्थो वेदयति स वेदः ॥ इष्ट अर्थकी प्राप्ति और अनिष्ट अर्थकी निवृत्तिके अलौकिक उपायको जो ग्रन्थ जनाता है सो ही यह वेद है ॥ तैत्तरीय संहिता उपोद्घातमें सायण भाष्य] ॥ २५ ॥

तस्मादश्वा अजायन्त ये के चोभयादतः ॥ गावोह जज्ञिरे तस्मा त्तस्माज्जाता अजावयः ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(तस्मात्) उस प्रजापतिसे (अश्वाः) घोडे (अजायन्त) प्रगट हुए (च) और (ये) जे (के) कोई घोडोंसे अतिरिक्त गर्दभ उष्ट्र आदि (उभयादतः) ऊपर नीचेके दाँतोंसे युक्त उत्पन्न हुए (तस्मात्) उस विराट्से (गावः) गौयें (ह) समस्त जातिकी (जज्ञिरे) प्रगट हुई (तस्मात्) उस यज्ञ पुरुषसे (अजावयः) बकरी भेड आदि हिरण (जाताः) उत्पन्न हुए ॥ ऋग्० १० । ९० । १० ॥

व्याख्याः—उस ब्रह्माके द्वारा विराट् देहमे घोडोंकी जाति मात्र हुई-और जे कोई घोडोंसे भिन्न जातिके गधे ऊँट आदिक ऊपर नीचेके दाँतोंसे युक्त उत्पन्न हुए-उससे ही समस्त देशवाली गौयें प्रगट हुई-और उसी पुरुषसे बकरी घेटें आदि हिरण प्रगट हुए ॥ २६ ॥

यत्पुरुषं व्यदधुः कतिधा व्यकल्पयत् ॥ मुखं किमस्य कौ बाहूका ऊरूपादा उच्येते ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(यत्) जिस (पुरुषं) विराट्को (व्यदधु) मानस यज्ञमें धारण करते हुए (कतिधा) कितने प्रकारसे (व्यकल्पयत्) कल्पना करते भये (अस्य) इस विराट्का (मुखं) मुख (किं) कौन हुआ (बाहू) दो हाथ (कौ) कौन (ऊरू) दोनों जंघा और (पादौ) दोनों पग (कौ) कौन (उच्येते) कहे जाते हैं ॥ ऋग्० १० । ९० । ११ ॥

व्याख्याः—जिस विराट्को मानस यज्ञके रूपमे श्रद्धा युक्त धारण करते हुए-कितने प्रकारसे कल्पना करते भये-इस विराटका मुख कौन हुआ-दो हाथ कौन हुए-दो जंघा और दो चरण कौन कहे जाते हैं ॥ २७ ॥

ब्राह्मणोऽस्य मुख॑मासीद्बाहू रा॑ज॒न्यः॑ कृ॒तः ॥ ऊ॒रू तद॑स्य॒ यद्वैश्यः॑ प॒द्भ्यां शू॒द्रो अ॑जायत ॥ २८ ॥

अन्वयार्थः—(अस्य) इस विराट्के (मुखं) मुखसे (ब्राह्मणः) ब्राह्मण (आसीत्) हुआ (राजन्यः) क्षत्रिय जाति (बाहू) दोनों हाथोंसे (कृतः) प्रगट हुई (तत्) सो प्रसिद्ध (वैश्यः) वैश्य जाति (अस्य) इस विराट्के (ऊरू) दोनों जंघाओंसे प्रगट हुई (पद्भ्यां) दोनों चरणोंसे (शूद्रः) शूद्र (अजायत) प्रगट हुआ ॥ ऋग्० १० । ९० । १२ ॥

व्याख्याः—इस प्रजापतिके मुखसे ब्राह्मण जाति प्रगट हुई हाथोंसे क्षत्रिय जाति प्रगट हुई-दोनों जंघाओंसे प्रसिद्ध वैश्य जाति प्रगट हुई और दोनों पगोंसे शूद्र जाति उत्पन्न हुई ।। [प्रजापति **रकामयतप्रजायेयेतिसमुखतस्त्रिवृतं निरमिमीत तमग्निर्देवताऽन्वसृज्यत गायत्रीछन्दो रथंतर॑ साम ब्राह्मणो मनुष्याणामजः पशूनां तस्मात्ते मुख्या मुखतोह्यसृज्यन्त इति ॥** ब्रह्माने जगत् रचनेके लिये इच्छा किया मैं बहुत होऊँ-इस संकल्पके अनन्तर-उस ब्रह्माने अपने मुखसे तीन स्तोमको रचा-उस त्रिवृत के पश्चात्-देवताओंके मध्यमें प्रथम अग्नि प्रगट किया-छन्दोंके मध्यमें गायत्री मंत्र सामोंके मध्यमें रथंतर साम रचा-मनुष्योंके मध्यमें ब्राह्मण रचा-पशुओंके मध्यमें बकरी रची जिस ब्रह्माके मुखसे ये सब रचे गये-इस हेतुसे

ही वे सब उत्तम हैं ॥ उरसा बाहुभ्यां: ॥ हृदय हातोंसे इन्द्र रचा त्रिष्टुप छन्द–सामोंमें बृहत साम–मनुष्योंमें क्षत्रिय-पशुओंमें भेड रचा–ये सब ब्रह्माके हातोंसे प्रगट हुए। मध्य भाग जंघाओंसे विश्वे देवता रचे-जगती छन्द–वैरूप साम मनुष्योंमें वैश्य रचा-पशुओंमें गौ–ये सब प्रजापतिके मध्य भागसे उत्पन्न हुए। मनुष्योंमें शूद्र-पशुओंमें घोडा रचा ॥ तस्माच्छूद्रो यज्ञेऽनवक्लृप्तो नहि देवता अन्वसृज्यत तस्मात्पादा वुपजीवतः ॥ शूद्र यज्ञका अधिकारी नही है–इस कारणसे शूद्र पगोंसे गमना गमन करके अपनी जीविका करे ॥ कृ० य० तै० सं० ७। १। १। ४–५–६।] नशूद्रो दुह्यादसतो वाएष सम्भूतोऽ सत्स्यात ॥ शूद्र यज्ञका सम्पादन कभी न करे क्योंकि शूद्र पगसे उत्पन्न हुआ इस लिये अशुद्ध है ॥ अग्नि होत्र मेव शूद्रो नदुह्यात ॥ शूद्र अग्नि होत्रको कभी न करे ॥ कृष्ण यजुर्वेदीय काठक सं० ३१। २ ॥ कृ० य० कपिष्ठल कठ सं० ४७। २।] न स्त्रियैद्यान्न शूद्राया सोमपीथ ॥ उपनयन रहित स्त्री और शूद्र सोम पीनेके अयोग्य है–इस लिये सोम रस स्त्री और शूद्रके प्रति न देवे ॥ कृ० य० काठक सं० ११। १०] ब्राह्मणः सुरां नपिवति ॥ ब्राह्मण दारूको कभी नहीं पीते ॥ काठक सं० १२। १२।] ब्राह्मणः सोमं पिवति ॥ ब्राह्मण सोम रसको पीता है ॥ काठक सं० २६। १।] पया ब्राह्मण-स्य व्रतं यवागूरजन्यस्याऽऽमिक्षा वैश्यस्य ॥ ब्राह्मणका सोमपान करना ही व्रत है -क्षत्रियका यवकी लप्सी ही व्रत है–वैश्यका फटा हुआ दूध ही भक्षण करना व्रत है ॥ तैत्तरीयारण्यक २। ८। १।] पयो वै सोमः ॥ पयोही सोम लताका रस है ॥ कृ० य० तै० सं० २। ५। ५। १।] वसन्तो वै ब्राह्मण-

स्यर्तुः। ग्रीष्मो वै राजन्यस्यर्तुः। शरद्वैश्यस्यर्तुः॥ ब्राह्मका वसन्त ऋतु–क्षत्रियका ग्रीष्म ऋतु–वैश्यका शरद् ऋतु है॥ अपने २ ऋतुमें ही अग्नि होत्र और उपनयन ग्रहण करना॥ कपिष्ठल कठ सं० ६। ६।] राजन्यात्पुरुषा ब्राह्मणो वैश्यः शूद्रः॥ क्षत्रियसे भिन्न तीनवर्ण–ब्राह्मण–वैश्य–शूद्र है॥ तै० सं० २। ५। १०। १।] निवीतं मनुष्याणां प्राचीनावीतं पितॄणामुपवीतं देवानामुपव्ययते॥ ऋषि तर्पणमें दोनों हातोंके वीचमें ब्रह्म सूत्र धारण करना उत्तम है–दक्षिण बाहुमें पितृ कर्म करना–और सव्य में जनेऊ धारण करना देव कर्ममें उत्तम है॥ तै० सं० २। ५। ११। १।] प्रसृतो ह्वै यज्ञोपवीतिनोयतोऽप्रसृतोऽनुपवीतिनः ॥ त्रिवर्ण द्विजातिका जो अग्नि होत्रादि वैदिक कर्म है–सो अनन्त फलवाला है। और उपवीत हीन शूद्र जो अग्नि होत्रादि कर्म करे तो निष्फल है॥ तैत्तरीयारण्यक २। १। १।] यज्ञोपवितं कृत्वाऽधो निपपात नमो नमः॥ सविताने गौतमको दर्शन दिया–गौतमने यज्ञोपवित्रको धारण करके नीचे नमकर सविताको वारंवार प्रणाम किया तै० सं० ३। १०। ९। १२।] दास आर्यः॥ (दासः) शूद्र और (आर्यः) तीनवर्णः–ब्राह्मण–क्षत्रिय–वैश्य॥ ऋग्० १०। ३८। ३।] शूद्र उतार्यः॥ शूद्र और द्विजाति तीनवर्ण॥ अथर्वण ४। २०। ४।] शूद्रार्यौ॥ शूद्र और द्विजाति॥ कृ० य० कपिष्ठल कठ सं० २६। ४॥ काठक सं० १७। ५।] शूद्रार्य्यावसृज्येतां॥ तीनवर्णके साथ शूद्रको ब्रह्माने रचा॥ शु० य० कण्व सं० २। ५। ८। ३॥ मा० सं० १४। ३०।] आर्योदासः॥ द्विजाति–और शूद्र॥ माध्यन्दिनीय सं० ३३। ८०।] ब्रह्मवा इदमग्र आसीदेक मेव-

तदेकँ सन्नव्यभत ॥ यह सब पहिले ब्रह्मा रूप एक ही था सो एक होता हुआ परिपूर्ण नही हुआ ॥ तच्छ्रेयोरूपमत्य सृजत क्षत्रंयान्येतानि देवत्रा क्षत्राणीन्द्रो वरुणः सोमो रुद्रः पर्जन्यो यमो मृत्युरीशान इति ॥ उस ब्रह्माने रक्षक रूप क्षत्रिय जातिको उत्तमताके साथ रचता हुआ जो देवताओंमें इन्द्र–वरुण–चन्द्रमा–वायु, रुद्रनाम वायुका है, जल अभिमानी देव यमराज–ईशान दिशाका देवता ये सब देवता क्षत्रिय जाति हैं ॥ शतपथ ब्रा० १४। २। ५। २३।] विशमसृजत वसवो रुद्रा आदित्या विश्वेदेवा मरुत इति ॥ आठ वसु–ग्यारा रुद्र–बारा आदित्य–तेरा विश्वे देवा सात गण रूप मरुत यह सब वैश्य जातिको रचा ॥ शतपथ ब्रा० १४। बृ० उ० १। ४। १२।] शौद्रं वर्णमसृजत–पूषणं ॥ शूद्र वर्णरूप पूषाको रचा–बृ० उ० १। ४। १३।] ब्रह्म वै बृहस्पतिः ॥ बृहस्पति ही ब्राह्मण है ॥ कपि० सं० ३६। २।] अग्नि वैं ब्राह्मणः ॥ अग्नि ही ब्राह्मण है ॥ कृ० य० कपिष्ठल कठ सं० ४। ६।] ब्रह्मक्षत्रे वा इन्द्राग्नी ॥ ब्राह्मण–क्षत्रिय–अग्नि–इन्द्र है ॥ शांख्यायन ब्रा० २०। १।] ब्रह्म वै अग्निः क्षत्रं वै सोमः ॥ अग्नि ही ब्राह्मण हैं और सोम ही क्षत्रिय है ॥ शांखायन ब्रा० ९। ५।] ब्रह्मबा अग्निः ॥ क्षत्रमिन्द्रः ॥ अग्नि ब्राह्मण है। और इन्द्र क्षत्रिय है ॥ तै० ब्रा० ३। ९। १६। ३] इदं मे ब्रह्म चक्षत्रं चोभे श्रियमश्नुतां ॥ मेरा यह सम्पादन किया हुआ सोम रसको दोनों ब्राह्मण क्षत्रिय जातिवाले देवता पीवें ॥ शु० य० मा० सं० ३२। १६।] अग्नि वायु बृहस्पति अङ्गिरस ब्राह्मण है। इन्द्र–वरुण–सूर्य–त्वष्टा आदि क्षत्रिय हैं ॥ मरुतो वै देवानां विशः ॥ मरुत देवताओंके वैश्य है ॥ कृ०

य० कपि० सं० ६ । ९ ।] तयइहरमणीय चरणा अभ्या शोहयत्ते रमणीयां योनिमापद्येरन् ॥ ब्राह्मणयोनिं वा क्षत्रिय योनिं वा वैश्य योनिं वाऽथयइहकपूय चरणा अभ्याशो हयत्तेकपूयां योनिमापद्येरन् ॥ श्वयोनिं वा शूकर योनिं वा चाण्डाल योनिं वा ॥ अन्न आदिके संग सम्बन्धको प्राप्त होनेवालोंमें—जो अनशेष कामनावाले—जीव इस—संसारमें शुभ आचरण करनेवाले कपट रहित है वे सब उत्तम देहको प्राप्त होते हैं-ब्राह्मण शरीरको या क्षत्रिय देहको अथवा वैश्य योनिको—अपने २ कर्मके अनुसार पाते हैं ॥ यह फल उनको तुरन्त ही प्राप्त होता है ॥ और उन उत्तम जातिमें जन्म लेकर भी जे द्विजाति मात्र वैदिक कर्म त्यागने वाले होते हैं वे अधर्म युक्त योनियोंको प्राप्त होते हैं कुत्ताकी देहको वा सूवरदेहको अथवा चाण्डाल योनिको पाते हैं-यह फल उनको कर्मके अनुसार शीघ्र प्राप्त होता है ॥ छान्दोग्यो० ५ । १० । ७ ।] ब्रह्मणे ब्राह्मणं क्षत्राय राजन्यं मरुद्भयो वैश्यं तपसे शूद्रं ॥ बृहस्पतिके लिये ब्राह्मणको-इन्द्रके निमित्त क्षत्रियको—मरुतोंके प्रति वैश्यको-पूषाके अर्थ शूद्रको ॥ शु० य० मा० सं० ३० । ११ ।] वायवे चाण्डालं ॥ वायुके प्रति चाण्डालको ॥ मा० सं० ३० । २१ ।] इस अध्यायमें लोम विलोम सब जातियोंके नाम हैं ॥ २८ ॥

चन्द्रमा मनसो जातश्चक्षोः सूर्यो अजायत ॥ मुखादिन्द्रश्चाग्निश्च प्राणाद्वायुरजायत ॥ २९ ॥

अन्वयार्थः—(मनसः) ब्रह्माके मनसे (चन्द्रमाः) चन्द्रमा (जातः) उत्पन्न हुआ (चक्षोः) प्रजापतिके नेत्रसे (सूर्यः)

सूर्य (अजायत) प्रगट हुआ (मुखात्) यज्ञ पुरुषके मुखसे (अग्निः) अग्नि (च) और (इन्द्रः) इन्द्र (अजायत) प्रगट हुआ (च) और (प्राणात्) प्राणसे (वायुः) पवन उत्पन्न हुआ ॥ ऋग्० १० । ९० । १३ ॥

व्याख्या:—प्रजापतिके मनसे चन्द्रमा प्रगट हुआ-नेत्रसे सूर्य उत्पन्न हुआ-मुखसे अग्नि और इन्द्र उत्पन्न हुआ और नाकसे वायु प्रगट हुआ [मनो वै समुद्रः ॥ मनही समुद्र है ॥ शत ब्रा० ७ । ५ । २ । ५१ ।] ॥ २९ ॥

नाभ्याआसीदन्तरिक्षं शीर्ष्णो द्यौः समवर्तत ॥
पद्भ्यां भूमिर्दिशः श्रोत्रात्तथा लोकाँ अकल्पयन् ॥३०॥

अन्वयार्थः—(नाभ्याः) नाभीसे (अन्तरिक्षं) मध्यलोक (आसीत्) प्रगट हुआ (शीर्ष्णः) शिरसे (द्यौः) स्वर्ग (समवर्तत) उत्पन्न हुआ (पद्भ्यां) चरणोंसे (भूमिः) पृथिवी (श्रोत्रात्) कानसे (दिशः) दश दिशायें प्रगट हुईं (तथा) उसी प्रकार त्रिलोकात्मक अण्डके मध्यमें सब लोकोंको प्रगट किया ॥ ऋग्० १० । ९० । १४ ॥

व्याख्या:—विराट् रूप अण्डके मध्य भागसे अन्तरिक्ष प्रगट हुआ ऊर्ध्व भागसे द्यौ प्रगट हुआ-नीचले भागसे भू कपाल रूप भूमी प्रगट हुई आकाशसे दिशायें प्रगट हुई ॥ ३० ॥

सप्तास्यासन्परिधयस्त्रिः सप्त समिधः कृताः ॥
देवायद्यज्ञं तन्वाना अबध्नन्पुरुषं पशुम् ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(यत्) जिस समय (देवाः) देवताओंने (यज्ञं) यज्ञ (पुरुषं) पुरुषको मानस यज्ञमें (पशुम्) भोग्य रूपसे तन्वानाः) विस्तार करते हुए (अबध्नन्) बाँधा (अस्य) इस मानस यज्ञकी (सप्त) सात गायत्री आदि छन्द (परिधयः) प्रतिनिधि रूप परिधि (आसन्) हुईं (त्रिः सप्त) इक्कीस (समिधः) समिधा (कृताः) करीं ॥ ऋग्० १० । ९० । १५ ॥

व्याख्याः—जिस समय विराट् देहके मुख आदि अवयवोंके देवताओंने-मानस यज्ञमें यज्ञ पुरुषको-भोग्य रूपसे विस्तार करते हुए संकल्पके द्वारा दृढ निश्चय करके बाँधा-इस मानस यज्ञकी सात गायत्री आदि छन्द-प्रतिनिधि रूप परिधि हुइ-वारा महिना पाँच ऋतु-तीन लोक-ये सब इक्कीस समिधा रची गई इस मानस यज्ञके अनन्तर-वेदाध्ययन और अग्नि होत्रका आरम्भ हुआ [द्वादश मासाः पञ्चर्तवस्त्रय इमेलोका असावादित्य एक विंशएष प्रजापतिः ॥ वारा मास पाँच ऋतु तीन लोक ये सब मीलकर इक्कीस यह प्रजापति रूप यह सूर्य है। महा विराट्का चेतनरूप अथर्वा-अदिति, नारायण आदि नामवाला प्रजापति ही प्रत्येक् सूर्य रूप प्रजापति है। वह सूर्य अपने २ सौर जगतमें २१ इक्कीस स्वरूपवाला प्रजापति है ॥ तैंत्तरीय सं० ५ । ४ । १२ । ३ ।] मुख्य ब्रह्मा प्रजापति है। और उसकी गौण प्रणापति रूप अन्य विभूति हैं ॥ ३१ ॥

यज्ञेन॑ य॒ज्ञम॑यजन्त दे॒वास्तानि॒ धर्मा॑णि प्र॒थमान्या॑सन् ॥ ते ह॒ नाकं॑ महि॒मानः॑ सचन्त॒ यत्र॒ पूर्वे॑ सा॒ध्याः सन्ति॑ दे॒वाः ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थः—(यज्ञेन) यज्ञके द्वारा (यज्ञं) यज्ञको (अयजन्त) पूजन करते हुए (देवाः) देवता (तानि) उन (प्रथमानि) मुख्य (धर्माणि) वैदिक धर्मोंको (पूर्वे) प्रत्येक् कल्प मन्वन्तरके आदिमें (आसन्) करनेवाले हुए (ते) वे सब (महिमानः) महात्मा (साध्याः) साध्य (देवाः) देवता वैदिक कर्मके प्रभावसे (यत्र) जिस स्वर्गमें (सन्ति) हैं (ह) प्रसिद्ध (नाकं) सर्व दुःख रहित स्वर्गको (सचन्त) सेवन करते हैं ॥ ऋग् १० । ९० । १६ ॥

व्याख्याः—यज्ञके द्वारा यज्ञको देवता पूजन करते भये, उन वैदिक कर्मरूप मुख्य धर्मोंको प्रत्येक् कल्प और मन्वन्तरके आदिमें करते हैं। वैदिक कर्मके प्रभावसे जिस स्वर्गमें वे सब देवता गये हैं, उस प्रसिद्ध सब दुःख रहित स्वर्गको साध्य महात्मा सेवन करते हुए विराजमान हैं [**प्राणो वै साध्या देवाः** ॥ प्राण ही साध्य देवता हैं ॥ शतपथ ब्रा० १० । २ । २ । ४ ।] **प्राणा अङ्गिराः** ॥ प्राण नामके ऋषि अङ्गिरा है ॥ कपिष्ठल कठ सं ३१ । १३ ।] **प्राणो वा अङ्गिराः** ॥ प्राण ही अङ्गिरा हैं ॥ शतपथ ब्रा० ६ । ७ । १ । २ ।] **साध्या वै नाम देवा आसन् पूर्वे** ॥ प्रथम ब्रह्माकी आज्ञारूप धर्ममें प्रवृत्त होनेवाले साध्य नामवाले देवता हुए ॥ कपि० सं० २६ । ७ ।] **साध्या यज्ञादि साधनवन्तः** । वैदिक यज्ञादिके साधनेवाले ही साध्य देवता ही हैं ॥ निरुक्त १२ । ४१ ।] **छन्दांसि वै साध्या देवास्तेऽग्रे ऽग्निनाऽग्निमयजन्त ते स्वर्गं लोकमायन्** ॥ **आदित्याश्चैवेहाऽऽसन्नङ्गिरसश्चतेऽग्रेऽग्निनाऽ ग्निमयजन्त ते स्वर्गंलोक मायन्** ॥ प्राणरूप वस्त्रोंको धारण करनेवाले ही साध्य देवता ह । उन देवताओंने पहिले अग्निके द्वारा

अग्निको पूजन करते हुए, वे स्वर्ग लोकको प्राप्त हुए। जे इस कल्पमें आदित्य देवता हैं, वे ही देवता, इस भूमीमें इस कल्पके पहिले कल्पमें अङ्गिरस नामके ब्राह्मण थे। और इन ब्राह्मणोंने अग्निके द्वारा अग्निको यजन करते हुए वे स्वर्ग कोकको गये ॥ ऐतरेय ब्रा० ३। ५।] पशवो वै छन्दाꣳसि ॥ याज्ञिक पशु ही छन्द हैं ॥ इन प्राणधारी पशुओंकों ही वस्त्रके समान यजमान धारण करता है। अर्थात् इन पशुओंके सहित स्वर्ग जाता है ॥ मैत्रायणी सं० १। ६। ४।] यज्ञो देवक्षेत्रं ॥ यज्ञ देवताओंका खेत है ॥ मै० सं० २। ७। २।] ब्रह्म वैं छन्दांसि ॥ यज्ञ ही सबका भरण पोषणसे ढाँकनेवाला है ॥ मै० सं० ३। १। ७।] यज्ञो वै ब्रह्म ॥ यज्ञका नाम ही ब्रह्म है ॥ मै० सं० १। ५। ९।] ब्रह्मावा अग्निः यज्ञ ही अग्नि है। तैत्तरीय ब्रा० ३। ९। १६। ३।] अग्नि वै प्रजापतिः ॥ अग्नि ही प्रजापति है ॥ कपिष्ठल सं० ७। १।] अग्नि वैं विराट् ॥ अग्नि ही विराट् है ॥ कपिष्ठल सं० २९। ७। त्रिपदा विराट् ॥ तीन पादरूप विराट् है ॥ कपि० सं० ३१। २०।] आपो वै यज्ञः॥ व्यापक विराट् ही यज्ञ हे कपि० सं० ३१। २०।] आपो वै यज्ञः ॥ व्यापक विराट् ही यज्ञ है ॥ कपि० सं० ३५। ८।] विष्णु वैं यज्ञः ॥ विष्णु नाम यज्ञका है ॥ कपि० सं० ३५। ९।] ज्योति वैं यज्ञः ॥ ज्योति ही यज्ञ है ॥ कपि० सं० ४७। ११।] यज्ञं सुकृतस्य योनौ ॥ यज्ञ उत्तम कर्मका स्थान है ॥ काठक सं० १६। ३।] यज्ञो वै मखः ॥ यज्ञ ही मख है ॥ काठक सं० १९। ६।] यज्ञो वै पजापतिः ॥ प्रजापति ही यज्ञ है ॥ काठक सं० १९ ८।] विश्वंभरा अथर्वा ॥ प्रजापति र्वा अथर्वा ॥ सब चराचरका पालन करनेवाला अथर्वा ॥ अथर्वा

ही प्रजापति ह । काठक सं० १९। ४।] अग्नि वै सर्वा देवता ।। विष्णु र्यज्ञो देवताऽश्चैव यज्ञंचालभते मुखं वै देवानामग्निः परोऽन्तो विष्णुर्यज्ञस्यैवान्तौ ।। अग्नि सर्व देव स्वरूप है व्यापक यज्ञ देवता है। यज्ञ मुखसे ही देवता सुखको प्राप्त होते हैं। देवताओंका अग्नि प्रथम आधार है और व्यापक यज्ञ देवोंका पीछला आधार है।। काठक सं० १९।९।] विष्णोरेवनाभा अग्नि चिनुते ।। यज्ञकी ही वेदिमें अग्निको यजमान सम्पादन करता है।। काठक सं० २०। ७।] अग्निना वै देवाः स्वर्गं लोकमायान् ।। अग्निके द्वारा ही देवता निश्चय स्वर्ग लोकको गये ।। काटक सं० २२। ७।] अग्नि वै देवा नामवमो विष्णुः परमः ।। देवताओंका अग्रगामी अग्नि रक्षक है ।। व्यापक यज्ञ पीछेसे रक्षा करनेवाला है ।। काठक सं० २२। १३।] अग्निः प्रथमः ।। अग्नि सबका प्रथम है ।। ऋग्० २। १०। ९।] अग्निरग्रेप्रथमो देवतानां संयातानामुत्तम विष्णुरासीत् ।। मध्यमें चलनेवाले देवगणओंके आगे चलनेवाला प्रथम अग्नि है। और (उत्तमः) पीछे चलनेवाला सूर्य है ।। तैत्तरीय ब्रा० २।४।३।३।] अग्निर्देवानामभवत्पुरोगाः ।। देवोंके आगे चलनेवाला अग्नि है ।। माध्यन्दिनी सं० २९। ३६।] अग्निः पुरस्ताद्विष्णु र्यज्ञः पश्चात् ।। अग्नि आगे और व्यापक यज्ञ पीछे ।। तैत्तरीय ब्रा० ३। ३।८। ११] अग्निर्वै देवानामवमो विष्णुः परमस्तदन्तरेण सर्वा अन्या देवताः ।। देवताओंका अग्रगामी अग्नि रक्षक है। और सूर्य पीछे रक्षा करनेवाला है। इन दोनों देवोंके मध्यमें सब देवता हैं ।। ऐतरेय ब्रा० १।१।१।] अवमः ।। अन्तिम है ।। ऋग्० १।११३।८।] सत्वंनोअग्नेऽवमोभव ।। हे

अग्ने सो तुम हमारी (अवमः) रक्षा करनेवाले हो ॥ तैत्तरीय सं० २। ५। ११। ६॥ माध्यन्दिनी सं० २१। ४।] अग्नि वैं देवानां गोपा: ॥ अग्नि ही सब देवताओंका रक्षक है ॥ ऐतरेय ब्रा० ५। २। २८।] विष्णु वैं देवानां द्वारपः ॥ सूर्य ही देवताओंका द्वार रक्षक है ॥ ऐतरेय ब्रा० ५। ४। ३०।] इन्द्रो देवानामभवत्पुरोगा: ॥ अग्नि देवताओंमें अग्रगामी है ॥ मैत्रायणी सं० ४। १४। १४।] ओजोवाइन्द्र ओजो विष्णु: ॥ तेजस्वी अग्नि। तेजस्वी सूर्य है ॥ काठक सं० २१। १।] अग्ने वैं चक्षुषा मनुष्या विपश्यन्ति ॥ यज्ञस्य देवा: । अग्निं चैव विष्णुं च ॥ प्रसिद्ध अग्निके तेजसे मनुष्य विशेष रात्रीमें देखते हैं ॥ पूज्य सूर्यके तेजसे देवता उत्तरायणमें देखते हैं ॥ अग्नि और सूर्यको ही सबका आधार कहा है ॥ तैत्त-रीय सं० २। २। ९। ३।] अग्ने वैं चक्षुषा मनुष्या विपश्यन्ति सूर्यस्य देवा: ॥ अग्निं चैव सूर्यंच ॥ अग्निके तेजसे विशेष करके मनुष्य देखते हैं। और सूर्यके प्रकाशसे देवता देखते हैं। अग्नि और सूर्यको ही जगत्का आधार कहा है ॥ तैत्त-रीय सं० २। ३। ८। १।] अग्निनाग्निः समिध्यते ॥ अग्निसे अग्नि प्रज्वलित की जाती है ॥ कपिष्ठल सं० ४८। १] यदग्नौ अग्नि मथित्वा प्रहरति तेनैवाग्नय आतिथ्यं क्रियते ॥ जिस अरणीमें अग्निको मथकर, स्थापन यजमान करता है, उस अग्निसे ही तीनों अग्नियोंका हविसे सत्कार करता है ॥ तैत्तरीय सं० ६। २। १। ७।] इमा अग्नेस्तन्वः ॥ इयमो दन पचनोऽन्तरिक्षं गार्हपत्यो द्यौरावहनीयः ॥ अग्निके ये तीन शरीर हैं। इस भूलोकवासी देवताओंका भोजन पकानेवाला अग्नि, अन्तरिक्षका गार्हपत्य अग्नि, और द्यौका आहवनीय अग्नि

है। अन्तरिक्षकी अग्निका नाम दक्षिणा अग्नि है। और इस लोककी अग्निका नाम गार्हपत्य है॥ कपिष्ठल सं० ७। १।] त्रीणि हवींषि भवन्ति॥ त्रयइमे लोकाः॥ इमानेव लोकाना प्नोति॥ त्रिर्विराट् व्यक्रम॥ पशुपुतृतीय मप्सु तृतीय मुष्मिन्नादित्ये तृतीयं॥ इन तीन हवियोंको भोगनेवाला अग्नि है। ये तीन लोक ही हवि हैं। भोक्ता रूपसे इन तीनों लोकोंको अग्नि प्राप्त हुआ है। विराट् रूप अग्निने तीन रूपसे आक्रमण किया है। प्राणि मात्रोंको धारण करनेवाली भूमीमें तीसरा गार्हपत्य। अन्तरिक्षमें विद्युत् मय तीसरा पाद रूप दक्षिणा अग्नि। उस अखण्ड द्यौमें तीसरा सूर्य है। ये ही अग्निके तीन स्वरूप हैं॥ कपिष्ठल० सं० ७। ३।] त्रिर्वै विराट् व्यक्रमत॥ गार्हपत्यमाहवनीयं सभ्याधिदेवनं॥ प्रसिद्ध अग्निने तीन रूपसे आक्रमण किया। गार्हपत्य, आहवनीय, अन्वहार्य नामकी तीसरी दक्षिणा अग्नि। ये ही तीन पाद हैं॥ कपि० सं० ७। ४।] दिवि यज्ञोऽन्तरिक्षे पृथिव्यां॥ द्यौ में यज्ञ, अन्तरिक्षमें यज्ञ, भूमीमें यज्ञ है॥ कपि० सं० ३५। ८।] अस्माद्वै गार्हपत्यादसौ पूर्वोऽग्निरसृज्यत॥ अयंवाव प्रजापतिरसौ पूर्वोऽग्निः॥ इस गार्हपत्यसे ही उस आहवनीय अग्निको पहिले प्रगट किया। यह गार्हपत्य प्रजापति ही वह आहवनीय प्रथम अग्नि है॥ कपि० सं० ४। ३।] अग्नेर्योनिरग्निः सूर्यस्य॥ आहवनीय अग्निरूप सूर्यका उत्पत्ति स्थान गार्हपत्य अग्नि है॥ कपि० सं० ५। ३।] पुरुषो वै यज्ञः॥ विराट् रूप अग्नि ही यज्ञ है॥ तैत्तरीय ब्रा० ३। ८। २३। १।] यज्ञो वै गौः॥ विराट्वाणी ही यज्ञ है॥ तै० ब्रा० ३। ९। ८। ३।] पशुर्वै यज्ञः॥ पशु ही यज्ञ है॥ काठक सं० ३०। ९।] पशवो

वै गार्हपत्यः ॥ पशु ही गार्हपत्य अग्नि है ॥ कपिष्ठ सं० ४। ३।] अग्ना विष्णू ॥ गार्हपत्य और आहवनीय है ॥ तै० ब्रा० ३। ११। ९। ९।] अग्निरेव हव्यं रक्षते ॥ विष्णु रेव हव्यं रक्षते ॥ गार्हपत्य हवि द्रव्यकी रक्षा करता है। आहवनीय हुत द्रव्यकी रक्षा करता है ॥ कपिष्ठ सं० ४७। ३।] यज्ञो वा अर्यमा ॥ सबका स्नेही अग्नि यज्ञ है ॥ मै० सं० ४। २। १०।] आदित्यो वै यज्ञः ॥ सूर्य ही यज्ञ है ॥ मै० सं० ३। ७। ८।] वरुणो वै यज्ञः ॥ अन्धकार वारक सूर्य ही यज्ञ है ॥ मै० सं० ३। ७। ९।] इन्द्रो वै यज्ञः ॥ इन्द्र ही यज्ञ है ॥ काठक सं० २७। १०।] सूर्यो वा इन्द्रः ॥ सूर्य ही इन्द्र नामवाला है ॥ कपिष्ठल० सं० ५। ३।] वज्रो वै यज्ञः ॥ विद्युत् ही यज्ञ है ॥ तै० सं० १। ६। ७। ४।] यज्ञो वै ब्रध्नः ॥ सूय ही यज्ञ है ॥ तै० सं० १। ७। १। ६।] विष्णुः पर्वतानां ॥ विद्युत् मेघोंका स्वामी है ॥ तै० सं० ३। ४। ५। १।] अग्नावादित्यं ॥ अग्नि और सूर्यको यज्ञ कहा है ॥ तै० सं० ३। ५। ५। २।] विष्णुः ॥ यज्ञ फलके व्यापक होनेसे विष्णु कहा है ॥ तै० सं० १। ८। १।] विष्णोः ॥ यज्ञका नाम विष्णु है ॥ तै० सं० २। ६। १२।] विष्णुः ॥ विष्णु नाम यज्ञका है ॥ ऋग्० १०। ६५। १२।] विष्णो ॥ हे अग्नि देव ॥ यहाँ अग्निका नाम विष्णु है ॥ तै० सं० १। ६। २। २।] विष्णु र्गोपाः ॥ अग्निदेव सबका रक्षक है ॥ ऋग्० ३। ५५। १०।] अग्नावग्निश्चरति ॥ गार्हपत्य अग्निमें आहवनीय अग्नि विचरता है ॥ तै० सं० १। ३। ७। २।] अयमन्तरग्निर्योऽसौपूर्वोऽमाआदित्य एषः क्षितयं ज्योतिः ॥ जो यह अग्नि भूमी अन्तरिक्षके मध्य में है

सो ही यह प्रथम अग्नि ही यह आदित्य रूप दूसरी ज्योति है ॥ काठक सं० ८ । ४ ।] अग्निश्च सूर्यसमाने योनौ ॥ अग्नि और सूर्य समान स्थानवाले हैं ॥ मै० सं० १ । ८ । २ ।] अग्नि वैं वसुः ॥ अग्नि ही वसु है ॥ मै० सं० ३ । ४ । २ ।] यज्ञो वै वसुः ॥ यज्ञ नाम अग्निका है ॥ श० ब्रा० १ । ५ । ४ । ७ ।] यज्ञो वैस्वः ॥ अग्नि ही सूर्य ॥ मै० सं० ३ । ९ । १ ।] आपो वै प्रजापतिः ॥ व्यापक विराट् देहधारी अथर्वा प्रजापति ही यज्ञरूप है ॥ मै० सं० ३ । ९ । ६ ।] यज्ञो वै प्रजापतिः ॥ यज्ञ ही अथर्वा है ॥ मै० सं० ३ । ९ । ६ ।] यामथर्वा मनुष्पिता दध्यङ् धियमत्नत ॥ ब्रह्माका पुत्र अथर्वा है । अथर्वाका पुत्र मनु नामवाला दध्यङ् है । यही दध्यङ् प्रजाकी उत्पत्ति पालनके लिये मनन करने से मनुपिता है, जो अग्नि होत्रमय हवि कर्मोंको प्रजाके सुखके लिये करता भया ॥ अथर्वाकी आज्ञासे मनुरूप दध्यङ् मुनि कर्म करता भया ॥ ऋग्० १ । ८० । १६ ।] त्वामग्ने पुष्करादध्यथर्वानिरमन्थत ॥ मूर्ध्नो विश्वस्य वाघतः ॥ हे अग्नि देव तुमको समस्त व्यष्टि चराचरका धारण करनेवाला शिररूप कारण महाविराट् अभिमानी अथर्वाने (अधि) अपनी स्थूल विराट् देहके (पुष्करात्) सूक्ष्म क्रियामय शक्तिसे विशेष सम्पादन किया ॥ ऋग्० ६ । १६ । १३] अग्नि वै सृष्टं प्रजापतिः ॥ अथर्वाने अग्निको ही प्रथम रचा ॥ मै० सं० १ । ६ । ८ ।] अग्नि वैं सर्वा देवता ॥ अग्नि सर्व देव स्वरूप है ॥ मै० सं० २ । ३ । १ ।] अग्निर्वा वेदं सर्वं ॥ अग्नि ही यह सब चराचर रूप है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ७ । ६ ।] अग्निर्वै योनिर्यज्ञस्य ॥ तीनो पादरूप यज्ञका उत्पत्ति स्थान, अथर्वाने उत्पन्न किया सो ही अग्नि है ॥ शतपथ

ब्रा० १। ४। ३। ५।] अग्निनाऽग्निः समिध्यते ॥ अग्नि से ही अन्य अग्नि प्रज्वलित होता है॥ तै० सं० १। ४। ४६। १।] अग्निरुत्तमः ॥ अग्नि उत्तम है॥ शतपथ ब्रा० १। ७। १। ८।] अग्निः पवित्रं ॥ अग्नि पवित्र है॥ कपिष्ठल सं० ४। ३।] प्रथमो हि यज्ञः॥ यज्ञधर्म ही प्रथम है॥ कपि० सं० ४०। २।] यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म॥ यज्ञ ही अति उत्तम कर्म है॥ कपि० सं० ४६। ६।] अग्निर्वावदेव यजनं॥ अग्नि होत्र ही सब देवताओंका पूजन है॥ कपि० सं० ३८। ६।] अग्नौ हि सर्वा देवता इज्यन्ते॥ अग्नि होत्रमें ही सब देवता पूजे जाते हैं॥ कपि० सं० ३८। ६।] मुखं देवाना मग्निः॥ विराट् रूप अग्निके सब देवतामय अंगोंका मुख अग्नि है॥ जैसे अपने मुखसे खाया हुआ अन्नसे सब देहके नेत्र पग आदि अंगोंका पोषण होता है॥ तैसे ही अग्निमें हवन किया हुआ हविसे सब ब्रह्माण्डवर्ती देवताओंका पोषण होता है॥ कपि० सं० ३१। २०।] अग्नि र्वै देवानामन्नपतिः॥ अग्नि सब देवताओंका अन्नदाता है॥ काठक सं० १०। ६।] अग्निना वै देवा अन्नमदन्ति॥ अग्नि होत्रके द्वाराही देवता मात्र भोजन करते हैं॥ कपि० सं० ६। ९।] अग्नि र्वै देवा नामन्नादः सोमोऽन्नमग्निनैवान्नमत्ति॥ देवताओंका अन्न खानेवाला अग्नि है, सोम रस ही अन्न है अग्नि होत्रके द्वारा ही अग्नि देवता क्षीर आदि सोम रसको भक्षण करता है॥ काठक सं० १३। १२।] अग्निं देवतानां प्रथमं यजेत्॥ सब देवताओंके मध्यमें पहिले अग्नि देवका यजन करे॥ कपि० सं० ४८। १६।] अग्नि र्वै देवानां प्रथमं॥ सब देवताओंके मध्यमें पहिला अग्निदेव है॥ ऐतरेय ब्रा० २०। १। १।] अग्नि

मुखं प्रथमो देवतानां ॥ प्रथम अग्नि देवता ही सब देवोंका मुख है ॥ ऐतरेय ब्रा० १ । १ । २ ।] इन्द्रो वै देवता द्वितीयं ॥ सूर्य दूसरा देवता है ॥ ऐ० ब्रा० २० । २ । २ ।] अग्निः सोमो वै देवानां मुखं ॥ अग्नि और सूर्य ही देवताओंका मुख है ॥ गोपथ ब्रा० १ । १६ ।] सूर्यकी रश्मि चन्द्र मण्डल पर प्रकाशित होती है, सो ही किरण चन्द्रमा रूप अन्न है [अग्निरपरा इन्द्रः पूर्वः ॥ रात्रीका ज्योति अपर रूप अग्नि है । और पर रूप सूर्य दिनका प्रकाश है ॥ मै० सं० ३ । ९ । १ ।] द्यावापृथिवी वै यज्ञस्य प्रतिष्ठा ॥ द्यौ भूमी ही यज्ञ रूप अग्नि सूर्यका आधार है ॥ कपि० सं० ४८ । १६ ।] अग्निः सर्वा देवता ॥ सदेव एव देवता विभर्ति: । असुराणां वा इमे लोका आसन् ॥ ते देवा विष्णुमब्रुवन् यावद् यंकुमारो विक्रमते तावन्नो दत्तेति ॥ स सकृदेवेमां व्यक्रमत गायत्रीं छन्दः ॥ सकृदन्तरिक्षं त्रिष्टुभं छन्दः ॥ सकृद्दिवं जगतीं छन्दः ॥ सकृद्दिशोऽनुष्टुभं छन्दः ॥ ते देवाइमाँल्लोकानसुराणामवृञ्जत ॥ ततो देवा अभवन् परासुरा अभवन् ॥ अग्नि सर्व देव स्वरूप है, सो अग्नि देव ही सब देवताओंके स्वरूपको धारण करता है ॥ ये तीनों लोक असुरोंके वशमें हुए । तम अभिमानी दैत्योंका राज्य हुआ । प्रकाश अभिमानी देवोंका राज्य नष्ट हुआ । वे सब देवता (विष्णुं) अग्निको आगे करके दैत्योंसे कहने लगे, यह बालक जितनेमें आक्रमण करे, उतना भाग हमको देना । इस प्रकार देवोंका वचन दैत्योंने स्वीकार किया । उस अग्निने गायत्री छन्द रूप पादसे एक ही वारमें इस भूमीको नाप लिया । त्रिष्टुभ छन्दरूप दूसरे पादसे एक ही वारमें अन्तरिक्षको जीत लिया । तीसरे जगती छन्दसे

एक ही वारमें द्यौको विजय कर लीया ॥ अनुष्टुभ छन्दसे एक वारमें सर्व दिशाओंको भी जीत लीया। उन छन्द अभिमानी देवोंने अग्निके द्वारा तीनों लोकोंको जीत लीया, और असुरोंका नाश किया। उसके अनन्तर देवता विजयी हुए, और असुर पराजित हुए ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३१। १।] पाप्मा वैतमः ॥ अन्धकार पाप ही तम है ॥ कपि सं० ३१। १।] मनुष्या वै विश्वेदेवाः ॥ प्रसिद्ध मनुष्य ही सब देवता हैं ॥ कपि० सं० ३१। २।] प्राणा वै देवताः ॥ प्राणधारी ही मनुष्य देवता हैं ॥ मै० सं० २। ३। ५।] प्राणो वै मनुष्यः ॥ मनुष्य मात्र ही प्राण है ॥ तैत्तरीय सं० ६। १। ११४।] वेदित्व ँ विष्णु ँ वे देवा आनयन् वामनं कृत्वा यावदयं त्रिविंक्रमते तावदस्माकं ॥ वेदित्व ँ सर्वावाइयं पृथिवी वेदिः ॥ देवताओंने व्यापक अग्निको वामनरूप यज्ञ वेदिके आकारमें करके सम्पादन किया। जितना यह वेदिवाला वामन् रूप अग्नि तीन रूपसे आक्रमण करता है उतनाही हमारी प्राप्तिका स्थान है ॥ यज्ञ वेदि ही सर्व रूप है यह भूमी वेदि है ॥ मै० सं० ३। ८। ३।]इयं विराट् ॥ यह भूमी विराट् है ॥ ३। २। ६।] नाभिः पृथिव्यां। भूमीमें यज्ञवेदि ही नाभी है ॥ मै० सं० ३। १। ३।] अग्निना वै मुखेन देवाइमाँल्लोकानभ्यजनयन् गार्हपत्येनामुंलोकं ॥ आग्नीध्रेणान्तरिक्षं ॥ आहवनीयेनामुं लोकं ॥ तस्मात्त्रेधा अग्नयः ॥ अधीयन्त एषां लोकानामभिजित्वा इन्द्राग्नीवा अपरा अग्नी ॥ अग्निरपरा इन्द्रः पूर्वः प्रजापति राहवनीयः ॥ प्रसिद्ध अग्नि मुखसे ही देवोंने तीनो लोकोंको प्राप्त किया। अग्निके प्रथम स्वरूप गार्हपत्यसे इस भूमीको जीत लीया। द्वितीय स्वरूप

दक्षिणाअग्निसे मध्य लोकका जय कीया। तीसरे स्वरूप आहवनीयसे स्वर्गको विजय कीया। उस मूल अग्निसे तीन प्रकारकी अग्नियें प्रगट हुई। तीन पद रूप अग्नि इन तीनों लोकोंका विजय करके व्यापक हैं इन्द्र और अग्नि अपरा अग्नि हैं। इन्द्र नाम अन्तरिक्ष वायु युक्त विद्युत्का है और भूमी अग्नि है। भूअग्नि और भुव अग्निरूप वायु अपरा अग्नि हैं। द्यौकी पीछली आहवनीय रूप प्रजापति सूर्य है॥ मै० सं० ३। ९। ११।] अस्मिँ ल्लोके ज्योतिर्भवति ॥ वायुरन्तरिक्षे ॥ सूर्यो दिवि ॥ इस भूलोकमें अग्नि ज्योति है, मध्यम भुवर्लोकमें वायु ज्योति है, द्यौमें सूर्य ज्योति है॥ काठक सं० २१। ३।] इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधानि दधेपदं ॥ समूढ मस्यपांसुरे ॥ अग्निने इस चरा-चर जगत्को पृथक् विभाग कर आक्रमण किया, तीन प्रकारसे, भूमी अन्तरिक्ष द्यौमें (पदं) गार्हपत्य, अन्वहार्य, आहवनीय स्व-रूपको धारण किया इस अग्निके (पांसुरे) त्रिलोक व्यापी स्वरूपमें सब विश्व ओतप्रोत हो रहा है (समूढं) भली प्रकारसे असंख्य त्रिलोकोंमें भी अग्नि वायु सूर्य स्वरूपको धारण करके व्याप्त हो रहा है। पद शब्दका अर्थ स्वरूप और स्थान है। पगवाच्य नहीं है॥ ऋग्० १। २२। १७।] विष्णु मुखा वै देवाश्छन्दो भिरिमाँ ल्लोकाननपजय्यमभ्यजयन् यद्विष्णु क्रमान् क्रमते विष्णु रेव भूत्वायजमानश्छन्दोभिरिमाँल्लोकान पजय्यमभि जयति ॥ (विष्णु मुखा) अग्नि स्वरूप ही सब देवता हैं। गार्हपत्यका अग्नि देवता, दक्षिणा अग्निका वायु, आव-हनीयका सविता है। ये तीनों देवता क्रमसे, गायत्री, त्रिष्टुम, जगती छन्दोंके अभिमानी देवता हैं। तीनों लोकोंके अन्धकार अभिमानी दैत्योंका कोई पराजय नहीं कर सकता है। छन्द अभि-

मानीं अग्नि वायु सूर्य देवताओंके द्वारा ही इन तम स्वरूप तीनों लोकोंको विजय किया। इन तीनों देवोंका समष्टि स्वरूप ही प्रजापति नामवाला अग्नि है। जो अग्नि अपने क्रम स्वरूपसे लोकोंको आक्रमण करता है। सो ही अग्नि वामनरूप यजमान होकर, इन अजित लोकोंका गायत्री आदि छन्दोंके द्वारा सर्वत्रसे विजय करता है॥ **देवासुराएषुलोकेष्वस्पर्धन्तसएतं विष्णुर्वामन मपश्यत् ॥ तꣳस्वायै देवता यां आऽलभत ततो वै सइमाँ ल्लोकानभ्यजयत् ।। वैष्णवं वामन मालभेत स्पर्धमानो विष्णुरेव भूत्वेमाँ ल्लोकानभिजयति** ॥ अधिदैव अध्यात्मके तम दैत्य और प्रकाश रूप देवोंका इन अधिभूतात्मक तीनों लोकोंमें और अधिभौतिक प्रत्यक् शरीरोंमें, सर्वदा परस्पर युद्ध होता है॥ उस यज्ञ देवताने इस वामनको देखा, उस ठिंगण पशुको अपने प्रकाशके लिये प्रोक्षण आदि संस्कार युक्त किया ॥ उसके पश्चात् प्रसिद्ध उस व्यापक अग्निने इन तीनों लोकोंको विजय किया। वैष्णव वामनको हविरूपसे स्वीकार किया, पाप रूप दैत्यसे पुण्य रूप यज्ञ स्पर्धा करनेवाला यज्ञ हीं यजमान होकर इन लोकोंको सर्वत्रसे विजय करता है॥ तैत्तरीय सं० २।१।३।१।] **ते यज्ञमेव विष्णुं पुरस्कृत्येयुः** ॥ वे छन्द अभिमानी देवता ही व्यापक यज्ञको आगे करके विजयी हुए। तम दैत्य वृत्तियोंको प्रकाशवृत्ति रूप देवोंने यज्ञके द्वारा जय किया ॥ शतपथ ब्रा० १। २।५।७।] **हविंषिनव प्राणा आत्मा देवता** ॥ देहके नौ छिद्र ही हवि हैं। और जीव देवता है ॥ काठक सं० २६। २।] **आत्मा वै हविः** ॥ देहकी इन्द्रिय समुह हुत द्रव्य है ॥ काठक सं० २६। २।] **आत्मा वै पशुः ।। प्राणो वै वनस्पतिः** ॥ जीव पशु है। प्राण ही वनस्पति है। उस प्राणके

आश्रयसे जीव स्थित है ॥ कौषीतकि ब्रा० १२ । ७ ।] आत्मा वै प्रथमश्चिति ॥ आत्मा ही सबका आधार है । काठक सं० २२ । २ ।] आत्मा वै यज्ञस्य होता ॥ प्रजापति ही यज्ञ स्वरूपको धारण करके, यज्ञका यजन कर्त्ता रूप यजमान होता है ॥ ऋग्वेदीय शांखायन संहिताके ब्राह्मणका नाम शांखायन और कौषितकी है । शां० ब्रा० ९ । ६ ।] आत्माहिवरः ॥ आत्मा ही उत्तम है ॥ मै० सं० ४ । ६ । ६ ।] आत्मा वै प्राणानामेकादश आत्मावपा ॥ अधिदैव अध्यात्म प्राणोंका चेतन ग्यारमाँ है व्यष्टि उपाधिक चेतन समष्टि अधि दैवका हवि है ॥ मै० सं० ३ । ९ । ८ ।] वैष्णवो हि यूपः ॥ यज्ञस्तम्भ ही वैष्णव है ॥ मै० सं० ३ । ९ । ३ ॥ विष्णु वैं यज्ञो वैष्णवा वनस्पतयः ॥ विष्णु ही यज्ञ है । यज्ञकी सामग्री रूप वनस्पति यें ही वैष्णव हैं ॥ तैत्तरीय सं० ५ । २ । ८ । ७ ।] वैष्णवो वै यूपः ॥ यूप ही वैष्णव है ॥ काठक सं० २६ । ५ ।] विष्णु वैं यज्ञो वैष्णवो यजमानः ॥ अग्नि होत्रका यज्ञ स्थान ही विष्णु है । और यज्ञ कर्त्ता यजमान ही वैष्णव है ॥ काठक सं २३ । ३ ।] विष्णु वैं यज्ञो वैष्णवो यजमानः ॥ विष्णुनैव यज्ञेनात्मानमुभयतः सयुजं कुरुते ॥ यज्ञ ही विष्णु है । यजन कर्त्ता यजमान ही वैष्णव है । व्यापक यज्ञके द्वारा ही अपनी समष्टि व्यष्टि आत्माको एक भावना करता है । मरणके अनन्तर यजमानकी आत्मा विराट्की सायुज्यताको प्राप्त होता है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३५ । ९ । यज्ञः प्रजापतिर्यज्ञात्मा यजमानः ॥ यज्ञ पुरुष हीं प्रजापति है यज्ञरूप विराट्की व्यष्टि आत्मा यजमान है । यही उभयात्मक समष्टि व्यष्टि यज्ञ है ॥ कपि० सं० ४१ । ७ ।] त्रिःपदा विराट् ॥ तीन स्वरूप विराट् है ॥ कपि० सं०

३१। २०।] इयं वा अग्नि वैश्वानरः॥ यही भूमी अग्नि सूर्य है॥ तै० ब्रा० ३। ८। ६। २।] असौ वैस्वराडियं विराट्॥ यह द्यौं ही स्वराट् और यह भूमी विराट् है॥ कपि० कठ सं० ३१। ८।] यजमानौ वै यज्ञपतिः॥ समष्टि व्यष्टि रूपसे यज्ञका स्वामी यजमान है॥ मै० सं० १। ४। ६।] अग्निना वै देवतया विष्णुना यज्ञेन देवा असुरान् प्रक्षीयवज्रेण॥ यज्ञके द्वारा (अग्निना) रुद्र देवताकी कृपासे देवोंने वज्रसे दैत्योंको नाश किया॥ मै० सं० १। ६। ६।] रुद्रो वा अग्निः॥ रुद्र ही अग्नि नामवाला है॥ काठक सं० २६। २।] इन्द्रो वै यज्ञो विष्णु र्यज्ञस्तद् यज्ञस्यैवैष आरम्भः॥ यज्ञ ही इन्द्र है जो यज्ञका आरम्भ होना ही (विष्णुः) व्यापक यज्ञ है॥ मै० सं० ४। ३। ७।] इयं पृथिवीयावती वेदिः॥ यह विस्तृत भूमी ही विष्णु नामवाली यज्ञवेदि, जहाँ तक व्यापक है॥ मै० सं० ३। ८। ६।] यज्ञ वेदिका नाम विष्णु है। उस वेदिका मध्यस्थान ही नाभी है। जिस मध्यरूप योनिमें अग्निरूप ज्योति स्थित है। उस लिंगमें चेतन रुद्र विराजमान है [अग्ना अग्निं जुह्वति॥ अग्निमें रुद्रको हविसे पूजता है॥ मै० सं० ३। ७। ९।] यज्ञो वै पशूना मायतनं॥ यज्ञ ही पशुओंका स्थान है॥ मै० सं० ४। २। ५।] यज्ञः शान्तो भवत्यधातुकः पशुपतिः पशून्॥ यज्ञ स्वामी शान्त पशुपति पशुओंकी रक्षा करनेवाला है॥ मै० सं० १। ४। ७।] रुद्रः पशूनां॥ रुद्र पशुओंका स्वामी है॥ मै० सं० २। ६। ६।] अग्निना वै मुखेन देवा इमाँ ल्लोका नभ्यजयन्॥ अग्नि स्वरूपके द्वारा ही इन लोकोंका देवताओंने जय किया॥ मै० सं० ३। ९। ७।] रुद्रं वै देवा यज्ञान्नि

रभजन्स देवानायतश्चाभिपर्यावर्तत ॥ ते देवा एत च्छतरुद्रियमपश्यँस्ते नैनमशमयन्यच्छतरुद्रियं जुहोति तेनैवैनं शमयती ॥ रुद्रको (वै) भूलकर देवोंने यज्ञसे अलग कर दीया उस रुद्रने देवोंको घेरकर दण्ड दीया। वे सब देवता दुःखी होकर इस शतरुद्रियको देखते भये। उस शतरुद्रिय मंत्रोंसे इस रुद्रको शान्त किया। जो शतरुद्रिय मंत्रोंसे हवन करता हैं। उस हवनसे ही इस रुद्रको प्रसन्न करता है॥ काठक सं० २१। ६। विराजो वै योनेः प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥ अथर्वाने विराट् रूप यज्ञ योनिसे ही सब प्रजा रची ॥ मै० सं० १। १०। ८।] इस विराट्का स्वामी रुद्र ही है॥ यच्छतरुद्रियं जुहोति भागधेयेनैवैनं शमयति ॥ अङ्गिरसो वै स्वर्गलोकंयन्तः ॥ नाभानेदिष्ठने उपदेश दिया। जिस शतरुद्रिय मंत्रोंसे हवन करता है उस हवि भागके देनेसे ही इस रुद्रको शान्त करता है। अंगिरा नामके ब्राह्मण भी इस रुद्रको प्रसन्न करके ही प्रसिद्ध स्वर्ग लोककों प्राप्त हुए हैं। कपिष्ठल कठ सं० ३१। २१।] अङ्गिरसो वै स्वर्गं लोकं यन्तस्ते मेखलाः संन्यकिरन् ॥ ततः शरउदतिष्ठत् ॥ यच्छरमयी मेखला भवति ॥ रुद्रकी कृपासे ही अङ्गिरा महर्षिगण स्वर्ग लोकको जाते समय, उनोंने अपनी कही वंध मेखलाओंको भूमी पर विखेर दिया। उनविकीर्ण हुई मेखलाओंसे मूंज नामका घास प्रगट हुआ, उस मूंजकी मेखलाको उपनयन संस्कारके समय ब्रह्मचारी बालक धारण करता है॥ कपिष्ठल कठ सं० ३६। १।] आर्य प्रजा अग्निमें रुद्रकी उपासना करके अभिलषित फल प्राप्त करतीथी। आज उत्तम वैदिक धर्मका नाम मात्र है ॥ ३२ ॥

॥ इति श्री ऋग्वेदीयरुद्र द्वितीय सूक्त ॥

राजपीपळा संस्थान निवासी श्री मत्परमहंस
परिव्राजकाचार्य स्वामी शंकरानंदगिरि विरचिता ॥
॥ गौरी व्याख्या ॥

॥ अथ ऋगवेदीय तृतिय सूक्त प्रारम्भ ॥

स इद्दनाय दभ्याय वन्वञ्च्यवानः सूदैरमिमीत वेदिम् । तूर्वयाणो गूर्तवचस्तमः क्षोदो न रेत इतऊँति सिंचत् ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(इत्) जो (वन्वन्) उपासना करनेवालोंको (दानाय) अभिलषित . फलदेनेके लीये है (च्यवानः) वैदिक अग्नि होत्रके त्यागनेवाले राक्षसोंको (दभ्याय) नाश करनेके लिये है (सूदैः) स्वयं पाकमय यज्ञके करनेवालोंकी प्रार्थनाओंसे प्रसंन होकर (अमिमीत) वहुत यज्ञोंकी सामग्री देनेवाला है (क्षोदः न) जैसे मेघ गर्जना के सहित (रेतः) जलको (सिंचत्) वर्षाता है (गूर्त वचः तमः) अत्यन्त भयानक गर्जना करनेवाला (तूर्वयाणः) शीघ्र रूपको धारण करनेवाला (वेदिं) यज्ञ वेदिमेंसे प्रगटः

होकर वेदिको (इतः) घेरकर (ऊति) स्थित हुआ ॥ नाभानेदिष्ठ नामके ब्रह्मचारीकी स्तुतिसे प्रसंन होकर (सः) उस रुद्रने यज्ञका अवशिष्ट धन नाभानेदिष्ठको दीया ।। ऋग्० १० । ६१ । २ ॥

व्याख्या:—जव गुरूके पाससे विद्या पढकर नाभानेदिष्ठ पिताके पास आकर अपना भाग मागने लगा तव श्राद्धदेवने कहा हे पुत्र मैंनेतो तेरे वडे भाईयोंको धन बांट दिया ॥ अव मेरे पास धन नहीं है ।। किन्तु एक स्वर्गमें जानेके लिये गुप्त शतरूदिय मंत्ररूप धन है ।। उस शतरूद्रियको तेरे प्रति उपदेश करता हूँ ।। जिसके द्वारा बहुत धन प्राप्त करेगा ॥ इस समय अङ्गिरा नामके महर्षि यज्ञ करते हुए भी स्वर्गको प्राप्त नहीं होते ।। क्योंकि जव तक यज्ञस्वामी रूद्रको प्रसन्न नहीं करेंगे तव तक असंख्य यज्ञ करने पर भी उनको स्वर्ग प्राप्त होना अति दुर्लभ है ।। हे पुत्र तू उनके बहुत कालसे किये यज्ञ आरंभ को शतरूद्रियसे सफल कर, जिस शतरुद्रियके देवताकी कृपासे अङ्गिरा नामके ब्राह्मण समुह स्वर्गको जावें, इस प्रकार पितासे शतरूद्रियको प्राप्त कर नाभानेदिष्ठ, अंगिराओंके यज्ञमें गया ।। उसने शतरूद्रिय मंत्रोंसे हवन कर रुद्रकी शान्तिके अनन्तर नाभानेदिष्ठको यज्ञका सव धन देकर अङ्गिरा गण स्वर्गको गये ।। उस यज्ञ वेदिमेंसे काले मृगके चर्मको धारण किये हुए रूद्र भगवान् यज्ञ पशुओंको घेरकर स्थित हुए ॥ और नाभानेदिष्ठसे कहा हे ब्रह्मचारी यह यज्ञका अवशिष्ठ भाग मेरा है, तेरा नहिं, रुद्रके स्वरूपको न जानकर नाभानेदिष्ठने कहा यह पशु मात्र धन अङ्गिराओंने स्वर्गमें जाते समय मेरेको दिया है, इस लिये मेरा धन है रुद्रने कहा तेरे पितासे जाकर पूछ यज्ञका अवशिष्ठ भाग किसका है, रुद्रके प्रश्नको सुनकर नाभाने दिष्ठ पिताके पास गया । और पितासे कहने लगा, हे पिता कृष्ण

मृगके चर्मरूप वस्त्रधारी एक पुरुषने मेरे धनको अपना धन कह कर मेरेको आपके पास भेजा है॥ बडी गर्जना करनेवाला वह पुरुष कौन है॥ इस प्रकार पूत्रके वचनको सुनकर श्राद्धदेव मनुने कहा हे पुत्र तू एकाग्रचितसे मेरे वचनको सुन, जो शत रुद्रिय मंत्रका देवता रुद्र है, सोही वह मृगचर्म धारी पुरुष है। जैसे मेघ सब प्राणियोंको अपनी गर्जनासे भयभीत करता हुआ प्राणि मात्रके सुखके लिये जल वर्षाता है॥ मेघकी गर्जना दुःख रूपसे प्रतीत होने पर भी वर्षा रूपसे सुख उत्पादक है॥ तैसेही अत्यन्त भयानक वाणी परीक्षा रूपसे दुःखदायी प्रतीत होनेपर भी उपास-कोंको मन इच्छित फल देनेके लिये ही रुद्रका वही सौम्य स्वरूप है॥ और वैदिक कर्मका त्याग करनेवाले राक्षसोंको मारनेके लिये वही घोर स्वरूप है॥ जे गृहस्थ स्वयं भोजन बनाकर अग्नि होत्र करते हैं उन स्वयं पाकीयोंकी प्रार्थनाओंसे प्रसन्न होकर-उपासकोंको बहुत यज्ञोंकी सामग्री देनेवाला स्वामी है॥ शीघ्र तेजोमय दिव्यरूपको धारण करनेवाला॥ वेदीका स्वामी वेदीसे प्रगट होकर यज्ञ वेदीके पशु-ओंको घेर कर स्थितहुआ॥ अङ्गिराओंके यज्ञमें तेरीकी हुई विधिवत् स्तुतिसे प्रसंन होकर तेरे को दर्शन दिया है॥ उसका ही वह यज्ञका-अवशिष्ठ भाग है॥ रुद्रकी अद्भुत महिमाको पितासे सुनकर रुद्रकी स्तुति करता भया उस नाभानेदिष्ठ की स्तुतिसे प्रसंन होकर परम दयालु उस रुद्रने नाभानेदिष्ठ ब्रह्मचारीको सब धन दे दिया [स पुनरेत्या ब्रवीत्॥ तव हवाव किल भगव इद मिति मे पिताऽऽहेति सोऽब्रवीत्॥ तदहंतुभ्य मेव ददामियएव सत्यमवादी रिंति॥ सोनाभानेदिष्ठ पिताके पाससे लोटकर रुद्रके पास आकर बोला हे भगवन्रुद्र निश्चय, यह धन आपका है, ऐसा मेरे पिताने कहा है॥ सो रुद्र

वाला हे नाभानेदिष्ठ तू सत्यवादी है, इस लिये मैं उस सब धनको तेरे प्रति देता हूँ इस प्रकार कहकर रुद्रने--सब धन नाभोनेदिष्ठ को दे दिया ॥ ऐतरेय ब्रा० २२ । १० ॥ तैत्तरीय सं० ३ । १ । ९ । ४–५–६] अन्यव्रतो अमानुषः ॥ त्वं तस्यामित्रहन् वधर्दासस्य दम्भय ॥ हे शत्रु हन्तादेव तुम शत्रु के मारने वाले हो ॥ जो वैदिक कर्मका त्यागकर अन्य मार्ग का त्याग करने वाला, मनुकी मर्य्यादा का त्याग करने वाला, अनार्य है उस (दासस्य) अनार्यका नाश करो ॥ (अन्यव्रतः) श्रुति स्मति व्यतिरिक्त कर्मा श्रौत स्मार्त कर्मसे रहित (अमानुषः) मनुष्य संव्यवहाराद्वाह्या असुरप्रकृतिरित्यर्थः मनुष्यके उत्तम व्यवहार से पृथक् असूर स्वभाव वाला है सो मनुष्य राक्षस अर्थ वाला है सायण भाष्य ॥ ऋग १० । २२ ८] राक्षस स्वभाव वाले मनुष्य का उसके पापसे ही रुद्र नाश करता है और उपासकके वैदिक कर्मसे प्रसंन हो कर सब कुछ देता है ॥ १ ॥

मध्यायत्कर्त्वमभवदभीके कामं कृण्वाने पितरि युवत्याम् ॥ मनानग्रेतो जहतु र्वियन्ता सानौ निषिक्तं सुकृतस्य योनौ ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(कामं) मैथुन सृष्टिके संकल्पको (कृण्वाने) करने वाला (पितरि) अथर्वा प्रजापति (अभिके) अन्तरिक्षके (मध्या) मध्यमें स्थित हुई (युवत्यां) विराट् रूप स्त्रीमें (यत्) जब (कर्त्वं)—मैथुन कर्मको करनेमें (अभवत्) प्रवृत हुआ ॥ तब सरस्वतीने अपने रूपको बदलनेकी इच्छा किया, उसके साथ ही प्रजापतिने भी किया ॥ उन दोनों ने अपने वास्तविक रूपको (जहतुः) त्याग कर हरिण हरिणीके आकारको धारण करके

(वियन्ता) परस्पर विहार करनेको उत्सुक हुए (सुकृतस्य) उत्तम कर्म करनेका (सानौ) अग्र भाग रूप (योनौ) योनिमें प्रजापतिने (मनानक्) स्वल्प साररूप (रेतः) वीर्य्यको (निषिक्तं) सिंचन किया ॥ ऋग् १० । ६१ । ६ ॥

व्याख्याः—मन वाणीके रूपसे मैथुन सृष्टिके संकल्पको करने वाला अथर्वा प्रजापति, आकाशके मध्यमें स्थित हुई अपनी विराट् देह रूप पूर्ण अवस्था वाली सरस्वती में, जब मैथुन कर्मको करनेमे प्रवृत्त हुआ ॥ तब विराट्मयी वाणी देवताने, विचार किया यदिमें समर्थ होकर इस प्रजापति के उत्पन्न किये हुए शरीरसे मैथुन कर्म करके प्रजा उत्पन्न करूँगी तो मेरी प्रजा भी मेरा ही अनुकरण करेगी ॥ इस मर्य्यादा ध्वन्सी देहको बदलकर अन्य स्वरूप को धारण करके मैथुनी सृष्टि रचुँगी ॥ प्रजापति भी सावित्री के अभिप्राय को जानगया ॥ वेदोनों—अपने वास्तविक देहका त्याग कर, हरिण हरिणीके स्वरूपको धारण करके परस्पर समागम करनेके लिये तैयार हुए ॥ शद्ध उच्चारण करनेका विराट् वाणी उत्तम-स्थान है, उस वाणीके अगले भाग रूप योनिमें अथर्वाने स्वल्प सार रूप वीर्य्यको स्थापन किया [तपो वै तप्त्वा प्रजापतिर्विधायात्मानं मिथुनं कृत्वा ॥ ब्रह्माके पुत्र अथर्वाने मैथुनी सृष्टिके क्रमको विचार कर अपनी विराट् देहके मन और वाणी रूपसे दो भाग किया ॥ मैत्रायणी सं० १ । ९ । ६] कामो वै गन्धर्वो वाचं स्त्रियं ॥ प्रसिद्ध सृष्टि संकल्प ही गन्धर्व है ॥ और संकल्प की क्रिया रूप वाणी ही स्त्री है । काठक सं० २४ । १] एको हि प्रजापति स्त्रयः ॥ एक अथर्वा ही पिता और पुत्र पुत्री रूपसे तीन नाम वाला है ॥ काठक सं० ३३ । ८] स्त्री पुरुष की अभिन्न अव-

स्था का नाम ही अथर्वा है। और विभाग का नाम ही दध्यङ् है॥ इस दध्यङ् की स्त्री पुरुष अवस्था ही (मन) मनु और वाणी सरस्वती है॥ [आपो वै पुष्करं प्राणोऽथर्वा॥ व्यापक अव्याकृत ही कमल है॥ प्राण ही अथर्वा है॥ २॥ शतपथ ब्रा० ६।४।२।२] **वाग्वै दध्यङ्ङाथर्वणः॥** वाणी ही दध्यङ् अथर्वण है। शतपथब्राह्मण ६।४।२।३०] **मनसैवाभिलष्य स्त्रिया ँ रेतः सिञ्चतीतिवृषा ही मनः॥** मन रूप इच्छा के द्वारा ही वाणी रूप स्त्री में वीर्यको सिंचन करता है यह मन ही चराचर व्यष्ठि स्वरूपोंकी वर्षा करने वाला वृषा नाम से युक्त है॥ श० ब्रा० ६।४।२।४] **प्रजापति वैं बृहदुक्षः॥** मन रूप प्रजापति ही महावीर्यका सिञ्चन करने वाला है॥ शत० ब्रा० ४।४।१।१४] **प्रजापति वैं मनः॥** अथर्वा ही दध्यङ् वाणीके सहित मन है शतपथ ब्रा० ४।११।२२] **अथर्यः स प्राण आसीत्॥ स प्रजापतिरभवत् स एष पुत्री॥** जो ब्रह्मा था सो ही अथर्वा हुआ॥ और वही अथर्वा प्रजापति मनुरूप दध्यङ्ङ् हूआ, सो ही मनु दध्यङ्ङ् यह पुत्री सरस्वती हुआ॥ सामवेदीय-जैमी-नीय ब्रा० २।१।१।१] **त्रेधा विहितो वै पुरुषः** ब्रह्मा अपने स्वरूपसे तीन प्रकार का होकर विविध रुपोंसे विराजमान हुआ॥ कपिष्ठल कठ सं. ३११४] ब्रह्मा कल्पभेदोंसे अनेक रुपों को धारण करता हुआ जगत् को रचता है॥ जो सृष्टि का भेद मंत्रोंमें भिन्न २ प्रतीत होता है सो भेद अपरिमित शक्ति का परिचय कराता है। जैसे शाखा भिन्न २ फैली हुई भी मूल वृक्ष से अभिन्न हैं॥ तैसे ही कल्प मन्वन्तर के भेदसे भिन्न २ सृष्टि का विकाश प्रतीत होता है सो सब ही मूल रूप ब्रह्मा है॥ २॥

पिता यत्स्वां दुहितरं मधिष्कन् क्ष्मया रेतः सं जग्मानो निषिंचत् ॥ स्वाध्योऽजनयन् ब्रह्म देवा वास्तोष्पतिं व्रतपां निरतक्षन् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(यत्) जब (पिता) पालक प्रजापति (स्वां) अपनी (दुहितरं) पुत्रीको (अधिष्कन्) आलिंगन करता हुआ (रेतः) वीर्यको (निषिंचत्) सिंचन किया ॥ वह वीर्य (क्ष्मया) भूमीके साथ मिलकर सरोवर भावको (संजग्मानः) प्राप्त हुआ (सु आध्यः) उत्तम कर्मको विचारने वाले (देवाः) महर्लोक वासी देवताओंने ध्यानके द्वारा (व्रतपां) वैदिक कर्म करनेवालोंको पालन करनेवाले (वास्तोष्पतिं) प्रकाशरूप उमाके स्वामी (ब्रह्म) व्यापक स्वरूप रुद्रको (अजनयन्) प्रत्यक्ष स्वरूप में प्रगट करके (निः अतक्षन्) सम्पादन किया ॥ ऋग्० १० । ६१ । ७ ॥

व्याख्याः—जब जगत पालक अथर्वाने अपनी विराट्मयी पुत्रीको मैथुनके समान आलिंगन करके उसमें वीर्यको सिंचन किया, वह वीर्य्य आकाशमेंसे गिरकर पृथिवीके संग मिलकर सरोवरके रूपमें परिणित हुआ ॥ उस प्रजापतिके पशुत्व धर्मको देखकर महर्लोक वासी उत्तम विचारमय कर्मके करनेवाले देवताओंने परस्पर विचार कर प्रजापतिको मारनेके लिये श्रद्धा युक्त वैदिक कर्म करनेवालोंके रक्षक नित्यज्ञान प्रकाश स्वरूप उमाका स्वामी सर्व व्यापक रुद्रको, ध्यानके द्वारा प्रत्यक्ष मायिक स्वरूपमें प्रगट करके सम्पादन किया ॥ ३ ॥

मह्ने यत्पित्र ईं रसं दिवे करवत्सरत्पृशन्यश्चिकित्वान् ॥ सृजदस्ता धृषता दिद्युमस्मै स्वायां देवो दुहितरि त्विषिंधात् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(यत्) जब (कः) प्रजापति (पृशन्यः) मैथुनी सृष्टिकी इच्छा करनेवाला (ईं) कृष्ण मृगके रूपको धारण करके (अवसरत्) बडे वेगसे दोडा (स्वायां) अपनी (दुहितरि) विराट् रूपसे प्रकाशवाली सरस्वतीमें (त्विषिं) तेजस्वी (रसं) वीर्यको (धात्) स्थापन किया (अस्मै) इस (महे) वडे (दिवे) निन्दित कर्म करनेवाले (पित्रे) पिताको मारनेके लिये (धृषता) निर्भय होकर (अस्ता) वाणको चलानेवाले (चिकित्वान्) वैदिक मार्गको विचारनेवाले (देवः) रुद्रने (दियुं) चमकते हुए बाणको (सृजत्) छोडा ॥ ऋग्० १ । ७१ । ५ ॥

व्याख्याः—जब अथर्वा प्रजापति मैथुनी सृष्टिकी इच्छा करनेवाला काला हरिणके रूपको धारण करके बडे वेगसे दोडा अपनी उषा नामकी विराट् रूपसे प्रकाश पानेवाली सरस्वतीमें तेजस्वी वीर्यको सिंचन किया ॥ इस महा निन्दित कर्म करनेवाले प्रजापति पिताको मारनेके लिये निडर होकर बाणोंके फेंकनेवाले, वैदिक मार्गको विचार करनेवाले रुद्रने प्रज्वलित बाणको छोडा **प्रजापति वै कः** ॥ प्रजापति ही कः नामवाला है ॥ मै० सं० १ । १० । १० ।] **प्रजापतिर्वा अथर्वा** ॥ प्रजापति ही अथर्वा है ॥ मै० सं० ३ । १ । ५ ।] प्रजापति शब्द, मनु, सूर्य भूमी अग्नि, वायु, इन्द्र अथर्वा ब्रह्माका वाचक है ॥ ४ ॥

मन्त्रः पान्तं रघु मन्यु वोऽन्धो यज्ञं रुद्राय मीळ्हुषे भरध्वम् ॥ द्विवो अस्तोष्य सुरस्य वीरैः रिषुध्येवमरुतो रोदस्योः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(असुरस्य) प्रजापतिके (दिवः) निन्दित कर्मसे (रघुमन्यवः) शीघ्रकोपमें भरकर (मरुतः) देवताओंने रुद्रको प्रसंन किया (वीरैः) सुन्दर कर्म करनेवाले देवोंसे प्रेरित हुआ (इषुध्वेव) वाणधारी व्याधके समान रुद्रने (रोदस्योः) स्वर्ग और भूमीके मध्य आकाशमें (पान्तं) जगत् पालक (यज्ञं) मृग रूप धारी प्रजापतिको मारडाला (मीळ्हुषे) धर्म काम अर्थ मोक्षकी वर्षा करनेवाले (रुद्राय) उमाके सहित स्वयं प्रकाशीके लीये (वः) तुम सब ऋत्विक् ब्राह्मणोंको (अन्धः) सोमरस (प्रभरध्वं (सम्पादन करना चाहीये (अस्तोषि) मैं यजमान स्तुति करता हूं ॥ ऋग्० १ । १२२ । १ ॥

व्याख्या:—प्रजापतिके मृगी गमन रूप निन्दित कर्मसे शीघ्र कोपमें भरकर अमर स्वभाववाले देवताओंने रुद्रको प्रसंन्न कर लिया, उत्तम कर्म करनेवाले देवोंसे प्रेरित हुआ, व्याधके समान धनुषके सहित बाणधारी रूद्रने स्वर्ण रजत दोनों कपालोंके बीच आकाशमें विश्व पालक प्रजापतिको मारडाला ॥ उस धर्म अर्थ कामकी वर्षा करनेवाले उमाके सहित स्वयं प्रकाशी देवके लिये तुम सब ऋत्विक् ब्राह्मणोंको सोमरस सम्पादन करना चाहीये मैं यजमान स्तुति करता हूँ [तेह देवा ऊचुः योऽयं देवः पशूना मीष्टेऽति सन्धंवा अयं चरति य इत्थ ९ स्वाँ दुहितरमस्माक ९ स्वसारं करोति विध्येमिति त ९ रुद्रोऽभ्यायत्य विव्याध तस्य सामि रेतः प्रचस्कन्द तथेन्नूनं तदास ॥ वे सब देवता पिताके वधके लिये परस्पर विचारकर कहने लगे जो यह प्रजारूप पशुओंका स्वामी रुद्र है सो मारनेमें समर्थ हैं ॥ उस रुद्रको देवताओंने कहा हे देव जो प्रसिद्ध यह पिता मर्यादा

रहित विचरता है अपनी पुत्री और हमारी बहिनको आलिंगन करता है इस (सामि) निन्दित कर्म करनेवाले मृगरूप धारी प्रजापतिको हमारे रचे हुए इस बाणसे मारो। इस प्रकार जब रुद्रसे प्रार्थना किया तब रुद्रने धनुषको तानकर बाणसे उस मृग देह धारीको मारडाला ॥ इस मृगका वीर्य गीरा उस वीर्यका भूमी पर सरोवर बन गया, और बहने लगा॥ शतपथ ब्रा० १। ६। २। ३।] तामृश्यो भूत्वा रोहितं भूतामभ्येत ॥ तं देवा अपश्यन्न कृतं वै प्रजापतिः करोतीति ॥ ते तमैच्छन्य एन मारिष्यत्येतमन्यो न्यस्मिन्नाविन्दं स्तेषां याएव घोरतमास्तन्व—आसंस्ताएकधा समभरं स्ताः संभृता एष देवोऽभवत् ॥ तदस्यै तद्भूतवान्नाम इति ॥ उस मृगी रूप उषा पुत्रीको देखकर प्रजापति भी मृग होकर मैथुनकी इच्छासे मृगीके समीप गया ॥ उस मृगको देवताओंने देखा, अवश्य यह प्रजापति, निन्दित कर्मको करता है, देखनेके अनन्तर उस मृगके कर्मको निन्दा करते हुए, वे सब देवता परस्पर एक दूसरेको कहने लगे, इस मृगको कौन मारनेमें समर्थ है ॥ इस विचारके करने परभी मारनेको कोइ भी समर्थ न मिला ॥ तब देवताओने दृढ निश्चय किया अपने प्रत्येक देहमें, जो सबका नियंता घोर देहधारी रुद्र है, उन प्रत्येक् देह उपाधिक अन्तर्यामीको ऐक्य भावनासे मिलायकर प्रत्यक्ष प्राप्त करें॥ मर्य्यादा रहितको दण्ड देनेवाले, उस घोर शरीरोंके अभिमानी देवको एक व्यापक स्वरूपसे सम्पादन किया ॥ परस्पर देवता कहने लगे यह सत्य स्वरूप रुद्र प्रगट हुआ ॥ आजसे इसका नाम भूत पति हुआ ॥ तं देवाः अब्रुवन्न यं देवैः प्रजापति रकृत मकरि मं विध्येति ॥ स तथेत्य ब्रवीत्स वै वो वरं

वृणा इति॥ वृणीष्वेतिस एतमेव वरमवृणीत पशूना माधिपत्यं॥ तदस्यै तत्पशुमन्नाम॥ उस देवको देवताओंने कहा, हे देव यह प्रजापति मृग रूपधारी निश्चय अयोग्य कर्मको करता है, इस वाणसे मार, जव देवोंने ऐसा कहा, तव उसने अंगिकार किया॥ फिर रुद्रने देवोंसे कहा मैं जिस वरको मागूँ उस वरको तुम सव स्वीकार करो, रुद्रके वाक्यको सुनकर सव देवोंने अनुमोदन किया, और कहा तुम माँगो उसके अनन्तर उस देवने पशुओंका अध्यक्षपना माँगा। यही रुद्रकी निरभिमानतामयी भिक्षा है उस वरसे रुद्रका पशुपति नाम हुआ॥ तमभ्या यत्या विध्यत्स विद्ध ऊर्ध्वं उद प्रपतत्॥ तमेतं मृग इत्या चक्षते य उएव मृगव्याधः स उएव सयारोहित्सा रोहिणी यो एवेषु स्त्रि काण्डा सो एवेषु स्त्रि काण्डा॥ उस रुद्रने वाण युक्त धनुषको तान कर, उस मृग रूपी प्रजापति को मार डाला॥ वाणसे ताडित हुआ मृग उपरको मुख करके वेगसे गिरता भया उस मृगको-आकाश में गिरते देख कर, वे सब देवता मृगशीर्ष नक्षत्र के नामसे कहने लगे, और जो रुद्र था सो ही मृगहन्ता आकाश में स्थित हुआ॥ वही मृग व्याध नक्षत्रके नामसे प्रसिद्ध है॥ जो लाल मृगीथी, सोही रोहिणी नक्षत्रके नामसे आकाशमें स्थित हुई॥ जो तीन गाँठ वाला बाण था। सोही त्रि काण्ड रूपसे आकाशमें-स्थित है॥ ऐतरेय ब्रा० १३।९।३३] रोहिणी नक्षत्रं प्रजापति र्देवता मृगशीर्षं नक्षत्र ँ सोमोदेवताआर्द्रानक्षत्र ँरूद्रो देवता॥ रोहिणी नक्षत्रका प्रजापति देवता है, मृगशीर्ष नक्षत्रका सोम देवता है॥ आर्द्रा नक्षत्रका रुद्र देवता है तैत्तरीय सं० ४।४।१०।१] सोमस्येन्वका रुद्रस्य बाहू॥ मृगयवः परस्ता द्विक्षा-

रोऽवस्तात् ॥ सोमका विस्तार मृगशीर्ष नक्षत्र समुह है, रुद्रके दो हाथ रूपसे दो नक्षत्र है, प्रथम घोर रूप मृग व्याध है, और दूसरा अघोर स्वरूप विशेष जलकी वर्षा करने वाला आर्द्रा नक्षत्र है। तैत्तरीय ब्रा० १।५।१] प्रजापति र्देवता रोहिणी नक्षत्रं मरूतो देवतेन्वका नक्षत्र रुद्रों देवता बाहू-नक्षत्रे ॥ प्रजापति रूप सरस्वती रोहिणी नक्षत्रकी देवता है॥ वायु रूप प्राण मृगशीर्ष नक्षत्रका देवता है॥ रुद्र घोर अघोर बाहु रूप मृग व्याध और आर्द्रा–नक्षत्रका देवता है॥ काठक सं० ३९। १३] प्राणो हीं सोमः॥ प्राण ही सोम है॥ कपिष्ठल कठसं० ४८।१४]-प्राणो वै वायुः ॥ प्राण ही वायु है॥ तै० सं० २।१।१५] प्राणो वै मरुतः॥ ऐतेरय ब्रा० १२।६] वाग्वै सरस्वती प्रजापतिः सर्वा देवता ॥ प्रसिद्ध सरस्वती प्रजापति रूपसे सब देवता मयी वाणी है॥ तैत्तरीय सं० ३।४।३।४] घोरो वै रूद्रः॥ घोर रूपी मृग व्याध ही रुद्र है॥ मृगो वै रूद्रः॥ चार नक्षत्रों के सहितं पांचमाँ आर्द्रा नक्षत्र समुह ही रुद्र अघोर रूप है॥ कौषीतकि ब्रा०।१६।७] तदग्निना पर्यादधु स्तन्मरूतोऽधून्वं स्तदग्निर्न प्राच्या वयत् ॥ तदग्निना वैश्वानरेण पर्यादधु स्तन्मरूतोऽधून्वं स्तदग्नि वैंश्वानरः॥ प्राच्या वयत्तस्य यद्रेतसः प्रथम मुददीप्यत ॥ तदसावादित्यो ऽभवत् ॥ यद् द्वितीयमासीत् तद्भृगुरभवत्॥ तंवरूणेन्यगृह्णीत ॥ तस्मात्स भृगुर्वारूणि रथ यत्तृतीय मदीदेदिवत आदित्या अभवन् ॥ येऽङ्गारा आसंस्तेऽङ्गिरसोऽभवन् ॥ यदङ्गाराः पुनरावशान्ता उददीप्यन्त तद्बृहस्पतिरभवत्॥ देवताओंने प्रजापति के

वीर्यको अग्निको सोंपा उस वीर्यको अग्निने अपने तेजके द्वारा, सर्वत्रसे घेरकर गाढा करने लगा–और उस वीर्य को वायु सुखाने लगा॥ उस पतले वीर्यको बाह्य अग्नि कठिन करने में समर्थ न हुआ, फिर देवताओंकी जठराग्निरूप वैश्वानरने अपने तेजके द्वारा, जिस वीर्य को–देवताओने अग्निको सौंपा था, उस पवित्र वीर्य को चारों ओरसे रोककर उसको द्रवित भावसे घनीभूत किया, और उसीको वायु ने शुष्क कीया, उस वीर्य्यका जो पहिला–भाग अति प्रकाशमान हो रहाथा सो तेजही यह सूर्य्य मण्डल हुआ॥ वीर्यका जो दूसरा भाग प्रकाशित हो रहा था, सो ही तेज भृगु ऋषि रूपसे महर्लोक वासी वरुणने गृहण कर लिया इस हेतुसे ही भृगु वरुण पुत्र कहा जाता है॥ वीर्य्यका जो तीसरा भाग अत्यन्त प्रदीप्त हो रहा था, उससे ही बारा आदित्य देवता प्रगट हुआ, और जो अङ्गार-समूह प्रज्व-लित हो रहा था, उससे वे सब महर्षि अंगिरा गण प्रगट हुए॥ जे अङ्गार समूह कुछ-शान्त रूपसे प्रकाशित हो रहे थे, उस समुह से–बृहस्पति उत्पन्न हुआ॥ ऐतरेय ब्रा० १३। १०]

तद्वा इदं प्रजापते रेतः सिक्तमधावत्॥ तत्सरोऽभवत त्ते देवा अब्रुवन् मेदं प्रजापते रेतो दुषदिति यदब्रुवन् मेदं प्रजापते रेतो दुषदिति तन्मादुषमभवत्तन्मा दुषस्य मा दुषत्वं मादुषं हवै नामैतत् यन्मानुषं सन्मानुषमित्या चक्षते परोक्षेण परोक्षप्रिया इव हि देवाः॥ मृगने मृगीमे जिस वीर्यको सिंचन किया उस वीर्य के बहुत होने से भूमी पर गिर कर सरोवर बन गया॥ उन महर्लोक वासी देवताओने कहा यह वीर्य प्रजापतिका स्पर्श करने योग्य पवित्र है, यह समस्त सौर जगत् प्रजापति के

स्त्री पुरुष स्वरूपका रज वीर्य्य है ॥ इस प्रकार देवता परस्पर कहने लगे, यह वीर्य दोष रहित हुआ ॥ इस वीर्यका सर्व दोष रहित होना ही पवित्र पना है जो दोष रहित वीर्य है, सो ही मनुष्य के स्वरूपको प्राप्त हुआ, उस वीर्य से बने हुये भृगु अंङ्गिरा बृहस्पति को मनुष्य इस नामसे न कहते हुए देवता, मादुष परोक्ष इस नामसे कहते हैं ॥ देवों को अपरोक्ष नाम प्रिय नहीं, परोक्ष नाम ही प्रिय है। मनुका वीर्य ही मादुष नामसे प्रसिद्ध है उससे महर्षि मनुष्यों की उत्पत्ति हुई, उन ऋषियोंसे आर्य मनुष्य मात्र उत्पन्न हुए ॥ इस लिये ही भृगु, अंगिरा आदि आर्य प्रजाके मूल पुरुष गोत्र प्रवर्त्तक हैं, इन ऋषियों के ही हम वैदिक धर्म मानने वाले पुत्र हैं ॥ ऐ. ब्रा० १३। ९। ३३]

यानि परिक्षाणा न्यासं-स्ते कृष्णाः पशवोऽभवन् ॥ या लोहिनी-मृत्तिका ते रोहिता अथयद्भस्माऽऽसीत्॥ तत्परूष्यं व्यसर्पंद्गौरो गवय ऋश्य उष्ट्रो गर्दभ इतिये चै-तेऽरूणाः पशवस्ते च ॥ वीर्य के काले कोयले थे उन से कृष्ण वर्ण वाले पशु मात्र उत्पन्न हुए ॥ जो वीर्य लाल मृत्तिकाके रूपमें हुआ, उससे लाल वर्ण के पशु मात्र प्रगट हुए ॥ जो वीर्य की भस्मथी उससे भयानक शब्द करने वाले और बहुत वेगसे दोडने वाले प्राणी प्रगट हुए ॥ गौर वर्ण विचित्र रंग के हिरण बारासिंगा रोज, काले हरिण-घोडे, गधा, हाती. ऊँट. व्याघ्र. सिंह आदि असंख्य प्राणि उत्पन्न हुए ॥ ऐतरेय ब्रा० १३ । १०] जो वीर्यका सरोवर हुआ था— सो महा विराट् के नीचले भाग रूप चाँदी मयी भुमी में हुआ है ॥ उस वीर्यका तेज ही सूर्य है, और तेज रहित भाग ही अपना भूलोक है ॥ उस कालकी भूमीका मुख्य स्वरूप (मूजवान्) हेम

कूट -हिन्दुकुश (श्वेतगिरि) सफेद कोह (क्रौञ्चगिरिः) कारा कुरम् (गिरिः) कैलासके विस्तृत मैदानमें आर्य प्रजाके सहित सब प्राणियोंकी उत्पत्ति हुई है ॥ मनरूप प्रजापतिके नामका मान सरोवर सरस्वतीके नामकी सरस्वती नदी ॥ रोहिणीके नामका लोहित्य गिरि है ॥ लोहित्य सरसे ब्रह्मपुत्रा नदी प्रगट हुई ॥ और रुद्रने कैलासमें वास किया है, रुद्रके दो रूप हैं ॥ घोरका वास मूजवान् पर्वतमें ॥ अघोरका गौरीशंकर पर्वतमें ॥ दोनोंके मुख्य स्वरूप रुद्रका वास कैलासमें है ॥ एकही रुद्र तीन स्थानमें तीन रूपसे व्यापक है [रुद्रः खलु वै वास्पोष्पतिः ॥ निश्चय रुद्रही वास्तोष्पति है ॥ तैत्तरीय सं० ३ । ४ । १० । ३ ।] नमो रुद्राय वास्तोष्पतये ॥ यज्ञ स्वामी रुद्रके लिये मेरा प्रणाम हो ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३ । ७ । ९ । ७ ।] मृग व्याध आर्द्रास्वरूप रुद्र अपने सौर जगत्से वहुत दूरी पर होनेसे भी, इस भूलोकवर्ती हिमालयके तीनों शिखरोंमें स्थित है, और सब प्राणियोंके चक्षु. कण्ठ हृदयमें चेतन रूपसे विराजमान है ॥ और अग्नि वायु सूर्यके मध्यमें व्यापक है ॥ [प्रजापति वैं त्रीन्महिम्नोऽसृजताग्नि ९ वायु ९ सूर्यं ते चत्वारः पिता पुत्राः सत्रमासत ॥ ते स्वेद ९ समवैक्ष ९ स्तदभवत् तद्वा अस्यैतन्नामाभूदिति सर्वमभूदिति तद्वा यस्यैते नामनी क्रूरे अशान्ते ॥ तस्मादेतेन गृहीतव्ये क्रूरे ३ह्येते अशान्ते ॥ प्रजापति वैं स्वाँ दुहितरमभ्यकामयतोष स ९ सारो हिद भवत्ता मृश्यो भूत्वा ध्यैत तस्माअपव्रतमच्छदयत तमायतयाभिपर्यावर्तत ॥ तस्माद्वा अविभत्सोऽब्रवीत पशूनांत्वा पतिं करोम्यथमे मास्था इति ॥ तद्वा अस्यै तन्नाम पशुपति रिति तमभ्यायत्या विध्यत्सो

ऽरोदोत तद्वा अस्यं तन्नाम रुद्र इति तेवा अस्यैते नामनी शिवे शान्ते तस्मादेते कामं गृही तव्ये शिवे ह्यस्ये ते शान्ते ॥ ततो यत्प्रथम ँ रेतः परापतत् तदग्निना पर्यैन्द्ध ॥ अथर्वा प्रजापति अपनी विराट देहके विभागको न करके अपनी क्रियात्मक देहके तीन विभाग किया ॥ अग्नि वायु सूर्यको रचा, ये तीन महिमा महा विराट् के देह के मुख प्राण नेत्र रूप है ॥ इन विभूतियोंका महर्लोक जनलोक तप लोकसे सम्बन्ध है । अथर्वा अपनी महिमा रूप पुत्रों के सहित असंख्य-ब्रह्मांण्डो की रचना करता हुआ मैथुनी सृष्टि के विना पूर्ण न हुआ ॥ वे चारो-मैथुनी सृष्टिके विचारमय यज्ञको-विचार करने में निमग्न हुए ॥ प्रजापतिने विराट्मयी वाणी की देवताको अप्सरा के आकारमें प्रगट करके उसमें मैथुनी सृष्टि रचने की इच्छा किया ॥ उस पिताके भाव को जानकर सो सावित्री मृगी बन गई उस अपनी उषा पुत्री रूप मृगी को देख कर प्रजापति भी कृष्ण मृगके रूपको धारण करके मृगीके समीप मैथुन की इच्छासे गया । रन अग्नि वायु आदित्य देवताओंने पिताके अयोग्य व्यवहार को देखकर रुद्र को प्रसन्न किया, देवों की प्रार्थनासे रुद्र प्रगट हुआ, वे सब देवता-(रुवेदं) सबके सार रूप परम कारणको बडी प्रेमकी दृष्टिसे देखते हुए कहने लगे सबका सार रूप देव प्रगट हुआ, यह भूत पतिके नामसे प्रख्यात होगा ॥ जो प्रजापतिके मारनेके लिये प्रगट हुआ है ॥ देवोके कहनेसे रुद्र प्रजापति के समीपगया,—उस भयंकर देवको देखकर प्रजापति डर गया ॥ उस देवसे अथर्वाने कहा हे देव तू मेरे पास मत खडाहो मैं तेरेको सब प्राणि मात्र पशुओंका पशुपति बनाऊँगा ॥ उसके अनन्तर धनुष को खींच कर वाण से प्रजापतिका शिरकाट डाला ॥

उस मृग रूपसे ढके हुए पिताको मारकर (सः अरोदीत्) सो देव रोया इस हेतुसे सो देवका नाम रुद्र हुआ ॥ प्रजापतिने फिर अपने वास्तविक स्वरूपमें प्रगट होकर रुद्रसे कहा हे देव तुम्हारा क्रूर रुप दुष्टोंको दण्ड देनेके लिये आकाशमें मृग व्याध नामसे स्थापन करो और शान्त स्वरूपको आर्द्रा नक्षत्रके रूपसे स्थापन करो ॥ ऐसा कहकर प्रजापतिने अपनी मृग और मृगी देहको मृग शीर्ष नक्षत्र और रोहिणीके रूपमें स्थापन किया ॥ उसके अनन्तर प्रजापतिने कहा इस रुद्रके दो रूप हैं, एक मृग हन्ता क्रूर अशान्त मृग व्याध है ॥ और दूसरा शान्त शिवरूप आर्द्रा है ॥ इस रुद्रके दो नाम अशान्त और क्रूर है उन दोनों नामोंको संकट के विना स्मरण न करे ॥ क्योंकि जो कोई विना कष्टसे बुलाता है सो उपासक अपराध करता है ॥ इस लिये अति दुःखके समय उस क्रूर स्वरूपका ध्यान करे ॥ और सव सुखकी प्राप्तिके लिये रुद्रके शान्त शिव इन दोनों नामोंको सर्वदा स्मरण करे ॥ रूद्र नामके स्मरण करनेसे चारों नामोंका स्मरण होता है ॥ रुद्र नामके स्मरणसे सव दुःखके मूलका नाश होकर, सव सुखकी प्राप्ति होती है ॥ उसके वाद उन देवताओंने दूर गिरे हुए वीर्यको अग्निको सौंप दिया उस वीर्यको अग्निने अपने तेजसे घेर कर कठिन करने लगा ॥ यह अग्नि महा विराटकी भौतिक अग्नि है, और अधिदैवरूप अग्नि देवता है ॥ अग्नि और वैश्वानरसे परिपक्व होकर प्रथम वीर्य ही सूर्य और भुमी रूप प्रगट हुआ ॥ अपने सूर्यके समान असंख्य सूर्य महा विराटमें हैं ॥ जो रुद्र है सोही भूतपति और पशुपति है ॥ कृष्ण यजु मैत्रायणी संहिता ४ । २ । १२ ।]

सकिल पितरं प्रजापति मिथुणा विध्यन्त मनु शोचन्न रुद्रत ॥ तद्रूद्रस्य रुद्रत्वं ॥ निश्चय सो देवने बाणसे उस

पिता प्रजापतिको मारकर पीछेसे शोक करके रोया वही रोना रुद्रका रुद्र पना है निरूक्त भाष्य ३ । ४ ।] लुप्त हुई औपमन्यव संहिताका यह मंत्र है॥ **वाग्वै विराट्** ॥ विराट् ही सरस्वती है मै० सं० ३ । २ । १० ।] **यज्ञो वै गौः** ॥ सरस्वती ही यज्ञ है ॥ तै० ब्रा० ३ । ९ । ८ । ३ ।] **सरस्वती हि गौः** ॥ सरस्वती गौ रूप वाणी है ॥ शत० ब्रा० १४ । २ । १ । ७ ।] **वाग्वै ब्रह्म** ॥ सरस्वती ही व्यापक है॥ ऐ० ब्रा० २ । ६ । ३ ।] **गोस्तु मात्रा न विद्यते** ॥ वाणीका अन्त नहीं है ॥ काण्व सं० ३ । ५ । ८ । ४ ।] **वाग्विष्णुर्योनिं** ॥ वाणीको सबका प्रसव कर्त्ता जानों ॥ कौषितकी ब्रा० ८ । ५ ।] **वाग्देवत्यो ह्येव सावित्रीः** ॥ वाणीकी देवता ही सावित्री है ॥ कौ० ब्रा० ८ । ३ ।] **वाचं सरस्वतिं** ॥ वाणीको सावित्री जानों ॥ मा० सं० ९ । २७ ।] **वाग्वै सरस्वती** ॥ वाणी देवता ही सरस्वती रूप सावित्री है ॥ काठक सं० ३२ । १ ।] **वेदिरेष वै प्रजापतिः** ॥ विराट योनि ही प्रजापति रूप सरस्वति है । मै० सं० ४ । ५ । ९ ।] **इयं विराट्** ॥ यह सरस्वती ही विराट् है ॥ अथर्वण १४ । २ । ७४ ।] **विष्णु आशानां पतिः** ॥ सरस्वती दिशाओंकी स्वामी है ॥ तै० ब्रा० ३ । ११ । ५ । २ ।] **अदितिः पुरुषो दिशा पतिः**] पूर्ण विराट् रूप अदिति ही दिशाओंकी स्वामी है ॥ तै०ब्रा० ३ । ११ । ५ । ३ ।] **अदितेः सरस्वति**। अमृतका ही विकाश विराट् है मा० सं० ८ । ४३ ।] **वाचस्पति विश्व कर्माणं** ॥ वाणी रूप विराट्का स्वामी अथर्वा है ॥ यही अथर्वा सरस्वती स्वरूप है ॥ मा० सं० ८ । ४५ ।] **वाग्वा अजो वाचो वै प्रजा विश्वकर्मा जजान** ॥ वाणी रूपही ब्रह्मा अथर्वा है ॥ वाणी से ही प्रजा प्रगट हुई ॥ श० ब्रा० ७ । ५ ।

२ । ३१ ।] वाग्वै विश्वकर्म ऋषि र्वाचाहीदं सर्वं कृतं ॥ तस्माद्वाग्विश्व कर्म ऋषिः ॥ संकल्प पुरुषकी क्रियामयी वाणी सर्वज्ञ सब जगत्की कर्त्ता है सरस्वतीके द्वारा ही यह चराचर प्रपंच रचा है ॥ इस हेतु से ही ब्रह्मा अथर्वा स्वरूप ही सर्वज्ञ सावित्री विराट् है ॥ चेतनमें भेद नहीं है, कार्य क्रियाके भेदसे एक ही चेतनके अनेक नाम हैं ॥ शतपथ ब्रा० ८ । १ । २ । ९ ।] प्रजापतिः सर्वा देवता ॥ ब्रह्म। सर्व देव स्वरूप ही है ॥ तैं० सं० ७ । ५ । ६ । ३ ।] प्रजापति र्वा एक आसीत ॥ सोऽकामयत बहु मनुः स्यां प्रजायेयेति ॥ स आत्मा न मैट्ट समनोऽसृजत ॥ तन्मन एक धासीत्तदात्मान मैट्ट तद्वाचमसृजत ॥ सा विराडेकधा सीत्सात्मान मैट्ट सा गामसृजत । गौरेकधासीत्सात्मानमैट्ट सेडामसृजत ॥ सेडेकधासीत्सात्मान मैट्ट सेमान् भोगान सृजत यैरस्या इदं मनुष्या भुञ्जत एतेवा अस्याः भोगाः ॥ गौ र्वै वाग्वै विराट् गौरिडा ॥ एक अद्वितीय ब्रह्मा ही प्रथम था, उसने विश्व रचनेकी इच्छा किया, मैं एक सूत्रात्मा देहधारी हूँ ॥ मैं इस देहसे महा विराट् देहको धारण करके उस देहमें अथर्वा के नामसे प्रख्यात होता हुआ असंख्य रूपधारी मनु होऊँ ॥ इस ईक्षणके साथ ही वह ब्रह्मा अपनी सूक्ष्म देहको विभक्त करनेमें समर्थ हुआ ॥ उस ब्रह्माने मन स्वरूप अथर्वाको रचा ॥ सो अथर्वा रूप मन एक रूप से स्थित हुआ, अपनेको विभक्त करनेमें समर्थ हुआ । उस मनात्मक अथर्वाने सरस्वतीको रचा ॥ सो विविध स्वरूपसे विराजमान एक वाणी रूप सेथी सो विराट्मयी देवीने अपनेको विभक्त करनेमें समर्थ हुई उसने (गां) प्रकाशात्मक द्यौको रचा ॥ द्यौ एक प्रकाश रूपसे

-युक्तथा, सो द्यौ देवता अपनेको विभक्त करनेमें समर्थ हुआ उस द्यौ देवताने इडाको रचा, वह पृथिवी देवता एक रूपसे था ॥ सो भूमी देवता अपनेको विभक्त करनेमें समर्थ हुआ ॥ उस भूमी देह धारी चेतन देवताने इन भोगोंको रचा ॥ इस भूमीके जिन् नाना रूपोंसे यह चराचर व्याप्त है, इस भूमीके इन भोगोंको मनुष्य भोगते हैं ॥ गौ रूप सरस्वती है ॥ गौ रूप विविध देवताओंका द्यौ स्थान है ॥ और नाना भोगरूप दूधके देनेवाली भूमी गौ है ॥ मैत्रायणी संहिता ४। २। ३।] **मन एव वै प्रजापतिः ॥** मनरूप अथर्वा ही प्रजापति है ॥ काठक संहिता ३५। १७।] **अथर्वा वै प्रजापतिः प्रजापति रिव वै स सर्वेषु लोकेषु भाति य एवं वेद ॥** अथर्वा प्रजापति ही महा विराट् स्वरूप है ॥ जो कोई भी अथर्वा के स्वरूप को जानता है सो ही सब लोकोंमें प्रजापति के समान प्रकाशित होता है ॥ गोपथ ब्रा० १।४] **देवान् सृजेयमिति मनोबुद्धिरजायत ॥** देवों को रचने वाला होऊँ अथर्वाके संकल्पके दो भेद हुए, एक मन रूप मनुदध्यङ् और दुसरी वुद्धि रूप उषा, सावित्री, सरस्वती, उत्पन्न हुई ॥ षड्विंश ब्रा० २।५।१।१] **प्रजापतिर्वाइदमासीत ॥ तस्यवाग्द्वीतीयासीत् ॥ तां मिथुनं समभवत्सा गर्भमधत्त ॥ सास्मादपाक्रामत्से माः प्रजा असृजत ॥ सा प्रजापति मेव पुनः प्राविशत् ॥** बाणी की उत्पत्तिके पूर्व-संकल्प रूप प्रजापति ही था ॥ उस संकल्पकी क्रिया शक्ति ही सरस्वती द्वितीया स्त्री हुई ॥ उसके साथ युगल जोडी वाला हुआ, उस वाणीने प्रजापति के गर्भ को धारण किया ॥ उस सरस्वतीने प्रजापतिसे कहा, ये सब विविध रूप वाली जड प्रजायें हमसे प्रगट हुई हैं, सो स्त्री पुरूष

रूप प्रजापति, शरीरोंमें जीवरूप से प्रविष्ट हुआ॥ काठक सं० १२।५] यज्ञेन वै प्रजापतिः प्रजाअसृजत॥ विराट् के द्वारा ही प्रजापति ने प्रजा रची॥ तै० सं ६।४।१।१] विराजो-वै योनेः प्रजापतिः-प्रजा असृजत॥ विराट स्त्री रूप योनि से ही प्रजापतिने प्रजा रची॥ मै० सं १।१०।८] मन सा वै प्रजापति र्यज्ञ मतनुत॥ संकल्प से ही प्रजापतिने विराट् का विस्तार किया॥ मै० सं० १।४।२०] मनो वै चित्त ँ् वाग्चित्तिः॥ मन ही चित्त रूप संकल्प है॥ वाणी विराट् रूप चित्ति है॥ मै० सं० १।४।१४] प्रजापतिर्वा एक आसीत्सोऽकामयत यज्ञो भूत्वा प्रजाः सृजयेति॥ एक ही प्रजापति था, उसने कामना करी मैं यज्ञ रूप हो कर बहुत उत्पन्न करने वाला होऊँ॥ मै० सं० १।९।३] स त्रेधात्मानं व्यकुरुतादित्यं तृतीयं वायुं तृतीयं सएष प्राण स्त्रेधा विहितः॥ सो प्रजापति अपने को तीन प्रकार से विभक्त करता हुआ सूर्यको अग्नि वायु की अपेक्षा से तीसरा किया॥ और सूर्य वायु की अपेक्षा से अग्नि को तीसरा किया॥ सो यह अथर्वा तीन प्रकार से विभक्त हुआ॥ सोऽकामयत द्वितीयोम आत्मा जायेयेति स मनसा वाचं मिथुन समभवत्। उस प्रजापति ने इच्छा किया मेरा दूसरा शरीर उत्पन्न होवे इस संकल्प के साथ ही उसने संकल्प के द्वारा जोडी रूप सरस्वती वाणी को उत्पन्न किया॥ बृहदा० उ० १।२।३-४] सवै नैवरेमे तस्मादेकाकी नरमते सद्वितीय मैच्छत्॥ सहैतावानसयथा स्त्रीपुमा ँ् सौ संपरिष्वक्तो स इममेवात्मानं द्वेधापातयत् ततः पतिश्च पत्नीचा भवतां तस्मादिदमर्ध वृगलमिव स्व इति हस्माह

याज्ञवल्क्यस्तस्माद यमाकाशः स्त्रिया पूर्यत एव ता ँ समभवत् ततो मनुष्या अजायन्त ॥ वह प्रसिद्ध अथर्वा अकेले में लौकिक आनन्द नहीं मानता हुआ इसी प्रकार उसकी प्रजा उत्पन्न हुइ है सो भी अकेले में प्रजाकी उत्पत्ति करने में असमर्थ है ॥ सो अथर्वा अपने शरीरसे दूसरे देह की इच्छा करता हुआ। जैसे स्त्री पुरुष अति प्रेमसे आलिंगित होते हैं, तैसे हीं उस अथर्वाने अपनी आत्माको स्त्री पुरुष के रूपमें इतनी इच्छा वाला हुआ,—उसके बाद सो प्रजापतिने अपने को दो रूपसे संयुक्त किया—उसने दक्षिण भागसे वैराज दध्यङ् मनु हुआ ॥ और वाम भागसे सावित्री—उषा—सरस्वती, द्यौ, वाणी, आदि नाम वाली वैराज स्त्री हुई, इस सीपीकी समान दो भागमें उस प्रजापति से उत्पन्न हुए वेदोनों अपनेको मानते भये ॥ उन दोनोने समागम करके इस ब्रह्माण्ड को भर दिया, फिर पीछे से मनुष्य प्रगट हुए। ऐसा याज्ञवल्क्यने कहा ॥ सोहेयमीक्षाचक्रे कथंनुमाऽत्मन एजनयित्व सभवति हन्त तिरोऽसानीति सा गौरभव दृषभ इतरस्ता ँ समेवा भवत् ततो गावोऽजायन्त ॥ वह अन्नत रूपा सरस्वती विचारकरने लगी मेरेको उत्पन्न करके वैराज रूपसे भोगने चाहता है ॥ इस लिये मैं इस देहसे समागम न करती हुई अन्य स्वरूप को धारण करके समागम करूँगी। इस विचारके पश्चात् ही अन्तर्धान होकर गौबन-गयी, यह देख कर वैराज वृषभ बन गया ॥ उन दोनों का समागम हुआ, उस मैथुन कर्म से गौयें उत्पन्न हुई ॥ जो २ स्वरूपका चिन्तवन् किया उस २ स्वरूपोंको दोनों ने रचडाला ॥ बृ० उ० १।४।३—४] मन एव पिता वाङ्‌माता ॥ मन ही पिता और वाणी रूप गौ माता है ॥ बृ० उ० १।५।७]—यज्ञो मनुः प्रमति र्नः पिता ॥ विराट्

रूप मनु अति बुद्धिमान् हमारा पिता है ॥ ऋग् १० । १०० ।
५] मनुः पिता ॥ मनु ही पिता है ॥ ऋग्० ८ । ५२ । १]
मनुर्हितं ॥ प्रजापतिने स्थापन किया ॥ ऋग् ८ । १९ । २१]
मनवे ॥ प्रजापति के लिये ॥ ऋग्० ४ । २६ । ४] मनुः
प्रजा असृजत ॥ मनुने प्रजा रची ॥ मै० सं० ३ । १० ३]
वायुर्वात्वामनुर्वात्वा ॥ अथर्वा ने हे अग्ने तुमको
अश्व के साथ जोडा और तुमको अथर्वा के पुत्र दध्यङ्ग नाम
वाले मनुने युक्त किया ॥ मै० सं १ । ११ । १] विराड् वैराज
पुरुषः ॥ विराट् ही–वैराज पुरुष है ॥ काठक सं० ३३ ।] स्त्री
वै वेदिः पुमान्वेदः ॥ स्त्री वेदि और–पुरूष ही वेद है ॥
काठक सं० ३२ । ६] प्राणो वै वायुः प्राणेन यज्ञः सं-
ततः ॥ प्राण ही वायु है ॥ प्राणरूप अथर्वा से यज्ञका विस्तार
हुआ है ॥ मै० सं० ४ । ६ । २ ॥ धेनुः गौ नाम द्यौका है ॥ ऋग्०
३ । ५८ । १] सूरे दुहिता ॥ प्रजापति की पुत्री उषा है ॥
ऋग्० १ । ३४ । ५ दुहिता सूर्यस्य ॥ सूर्य की पुत्री उषा
है ॥ ऋग् १ । ११७ । १३] उषसः–पुत्रः ॥ द्यौ का पुत्र
सूर्य है ॥ ऋग्० ३ । ५८ । १] दिवः शिशुं ॥ द्यौ का पुत्र
सूर्य है ॥ ऋग्० ४ । १५ । ६] आर्यः पत्नी रुषसः ॥
उषाका रक्षक इन्द्र है ॥ ऋग् ७ । ६ ५]–वाजपत्नीः ॥ अन्न
देने वाली उषा है ॥ ऋग्० ७ । ७६ । ६] दिवो दुहिता
भुवनस्य पत्नी ॥ द्यौ की पुत्री सब प्राणि मात्र की (पत्नी)
पालन करने वाली है ॥ ऋग् ७ । ७५ । ४] वत्सं धनुः
सूर्य पुत्रको द्यौ माता धारण करती है ॥ ऋग्० १० । २७ ।
१४ ।] अदितिः ॥ सूर्यका नाम अदिति है यही द्यौ की पुत्री
है ॥ ऋग्० १० । १२ । ८ ।] उषा सः पतिर्गवामभवदेक

इन्द्रः ॥ उषाका पालक किरणोंका स्वामी एक सूर्य ही हुआ ॥ ऋग् ३। ३१। ४।] जारस्य योषा ॥ सूर्यकी (योषा) मिश्रित शक्ति उषा है ॥ ऋग्० १। ९२। ११।] योषा सूरः दुहिता ॥ सूर्यकी पुत्री सूर्य की स्त्री है, अर्थात् सूर्यकी मिश्रित शक्ति ही उषा पुत्री है ॥ ऋग् ७। ६९। ४।] उषो न जारः ॥ उषाके समान (जारः) प्राणियोंकी आयुको सूर्य उदय अस्तसे हरण करता है इस लिये सूर्यका नाम जार है ॥ उषा कालमें सोनेवाले प्राणियोंको व्याधि युक्त जैसे उषा करती है ॥ तैसे ही सूर्य भी आयुको नष्ट करता है ॥ ऋग्० ७। १०। १।] माता च यत्र दुहिता च धेनू ॥ जिस वर्षा कालमें द्यौ जलसे भूमीका पालन करती है उस कालमें द्यौ माता और पृथिवी पुत्री है ॥ जिस समय पृथिवी यज्ञोंके द्वारा द्यौका पालन करती है, उस समयमें भूमी माता और द्यो पुत्री है ॥ परस्पर दोनों दूध देनेवालीं गौ हैं ॥ ऋग्० ३। ५५। १२।] तै से ही परस्पर उषा सूर्यकी पुत्री है, और उषाका सूर्य पुत्र है ॥ सूर्य पति उषा पत्नी है ॥ द्यौ माता सूर्य पुत्र है, स्वर्ग रूप द्यो स्त्री और सूर्य पति है ॥ उसी प्रकार मनरूप अथर्वा ही मनु है और वाणी रूप सरस्वती ही अनन्त रूपा है ॥ वही कार्य कारण भेदसे स्त्री पुरुष है ॥ [दुहिता दुर्हिता दूरेहिता ॥ संकल्पसे वाणी पृथक् रूपसे उत्पन्न होकर दूर स्थित हुई, सो ही वाणी देहकी सरस्वती देवता, संकल्प देहके देवता अथर्वाकी पुत्री है ॥ निरूक्त ३। ४। १।] संकल्प और संकल्पकी क्रिया सत्ताकी अभेद अवस्था ही प्रजापति अथर्वा है ॥ और भेद अवस्था ही पिता पुत्री, पति पत्नी, मन रूप मनु वाणी रूप सरस्वती है ॥ इन दोनों अपने देव स्वरूपको त्याग कर पशु स्वरूपको धारण

करके, स्त्री पुरुष रूपात्मक मैथुन सृष्टिको रचनेमें प्रवृत्त हुए ॥ इस कर्मको देवताओंने विचार करके रुद्रको प्रसन्न करके कहा, हे देव जिस प्रजाका मूल कारण पशु धर्म युक्त है, तो उसकी प्रजा भी पशु धर्म युक्त होवेगी ॥ इस लिये मैथुनी प्रजापर दया करो उस चार और दो पगवाली प्रजाके तुम स्वामी बनों ॥ और इस मृग रूपी पिताका वध करो, जिसके वधसे प्रजा विचार करेगी, यदि हम भगिनी, माता, बहु, पुत्रीसे, गमन करेंगे तो हमको प्रजापति से भी अधिक दण्ड मिलेगा, उस पापसे हमारी उत्तम गति कभी न होगी और वारंवार नीच योनियोंमें भ्रमण करते रहेंगे ॥ इस बातको रुद्रने अंगिकार करके मृगका वध किया ॥ मृगके वधसे चेतनका वध नहीं हुआ, उस मृगका आत्माने फिर अपने वास्तविक रूपमें प्रगट होकर रुद्रका पूजन किया ॥ फिर प्रजापतिने अपने दोंनों मृग मृगी देहको प्रजाके हितके लिये नक्षत्र रूपसे स्थापन किया ॥ और रुद्रने पापियोंको भय देनेके लिये अपना घोर रूप मृग व्याधको स्थापन किया ॥ और उपासकोंके सुखके लिये अपने अघोर रूप आर्द्राको स्थापन किया ॥ इस प्रत्यक्ष प्रमाणमयी घटनाको देखकर भी जे नास्तिक रुद्रसे नहीं डरेंगे उनको मरणके बाद घोर रूप रुद्रसे वहुत दुःख मिलेगा ॥ और आस्तिकोंको परम सुख मिलेगा [बभ्रुः सुमंगलः ॥ सुवर्णके समान कपिल वर्णवाला आर्द्रा नक्षत्रका देवता रुद्र उत्तम कल्याण स्वरूप है ॥ काठक सं० १७। ११।] कपिल वर्णेन यस्तां ध्यायते नित्यं सगच्छेदैशानं पदं ॥ सुवर्णके समान शुद्ध श्वेत स्वरूपसे उस देवताको जो उपासक नित्य ध्यान करता है सो रुद्रके परम स्वरूपको प्राप्त होता है ॥ गो० ब्रा० १।२५।] जैसे एक चेतन स्वप्नावस्थामें अनेक स्वरूप होता है ॥ तैसे ही एक रुद्र अनेक

स्वरूप है ॥ रुद्रो वै ज्येष्ठश्चश्रेष्ठश्च देवानां॥ सब देवताओंके मध्यमें रुद्रही अनादि पुरुष है और चेतन रूपसे सबमें व्यापक होनेसे श्रेष्ठ है ॥ कौषितकी ब्रा० २५ । १३ ।] सो गायत्री ब्रह्म वै गायत्री ॥ ब्रह्मणैवेनं तं नमस्यति ॥ सो रुद्र जप रूप गायन करनेवालेको तारता है ॥ रुद्र ही गायत्री मंत्र है–जो द्विजाति गायत्री मंत्रके द्वारा ही इस रुद्रको अर्घ्यके सहित प्रणाम करता है उस आस्तिकको रुद्र तारता है ॥ ऐतरेय ब्रा० १३ । १० । ३४ ।] यस्य द्वारा मनुष्पिता देवेषु, धियाथआनजे ॥ जिस रुद्रकी कृपाके द्वारा देवताओंके मध्यमें मनु पिताने सर्वज्ञान रूप बुद्धिको प्राप्त किया ऋग्० ८ । ५२ । ११] यद्वै किंच मनुरवदत्तद्भेषजं ॥ जो कुछ प्रजापति मनुने प्रजाओंमें उपदेश किया सो मनुका कथन मात्र प्राणियोंके लिये हित रूप औषधि है ॥ तैत्तरीय सं० २ । २ । १० । २ ।] मृग देह धारणके पहिले मनुको अथर्वाने जो ज्ञान दिया था, फिर मृग देहको त्यागनेके अनन्तर उसी ज्ञानको रुद्रसे प्राप्त किया [तद्धैतद्ब्रह्मा प्रजापतय उवाच प्रजापति र्मनवे मनुः प्रजाभ्यः ॥ इस रुद्रसे ज्ञानको ब्रह्माने प्राप्त किया, उसी ही ज्ञानको ब्रह्माने अपने पुत्र प्रजापति नामवाले अथर्वाके प्रति कहा, अथर्वाने अपने पुत्र दध्यङ् आथर्वण मनुके निमित्त कहा, मनुने अपनी प्रजाओंके लिये उपदेश किया ॥ छां० उ० ३ । ४ । ११ ।] यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं योवै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै ॥ जो रुद्र सबके पहिले ब्रह्माको उत्पन्न करता है जो रुद्रही उस ब्रह्माके प्रति वेदोंको देता है ॥ श्वे० उ० ६ । १८ ।] मायिनं मृगं तमुत्वं मायया वधीः ॥ हे परमैश्वर्य्य सम्पन्न रुद्र तुमने माया देहधारी उस मृगको अपनी मायाके द्वारा ही मारा ॥ ऋग् १ ।

८० ७।] इमंनु मायिनं हुवइन्द्रमीशानं ॥ निश्चय इस मायिक ऐश्वर्य्यवान् रुद्रको हम उपासक बुलाते हैं ॥ ऋग्० ८। ६५। ११।] त्वं स्त्री त्वं पुमानसित्वं कुमार उतवा कुमारी ॥ हे रुद्र तू स्त्री है ॥ तू पुरुष है, और तू ही कुमार कुमारी कन्या है ॥ अथर्व्ण १०। ८। २७।] जन्युः पति-स्तन्वं ॥ यमी वहिनने अपने भाई यमसे कहा, हे भाइ, जिस प्रकार अपनेसे उत्पन्न हुई सरस्वतीके शरीरका प्रजापति स्वामी वन गया, उसी प्रकार तू मेरा पति वन जा ॥ नयत्पुराचकृम ॥ अनन्त सामर्थ्यवाले प्रजापतिने जिस कर्मको पहिले किया था उस कर्मको हम नहीं करेगें ॥ इस प्रकार यमने यमीसे कहा ॥ ऋग्० १०। १०। ३-४] जव असंख्य उत्तम कर्म करनेवाले प्रजापतिके एक कर्मको भी प्राणि नहीं कर सकता तो, उसका एक अकर्म प्रजाकी मर्य्यादा और परीक्षा करने के लिये है ॥ वह कर्म प्र-जाके करने योग्य नहीं है ॥ तव यह सिद्ध हुआ कि, उत्तम पुरुषोंके शुभ लक्षण लेना और अशुभ लक्षणका त्याग करना ॥— यमराज सत्यवादी होने से ही पितृओं का स्वामी हुआ ॥ ५ ॥

द्वे सृती अशृणवं पितॄणामहं देवानामुत मर्त्यानाम् ॥ ताभ्यामिदं विश्वमेजत्समेति यदन्तरा पितरं मातरं च ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(पितृणां) पितरोंका (देवानां) देवताओंका (द्वे) दो (सृती) मार्ग (अहं) मैंने (अशृणवं) सुना है (उत) और तीसरा मर्त्यानां) मनुष्योंका लोक है (पितरं) द्यौ पिता (च) और (मातरं)—पृथिवी माताके (अन्तरा) मध्यमें (यत्) जो—(इदं) यह चराचर जगत् (समेति) अव-

स्थित है (विश्वं) सो सब जगत् (ताभ्यां) उन माता पिता से (एजत्) प्रकाशित हो रहा है ॥ ऋग्० १०। ८८। १५ ॥

व्याख्या:—मंत्र द्रष्टा ऋषि कहता है, मैने देवताओंके पितरोके लोकमें जाने के लिये देवयान पितृयान नामके दो मार्ग परंपरागत महर्षियोंसें सुने हैं, और तीसरा मनुष्यों का लोक है स्वर्ग पिता और भूमी माता के बीचमें जो यह चराचर जगत् स्थित है, सो सब प्रपंच उन दोनों माता पितासे प्रकाशित हो रहा है। [**असौ वै पितेयं माताभ्यामेव पितॄन् देव लोकमपिनयति** ॥ वहद्यौहि पिता यह भूमी माता है इन दोनों से ही प्राणि मर कर देवलोकको और पितृलोकको प्राप्त होता है। शतपथ ब्रा० १२। ८। १२१] **त्रयो वाव लोका: मनुष्य लोक पितृलोको देवलोकः** ॥ तीन ही लोक हैं, मनुष्य लोक, पितृलोक–देवलोक ॥ शत० ब्रा० १४। ४। ३। ११] **कर्मणा पितृलोको, विद्यया देवलोकः** ॥ कर्मसे पितृलोक और उपासना से देवलोक मिलता है॥ वृ० उ०–१। ५। १६। **चतूश्चत्वारिंशदाश्वीनानि सरस्वत्या विनशनात् प्लक्षः प्रास्रावणः तावदितः स्वर्गो लोकः** ॥ (प्लक्षः) गंगाकी उत्पत्ति के स्थान से ऊपर और कैलास के तीर्थापुरी के कुछ नीचे प्लक्ष वन है इस वन से–सरस्वती नदी प्रगट होकर कुरुक्षेत्र में आई उस क्षेत्र से बहती हुई आबु पर्वत के पास हो कर सोमनाथ प्रभास क्षेत्र के समुद्रमें लय हो गई यही वेद कालका विनसन स्थान है॥ इस सोमनाथ से तीर्थापुरीका प्लक्ष चालीस आश्वीन है ॥ जितना सरस्वती महा नदी का प्रमाण है, उतना ही इस भूलोक से यम लोक है यही पितृनाम का लोक स्वर्ग है॥ सामवेदीय ताण्डयब्राह्मण २५। १०। १६] यम

लोक के दो भेद एक नरक और दूसरा स्वर्ग है [तिस्रो द्याव: सवितुर्द्वा उपस्थाँ एका यमस्य भुवने विराषाट् ॥ तीन स्वर्ग हैं ब्रह्म लोक और इन्द्र लोक ये दो सूर्य के समीप हैं, अर्थात् सूर्य के द्वारा प्राप्त होते हैं ॥ और एक यमलोक मृत्यु लोक से चालीस आश्वीन की दूर-पर, अर्थात् छ्यालीस हजार योजन है ॥ यह यमलोक अन्तरिक्ष के उपभाग में ऊँधी कढाई के समान है ॥ यह लोक पूण्यात्मा और पापीयोंको चन्द्रमा के द्वारा प्राप्त होता है ॥ प्रेत आत्मा मरकर जहाँ जाते हैं, सो यम लोक है ॥ ऋग्० १ । ३५ । ६] उपोदके ॥ अन्तरिक्ष के उपभाग में यम लोक है ॥ माध्यन्दिनी सं० ३५ । ५] श्मशानचितं चिन्वीत यः कामयेत पितृलोके ॥ यस्रो ऽमुष्मिँल्लोके ।। श्मशान चिता को वैदिक अग्नि होत्र की अग्नि से सम्पादन करे, जिस पुण्यात्माको यमके स्वर्ग में जानेकी इच्छा होवे तो कर्मके द्वारा धूमयान मार्ग से यमके दिव्य स्वर्ग में जाता है। और वैदिक कर्म रहित पापीजन लौकिक अग्निसे जलकर यमके-ऊँधी कढाई के समान नीचा मुख वाले नरक में गिरते हैं ॥ इस भूलोकसे वह यम लोक भिन्न है ॥ काठक सं० २१ । ४ ॥ कपिष्ठल कठ सं ३१ । ११] कुमारमजनयत् ॥ कौन-पुरूष अपने पुत्र नचिकेता को यमके पास-भेजता है ॥ इदं यमस्यसादनं देवमानंयदुच्यते ॥ इस यमके भुवनको प्रजापतिने रचा है, जो सर्वत्र कहने में आता है ॥ ऋग्० १० । १३५ । ५-७] अयं लोको नास्ति परइति मानी पुनः पुनर्वशमापद्यते मे ॥ धन यौवन के मद से मदोन्मत्त हुआ जो-मनुष्य कहता है यह पृथ्विलोक ही है, इस लोक से भिन्न और नरक स्वर्ग नहीं है, भग-

वान् यमने कहा, हे नचिकेता पुत्र, ऐसा मानने वाला नास्तिक, मेरे वशमें वारंवार मरण के अनन्तर प्राप्त होता है ॥ कठोपनिषद् २। ६] त्वष्टा दुहित्रे वहतुं कृणोति...-यमस्य माता ...जाया विवस्वतः ॥ त्वष्टाकी पुत्री से सूर्यने विवाह किया... यमकी माता सरण्यू नामवाली सूर्य की भार्या है ॥ सरण्यूः ॥ अन्तरिक्षकी देवता सरण्यू है ॥ ऋग्० १०। १७। १-२] मृत्यु वै यमः मरणका अभिमानी यम देवता प्रसिद्ध है ॥ मैत्रायणी सं० २। ५। ६।] यमः पितृणां राजा ॥ यम पितरोंका स्वामी है ॥ तैत्तरीय सं० २। ६। ६। ५।] आदित्यो देवानां चक्षु श्चन्द्रमावैपितृणां चक्षुः॥ सूर्य देवताओंका प्रकाश है, और चन्द्रमा पितरोंका प्रकाश है॥ मैत्रयणी सं० ४। २। १।] संगच्छस्व पितृभिः संयमेनेष्टा पूर्ते न परमे व्योमन् ॥ हे मेरे उत्पादक माता पिता तुम पूर्व पिता, पिता मह आदि पितरोंके संग उत्तम यमके स्वर्ग स्थानमें आपने संपादन कीये हुए यज्ञ अन्नक्षेत्र कूप आदिके पुण्यको साथ ले कर जाओ ऋग्० १०। १४। ८] यमलोकं ॥ यमलोक को जाओ ॥ मै० सं० २। ५। ११ यौ ते श्वानौ यमरक्षितारौचतुरक्षौ पथि रक्षी नृचक्षसौ ॥ ताभ्यामेन परिदेहि राजन्त्स्वस्ति चास्मा अनमीवंच धेहि ॥ हे यम आपके द्वारकी रक्षा करने वाले-जे चार नेत्र वाले दो कुत्ते, वे कुत्ते मार्ग रक्षक हैं और मनुष्यों के द्वारा प्रख्यात हैं ॥ हे यम राज तुम उन दोनों कुत्तों के द्वारा इस नारकी प्रेतको सर्वत्र से सुख देओ, और इस मेरे सम्बंधि के लिये नरक के दुःखको दूर करके पितरोंके सुख का प्रदान करो ॥ ऋग्० १०। १४। ११] दक्षिण पूर्वस्यां दिशि विसर्पी नरकः ॥ तस्मान्नः परिपाहि ॥

दक्षिण पूर्व दिशाके मध्यवर्ती विसर्पी नामका नरक है॥ उससे हमारे प्रेतोंकी सर्वत्रसे रक्षा करो॥ दक्षिणापरस्यां दिश्य विसर्पी नरकः॥ तस्मान्नः परिपाहि॥ नैऋत्यमें अविसर्पी नरक हैं॥ उससे हमारे मरण धर्मीयोंकी आत्माको रक्षा करो॥ उत्तर पूर्वस्यां दिशि विषादी नरकः॥ तस्मान्नः परि-पाहि॥ नरक लोकके ईशान दिशामें विषादी नरक है॥ उससे हमारे पूर्वजोंकी रक्षा करो॥ उत्तरापरस्यां दिश्यविषादी नरकः॥ तस्मान्नः परिपाहि॥ वायव्य दिशामें अविषादी नरक है॥ उस नरकसे हमारे पुण्य प्रभावके द्वारा उन पितरोंको तारो॥ तैत्तरीयारण्यक १। १९। १।] ये अग्नि दग्धा ये अनग्नि दग्धा मध्ये दिवः स्वधया मादयन्ते॥ जे अग्निसे भस्म हुए, जे अग्निके संस्कार से रहित वे पितर अन्तरिक्षके वीच यमलोकमें स्थित हुए स्वधारूप अन्नसे तृप्त होता है॥ ऋग्० १०। १५। १४।] अपूपवान् मांसवान्॥ माल पूआ, और हरिण वकरेका मांस ही पितरोंका स्वधा है॥ अथर्वण १८। ४। २०] यं ते मन्थं यमोदनं यन्माँ सं निपृणामिते॥ ते ते सन्तु स्वधावन्तो मधुमन्तो घृतश्चुतः॥ जो दधि मिश्रित मालपुआ, जो दूधमें परिपक्व हुआ भात, क्षीर भोजन रोहित मत्स्य वकरा आदिका मँास॥ हे प्रेतात्माकपितर तेरे निमित्त उन पदार्थोंको देता हूँ, वे सब पदार्थ घृत मधु मिश्रित आपका स्वधारूप अन्न होवें॥ अथर्वण १८। ४। ४२।] जो वैदिक कालमें आर्जी कीया देशके नामसे प्रसिद्ध था॥ सो ही तङ्गण और अपर तङ्गणके नामसे पाण्डवोंके राज्यके पहिले था, वही देश इस समय तिब्बत और लदाक, काश्मीर, कष्टवाड, भद्रवाड, भुलेसा चम्बाराज्य कुल्लु आदि सब पर्वतवर्ती देशही अपर तङ्गण है॥ यास्कन्दसे लेकर

काबुल देश, पिशोर, रावलपिण्डी लाहोर पडियाला कुरुक्षेत्र, हरद्वार, अलमोडा कैलास, गौरीशंकरसेलेकर ल्हासा, काराकुरम् पर्य्यन्त आर्जीकीया देश है॥ इस देशके मध्यभागका नामही तङ्गण ओर अपर तङ्गण है॥ यह आर्जीकीया देशी आर्य प्रजाकी जन्म भूमी है॥ आर्य प्रजा देव पितरोंके लिये माँस देकर स्वयं माँस खाती थी॥ देव पितरोंको निवेदन करके शेष भागको प्रजा खाती हुई, निर्वाह करती थी [**नवाऽउएतन्म्रियसे नरिष्यसि देवाँ इदेषि पथिभिः सुगेभिः॥ यत्रासते सुकृतो यत्रते ययु-स्तत्रत्वा देवः सविता दधातु॥** अश्वमेघ यज्ञमें सुरक्षित अश्वको हवन करते समय ऋत्विक् इस मंत्रसे घोडेकी आत्माकी स्तुति करते हुए कहते हैं॥ हे अश्व यह प्रसिद्ध यज्ञ रूप शरीर वाला तू न मरता है नदुःखी होता है, सुख पूर्वक जाने योग्य देवयान मार्गोंसे देवताओंको प्राप्त होता है। जिस स्वर्गमें पापी नहीं जाते जिसमें पुण्यात्मा विराजमान है; जिस स्वर्गमें धर्मात्मा गये हैं, उस स्वर्गमें तेरी आत्माको सविता देव स्थापन करे॥ माध्यन्दिनी सं० २३। १६ ॥ ऋग्० १। १६२। २१।] **सविते वै न॰स्वर्गे लोके दधाति॥** इस यज्ञपशुको ही सविता स्वर्ग लोकमें स्थापन करता है॥ शत० ब्रा० १३। २। ७। १२।] **तरति ब्रह्म हत्याँ योऽश्वमेधेन यजते॥** जो मनुष्य अश्वमेघ यज्ञको करता है, वह ब्रह्म हत्या आदि महापापको तर जाता है॥ तैत्तरीय सं० ५। ३। ११। २।] **देव त्रा-यन्तमवसे सखा योनुत्वा माता पितरो मदन्तु॥** हे पशो तुमको देवताओंके समीप जाते हुए देखकर तुम्हारे दूसरे मित्र रूप माता पिता आदि कुटुम्बभी अपनी रक्षाके लिये तुमको नरोंकें माध्यन्दिनी सं० ६। २०।] **तीर्थं॥** तीर्थ नाम यज्ञका है जिस

यज्ञके द्वारा सब पापसे तर जावे सो यज्ञ रूप तीर्थ है॥ ऋग्० १०। ११४। ७।]अहिंसन् सर्व भूतान्यन्यत्र तीर्थेभ्यः॥ यज्ञ रूप तीर्थों से भिन्न पशु मात्रको न मारता हुआ किसी आश्रममें विचरे॥ छा० उ० ८। १५। २।] जैसे पुरुष अपनी स्त्री से भिन्न स्त्री में गमन न करे॥ जब पुरुष मात्रका इस प्रकारका व्यवहार होता है, तब स्त्री मात्र सर्वत्र सुख पूर्वक विचरती हुई अपने २ पूरूषकी ही भोग बनती हैं॥ तैसे हीं यज्ञसे भिन्न पशु मात्रकी रक्षा होती हुई भी, यज्ञमें पशुके सहित यजमान स्वर्गको प्राप्त करता है॥ यज्ञकी अल्प हिंसा स्वर्गीय सुखकी प्राप्ति रूप महा अहिंसा है॥ जैसे पगमें लगे हुए काँटेको जो दयालु पुरुष निकालता है, सो वैद्य, काँटे लगनेवालेको शत्रु प्रतीत होता है॥ जब अल्प दुःखको देता हुआ, वैद्य, काँटेको निकाल कर बडे सुखको उत्पन्न करता है। तब रोगी निरोगी होने पर वैद्यका सत्कार करता है॥ तैसे ही यज्ञमें अल्प हिंसा होनेपर भी मरणके अनन्तर पशु और यजमान महा सुखको स्वर्गमें भोगते हैं॥ जो अल्प दुःख रूप हिंसा है॥ सो ही भविष्यमें महा सुख रूप अहिंसा है॥ जे से किसान खेत बोते समय बैलोंको दुःख देता है॥ फिर अन्न घासको पाकर बैल और किसान सुखी होता है। तैसे ही अल्प दुःख सहन कीये बिना सुख किसीको नहीं मिलता हैं॥ महा सुखका व्यापार अल्प दुःख रूप हिंसा नहीं है॥ यह यज्ञकी मर्य्यादा रूप अल्प हिंसा महा अहिंसा थी॥ आज प्रत्यक्ष अहिंसा वादी बनते हुए ही महा हिंसक हैं॥ अल्प जन्तुओंकी रक्षा करते और महा जन्तु मनुष्योंको व्याज आदि कपट छलमय जालसे बाँधकर भूँखे मारनाही महाहिंसा है॥ आप खेती न करते हुए, दूसरोंसे खेती करवाय कर असंख्य प्राणियोंका वध करना॥ इस--

तालकी दवा मच्छी अर्क (कॉडलिवर) ऑइल वैलका अर्क ताकतके लिये खाते हैं ॥ चोरी करके मद्य मांस खाते हैं ॥ संवत् विक्रम १९५८ की सालमें मैं कैलास यात्राके लिये तिव्वत गया था, उस कैलासकी गुहाओं में वसने वाले माँस भक्षण करते हुए बुद्ध साधुओंको मैंने प्रत्यक्ष देखा है ॥ आज प्रत्यक्ष अहिंसा वादीओंके अनुयायी, हिंसा रूप महा समुद्रमें डूब रहे हैं ॥ और वैदिक धर्मको नाश कर, आप स्वयं अनार्य वन गये ॥ वडे यज्ञोंमें ही पशु काम आते हैं ॥ और नित्य अग्नि होत्रमें घृत भात ही काम आता है इस लिये द्विजाति मात्रको नित्य यज्ञ करना चाहिये [नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥ इन्द्रादिक सव देवोंको अग्नि होत्रसे पोषण नहीं करता है ॥ और अपने पापको हरनेवाले संन्यासी ब्रह्मचारी रूप मित्रको भोजन नहीं देता है ॥ वह मनुष्य गृहस्थ में रह कर महा पापी है, और केवल पापरूप अन्नको खानेवाला है ॥ इस लिये ही वैश्वदेव नित्य करता हुआ अतिथिका सत्कार करे ॥ वही गृहस्थ का जन्म सफल है ॥ ऋग्० १० । ११७ । ६ ।] स्वधा पितृणां नमस्कारो देवानां ॥ पितृयोंका स्वधा है ॥ देवताओंका नमस्कार है ॥ काठक सं० ३६ । १३ ।] पञ्च वै ब्राह्मणस्य देवता अग्निः सोमः सविता बृहस्पतिः सरस्वती ॥ ब्राह्मण जातिके प्रसिद्ध उपास्य देवता अग्नि, सोम, सविता, बृहस्पति, सरस्वती ये पाँच हैं ॥ मैत्रायणी सं० ४ । ५ । ८ ।] प्रजापति ह्येतेभ्यः पञ्चभ्यः प्राणेभ्यो देवान् ससृजे ॥ अथर्वाने अपने इन पाँच प्राणरूप देवोंसे सव देवताओंको रचा ॥ गोपथ ब्रा० उत्तरार्ध ४ । ११ ।] प्रजापति र्वा अथर्वा ॥ अथर्वा ही प्रजापति है ॥ कपिष्ठल कठ सं० २९ । २ ।] अद्भयः

प्रजाः प्रजायन्ते ॥ व्यापक पांच प्राणोंसे सब प्रजा उत्पन्न हुईं ॥ कपिष्ठल० सं० ३६ । १ ।] प्राणेभ्यो वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥ ताः प्राजायन्त ॥ पांच प्राणोंसे ही अथर्वाने प्रजा रची ॥ वे सब प्रजा देव दैत्य मनुष्य प्रगट हुए ॥ कपि० सं० ७ । ७ ।] यज्ञस्य मायया ॥ ब्रह्माकी मायासे सब प्रपंच प्रगट हुआ ॥ काठक सं० ३८ । १४ ।] तपसा वै प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥ ब्रह्माने संकल्पके द्वारा ही प्रजा रची ॥ कपि० सं० ४ । ६ ।] ब्रह्माके पुत्र अथर्वा के ही पाँच अङ्ग रूप पाँच देवता प्राण हैं [विराट पञ्च पदा ॥ अथर्वा पांच स्वरूप वाला है ॥ कपि० सं० ४ । ७ ।] वाचा वै सह मनुष्या अजायन्त ॥ सरस्वतीके द्वारा ही मनुष्य उत्पन्न हुए हैं ॥ भूरिती मामसृजताग्निं रथन्तरं त्रिवृतं गायत्रीं ॥ भूमी, अग्नि, देवता भूः व्याहृतिके सहित त्रिवृत रथंतर सामको और गायत्री छन्दको रचा ॥ भुव इत्यन्तरिक्षं वातं वामदेव्यं त्रिष्टुभं पञ्चदशं ॥ अन्तरिक्ष लोक वायु देवता भुवः व्याहृति त्रिष्टुभ छन्दके सहित पंचदश वामदेव्य सामको रचा ॥ स्वरिति, दिवं सूर्यं बृहदेकविंशं जगतीं ॥ द्यौ लोक सूर्य देवता, स्वः व्याहृति, जगती छन्दके सहित इक्कीस बृहत् सामको रचा ॥ कपि० ४ । ६ ।] प्रथमो ब्रह्मवा अग्निः ॥ द्वितीयो वाग्वै सरस्वतिः ॥ तृतीयः क्षत्रं वै सोमः ॥ भू लोक व्यापी ही अग्नि देवता पहिला है ॥ अन्तरिक्ष व्यापी ही (सरस्वतिः) स्वति-अन्तरिक्षमें-सर-गमन करनेवाला वायु देवता दूसरा है ॥ बल रूप सूर्य ही द्योका तीसरा देवता है ॥ चतुर्थोऽन्नं वै पूषा ॥ पंचमो ब्रह्म वै बृहस्पतिः ॥ चतुर्थ विराट् रूप प्रजापति ही सविता है ॥ बृहस्पति ही पांचमा देवता है ॥ कौषीतकि ब्रा० १२ । ८ ।

प्रत्येक तीन लोकोंके अग्नि वायु सूर्य है ॥ उन असंख्य त्रिलोकोंका स्वामी एक अथर्वा है ॥ उस विराट् देहके स्वामी अथर्वाका-पांचमा सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्मा है ॥ ये पांच देवता हैं [आदित्यो वै सोमः ॥ सूर्य ही सोम नाम वाला है ॥ काठक सं० २६ । २ ।] अन्नं विराट्ः ॥ अन्न नाम वाला विराट् है ॥ कपि० सं० ३७ । ६ ।] विराट् और सूत्रात्मा एक ही चेतनके विषयमें अथर्वा और ब्रह्मा नामके भेदको करती हैं ॥ देवलोको वा इन्द्रः ॥ पितृलोको यमः ॥ देवलोक ही इन्द्र रूप सूर्य लोक है ॥ पित्र लोकही यम लोक है ॥ कौषीतकि ब्रा० १६ । ८ ।] देवलोकं पितृलोकं जीवलोकमिममुपोदकमग्नि लोक मृतधामानं ॥ वायुलोक मपराजितमिन्द्र लोक मधिदिवं वरूणलोकं प्रदिवं मृत्यु लोकं रोचनं ब्रह्मणो लोकं नाकं सप्तमं ॥ भू लोक अग्नि से प्रकाश मान है ॥ उपोदक नाम वाला यम लोक इस भू लोकके प्राणियोंसे ही भरा है ॥ मुख्य अन्तरिक्षका भाग वायु लोक है ॥ व्यापक सूर्यरूपप्रकाशका स्थान द्यौ ही देव लोक है ॥ अब इन तीन लोकों के पर महर्लोक वासी (वरूणः) इन्द्र लोक अति दिव्य है ॥ जन लोक महर्लोक से उत्तम है, उसमें (इन्द्रः) परमेश्वर्य्य सम्पन्न बृहस्पति अंगिरा पुत्र है ॥ तप लोक अपरा जित लोककी प्राप्ति कराने वाला है उसमें अथर्वा प्रजापति है ॥ सातमाँ सर्व दुःख रहित ब्रह्माका सत्य लोक है ॥ कौषीतकि ब्रा० २० । ९ । इन्द्रो वै वरूणः ॥ इन्द्रही वरूण नाम वाला है ॥ गोपथ ब्रा० १ । २२] तिस्रो भूमीः ॥ त्रीणि रोचना ॥ तीन लोक हैं ॥ पृथिवीमें अग्नि अन्तरिक्ष में वायु, द्यौ में सूर्य है ॥ ये तीन देवही तीन लोक में हैं ॥ ऋ० १ । १०२ । ८]

तिस्रो भूमी धारयन् त्रीँ१ऽरुतद्यून् त्रीणिं ॥ तीनलोक मयी पृथिवीयों को धारण करता हुआ ॥ औरतीन स्वर्गों को भी प्रजापति धारण करता है ॥ ऋग्० २ । २७ ।] तिस्रो दिवस्तिस्रः पृथिवीः ॥ तपः जनः ॥ मह लोक येतीन स्वर्ग हैं ॥ इन स्वर्गों में सब देव लोकों का अन्तरभाव है ॥ भुर्भुवः स्वात्मक असंख्य तीन लोक मयीं भूमी हैं ॥ इन छः लोकोंका मूल कारण सत्य लोक है ॥ अथर्वण ४ । २० । २] यासां द्यौःपिता पृथिवी माता समुधेमूलंवीरूधां वभूव।। अधि दैव रूपसे अध्यात्म स्वरूपों में फलने वाले जिन देवता ओंके विस्तारको करने वाले द्यौ भूमी पिता माता हैं ॥ प्रजाओंके सहित द्यौ भूमीका मूल कारण सूत्रात्मा देह ब्रह्मा हुआ ॥ अथर्वण ३ । २३ । ६] समुद्रोत्रे कामः ॥ मैं एक समष्टि देह धारी ब्रह्मा रूप समुद्र हूँ बहुत होऊँ ॥ यह सृष्टि संकल्प ही समुद्र है ॥ मैत्रायणी सं. १ । ९ । ४]–समुद्रं वै नाम ॥ सूक्ष्म देह धारी ब्रह्मा ही समुद्र नाम वाला है ॥ इस समष्टि सूत्रात्मा नाम से समष्टि स्थूल विराट् रूप प्रगट होता है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३१ । ६] समुद्रं तुरीयधाम महिषो विविक्ति ॥ तीन स्वर्गोंसे भिन्न चतुर्थ ब्रह्म लोकरूप समुद्रको महा बलवान् ब्रह्मा सेवन करता है ॥ ऋग्० ९ । ९६ । १९ स प्रथमे व्योमनि देवानां सदने वृधः ॥ सो ब्रह्मा देवताओं की रक्षा करने वाला मुख्य धाम ब्रह्म लोकमें स्थित है ।। ऋग्० ८ । १३ । २] तुरीयं ॥ चतुर्थ स्थान पितामहका है ॥ ऋग्० ८ । ३ । २४] भूलोक की अपेक्षा से द्यौ–तीसरा है और द्यौरूप त्रिलोकसे भिन्न तप लोक तीसरा है ॥ महः । जनः । तप लोककी अपेक्षा से ब्रह्म लोक चतुर्थ है ॥ और सूर्य मंडलस्थ द्यौ से द्वितीय तप लोक

है ॥ और तीसरा सत्य लोक है सह्यो वाचोवा च वैसो ऊ गच्छन् वै तेतद्या श्व मेधयाजिनो गच्छंती तिकन्व श्व मेधयाजिनो गच्छन्तीति द्वात्रिंशतं वै देवरथान्यं लोकस्तंसमन्तं पृथिवी हि स्तावत्पर्येति तांसमन्तं पृथिवी ह्विस्तावत्समुद्रःपर्यैति तद्यावती क्षुरस्य धारा यावद्वा मक्षिकायाः—पत्रं तावानन्तरेणा काशस्तानिन्द्रः सुपर्णो भूत्वा वायवे प्रायच्छत्तान् वायुरात्मनिधित्वात्‌ त्रागमयद्यत्राश्वमेधयाजिनोऽभवन्नित्येवमिव वैसवायु मेवप्रशशंसतस्मा द्वायु रेव व्यष्टि र्वायुः समष्टि रपपुनः मृत्युं जयति य एवं वेद ॥ प्रसिद्ध याज्ञवल्क्यने कहा हे भुज्यो तुमसे उस गंधर्वने निश्चय—यह कहा था कि—जहां अश्वमेघ यज्ञ करनेवाले जाते हैं, उसी स्थानमें आजकाल भी अश्वमेघ यज्ञ करनेवाले. गये, इस प्रकार कहने पर, भुज्यु ने पूछा वे अश्वमेघ करनेवाले कहां जाते हैं, इस प्रश्नका उत्तर देनेके पहिले, उस याज्ञवल्क्यने, भुवनका परिमाण कहा सूर्य मंडलसे एक दिन रातमें जितना देश प्रकाशके द्वारा नापा जाता है, उतने ही देशका नाम देव रथाह्नय है, यही भूमीका अन्त है, और इसीका नाम मानसोत्तरगिरि है ॥ इस सीमा तक ही सब प्राणियोंके भोग हैं ॥ इसके आगे पृथिवीकी जो सीमा है सो ही मानसोत्तरगिरि सप्तद्वीप वाली भूमी है ॥ इस सात द्वीपवाली पृथिवीका जितना परिणाम है—उससे बत्तीस गुणास्थान सूर्यकी किरणोंसे व्याप्त स्थानका नाम सौर त्रिलोकी है ॥ यही त्रिलोकी तीन भुवन हैं ॥ यह त्रिलोक लोकालोक नामके पर्वत से घिरा हुआ है ॥ लोकालोक नामके पर्वतके एक भागमें असंख्य त्रिलोक समुद्र स्थित है ॥ और दूसरे भागमें अलोकात्मक. सूर्यके प्रकाशसे रहित स्वतः प्रकाशित महर्लोक, जनलोक,

तपलोक, ब्रह्मलोक है॥ यह चार भेद वाला ही अलोक सुवर्ण कपाल है॥ और लोकात्मक असंख्य त्रिलोक समूह ही रजत कपाल है॥ जैसे महा ब्रह्माण्डका रजत कपाल और सुवर्ण कपाल है तैसे ही प्रत्येक त्रिलोकोंके सूर्य के ऊपरका भाग स्वर्ग ही द्यौ सुवर्ण कपाल है॥ और चन्द्र मण्डलके नीचेकी भूमी भी रजत कपाल है॥ जव ज्ञानी मात्र अपने २ त्रिलोकीको भेद न करके महर्लोकको ओर जाता है तव प्रकाश युक्त दिव्य पृथिवीको देखता है वह भूमी चारो ओरसे अमृत समुद्रसे घिरी हुई है॥ जितनी छुरेकी धार होती है या मक्खी की पांख जितनी होती है, उतने के वीचमें आकाश है, उस आकाशके मध्य में इन्द्र भगवान दिव्य पक्षीका स्वरूप धारण करके उन निष्कामी यज्ञ कर्त्ताओंके सहित ज्ञानीयोंको लेकर अथर्वा प्रजापतिके समीप पहुंचाय देता है, प्रजापति अपनें में धारण करके उन ज्ञानीयोंको जहां अश्वमेघ यज्ञ करनेवाले स्थित हैं उस ब्रह्म लोकमें पहुंचाय देता है॥ हे भुज्यो उस गन्धर्वने इस प्रकार ब्रह्माको ही यज्ञकरनेवालोंका प्राप्ति स्थान वता कर उसकी प्रशंसाकी थी॥ सूत्रात्मा देहधारी ही स्थावर जंगमों के अन्दर वाहर व्याप्त हो रहा हैं इस कारण ब्रह्मा ही (व्यष्टिः) पर्वत नदी गुल्म वृक्ष, प्राणी मात्रका स्थूल देह आदिक सव पदार्थ अधिभूत है॥ प्राण इन्द्रियां अन्तः करण सूक्ष्म देह ही अध्यात्म है॥ चेतन मात्र जो सूर्य में है, सो ही प्राणि मात्र में स्थित है, यही अधिदेव स्वरूप है॥ अधिभूत अध्यात्म, अधिदैव भावसे अनेकों रूपोंमे स्थित है, सो ही व्यष्टि है॥ (समष्टिः) मृत्यु अमृतमयी सूत्रात्मा देहधारी एक ब्रह्मा ही समष्टि स्वरूप है॥ जो भगवान् ब्रह्मा समष्टि है सो ही व्यष्टि है॥ जो व्यष्टि देहधारी चेतन अपनेको समष्टि रूपसे उपासना करता

है, सो उपासक देह त्याग करके, समष्टि स्वरूप ब्रह्माको प्राप्त होता है बारंबार जन्म मरणको जीत लेता है, जो इस प्रकार जानता है सो मुक्त है॥ वृ० उ० ३ । ३ । २ ।] सुर्य द्वारेण ते विरजा: प्रयान्ति यत्रामृतः सपुरुषो ह्यव्ययात्मा ॥ सूर्यके द्वारा जिस ब्रह्मलोकमें सो भगवान ब्रह्मा अविनाशी है, उसी स्थानमें वे सब पाप रहित मुनि प्राप्त होते है ॥ मु० उ० १ । २ । ११ ।] अणुः पन्था विततः पुराणो मा ᳪ स्पृष्टोऽनु वित्तोमयैव ॥ तेन धीरा अपयन्ति ब्रह्मविदः स्वर्गं लोकमित उर्ध्वा विमुक्त ॥ अति सूक्ष्म विस्तारवाला प्राचीन मार्ग मेरोको प्राप्त है, मेरे द्वारा ही अनुभव किया गया है, ज्ञानी ध्यान सम्पन्न पुरुष ही मुक्त हुए (इतः) इस त्रिलोकीसे ऊपर ब्रह्मलोक है—उस सूर्यके द्वारा ही ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं ॥ वृ० उ० ४ । ४ । ८ ।] कस्मिन्नु खलु प्रजापति लोका ओताश्च प्रोत्ताश्च इति ॥ ब्रह्मलोकेषु गार्गि इति ॥ महाविराट् देहके सहित प्रजापति अथर्वा किसमें ओत प्रोत है ऐसा गार्गीने याज्ञवल्क्यसे पूछा ॥ उतर हे गार्गि ब्रह्म लोकमें ओतप्रोत है ऐसा तू जान ॥ वृ० उ० ३ । ६ । १ ।] देवोभूत्वा देवानप्येतियएवं विद्वानेतदुपास्ते ॥ व्यष्टि उपाधिक चेतन समष्टि उपाधिक ब्रह्मा होकर देवताओंके स्वरूपको स्वेच्छापूर्वक धारण करता है, जो ज्ञानी अद्वैतभावसे उपासना करता है सो ही उपासक है ॥ वृ० उ० ४ । १ । २] तेषां न पुनरावृत्तिः ॥ उन अद्वैत वादीयोंका पुनरागमन नहिं होता है ॥ वृ० उ० ६ । २ । १५ ।] सयो ह वै तत्परमं ब्रह्म वेद ब्रह्मैव भवति ॥ जो ज्ञानी प्रसिद्ध उस अपने व्यापक स्वरूपको अभेद रूपसे जानता है सो पुरुष सर्व व्यापक

ब्रह्मा स्वरूप हो जाता है ॥ मु० उ० ३ । २ । ९ ।] सहस्रा-श्वीने वा इतः स्वर्गो लोकः ॥ उत्तम घोडा एक दिन भरमें जितने कोश चलता है, उन कोशोंको हजारगुणा करनेसे जितने कोस होते हैं, उन सब कोशोंका नाम सहस्राश्वीन है, इस भूलोकसे ऊँचा द्यौरूप स्वर्ग लोक हजार आश्वीनकी दूरी पर है ॥ एतरेय ब्रा० ७ । ७ । १७ ।] इस द्युलोकसे क्रोडों कोशकी दूरी पर ब्रह्म लोक है ॥ ६ ॥

यउग्रईव शर्य्यहातिग्मशृङ्गे नवंसगः ॥ अग्ने-पुरोरुरोजिथ ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(तिग्मशृङ्गः) तीक्ष्ण सींगवाले (वंसगःन) वैलके समान (शर्य्यहा) शत्रुओंको मारनेवाले (यः) जो (उग्र) अति उत्तम स्वरूपधारी (अग्ने) हे सर्व व्यापक रुद्र सो तुम (इव) ही (पुरः) त्रिपुर (सरोजिथ) ध्वन्सी हो ॥ ऋग्० ६ । १६ । ३९ ।]

व्याख्याः—तीक्ष्ण सींग वाले वैलके समान शत्रुओंको मारनेवाले जो अति श्रेष्ठ रूपधारी हे सर्व व्यापक रुद्र सो तुम ही त्रिपुर विनाशक हो [अङ्गति गच्छति सर्वं व्याप्नोतीति अग्निः ॥ सर्वत्र चेतन रूपसे व्यापक होवे सो ही अग्नि है ॥ अथर्वण सायण भाष्य ३ । १ । १ ।] वृषभोन तिग्म शृङ्गः ॥ वैलके समान तीक्ष्ण सींगवाला ॥ ऋग्० १० । ८६ । १५] रुद्रो वा अग्निः रुद्रही अग्नि नाम वाला है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४४ । ६] असुराणा ९ वाप्षु लोकेषु पुर आसन्न यस्मय्यस्मिल्लोके रजता-न्तरिक्षेहरिणी दिविते देवाः स ९ स्तम्भ ९ स ९ स्तम्भं पराजयन्ता नायतना ह्यसन् ॥ ते देवा एता-

मिषु ᳪ समस्कुर्वन्नग्नि ᳪ शृङ्ग ᳪ सोम ᳪ शल्य ᳪ विष्णुं कुल्मलं ॥ तेऽब्रुवन्क इमामिषु मवस्रक्ष्यतीति ॥ ते देवा अब्रुवन्नयमेव रुद्र-इति ॥ सोऽब्रवीद्वागो मेऽस्त्विवति वृणीष्वेत्यवदन्त्सोऽब्रवीन्नैव मेकश्चनेषु मस्तां मीमा ᳪ साता इति ॥ तस्मादेतस्येषुरस्ताल मीमा ᳪ सितव्या ॥ सत्य ᳪ हम् ॥ इत्येव ब्रुयात्ता ᳪ वै रुद्रो व्यसृजदेष हि देवानां क्रूरतमस्तयेमाः पुरोऽभिनदग्निना वैसतारतेजसाभिनत्तस्मादग्निः प्रथम इज्यते यदन्यां देवतां पूर्वा ᳪ यजेत् ॥ इन प्रसिद्ध

तीनों लोकोमें दैत्यों के नगर थे इस भूमीमें लोहमय नगरी ॥ अन्तरिक्षमें चाँदीकी पुरी ॥ द्योमें सुवर्ण की नगरी थी ॥ इन्द्रादिक सब देवता बारंबार, दैत्योसे हारकर स्थान रहित हुए, उन सब देवोने मिलकर, विष्णुको बाण, सोम को बाणका भाला, अग्निको भाले की तीक्ष्ण अणी बनाया ॥ वे देवता परस्पर विचार कर कहने लगे इस वाण को कौन फेंकेगा, इस, प्रश्न के अनन्तर उन देवताओने कहा, ॥ यह रुद्र ही वाण चलाने में-समर्थ है, इस रुद्र से भिन्न कोई समर्थ नहीं ॥ उस रुद्रने कहा हे देवताओ मेरे लिये-भाग होवे ॥ इस प्रकार रुद्र के वचन को सुन कर, देवताओने कहा :माँगो, रुद्रने कहा मेरेसे भिन्न इस बाणको चलाने वाला दूसरा कोई नहीं ॥ जैसे मूलको त्याग कर शाखा नष्ट हो जाती हैं, तैसे मेरेको छोडकर सब देव दैत्य गन्धर्वआदि नष्ट हो जाते हैं, इस लिये ही मैं अद्वितीय स्वरूप सबका महा कारण हुँ, यह उपदेश करना ही वररूप भागका माँगना है अर्थात् अज्ञानी पशुओंका उपदेश कर्ता स्वामी बनूँ ॥ मैं सब देवताओंका रक्षक, और-बाणको चलाने वाला सत्य स्वरूप

हूँ ॥ इस प्रकार कह कर उस बाण को रुद्रने छोडा, यही रुद्र देवों के मध्यमें (क्रूरतमः) अति युद्ध करने वाला है, उस त्रिशूल मयी शक्तिसे इन त्रिपुरोंको नाश कर दिया, अग्नि के तेजसे नाश कर दिया, इस कारण से हीं अग्नि को प्रथम पूजते है, जिस अग्नि को सब देवताओंके पहिले पूजे ॥ मैत्रायणी सं० ३। ८।१] महापुरं जयन्तीति त इषु ᳪ समस्कुर्वंताग्नि-मनीक ᳪ सोम ᳪ शल्यं त्रिष्णुं तेजनं ॥ तेऽब्रुवन्क इमामस्यिष्यतीति ॥ रुद्रइत्यब्रुवन् रुद्रो वै क्रुरः सोऽस्यत्विति सोऽब्रवीत् वरं वृणा अहमेव पशूना मधिपतिरसनीति ॥ तस्माद्रुद्रः पशूना मधिपतिस्ता ᳪ रुद्रोऽवासृजत्सतिस्रः पुरोभित्वैभ्यो लोकेभ्योऽसुरा-न्प्राणुदत ॥ त्रिपुर महा नगरका विजय करें-इस इच्छा से उन देवताओंने विधि पूर्वक बाणको रचा, विष्णुको तीर सोमको बाण का भाला अग्नि को भाले की अणी बनाया ॥ वे सब देवता बाणको रचकर परस्पर कहने लगे, इस बाणको कौन चलावेगा, इस विचार के अनन्तर देवताओंसे कहा, (रुद्रो वै क्रूरः) रुद्र ही युद्ध विशारद हैं, यह रुद्र ही बाण-फेंकने में समर्थ है-जब देवोंने अपना रक्षक रुद्रको कहा ॥ तब रुद्रने कहा हे देवताओ-मैं वर माँगता हूँ, मैं सब प्राणि मात्र पशुओं का स्वामी होऊँ, इस हेतु से ही पशुओंका-नायक हुआ, फिर सो रुद्रने उस बाण को छोडा बाणसे तीनों नगरों को नाश करके, इन तीनों-लोकोंसे असुरों को नष्ट कर दिया ॥ तैत्तरीय सं० ६।२।३।१-२] क्रूरस्य ॥ क्रूर नाम युद्ध का है ॥ माध्यन्दिनी सं० १।२८] इषुं वापतां देवाः समस्कुर्वन्यदुपसदोऽग्नि शृंगं सोमँ शल्यं विष्णुं तेजनं ॥ तेऽब्रुवन्यो न ओजिष्ठः स इमां

विसृजत्विति ॥ इस वाणको देवोंने युद्ध की इच्छा से रचा अग्नि को भालेका मुख सोम को भाला विष्णु को वाण वनाया, देवताओंने कहा-हम सवसे जो वली होगा सो ही इस वाण को फेंकेगा ॥ **तां व्यसृजत् तया पुरः समरुजत्॥ यत्समरुजत्त द्रुद्रस्य रुद्रत्वं** ॥ उस वाण को छोडा उस वाण से पुर समुहको नाश कर डाला जो समूल त्रिपुर का नाश करने वाला है सो ही रुद्रका रुद्र-पना है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३८।४] **रुद्रो वै देवानामोजिष्ठः** ॥ देवताओं के मध्य में रुद्र ही वलवान है ॥ कपिष्ठल सं० ३७।५] **पशवो वै बृहतीः** ॥ प्राणशक्ति ही पशु है, उस अव्याकृत पशुकी सव प्रजा ही पशु है ॥ काठक० सं० २६।६] **प्रजा वै पशवः** ॥ प्रजा ही पशु हैं ॥ तैत्तरीय सं० ३।४।१।२] **नाना रूपा वै पशवः** ॥ देव दैत्य पितर गंधर्व आदि प्राणि मात्र नाना स्वरूप वाली प्रजा ही पशु हैं ॥ काठक सं० २१।९] **रूपा वै पशवः** ॥ देह धारी प्राणि मात्र पशु है ॥ कपि० सं० ३७।६] **आदित्या वै पशवः** ॥ ब्रह्मा की सव संतान पशु है ॥ तैत्तरीय सं० २। ३।२।९] **पशवो वै मरुतः** ॥ मरुत गण पशु हैं ॥ काठक सं० ३६।१] **पशवो वै सलिलं** ॥ अव्यक्त प्राण-शक्ति ही पशु है ॥ मै० सं० १।४।९] **येषामीशे पशु-पतिः पशुनां चतुष्पाद उतये द्विपादः** ॥ जे चार पग वाले और दो पग वाले मनुष्य आदि सव देवता हैं उन पशुओंका स्वामी पशुपति है ॥ काटक सं० ३०।८] **प्रजापते वैं पशवो जाताः** ॥ प्रजापति से सर्वत्र देखने वाले देवादिक पशु उत्पन्न हुए ॥ काठक सं० ३०।९] **पशुपतेः पशवो विरूपाः** रुद्रके वशमें देव दैत्य आदि नाना रूप वाले पशु है ॥ काठक सं०

३०।८] भूमा वै होता: अनन्त स्वरुप रुद्र ही प्रलय में संहार करता है॥ तैत्तरीय ब्रा० ३।८।५।३] यह रुद्र ही-उपासकोंको तारता है, और दुष्टों को दण्ड देता है ॥ ७ ॥

साधुर्न गृध्नु रस्तेँ वशूरो यातेँ वमीमस्त्वेषः स मत्सु ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(याताइव) दुःखी समान दुःखी हुए देवताओंकी (गृध्नुः) प्रार्थनासे मायिक स्वरूप धारी (त्वेषः) तेजस्वी (शूरः) वीर कर्म करनेवाला (साधुः न) परोपकारीके समान परम दयालु उपासकों पर कृपा करनेवाला रुद्र है (इव) और (समत्सु) युद्धोंमें शत्रुओं पर (अस्ता) बाणोंके फेंकने वाला (भीमः) भयंकर रूपधारी है ॥ ऋग्० १। ७१। १।

व्याख्याः—दुःखीके समान दैत्योंसे दुःखी हुए देवताओंकी कांक्षासे मायिक देहधारी तेजस्वी वीर कर्म करनेवाला परोपकारीके समान परम दयालु उपासकों पर कृपा करनेवाला रुद्र है॥ और युद्धोंमें शत्रुओं पर बाणोंकी वर्षा करनेवाला, शत्रुओंके लिये महा भयंकर रूपधारी है [एक एव रुद्रोऽवतस्थे नद्वितीयो रणे निघ्नन्पृतनासु शत्रून्॥ पापी और पुण्यात्माओंको फल देनेवाला अद्वितीय रुद्र ही अवस्थित है उससे भिन्न और दूसरा नहीं है॥ अवश्य स्पर्द्धा करने वालेयुद्धोंमें शत्रुओंको मारनेवाला रुद्र है ॥ यह मंत्र लुप्त हुई औपमन्यव संहिताका है इस समय निरुक्त में है निरुक्त १।१५। ७।] भद्रा ते अग्ने स्वनीक संदृग्घोरस्य सतो विषुणस्य चारुः॥ हे सर्व व्यापक रुद्र तुम महा कारण स्वरूप सुन्दर, ब्रह्माण्डमें चेतनमय दृष्टि गोचर हो रहे हो आपके दो रूप एक मृत्यु रूप घोर और दूसरा अमृतमय

अघोर है ॥ प्राणियोंके प्रतिकूल मरणादिक सब दुःखोंका अधिष्ठातृ देवता नाना दुःखदायी पदार्थोंमें व्यापक है सो ही घोर है ॥ और प्राणियोंके अनुकूल जीवनादिक सब सुखोंका चेतन देवता ही विविध सुखोत्पादक पदार्थों में व्यापक है सो ही रुद्र अघोर है ॥ ऋग्० ४ । ६ । ६ ।] एक ही रुद्र भावनाके कारण दो स्वरूप से अनन्त रूपवाला है ॥ ८ ॥

ति॒ग्ममे॒को बि॑भर्ति॒ हस्त॒ आयु॑धं॒ शुचि॑रु॒ग्रो जला॑ष॒भेषजः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(एकः) अद्वितीय (शुचिः) निर्मल (उग्रः) रुद्र (तिग्मं) तीक्ष्ण (आयुधं) पिनाकको (हस्ते) हाथमें (बिभर्ति) धारण करता है ॥ और दूसरे हातमें (जलाषभेषजः) सर्व सुखमय दिव्य औषधिको धारण करता है ॥ ऋग्० ८ । २९ । ५ ॥

व्याख्या:—एक अद्वितीय निर्मल रुद्र अपने एक हातमें दुष्टोंको दमन करनेके लिये तीक्ष्ण त्रिशूल रूप पिनाकको सर्वदा धारण करता है ॥ सो ही हात रुद्रका घोर स्वरूप है, और अपने अघोर मय दूसरे हातमें सर्व सुखमय दिव्य औषधिको धारण करता है [यपको अस्ति दंसना महाँ उग्रो अभिव्रतैः ॥ जो सर्वैश्वर्य सम्पन्न केवल अद्वितीय हैं, सो ही अपने कर्मसे महारुद्र है अपने बलरूप कर्मोंसे शत्रुओंको हरता है ॥ ऋग्० ८ । १ । २७] सन इन्द्रः शिवः सखा ॥ परमैश्वर्य सम्पन्न (शिवः) सर्व पाप रहित कल्याणघन उपासकोंके दुःख हरनेवाला रुद्र हम सबका परलोक हितकारी उत्तम मित्र है ॥ ऋग्० ८ । ९२ । ३ ।] इन्द्रो वै देवानामोजिष्ठः ॥ रुद्र देवताओंके बीचमें बलवान्

हैं ॥ इत् सामान्य रूपसे सर्वत्र व्यापक होने परभी-मायाकेद्वारा विशेष स्वरूपसे-द्र-प्रकाशित होता है सो ही इन्द्र है ॥ रुत्-स्वयं प्रकाशी निरालम्भ होने पर भी-मायाके द्वारा मायिक नामसे प्रसिद्ध होता है ॥ सो ही रुद्र-इन्द्र, शिव आदि नामवाला है ॥ कपिष्ठल सं० ३७। ४-५।] रुद्रके सौभ्य असौभ्य स्वरूप ही दो ज्ञात हैं ॥ ९ ॥

जरा बोधुतद्विं विड्ढि विशेविशे यज्ञियां यस्तोमं रुद्राय दृशीकम् ॥ १० ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(जरा बोध) हे रुद्र उपासकों पर स्तुति मात्रसे प्रसन्न होनेवाले (विशे विशे) प्रत्येक प्रजाओंके हृदयमें अङ्गुष्ठ मात्र ज्योति रूपसे विराजमान हो (यज्ञियाय) पूजनीय अद्भुत यक्ष स्वरूप धारी (रुद्राय) अहंकार रूप विजयके शब्द करनेवाले देवताओंके अभिमानको नाश करनेवाले रुद्रके उत्तम स्वरूपको प्राप्त करनेके लिये (तत्) उस प्रणव (दृशीकं) सुन्दर तारक (स्तोमं) स्तोत्र रूप मंत्रको (विविड्ढि] में जपता हुँ ॥ ऋग्० १। २७। १० ॥

व्याख्याः—हे रुद्र उपासकों पर वैदिक स्तुति मात्रसे प्रसंन होनेवाले, प्रत्येक् प्रजाओंके हृदयमें अङ्गुष्ठ मात्र ज्योति रूपसे अवस्थित हो. पूज्य अद्भुत यज्ञ स्वरूपधारी (रुत्) अहंकार युक्त विजयकी ध्वनी करनेवाले देवताओंके मिथ्या अभिमानको (द्र) नाश करनेवाला जो है, सो ही रुद्र है ॥ उसके उत्तम स्वरूपको प्राप्त होनेके लिये उस वाच्यका वाचक प्रणव-तारक उत्तम मंत्रको मैं जपता हूँ [अङ्गुष्ठ मात्र पुरुषोऽङ्गुष्ठं च समाश्रितः ॥ ईशः सर्वस्य जगतः प्रभु ॥ जो सब जगत्का नियंता सारे

रुद्र है ॥ सो ही पूर्णपुरुष प्राणि मात्रके हृदयमें अङ्गुष्ठ मात्र स्वरूपसे अङ्गुष्ठ ज्योति विराजमान है ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । ३८]

ब्रह्मह देवेभ्योविजिग्ये तस्यह ब्रह्मणो विजये देवा अमहीयन्ततऐक्षन्तास्माकमेवायं विजयोऽस्माक मेवायं महिमेति ॥ एक समय रुद्रकी दयासे देवोने दैत्योंको जीत लीया ॥ जैसे लोहका पिण्ड अग्निसे तपा हुआ घास आदिको जलाता है ॥ तैसे ही रुद्रकी शक्तिसे बलवान हुए देवताओने-अशुद्ध बुद्धिवाले दैत्योंको जीत लिया-रुद्रने देवोंको विजय कराई उसकी विजय में ही, देवता महा विजयको प्राप्त हुए, वे सब देवता सभामें बैठकर परस्पर एक दूसरेको देखते हुए कहने लगे यह विजय हमारी ही हैं, यह प्रभाव हमारा ही है ॥ इस प्रकार गर्वमें भरकर कहने लगे ॥ **तद्धैषां विजज्ञौ तेभ्योह प्रादुर्बभूव ॥ तन्नव्यजानन्त किमिदं यक्षमिति** ॥ वह रुद्र इन देवताओके विजयरूप अभिमान को जान गया, उन देवोंके घमण्डको दूर करनेके लिये ही प्रगट हुआ, उस रुद्रको देखकर देवोने कहा, यह अद्भुत स्वरूप क्या हैं, न जानते हुए परस्पर वे सब देवता विचार कर, इस प्रकार कहने लगे ॥ **तेऽग्निमब्रुवन् जातवेद एतद्विजानीहि ॥ किमिदं यक्षमिति तथेति** ॥ फिर उन देवोंने अग्नि देवताको कहा हे अग्ने सब, प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मको जाननेवाले तुम हो, इस आश्चर्य कारक यक्षको जानो यह कौन है ॥ इस प्रकार देवताओके वचनको सुनकर, उस अग्निने कहा बहुत अच्छा ऐसा कह कर अग्नि चलदिया ॥ **तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत्कोऽसीति अग्निर्वा अहमस्मीत्यब्रवीज्जातवेदा वा अहमस्मीति** ॥ अग्नि उस यक्षके समीप गया, उस अग्निको सो यक्ष बोला तू कौन हैं, ऐसा जब

यक्षने पूछा–तव अग्निने कहा मैं अग्नि हूँ, और दूसरा मेरा नाम जातवेदा भी है॥ **तस्मिंस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वं दहेयं यदिदं पृथिव्यामिति॥** फिर यक्षने कहा, उस अग्नि नामवाले तेरे में क्या सामर्थ्य है, इस प्रश्न के पूछने पर अग्निने कहा जो यह चराचर जगत् भूमी पर है, उस सब को ही भस्म कर सकता हूँ॥ **तस्मै तृणं निदधावेतद्दहेति तदुपप्रेयाय सर्वजवेन तन्नशशाक दग्धुं सः तत एव निववृते नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्षमिति॥** उस अग्निके बलको देखने लिये एक घासका तृण रख दिया, इस तृणको भस्म कर, ऐसा, यक्षने कहा, उस तृणके समीप बडे वेगसे गया, अग्नि अपने सब बलको लगाकर, उस घासको जलानेमें समर्थ न हुआ॥ उस रुद्ररूपी यक्षके पाससे लज्जित होकर वह अग्नि लौट आया, और देवोसे कहने लगा॥ जो वह प्रसिद्ध यक्ष है उसको मैं जानने में समर्थ न हुआ, अग्निके इस वचनको देव सभा ने सुना॥ **अथ वायुमब्रुवन् वीयवे तद्विजानीहि॥ किमेतद्यक्षमितितथेति॥** उसके अनन्तर देवोने वायु देवताको कहने लगे हे वायो तुम इस अद्भुत रूपधारीको विशेष करके जानों यह यक्ष कौन है, ऐसा देवोंने कहा, तव वायुने कहा, बहुत ठीक, कह कर चल दिया॥ **तदभ्यद्रवत् तमभ्यवदत्कोऽसीति वायुर्वा॥ अहमस्मीत्यब्रवीन्मातरिश्वा वा अहमस्मीति॥** उस यक्षके समीप पहूँचा–उस वायुको यक्ष कहने लगा तू कौन है, इस प्रकार यक्षके पूछने पर, वायु बोला मैं प्रसिद्ध वायु देवता हूँ, और मैं अन्तरिक्षचारी मातारिश्वा नामवाला हूँ॥ **तस्मिँस्त्वयि किं वीर्यमित्यपीदं सर्वमाददीय यदिदं पृथिव्यामिति॥** यक्षने कहा, तेरे उस वायु नामको सार्थक करने में क्या

सामर्थ्य है, इस प्रकार पूछने पर, वायुने कहा, जो कुछ भी यह जगत् भूमी पर है, उस सबको धारण कर सकता हूँ ॥ तस्मै तृणं निदधावे तदादत्स्वेतितदुपप्रेयाय ॥ सर्वं जवेन तन्न शशाकादातुं सत तत्र निववृते ॥ नैतदशकं विज्ञातुं यदेतद्यक्ष मिति ॥ उस वायुके बलको देखनेके लिये तृणको रख दिया, इस घासके एक तृणको धारण कर, इस प्रकार यक्षने वायुको कहा ॥ वायु उस तृणको उठाने के लिये समीप गया, उसको बडे वेगके साथ उठाने लगा, उस तृणको उठानेमें समर्थ न हुआ, सो वायु, उस यक्षके समीपसे लज्जित होकर, देव सभामें पहुँचा, फिर देवोंसे बोला, जो यह विचित्र स्वरूप धारी देव है ॥ उसको मैं जाननेमें समर्थ न हुआ ॥ अथेन्द्रमब्रुवन् मघवन्नेतद्विजानीहि ॥ किमेतद्यक्षमिति तथेति ॥ तदभ्यद्रवत् तस्मात्तिरोदधे ॥ वायुके अनन्तर देवताओंने कहा, हे इन्द्र धनवान् तुम इस यक्षको भली प्रकारसे जानों, यह अद्भुत देव कौन है ॥ ऐसा देवोंने कहा, तब इन्द्र बोला तथास्तु, ऐसा कहकर, उसके पासको जाने लगा उस देवराजके समीप आनेसे रुद्र अंतर्धान हो गया ॥ स तस्मिन्नेवा काशे स्त्रिय माजगाम बहु शोभामानामुमाँ हैमवतीं हो वाच किमे तद्यक्षमिति ॥ सो इन्द्र तिस आकाशके मध्यमें ही अनन्त शक्ति स्वरूपसे शोभायमान शुद्ध ज्ञान रूपिणी रुद्र पत्नी उमाको देखकर समीप गया, उस जगत् माताको बडे नम्र–भावसे प्रणाम करके कहा, हे माता अन्तर्धान हो गया, यह कौन पूज्य देव था, उसको जानने के लिये मेरी बडी इच्छा है, इस प्रकार अभिमान रहित इन्द्रके पूछने पर ॥ सा ब्रह्मेति हो वाच ब्रह्मणो वा एतद्वि जये महीयध्वमिति ततो हैष विदाञ्चकार ब्रह्मेति ॥ सो

उमा श्रद्धालु इन्द्रके प्रति कहने लगी, हे इन्द्र जो तेरे देखते २ अन्तर्धान हो गया, यह यक्ष स्वरूप रुद्र ही था, ऐसा तू मेरे उपदेशसे जान ।। व्यापक चेतन रुद्रकी सत्तारूप विजय में ही तुम सब विजयको प्राप्त हुए है ।। उस उमाके उपदेशसे ही, यह सर्वत्र व्यापक अद्वितीय रुद्र है, इस प्रकार, देवोंके राजा इन्द्र रुद्रको जान गया ।। सामवेदि जैमिनीय ब्राह्मण ४ । १० । ३-४ । १...१२ १] तव यक्षं पशुपते ॥ हे पशुपते रुद्र आपका यक्ष स्वरूप हैं ॥ अथर्वण ११ । २ । २४ ।] ऊमा एवाऽब्दः ।। बीज शक्तिकी प्रलयमें रक्षा करनेवाली उमा है ॥ और सृष्टिके आदिमें बीज शक्तिको सलिल-प्राण शक्तिके आकारमें प्रगट करती है ॥ काठक सं० २२ । ५ ।] आपो वै अम्बयः ।। व्यापक प्राण शक्ति माता है ।। कौषीतकि ब्रा० १२ । २ ।] अव्यक्तकी जो उमा प्रेरक है सो ही अम्बिका नामवाली देवता है ।। [सोमः ॥ उमा के सहित जो रुद्र है, सो ही सोम है ॥ माध्यन्दिनी सं० १६ । ३९ ।] मोक्षको देनेवाली उमा है, और जगत्को पालन करनेवाली अम्बिका है ॥ १० ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगंधिं पुष्टिवर्धनम् ।। उर्वारुकमिव बन्धनान्मृत्यो र्मुक्षीयमामृतात् ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(त्र्यम्बक-त्री अम्बकं) अम्बिका स्त्रीका स्वामी त्र्यम्बक रुद्र (सुगन्धि) उत्तम ज्ञान स्वरूप उमाको धारण करनेवाले (पुष्टि वर्धनं) चराचरकी वृद्धि करनेवालेको (यजामहे) हम पूजन करते हैं (उर्वा रुकं इव) जैसे पकी हुई कॉंकडी बेलसे छूट जाती है ॥ तैसे ही हे रुद्र आपके (मृत्योः) क्षरात्मक घोर देहके (बन्धनात्) बन्धनसे (मुक्षीय) मुक्त करो, और (अमृ-

तात्) अक्षरात्मक अघोर देहसे, हमको (मा) मत त्याग करो ॥ ऋग्० ७। ५९। १२ ॥

व्याख्या:—सुगन्धिरूप उत्तम ज्ञान शक्ति उमाको धारण करनेवाला, चराचर संसारकी वृद्धि करनेवाला अम्बिका स्त्रीका स्वामी, त्र्यम्बक, रुद्रको हम उपासक पूजते हैं, जैसे पकी हुई काँकडी अपनी बेलसे भिन्न हो जाती है, तैसे ही हे रुद्र आपके क्षरात्मक घोर शरीर मृत्युके वन्धनसे हमको छुडाओ, और आपके अक्षरात्मक अघोर अमृत शरीरसे हमको मत त्यागो [अम्बी वै स्त्री भग नाम्नीः ॥ तस्मात् त्र्यम्बका ॥ षडैश्वर्य सम्पन्न ही अम्बीनाम वाली स्त्री है ॥ इस हेतुसे ही, स्त्री और अम्बी मिलकर त्र्यम्बका नामकी माता हैं, इस माताका जो स्वामी है, सो ही त्र्यम्बक है ॥ कृष्ण यजु काठक सं० ३६। १४ ॥ मै० सं० १। १०। २०] एषते रुद्र भागस्तं जुषस्व, सहस्व स्राम्बिकया स्वाहेति ॥ शरद्वै रुद्रस्य ,योनिः स्व साम्बि कैता ९ वा एषोऽन्वभ्यवं चरति तस्मात् शरदि भूयिष्ट ९ हन्ति तयैवेन ९ सहनिरवद्य ते मध्यमपर्णेन जुहोति ॥ जैसे वालक अवस्थामें विकार रहित नग्न वहिन भाई एक साथ खेलते है॥ तैसे ही निर्विकारी उमा अवस्था वहिनके साथ निर्विकारी अवस्थावान् रुद्र भाई है ॥ अम्बिका वहिनरूप अर्धाङ्गनाके सहित; हे रुद्र यह आपका भाग है, आहुति दी हुई उस हवि भागको स्वीकार करो, शरद ऋतुकी देवता अम्बिका वहिन ही रुद्रकी योनि है, अर्थात् रोगकी उत्पत्तिका कारण हैं, इस लिये ही नव दुर्गा पूजन है ॥ उस रोगका देवता घोर रूप रुद्र है ॥ ऋतु देवता अम्बिकाके पीछे रोग अभिमानी रुद्र देवता चलता है ॥ शरद ऋतुमें बहुत प्राणियोंको दोनों देवता मारते हैं ॥ उनकी शान्तिके

लिये बीचले दक्षिणाग्निमय अर्क पत्रके सहित हवि द्रव्यसे हवन करते हैं॥ यजमान और ऋत्विक॥ **यथा भूवन भेषजं गवेऽश्वाय पुरुषाय॥** वह शान्तिरूप औषधि, गौके लिये घोडेके लिये मनुष्य मात्रके लिये सुख प्रद है॥ मैत्रायणी सं० १। १०। २०॥ काठक सं० ३६। १४।] **गिरि वै रुद्रस्य योनिः॥** रुद्रका स्थान कैलास पर्वत है॥ काठक सं० ३६। १४॥ मै सं० १। १०। २०। **अग्ने वृषभः पुष्टि वर्धनः॥** हे रुद्र तुम कामनाओंकी वर्षा करनेवाले और पोषण करनेवाले हो॥ ऋग्० १। ३१। ५।] **पुष्टि वर्धनः सनः स्विषकुग्रः शिवः॥** जो प्रजाकी वृद्धि करनेवाला है, सो ही शिव हमारे लिये सुख पूर्वक आयुका सिंचन करे॥ मै० सं० १। ५। ४।] **शम्भुः पुष्टिः॥** सुख स्वरूप रुद्र समृद्धि वाला है॥ ऋग्० १। ६५। १।] **आयु वै हिरण्यं॥ अमृतं वै हिरण्यं॥** आयु ही हिरण्य है॥ अमृतमय जीवन ही रिरण्य है॥ कपिष्ठल कठ सं० ४५। ७।] **अमृतं वै खलु प्राणः॥** निश्चय अमृत ही सुख पूर्वक जीवन प्राण है॥ तैत्तरीय सं० ५। २। ९। २।] रुद्र अनन्त दिव्य देह धारण करके सब प्रजाकी रक्षा करता है॥ ११॥

तमुष्टुहि यः स्विषुः सुधन्वा यो विश्वस्य क्षयति भेषजस्य॥ यक्ष्वामहे सौमनसाय रुद्रं नमोभिर्देव मसुरं दुवस्य॥ १२॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (सुइषुः) उत्तम बाणको (सुधन्वा) सुन्दर धनुषको धारण करनेवाला, (यः) जो (विश्वस्य) समस्त (भेषजस्य) औषधिमय सुखका (क्षयति) ईश्वर है (तं)

उसको (स्तुहि) हे मेरे चंचल मन तू स्तुतिसे प्रसन्न कर (महे) महान् (सौमनसाय) उत्तम शान्तिके लिये (रुद्रं) दुःख और दुःखका हेतु अज्ञानको नाश करनेवाले रुद्रको (यक्ष्व) पूज (ॐ) इस लोक और स्वर्गीय सुखकी इच्छा होवे तो (नमोभिः) हवियोंके द्वारा (असुरं) मायाके प्रेरक (देवं) रुद्रको (दुवस्य) सेवन कर ॥ ऋग्० ५ । ४२ । ११ ॥

व्याख्या:—जो रुद्र क्षर अक्षर मय सुन्दर धनुष बाणको धारण करनेवाला है, जो रुद्र समस्त सुखका धाम है, उसको हे मेरे चंचल मन तू स्तुतिसे प्रसंन कर, महा–शान्तिरूप मोक्षकी प्राप्तिके लिये, सब दुःखके हेतु अज्ञानको नाश करनेवाले रुद्रका ध्यान कर, इस लोक परलोकके सुखकी इच्छा होवे तो, हवियोंके द्वारा, मायाके प्रेरक मायिक रुद्रको श्रद्धा पूर्वक निरंतर सेवन कर [द्वा धनुं बहती मप्स्व१न्तः ॥ व्यापक कारण माया देहके मध्यमें दो कार्य क्रिया रूप बाण धनुष है, इस महा शक्तिको महेश्वर धारण करता है ॥ एक ही कारणकी ये दो बाण धनुष अवस्था हैं ॥ ऋग्० १० । २७ । १७ । धनुः ॥ अव्याकृत आकाशका नाम धनु है ॥ उस धनुषमें असंख्य त्रिलोकात्मक बाणोंको धारण करता है ॥ ऋग्० ८ । ६१ । ४ ।] क्षरं प्रधान ममृताक्षरं हरः क्षरात्मानावीशते देव एकः ॥ तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्व भावा द्भूयश्चान्ते विश्व मायानि वृत्तिः ॥ आवरणात्मक मृत्युशक्ति, क्षर और प्रकाशात्मक अमृत शक्ति अक्षर है, क्षर भोग्य अक्षर भोक्ता है, कार्यमय घोर बाणको क्रियामय अघोर धनुषमें धारण करता है, घोरबाण स्थूल विराट् और पिण्डरूप है ॥ अघोर धनुष सूक्ष्म सूत्रात्मा और व्यष्टि सूक्ष्म शरीर हैं ॥ इस समष्टि व्यष्टि, ब्रह्माण्ड पिण्डका ब्रह्मा और जीव रूपसे

शासन करनेवाला एक अद्वितीय रुद्र ही देव है॥ क्षर अक्षररूप बाण धनुषको धारण करनेवाला तीसरा मायिक महेश्वर है॥ मायाको धारण करनेसे महेश्वर और मायासे रहित होनेसे रुद्र है॥ उस रुद्रका अभेद चिन्तन करनेसे स्वस्वरूप साक्षात्कारके साथ समष्टि व्यष्टिका मूल स्वरूप माया उपाधि विलीन हो जाती है॥ जिस प्रकार स्वप्नके पदार्थ जाग्रत् अवस्थामें विलीन हो जाते हैं उसी प्रकार अपरोक्ष ज्ञानमें माया अदृश्य हो जाती है॥ श्वेता० उ० ११।१०।] **अस्मान् मायी सृजते विश्वमेतत् तस्मिँश्चान्यो मायया सन्निरुद्धः॥** इस माया देहसे, मायिक देही अधिष्ठान महेश्वर, इस सब जगत्को सृष्टि कालमें रचता है और सृष्टिसे अन्य प्रलय के समय उसमें, मायाकारणके द्वारा समेट लेता है, अर्थात् जगत कार्यको मायाकारणमें लय करता है, सो ही मायाका स्वामी महेश्वर है॥ श्वेता० उ० ४।९।] **रुद्रं देवं॥** रुद्र देवको भजों॥ कौषीतकि ब्रा० २१।२।] **देवं देवं यजामहे॥** देव देव महादेव रुद्रका हम ध्यान करते हैं॥ ऋग्० ७।७४।५।] **असुरः॥** असुर शब्द व्यापक स्वरूपको वाच्य है॥ ऋग्० १०।११।६।] **असुरस्य॥** असुर नाम रुद्रका है॥ ऋग्० ३।५३।७।] **महद्देवानामसुरत्वमेकम्॥** सब देवताओंके मध्यमें अद्वितीय महा ज्ञानी रुद्र है॥ ऋग्० ३।५५।५।] **यो योनिं योनि मधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदं संचविचैति सर्वं॥ तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमांशान्तिमत्यन्तमेति॥** जो एक रुद्र प्रत्येक कारणमें अधिष्ठान रूपसे रहता है, जिस अधिष्ठानमें यह सब कार्य जगत् अपने कारण मायाके सहित बीज शक्ति रूपसे प्रलयके समय प्राप्त होता है, और सृष्टिके समय विविध स्वरूपोंको धारण करनेवाला

होता है, उस मायाके नियन्ता, मोक्ष दाता पूजनीय रुद्रको निरंतर अभेद रूपसे साक्षात्कार करके इस पुनरावृत्तिरहित मोक्षको प्राप्त होता है ॥ श्वेता० उ० ४ । ११ ।] रुद्रसे भिन्न जो प्रपंच है सो सब दुःख रूप है ॥ एक सुखस्वरूप रुद्र ही है ॥ १२ ॥

भुवनस्य पितरं गीर्भिराभी रुद्रं दिवा वर्धया रुद्र मक्तौ ॥ बृहन्तं मृष्वमजरं सुषुम्न मृधग्घुवेम कवि नेषितासः ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(अजरं) जरा व्याधि रहित अविनाशी (बृहन्तं) कारणकाभी महा कारण (ऋष्वं) दर्शनीय (सुषुम्नं) उत्तम सुख स्वरूप (भुवनस्य) समस्त ब्रह्माण्डके (पितरं) पालक (रुद्रं) रुद्रको (अभि) श्रद्धा पुर्वक (गीर्भिः) ऋचाओंके द्वारा (वर्धय) प्रसन्न करते हैं ॥ (कविनः) सर्वज्ञ रुद्रसे (इषितः) प्रेरित हुए (ऋधक्) परम सुख स्वरूप समृद्धिके लिये (दिवा) दिन (अक्तौ) रात (रुद्रं) रुद्रका (हुवेम) हम उपासक स्मरण करते हैं ॥ ऋग्० ६ । ४९ । १० ॥

व्याख्याः—जन्म मरण रहित अविनाशी, मायाकारणकाभी महाकारण अधिष्ठान महेश्वर, दर्शनीय ज्ञानस्वरूप उत्तम सुखरूप समस्त चराचर जगत्का उत्पन्न करके पालन करनेवाले रुद्रकी श्रद्धा पूर्वक वेद ऋचाओंके द्वारा जैसे ब्राह्मण प्रशंसा करते हैं ॥ तैसे ही सर्वज्ञ देवसे प्रेरित हुए, परम सुख रूप समृद्धिके लिये दिन रात सर्व दुःख हरता रुद्रका हम सब उपासक मुनि ध्यान करते हैं [**तमीश्वराणां परमं महेश्वरं तं देवतानां परमंच दैवतं ॥ पतिं पतीनां परमं परस्तात् विदाम देवं**

भुवनेश मीडयम् ॥ असंख्य त्रिलोकोंके अग्नि वायु सूर्य रूप अनन्त ईश्वरोंके भी परम महेश्वर उस महेश्वरको जानों देवताओंके भी परम पूज्य महेश्वरको जानों और प्रजापतियोंके भी परम प्रजापति महेश्वरको जानों कारणसे परे भुवनका स्वामी उस उत्तम महा कारण पूजनीय स्वयं प्रकाशी रुद्रको हम जानते हैं ॥ श्वेता० उ० ६ । ७ ।] एक ही रुद्र सर्वत्र ओतप्रोत हो रहा है ॥ १३ ॥

तदिद्रुद्रस्यं चेतति यह्वं प्रत्नेषु धामसु ॥ मनो यत्रा वितद्धुर्विचेतसः ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(प्रत्नेषु) पुरातन (धामसु) असंख्य त्रिलोकोंमें अनन्त अग्नि-वायु सूर्य हैं उन महिमाओं में (रुद्रस्य) रुद्रका (यह्वं) महा स्वरूप व्यापक है (तत् इत्) सो ही (विचेतसः) विविध ज्ञानका स्वरूप है (यत्र) जिस देवमें (मनः) मनको (विदधुः) विविध विषयोंको रोककर स्थापन करता हैं (तत्) सो ही होता है ॥ जो इस प्रकार (चेतति) जानता है सो ही ज्ञानी है ॥ ऋग्० ८ । १३ । २० ॥

व्याख्याः—अध्यात्म अधिभौतिक जीवनसे बहुत काल रहनेवाले असंख्य त्रिलोक धामों में अनन्त अग्नि वायु सूर्य हैं ॥ उन महिमाओंमें रुद्रका विशेष महास्वरूप व्यापक है ॥ सो ही नाना ज्ञानोंका आकार है, जिस ज्ञान स्वरूपमें मनको विषयोंसे रोककर स्थापन करता है ॥ सो ही स्वरूप होता है, जो इस प्रकार जानता है वही ज्ञानी है एको देवः सर्व भूतेषु गूढः सर्व व्यापी ॥ एक ही रुद्र सब प्राणीयोंमें गुप्त है सर्व व्यापक है ॥

श्वेता० उ० ६ । ११ ।] सबमें व्यापक होता हुआ भी, सबसे रहित तुरीय स्वरूप है ॥ १४ ॥

अन्तरिच्छन्ति तं जने रुद्रं परो मनीषया ॥ गृभ्णन्ति जिह्वया ससम् ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(अन्तः) हृदयके मध्यमें (परः) अव्यक्तसे उत्तम रुद्र है (जिह्वया) अशुद्ध मन वाणीसे (ससं) रहित (जने) मनुष्य जन्मको सफल करनेके लिये ॥ जिस रुद्रको जिज्ञासु (इच्छन्ति इच्छा करते हैं (तं) उस (रुद्रं) देवको (मनीषया) सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा (गृभ्णन्ति) स्व स्वरूपसे साक्षात्कार करते हैं ॥ ऋग् ८ । ६१ । ३ ॥

व्याख्या:—अव्याकृतसे पर उत्तम पुरुष, प्रत्येक् प्राणियोंके हृदयमें विराजमान है, अशुद्ध मनवाणी के धर्मसे रहित, जिस रुद्रको, मनुष्य जन्म को सफल करने के लिये जिज्ञासु इच्छा करते हैं, उस देवको सूक्ष्म बुद्धिके द्वारा स्वस्वरूप से साक्षात्कार करते हैं [**अव्यक्तात्पुरुषः परः पुरुषान्न परं किञ्चित्** ॥ प्राण शक्तिसे–उत्तम पुरुष से पर कुछ भी नहीं है ॥ कठो० ३ । ११] **तद्विष्णोः परमं पदं** ॥ व्यापक–अव्यक्त से जो पर है सो ही उत्तम स्वरूप है ॥ कठो० ३ । ९] **यः परः समहेश्वरः** ॥ जो अव्याकृत से पर है, सो ही महेश्वर है ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । २४ । १०] **पुरुषो वै रुद्रः** ॥ **सर्वो वै रुद्रः** पूर्ण पुरुष ही रुद्र है ॥ सर्व व्यापक ही रुद्र है ॥ तै० आर० १० । १६] **इदं पूर्णं पुरुषेण सर्वं** ॥ यह सब चराचर जगत् रुद्र से पूर्ण हो रहा है ॥ तै० आर० १० । २०] **अङ्गुष्ठ मात्रः पुरुषोऽन्तरात्मा सदा जनानां हृदये सन्निविष्ट** ॥ अङ्गुष्ठ मात्र

ज्योतिवाला पुरुष सब कालमें प्राणियों के हृदयमें विराजमान है ॥ श्वेता० उ० ३। १३] दिव्यो ह्यमूर्त्तः पुरुषः स बाह्याभ्यन्तरो ह्यजः ॥ अप्राणोह्यमनाःशुभ्रोह्य क्षरात्परतः परः ॥ सो रुद्र दिव्य अद्भुत स्वरूप बाहर भीतर व्यापक पूर्ण जन्म मरण रहित, सूत्रात्मा रूप प्राणके धर्मसे रहित विराट्रूप मनके धर्मसे शून्य अव्यक्त उत्तम से भी उत्तम शुद्ध तुरीय है ॥ मु० उ० २। १। २] ततो यदुत्तरततरं तदरूप मनामयं ॥ य एतद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःख मेवापियंति ॥ जो उस कार्य जगतके सहित कारणसे भी अति श्रेष्ठ है सो निराकार सब दुःखोंसे रहित सुखरूप इस रुद्र को जानते हैं वे सब अमर हो जाते हैं और रुद्रको नहीं जानते हैं वे सब ही वारंवार जन्म मरणके चक्रमें प्राप्त होते हैं ॥ श्वेता० उ० ३। १०] प्रपंचोपशमं शान्तं शिवमद्वैतं चतुर्थं मन्यन्ते ॥ कार्य कारणसे रहित शान्त कल्याणस्वरूप अद्वितीय तुरीय रुद्रको ज्ञानी मानते है ॥ माण्डूक्य० उ० ८] एको रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे तुरीयमिमं ॥ सर्व भेदरहित सब दुःख नाशक रुद्र से भिन्न और कोई स्थित नहीं है चतुर्थस्वरूप अद्वितीय इस रुद्रको सब का स्वामी जानों ॥ अथर्व शिर उ० ५] इस रुद्रकी सत्तामें सब देव आदि प्राणियोंकी सत्ता है ॥ १५ ॥

यजन्ते अस्य सख्यं वयश्च नमस्विनः स्व ऋतस्य धामन् ॥ विपृक्षौ वावधे नृभिस्त वां न इदं नमो रुद्राय प्रेष्ठम् ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(वयः) उपासक (स्वे) अपने (धामन्) हृदयमें (अस्य) इस (ऋतस्य) ब्रह्मारूप सत्यके भी सत्य-

स्वरूप रुद्रके (सख्यं) समष्टि व्यष्टि उपाधिसे रहित शुद्ध तुरीय स्नेहमय . सुखस्वरूप को [यजन्ते) ध्यान करते हैं (च) और (नृभिः) सकामीं मनुष्यों के द्वारा (नमस्विनः) हवियोंसे और (स्तवानः) स्तुतियोंसें प्रसंन किया जाता है, उन सकामीयोंको रुद्र (विपृक्षः) अन्न आदि भोग्य पदार्थ (वावधे) देता है (रुद्राय) दुःखीयों की पुकारको सुनकर प्रेमसे आँसु वहाने वाले परम दयालु रुद्रके प्रति (इदं) यह (प्रेष्ठं) अति प्रिय (नमः) मेरा प्रणाम होवे ॥ ऋग्० ७ । ३६ । ५ ॥

व्याख्याः—पक्षीके समान भ्रमण करनेवाले उपासक संन्यासी अपने हृदयाकाशमें, सत्य पूर्ण ब्रह्मके भी सत्य परिपूर्ण स्वयं प्रकाशी इस रुद्रके, समष्टि व्यष्टि उपाधिसे रहित शुद्ध तुरीय स्नेहमय सबका वास्तविक सुखस्वरूपको ध्यान करते हैं ॥ और इस लोक परलोकके भोगोंकी इच्छा करनेवाले मनुष्यों के द्वारा हवियोंके सहित स्तुतियों से प्रसंन्न किया जाता है, उन सकामीयोंको विविध भोग आदि अन्न देता है, दुःखीयोंकी पुकारको सुन कर प्रेमसे आँसु वहानेवाले परम कृपालु रुद्रके निमित्त यह अति प्रिय मेरा नमस्कार होवे [प्राणो वै वयः ॥ प्राण ही वय नाम वाला है ॥ ऐतरेयारण्यक ५ । २] नमो हि देवानां स्वधा पितृणा ॥ नमस्कार ही देवताओंको प्रिय है, और स्वधा ही पितृयोंको प्रिय है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४० । ५] अन्न रूप औषधि से प्राणको धारण करके संन्यासी ध्यान करते हैं [अन्नं ह प्राणः ॥ अन्न हीं प्राणका पोषक है ॥ ऐतरेय ब्रा० ७ । ३३ १] दुःखी उपासकोंके आवाहनको रुद्र शीघ्र ही सुनता है ॥ १६ ॥

तत्स॑वितुर्वरे॑ण्यं॒ भर्गो॑ दे॒वस्य॑ धीमहि धियो॒ यो नः॑ प्रचो॒दया॑त् ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(तत्) उस (वरेण्यं) प्राप्त करने योग्य सूर्य मण्डल मध्यवर्ती (सवितुः) उत्पत्ति, पालन, संहार करने वाले (देवस्य) रुद्रका (धीमहि) हम ध्यान करते हैं (यः) जो (भर्गः) पापके कारण को भूँजने वाला है, सो ही रुद्र (नः) हमारी (धियः) बुद्धि की चंचल वहिर्मुख वृत्तियोंको (प्रचोदयात्) अन्तर्मुखकरके अपने स्वरूपमें प्रेरणा करे ॥ ऋग् ३ । ६२ । १० ॥

व्याख्याः—उस प्रत्यक्ष वरने योग्य सूर्यमण्डल मध्य वर्ती, जगत उत्पत्ति, स्थिति, लय आदि कर्मको करने वाले रुद्रका त्रिविधस्वभाव वाले हम सव प्रजागण, कर्म, उपासना, ज्ञानकेद्वारा ध्यान करते हैं, जो सव पापोंके मूलको भस्म करता है, सो ही रुद्र, हमारी वहिर्मुख बुद्धिकी चंचल वृत्तियोंको, अन्तर्मुख करके अपने स्वरूपमें लगावे] **ब्रह्म वै देव सविता ॥** व्यापक रुद्र ही सविता है ॥ तैत्तरीय सं० १ । ३ । ४ । ४] **सविता प्रसवानामधिपतिः ॥ सूर्य श्चक्षुषामधिपतिः॥** उत्पन्न होने वाले प्राणि मात्रोंका स्वामी सविता है, यही सविता पशुपति है, ।। इस चेतन पुरुषका योनि रूप-स्थान सूर्य मण्डल है, यह सूर्य नेत्रोंका अधिपति है ॥ अथर्वण-५ । २४ । १-९] सूर्य मण्डल के नाम विष्णु, हरि, योनि, प्राण, हृदय, नाभि, नभ, गौ,-समुद्र, वपु, क्षेत्र, आदि और भी नाम हैं ॥ चेतन पुरुष सविता के नाम अग्नि रुद्र-हर भर्ग, प्रजापति, पशुपति, इन्द्र ब्रह्म-ब्रह्मा, अन्तर्यामी, आदि वहुत हैं [**सवितुश्च**

विष्णोः......सप्रथः...आज भारा वसिष्ठः भरद्वाज के उस प्रथ पुत्रने और वसिष्ठने (विष्णोः) सूर्य मण्डल के मध्यवर्ती सविता का साक्षात्कार किया ।। ऋग्० १० । १८१ । ९] **विष्णो र्महासतेः परमं पदं** ॥ महा व्यापकरूपसे गमन करने वाले प्रकाशका स्थान सूर्य मण्डल है ।। निरुक्त २ । ७ । १] **असुर... अविष्कृधि हरये सूर्याय** ॥ हे वलवान् रुद्र रश्मिवान् मण्डल को हमारे लिये प्रगट करो ॥ ऋग्० १० । १६ । ११ ॥ अथर्वण २० । ३२ । १] **रश्मयो हरयः** ॥ किरण समुह का नाम हरि है ऋग्० ६ । ४४ । १९] **हरिं योनिं** ॥ सूर्य मण्डल योनि है ॥ ऋग्० १० । ९६ । २ ॥ अथर्वण २० । ३० । २] **विष्णु-र्योनिं कल्पयतु** ॥ स्त्री की योनिको विष्णु भावना करे ॥ ऋग्० १० । १८४ । १] **विष्णुं निषिक्त पां** । सिंचन कीये हुए वीर्यको पालन करने वाला विष्णु योनि है ।। ऋग्० ७ । ३६ । ९) **विष्णुः** ।। योनि रूप विष्णु सबका प्रसव कर्त्ता हैं ।। माध्यन्दिनी सं० १ । २६] **विश्वस्य नाभिः** ॥ सब जगत्का उत्पत्ति स्थान सूर्य मण्डल है ॥ ऋग् १० । ५ ३] **नाभिः** ॥ नाभि नाम सूर्य मण्डलका है ।। ऋग् ५ । ४७ । २] **नभः** ।। सूर्यमण्डल ॥ ऋग् ७ । ९६ । ५] **विष्णुं सूर्य** ॥ विष्णु सूर्यका नाम है ।। ऋग्० १० । १४१ । ३] **ऋतस्य गर्भं विष्णुं** ।। जल रूप वीर्यका गर्भ धारण करनेवाले सूर्य मण्डलको जानों ।। ऋग् १ । १५६ । ३] **किमित्ते विष्णो परिचक्ष्यं भूत् प्रयद्ववक्षो शिपिविष्टो अस्मि** ।। हे विष्णो आपका क्या प्रजोजन है, शिपिविष्ट नाम कहाने में, जिस भगनामसे घिरे हुए नामकों में वसिष्ठ लेता हूँ ।। ऋग्० ७ । १०० । ६] **शिपिविष्टो विष्णुरिति विष्णो द्वें नामनो भवतः**

कुत्सितार्थीयं पूर्वं भवतीत्यौपमन्यवः ॥ विष्णुके शिपिविष्ट और विष्णु यह दो नाम हैं ॥ उन दोनोंमें से पहिला जो नाम विभत्स—निन्दित अर्थ वाला शिपिविष्ट है, सो ही स्त्री के गुप्त स्थानक वाच्य है (शिपि) योनि (विष्टः) व्यापक है ॥ यजुर्वेदीय औपन्यव संहिताके प्रवर्तक महर्षि औपमन्यवने कहा है ॥ ऐसा यास्काचार्य मानते हैं ॥ निरुक्त ५ । ८ । १] शिपि नाम भगका है, और शेप नाम लिंग का है [अभिक्रन्दन् स्तनयन्नरुणः शितिङ्गोबृहच्छेपोनु भूमौ जभार ॥ ब्रह्मचारी सिञ्चतिसानौ रेतः पृथिव्यां तेन जीवन्ति प्रदिशश्चतस्रः ॥ नित्य तरुण श्वेत स्वरूप महा लिंग वाला, भूमिमें स्थित रजरूप जलकों (ब्रह्मचारी) ऊर्ध्वरेतः रुद्र, किरणके द्वारा खेंच लेता है, फिर उस भौम जलको अपने तेजोमय वीर्य्यमें मिलाकर, सूर्य मण्डलके जलवाले अग्र भाग रूप योनिमें वीर्यको सींचता है ॥ वह विष्णु रूप योनि जलको गर्भ रूपसे आठ मास पर्य्यन्त धारण करती हुई नव मासके आरम्भ होते ही चित्र विचित्र मेघों की गर्जना रूप वेदना से युक्त हुई वर्षा रूप पुत्रको प्रगट करती हुई चार मास सूतीका गृहमें शयन करती है ॥ उस वर्षा से भूमी पर चार प्रकारकी चिन्ह रूप—प्रजायें जीती हैं ॥ शंखके समान बीज पुष्ट होकर वृक्ष आदिकी उत्पत्ति करता है, सो ही उद्भिज्ज योनि है ॥ चक्र के समान नाना गति वाले पदार्थों के मैल आदिसे मत्कुण, मच्छर, आदिकी उत्पत्ति है सो ही स्वेदज योनि है ॥ गदाके समान उत्पन्न होते समय मुख नीचा और पग ऊपर हैं, ऐसे प्राणियोंकी उत्पत्तिका नाम जरायु योनि है ॥ जैसे कमल प्रफुल्लित होने के पहिले अण्डाकृति होता हुआ फूलता है ॥ तैसे ही पक्षी आदि

जन्तुओं से प्रथम अण्डा उत्पन्न होता, फिर क्रमसे परिपक्व हो कर अपनी २ जाति के आकारमें विकाश पाता है सो ही अण्डज योनि है ॥ असंख्य व्यष्टि रूप योनियों का समष्टि व्यापक एक योनि सूर्य मण्डल है।। और अपरिमित व्यष्टि लिंगोंका समष्टि लिंग भर्ग रूपी रुद्र है ।। यही चेतन लिंगरूप पुरुष सूर्य मण्डल योनिमें विराजमान है ।। अथर्वण ११।७।१२] ऋतस्य योनि ।। रुद्रके स्थानको ।। ऋग्० ५।२१-४७।४-२] तस्य **योनिं परिपश्यन्ति धीराः** ॥ उस पशुपतिके सूर्यमण्डल स्थानको ध्यान सम्पन्न मुनि देखते हैं ।। माध्यन्दिनी सं० ३९। १९] ज्ञानी सूर्यके मध्यमें रुद्रको देखते हैं ।। योगी अपने हृदयमें, यज्ञ करने वाले अग्निमें रुद्रको पूजते हैं। और इन तीनों से रहित अल्प बुद्धि वाले पाषाण आदिमें रुद्रकी उपासना करते हैं ।। प्राणशक्ति जलाधारी है ।। और चेतन रुद्रही चिन्ह रूप लिंग है ।। आकाशलिंग और भूमी जलाधारी है ।। सूर्य जलाधारी और सूर्यका अन्तर्यामी लिंग है ।। यज्ञकुण्ड जलाधारी और अग्नि लिंग है ।। अपनी बुद्धि जलाधारी और अङ्गुष्ठ मात्र ज्योति लिंग है ।। शालिग्रामशीलाका आकार स्त्री के गर्भाशय के समान है ।। जैसे स्त्रीके गर्भाशयका मुख सोला दिन पर्य्यन्त खुला रहता है और फिर बन्ध हो जाता है, तैसे ही शालिग्राम शीलाओंके मध्यमें भी कितनेक शीला छिद्र युक्त और कितनेक छिद्र रहित हैं ।। सूर्यका उदय होना ही मुख खुला है ॥ और अस्त होना ही मुख बंध है ।। सूर्यमण्डलकी आकृति ही शालिग्राम है ।। और मण्डलवर्ती पुरुषही लिंग है ।। [**आदित्य वर्णे तपसोऽधि जातो वनस्पतिस्तव वृक्षोऽथ बिल्वः** ॥ हे मण्डलकी सौंदर्य लक्ष्मि तू प्रथम प्रगट हुई ॥

और सूर्यके तेजसे तेरा प्रिय रूप विल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ ॥ श्री सूक्त ६।] बैल्वो यूपो भवत्यसौवा आदित्योयतोऽजायत ॥ ततो विल्व उदतिष्ठत् सयोन्येव ॥ यह विल्व स्थम्भ आदित्यरूप है, जिस सूर्यसे उत्पन्न हुआ उस सूर्य से ही विल्व स्थम्भ प्रकाशित हो रहा है ॥ तेज और विल्ववृक्ष दोनों समान स्थान वाले हैं ॥ तैत्तरीय सं० २। १। ८। २।] ज्योतिषो विल्वोऽज्जायत ॥ सूर्य ज्योतिसे विल्व वृक्ष उत्पन्न हुआ ॥ मैत्रायणी सं० ३। ९। ३।] जो सूर्यमण्डलरूप जलाधारीमें भर्गरूपसे लिंग है उसी रुद्रको पाषाणकी जलाधारीमें लिंगरूपसे स्थापन करके विल्व पत्र चढाते हुए पूजते हैं ॥ अकार, उकार, मकार ये तीनों मात्रा क्रमसे तीन दल रूप विल्वपत्र है ॥ गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय ये तीन अग्नि जिस चतुर्थ पुरुषमें अवस्थित हैं सो ही रुद्र है ॥ यह लिंग पूजा आर्य जातिमें वेदके अनुकूल परंपरासे चली आती है ॥ हिरण्यपाणिः सविता सुजिह्वः ॥ सुवर्ण हातवाला उत्तम ज्ञानका उपदेष्टा सविता है ॥ ऋग्० ३। ५४। ११।] नमो हिरण्यवाहवे ॥ सूवर्ण हात वाले रुद्रको प्रणाम है ॥ कपिष्ठल कठ सं० २७। २।] हिरण्य पाणिः सविता ॥ हिरण्य हस्तो असुरः ॥ सुवर्ण हातवाला सविता ॥ सुवर्ण हातवाला रुद्र ऋग्० १। ३५। ९—१०। हरः ॥ जातवेदः ॥ रुद्र हर है ॥ अथर्वण १८। ३। ७३।] हरः ॥ हर—नाम रुद्रका है ॥ ऋग्० १०। ८७। २५।] ज्योतिर्हरः ॥ प्रकाश स्वरूप हर है ॥ निरुक्त ४। १९।] सवितः हरः ॥ हे सविता तू हर है ॥ ऋग् १०। १५८। २।] आदित्य एष रुद्रः ॥ यह सविता ही रुद्र है ॥ तैत्तरीय सं० ६। ५। ६। ८।] रुद्रो वा अग्निः ॥ रुद्र ही अग्नि नामवाला है ॥

काठक सं० २६ । २ ।] अग्नि वैं भर्गः ॥ आदित्यो वै भर्गः ॥ अग्नि ही भर्ग है ॥ सविता ही भर्ग है ॥ जैमिनीय ब्रा० ४ । २ । १२ । २ ।] भर्ग ॥ भर्ग नाम रुद्रका है ॥ तैत्तरीय ब्रा० २ । ५ । ७ । १ ।] भर्जयतीति वैष भर्गइति रुद्रः ॥ पापको भस्म करता है यह मण्डलस्थ पुरुषही भर्ग नामवाला रुद्र है ॥ मैत्रायणी उ० ६ । ७ ।] समुद्रे हृदि ॥ मण्डलके मध्यमें रुद्र है ॥ माध्यन्दिनी सं० १७ । ९९ ।] सलिलस्य पृष्टेब्रभ्रुः पिंगलः समुद्रे ॥ अन्तरिक्षके ऊँचे भागमें सूर्य हैं उस मण्डलमय समुद्रमें श्वेत निर्मल सुवर्णपुरुष रुद्र है ॥ अथर्वण ११ । ७ । २६ ।] भर्गो ह नामो तयस्य देवाः स्वर्णये त्रिषधस्थे निषेदुः ॥ प्रसिद्ध भर्ग नामवाला रुद्र सूर्यके समान स्वयं ज्योति स्वरूप है और जिस रुद्रकी जे तीनों लोकोंमें देवता अवस्थित हैं वे सब देवता उपासना करते हैं ॥ रुद्रके दो नाम एक अग्नि और दूसरा जात वेदा है ॥ और अग्नि देवताका नाम भी जातवेदा है ॥ ऋग्० १० । ६१ । १४ ।] तद्वपुषे धायि दर्शतं देवस्य भर्गः ॥ उस सूर्य मण्डलदेहमें रुद्रका जो भर्ग स्वरूप स्थित है उस दर्शनीय रुद्रका जो भर्ग स्वरूप स्थित है उस दर्शनीय रुद्रको सेवन करो ॥ ऋग्० १ । १४१ । १ ।] भर्गश्चरति मर्त्येषु ॥ रुद्र ही सब व्यष्टि शरीरोंमें जीवरूपसे विचरता है ॥ अथर्वण ९ । १ । ४ ।] असौ आदित्यः सर्वा प्रजाः ॥ यह सविता समस्त प्रजारूप है ॥ तैत्तरीय सं० ६ । ५ । ५ । १ ।] समुद्रे अन्तः शयते ॥ सूर्य मण्डलके मध्यमें रुद्रकी विशेष रूपसे उपलब्धि है ॥ ऋग्० ८ । ८९ । १२ ।] रुक्मो वै समुद्रः पुरुषः सुपर्णः ॥ हिरण्यमण्डलही समुद्र है और उस सूर्य मण्डलमें उत्तम व्यापक पुरुष है ॥ शतपथ ब्रा० ७ ।

४ । २ । ५ ।] आदित्यो वै प्राणः ॥ सूर्य मण्डलही प्राण है ॥ जैमिनीय ब्रा० ४ । ११ । १ । ११ ।] प्राणो वै हरिः प्राण ही हरि है ॥ शांखायन ब्रा० १७ । १ ।] पुरुषः सत्व स्यैषः प्रवर्त्तकः ॥ यह रुद्र प्राणका अन्तर्यामी रूपसे प्रेरक स्वामी है ॥ श्वेता० उ० ३ । १२ ।] असुरस्ययोनौ ॥ रुद्रके आदित्यरूप स्थानमें ॥ ऋग्० १० । ३१ । ६ ।] अक्षरं पदे ॥ अविनाशी रुद्रको मण्डलमें जाने ॥ ऋग्० ३ । ५५ । १ ।] ऋतस्य सद्म ॥ रुद्रके आदित्य मण्डल मय घरमें ॥ ऋग्० ३ । ५५ । १४ ।] हिरण्य बाहुः वज्री ॥ आयुध धारी सुवर्ण हात वाला रुद्र है ॥ ऋग्० ७ । ३४ । ४ ।] हिरिश्मश्रुः ॥ सुवर्णकी मूछ दाढी वाला रुद्र है ॥ ऋग्० ५ । ७ । ७ ।] हरिकेशः ॥ हरिश्मशारुः ॥ सुवर्ण केशवाला, सुवर्णकी दाढी वाला ॥ ऋग्० १० । १६ । ५-८ ।] हिरण्य पाणि ॥ सुवर्ण हातवाले सविताको रुद्र जानों ॥ ऋग्० १ । २२ । ५ ।] क्षेत्रं ॥ सूर्य मण्डलका नाम क्षेत्र है ॥ ऋग्० ९ । ९१ । ६ ।] क्षेत्रस्य पतिरस्तु शम्भुः ॥ सूर्यमण्डलदेहका स्वामी रुद्र हमारा कल्याण करनेवाला होवे ॥ ऋग्० ७ । ३५ । १० ।] क्षेत्रस्य पतिना वयं ॥ सुर्य मण्डलके स्वामीके द्वारा हम सब प्रजा भोग और मोक्ष पाते हैं ॥ ऋग्० ४ । ५७ । १ ।] वसु विभर्षि हस्तयोः ॥ हे रुद्र तुम दोनों हातोंमें भोग मोक्ष रूप धन धारण करते हो ॥ ऋग्० १ । ५५ । ८ ।] दर्शतं वपुः ॥ प्रत्यक्ष दर्शनीय सूर्य मण्डल देह है ॥ ऋग० ७ । ६६ । १४ ।] एत मादित्ये पुरुषं वेदयन्ते स इन्द्रः स प्रजापतिस्तद्ब्रह्म ॥ इस पुरुषको सूर्य मण्डलमें जानते हैं, सो ही पुरुष इन्द्र है ॥ सो ही ब्रह्मा है सो ही व्यापक रुद्र है ॥ कौषीतकि ब्रा० ८ । ३ ।]

असौ वा आदित्यः स्वयम्भुः श्रेष्ठः ॥ यह अखण्ड स्वयंभू उत्तम है ॥ मैत्रायणी सं० ४ । ६ । ६ ।] तद्योऽहं सोऽसौ योऽसौ सोऽहम् ॥ जो यह पुरुष है सो ही मैं वसुक्र नामका ऋषि हूँ ॥ जो मैं व्यष्टि देहका चेतन जीव नामवाला पुरुष हूँ सो ही व्यष्टि उपाधिक, यह समष्टि उपाधिक पूर्ण पुरुष है (तत्) दोनों उपाधिसे रहित सो ही तुरीय स्वरूप रुद्र है ॥ ऐतरेयारण्यक १० । १५ । तत्सत्यं स आत्मा तत्त्वमसि श्वेतकेतो '। उद्दालकने कहा हे पुत्र वह सत्य चेतन देव है, सो ही समष्टि व्यष्टि आत्मा है, सो ही तू है ॥ छान्दोग्यो० ६ । ८ । ७ ।] योऽहमस्मि ब्रह्माहमस्मि ॥ जो मैं जीव नाम वाला हूँ सो ही मै व्यापक रुद्र तुरीय स्वरूप हूँ ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १] तदपश्यत् तदभवत् तदासीत् ॥ उस अद्वितीय रुद्रस्वरूपको अभेद रूपसे अनुभव करता है सो स्वरूप ही होता है, सो ही तुरीय स्वरूप पहिले था ॥ अर्थात् जीव कोई भिन्न नवीन वस्तु नहीं है, वह अखण्ड चेतन भ्रममात्रसे जीव और भ्रम निवृत्तिसे शुद्ध ज्ञान स्वरूप है ॥ काण्व सं० ४ । ५ । ३ । ९ ॥ माध्यन्दिनी सं० ३२ । १२ ।] एष जीवो नमृतः ॥ यह जीव नहीं मरता है तों जन्म भी नहीं लेता है ॥ काठक सं० ११ । ५ ।] जीवापेतं वाव किलेदं म्रियते न जीवो म्रियते ॥ जीवसे रहित यह स्थूल देह मरता है निश्चय जीव नहीं मरता है ॥ छां० उ० ६ । ११ । ३ ।] न जायते म्रियते वा विपश्चिन्नायं कुतश्चिन्न बभूव कश्चित् ॥ अजो नित्यः शाश्वतोऽयं पुराणो न हन्यते हन्यमाने शरीरे ॥ यह जीवात्मा न उत्पन्न होता न मरता है, किसी कारणसे न उत्पन्न हुआ और न कभी उत्पन्न होगा, जन्ममरणरहित सर्वज्ञ नित्य

अखण्ड घन अविनाशी, अनादि रुद्र स्वरूप है, देहके नाश होनेसे इसका नाश नहीं किन्तु जीवसे रहित हुई देहका नाश है॥ कठोपनिषद् २। १८।] अहम्परस्तादहमवस्ताद् यदन्तरिक्षन्तदुमेपिताभूत॥ अह ऽ सुयंमुभयतो ददर्शाहन्देवानाम्परमं गुहायत्॥ मंत्र द्रष्टा भरद्वाज ऋषि अपनी आत्माको सर्वत्र व्यापक रूपसे साक्षात्कार करके शिष्योंके प्रति उपदेश करता है॥ ऊपर द्यौ में सूर्य मैं हूँ, अन्तरिक्षमें वायुमं हूँ, भूमीमैं अग्नि मैं हूँ, इन तीनों देवताओंका जो चेतन रुद्र है, सो हीं रुद्र इस मेरे व्यष्टि देहरूप भरद्वाजका उत्पत्ति और पालन करने वाला पिता है॥ देवोंके सहित सब प्राणियों के हृदय गुहामें उत्तम तत्त्व रुद्र विराजमान है, सो ही मैं सूर्य के अन्तर्यामी रुद्रको समष्टि व्यष्टि दोनों रूपों से देखता हूँ॥ काण्व सं० १।८।६।२॥ माध्यन्दिनी सं० ८।९] यह भावना ज्ञानीयोंकी है॥ औरसकामीयोंकी प्रार्थना रूप भावना है सविता पश्चातात्सविता पुरस्तात्सवितोत्तरात्तात्सविताधरात्तात्॥ सविता नः सुवतु सर्वतातिं सवितानो रासतां दीर्घमायुः॥ सविता पश्चिममें स्थित है, इन्द्र पूर्वमें स्थित है, ईशान उत्तरमें स्थित है, भर्ग दक्षिणमें स्थित है, रुद्र हमारी सब अभिलाषारूप धन आदिको देवे और त्र्यम्बका माताका स्वामी त्र्यम्बक हम सब के लिये बहुत आयु प्रदान करे॥ ऋग् १०। ३६। १४] जो वेदमें सविता नाम है, सो ही सविता उपनिषदोंका ब्रह्म है [ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्॥ यह अविनाशी व्यापक रुद्र ही पूर्वमें है॥ मु० उ० २।२।११] सूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ मण्डल युक्त चेतन ही स्थावर जंगम स्वरूप है॥ ऋग्० १। ११५।] अग्निर्देवेषु राजत्य-

ष्विर्मर्तेष्वाविशन् ॥ व्यापक रुद्र देवताओंमें और मनुष्यों में चेतन रूपसे प्रवेश करके प्रकाशित हो रहा है ॥ ऋग्० ५। २५।४] य एवायं चक्षुसिपुरुष एष इन्द्रएष प्रजापतिः॥ जो यह पुरुष नेत्रमें है सो ही अध्यात्म उपाधिक यही इन्द्र है यही प्रजापति है ॥ जैमिनीय ब्रा० ४।११।३।१३] असौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः ॥ यह अधिदैव उपाधिक सविता है। काठक सं० २२।८।] अक्षन्लोहिन्यो राजयस्ताभिरेनंरुद्रोऽन्वायत्तः ॥ आँखोंमें जे लाल रेखा हैं, उन रेखाओं के द्वारा ही यह चेष्टा करने वाला जीव रूपसे रुद्र व्यापक है ॥ वृ० उ० २।२।२।] असौ आदित्यो ब्रह्म ॥ अधि दैव चक्षुका यह अखण्ड पुरुष ही व्यापक रुद्र है ॥ तैत्तरीयारण्यक २।२।२।] अध्यात्म उपाधिक जीव अपने अधिदैव उपाधिक पुरुषकी उपासना करता है [य एषोन्तरा दित्ये हिरण्यम पुरुषो दृष्य ते हिरण्यश्मश्रुर्हिरण्यकेश आप्रणखात्सर्व एव सुवर्णः । जो यह प्रकाश मय पुरुष सूर्य मण्डलके मध्यमें दीखता है सो पुरुष सुवर्णके समान निर्मल दाढी केशवाला नखसे लेकर मस्तक पर्य्यन्त सब ही ज्योति स्वरूप है ॥ तस्य यथा कप्यासं पुण्डरीकमेवमक्षिणी ॥ जैसे वन्दरके नितम्वके दोनों भागोंकी लाल प्रभा है ॥ तैसे ही मण्डलस्थ रुद्रके दोनों नेत्र प्रदीप्त हो रहे हैं । जैसे वीर पुरुषको सिंहकी उपमा देनेसे वह वीर गौभक्षी नहीं होता है। तैसेही बन्दरके नितम्वकी उपमा देनेसे नितम्व नहीं वनता है ॥ गायत्री मंत्रका द्वितीय अर्थः आदित्यो वै वृषा कपिः ॥ सूर्य ही वृषा कपि है॥ गोपथ ब्रा० उत्तर भाग ६।१२।] आत्मा वै वृषाकपिः ॥ व्यापक सूर्य मण्डल ही

वृषाकपि है ॥ ऐत्तरेय ब्रा० ३० । ४ ।] वृषा नाम चेतन रुद्रका है और कपिनाम सूर्यमण्डलका है, कपिरूप स्थानवाला जो भर्ग है सो ही कप्यास है ॥ अन्न वैकं ॥ जलहीकं नामवाला है ॥ सुखं वैकं ॥ सुखहीकं नामवाला है ॥ गोपथ ब्रा० उ० ६ । ३] जलको किरणोंद्वारा पीनेसे ही सूर्य मण्डलका नाम कपि है वह जल आठ मास पर्य्यन्त सूर्यमण्डलयोनि गर्भरूपसे धारण करती है ॥ उस योनिमें चेतन लिंग रूपसे स्थित हुआ जल रूप वीर्य्यकी वर्षा करनेसे उस रुद्रका नाम वृषा है [ब्रह्म सूर्यं समञ्ज्योतिः ॥ व्यापक रुद्र सूर्यके समान स्वयं प्रकाशी है ॥ माध्यन्दिनी सं० २३ । ४८ ।] ज्योति वै शुक्रम् ॥ चेतन ज्योति ही निर्मल वीर्य स्वरूप है ॥ ऐ० ब्रा० ३२ । ११ ।] यहि निर्मल वीर्य रूप तेज लिंग है [कपिरिव ॥ बन्दरके समान ॥ अथर्वण ३ । ९ । ४ ॥ ३७ । ११ ।] कपिः ॥ देहके मध्यमें रसको पीता है सो ही अग्नि कपि है ॥ अथर्वण ६ । ४९ । १ ।] यह प्रतीक उपासना है ॥ और वास्तविक तो पुरुष सर्व चिन्हरहित शुद्ध है ॥ सूर्यके उदय अस्तको ही दो नेत्र कहा है ॥ छान्दोग्यो १ । ६ । ६–७ ।] सत्यं वै चक्षुः ॥ सूर्य देवताओंका प्रकाशक है ॥ यही सूर्य उदय अस्त रूपसे दो नेत्रवाला है ॥ मै० सं० ४ । २ । १] पुरुषो व्यापकोऽलिंग एवच ॥ पुरुष व्यापक है और सर्व चिन्ह रहित ही है । कठो० ६ । ८ ।] जैसी उपासक भावना करता है, तैसेही देवकी प्रतिभा स्फुरित होती है सोही प्रतिभा देवताका स्वरूप :है [अग्निर्देवता गायत्री छन्दः ॥ अग्नि देवता गायत्री छन्द है ॥ तैत्तरीय सं० ३ । १ । ६ ।] अग्नि वा ऋतं ॥ असौ आदित्यः सत्यं ॥ अग्नि ही ऋत है और यह सूर्य मण्डल ही सत्य है ॥

तैत्तरीय ब्रा० २। १। १।-२] ऋतेन ऋतमपिहितं॥ सत्य मण्डलसे सत्यस्वरूप रुद्र ढका है॥ ऋग् ५। ६२। १] ब्रह्म वै गायत्री॥ यह गायत्री ही व्यापक आत्मा है॥ काठक सं० ३४। ८।] आत्मा वै पुरुषः॥ आत्मा ही पुरुष है॥ काठक सं० १९। १२।] सर्वो वै पुरुषः॥ सब रुद्र ही है॥ काठक सं० ८। १२।] पुरुषो वै रुद्रः॥ पुरुष ही रुद्र है॥ तैत्तरीयारण्यक १०। १६।] अग्नि वैं रुद्र ईश्वरः॥ व्यापक ईश्वर ही रुद्र है॥ कपिष्ठल कठ सं० ३५।५।] गायत्री मंत्रका देवता एक रुद्र ही है [सविता वै देवानामधिपतिः॥ सविता ही सब देवताओंका स्वामी है॥ काठक सं० २६। २।] आदित्यानां वा एकः सविता॥ सब देवताओंके मध्यमें एक सविता है॥ कौषीतकि ब्रा० १६। २।] एक एव रुद्रो नद्वितीयाय तस्थे॥ एक अद्वितीय रुद्रही अवस्थित है उससे भिन्न दूसरा चेतन नहीं है॥ तैत्तरीय सं० १। ८। ६। ११] रुद्रो वै ज्यैष्ठश्च श्रेष्ठश्च देवानां॥ सब देवताओंके मध्यमें ज्येष्ठ और श्रेष्ठ रुद्रही है॥ कौषीतकि ब्रा० २५। १३।] गायत्रीका प्रथम स्वरूप भूमी अन्तरिक्ष द्यौ है॥ द्वितीय तीन वेद हैं॥ तीसरा तीन प्राण है॥ और चतुर्थ मण्डलस्थ चेतन पुरुष है॥ बृ० उ० ५। १४। ३।] भूर्भुवः स्वः॥ अग्नि भू है॥ वायु भुवः॥ स्वः सूर्य है॥ माध्यन्दिनी सं० ७। २०।] ईश्वराः॥ अग्नि, वायु, सूर्य ये तीन ईश्वर प्रत्येकूं ब्रह्माण्डोंके नायक हैं॥ इनका प्रेरक चतुर्थ रुद्र है॥ अथर्वण ७। १०७। १।] सभगवः कस्मिन् प्रतिष्ठित इति स्वेमहिम्नि यदिवान महिम्नीति॥ नारदने पूछा हे भगवन् स्कन्द सो भूमा किसमें रहता है इस प्रश्नको सुनकर स्कन्द कुमारने कहा अपनी असंख्य

त्रिलोकात्मक महा विराट् महिमामें अवस्थित है अथवा नहीं है॥ उपाधि रूपसे स्थित है, और निरुपाधिक तुरीय स्वरूपसे किसीमें स्थित नहीं सर्वदा निर्लिप्त है॥ छां० उ० ७। २४। १।] स्तुता मयावरदा वेद माता प्रचोदयन्तां पावमानी द्विजानां॥ आयुः प्राणं प्रजां पशुं कीर्तिं द्रविणं ब्रह्म वर्चसं॥ मह्यं दत्वा व्रजत ब्रह्मलोकम्॥ अति प्रेमसे जप करनेवाले द्विजातियोंको पवित्र करनेवाली वरदाता, वेदमाता स्तुति योग्य गायत्री देवता मेरे जपसे प्रसंन होकर मेरे प्रति, आयु वर-देनेकी जीवन शक्ति, शिष्य पुत्र आदि प्रजा, पशुमात्र, यश सुवर्ण आदि धन ब्रह्म तेजको देकर फिर देवता ब्रह्म लोकको गया॥ अथर्वण ११। ७१। १।] जो गायत्रीको उपनयन संस्कार होनेके अनन्तर कामना वा निष्कामनेसे जपता है॥ कामना वालेको सब भोग मिलते हुए मरणके वाद स्वर्गकी प्राप्ती होती है॥ और सब कामना रहित शुद्ध भावसे जपता है सो देह त्याग कर सूर्य मण्डल वर्ती पुरुषमें लीन होता है॥ वेदमें गायत्री मंत्रकी ही विशेष प्रसंशा है॥ इस मंत्रके जपसे सब देवता प्रसंन्न होते हैं॥ १७॥

न यस्येन्द्रो वरुणो न मित्रो व्रतमर्यमान मिनन्ति रुद्रः॥ नारातयस्तमिदं स्वस्ति हुवे देवं सवितारं नमोभिः॥ १८॥

अन्वयार्थः—(यस्य) जिस सविताके (इदं) इस सृष्टि आदिक (व्रतं) कर्मको (रुद्रः) अग्नि (इन्द्रः) इन्द्र (न) नहीं (मित्रः) मित्र (वरुणः) वरुण (न) नहीं (अर्य्यमा) अर्यमा (न) नहीं (अरातयः) दैत्यभी (नमिनन्ति) उलंघन नहीं कर

सकते हैं (तं) उस (सवितारं) सविता (देवं) देवको (नमोभिः) बारंबार नमस्कारोंके सहित (हुवे) बुलाता हूँ (स्वस्ति) मेरे कल्याणके लिये ॥ ऋग्० २। ३८। ९॥

व्याख्याः—अग्नि, इन्द्र, अर्यमा मित्र वरुण आदि देवता, और वृत्र नमुची शम्बर शिश्नदेवा नामके दैत्यभी जिस महेश्वरके उत्पत्ति, स्थिति, प्रलय आदिक अद्भुत कर्मको उलंघन करनेमें समर्थ नहीं है, उस प्रेरक स्वयं प्रकाशी रुद्रको मेरे कल्याण के लिये बारंबार नमस्कारोंके सहित आवाहन करता हूँ [अग्नि वै रुद्रः ॥ अग्नि देवता ही रुद्र नामवाला है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४०। ५।] अग्नये हिरण्यं ॥ रुद्रायगां ॥ अग्नि देवता के निमित्त सुवर्ण देवे ॥ और रुद्र देवताके लिये गौको दान करे ॥ अग्नि देवतासे रुद्र भिन्न है ॥ कपि० सं० ८। १२।] सोऽरोदीत् यदरोदीत् ॥ तद्रुद्रस्य रुद्रत्वं ॥ यदश्रु शीयत तद्रजतं हिरण्यमभवत् ॥ देवताओ अग्नि देवको अपना धन सोंपकर दैत्योंसे युद्ध करने लगे, उन दैत्योंको जीतकर फिर देवताओंने अग्निसे धन माँगा ॥ सो अग्निने रुदन किया, जो रोया सो ही रोनेवाले अग्निका रुद्रपना है जिस रोनेके आंसुसे चाँदीरूप धनकी उत्पत्ति हुई ॥ यज्ञमें चांदीकी दक्षिणा नहीं दी जाती है ॥ तैत्तरीय सं० १। ५। १। १-२] सविता वै देवानां मधिपतिः ॥ प्रत्येक् त्रिलोकोंके ईश्वरोंका भी ईश्वर है, सो सविता ही महेश्वर, महादेव नामवाला है ॥ कपिष्ठल सं० ४०। ५] यो भूतानामधिपतिर्यस्मिल्लोकाऽअधिश्रितः ॥ जो रुद्र उत्पन्न होनेवाले देव दैत्य मनुष्य आदि प्राणीयोंका स्वामी है जिस महेश्वरमें अनन्त ब्रह्माण्ड उत्पत्ति, पालन, संहाररूपसे स्थित हैं ॥ सो ही रुद्र है ॥ माध्यन्दिनी सं० २०। ३२ ॥ श्वेता० उ० ४।

१३।] अग्नि वायु सूर्य ये तीन देवता प्रत्येक त्रिलोकों में भिन्न २ हैं॥ प्रत्येक त्रिलोकीके तीनों देवताओंका स्वामी रुद्र भी पृथक् २ हैं, ये रुद्र अपने २ त्रिलोकोंके महेश्वर हैं॥ इन महेश्वरोंका समष्टि स्वरूप मायिक महेश्वर है॥ इस रुद्रकेही अनन्त ब्रह्माण्ड उपाधिक अनन्त रुद्र हैं॥ वे रुद्र भी भूमी, अन्तरिक्ष द्यौ भेदसे असंख्य हैं॥ ये सब मायिक देहधारी हैं॥ ज्ञानीयोंकी दृष्टिमें नाम रूप मिथ्या है, और नित्य अखण्ड परिपूर्ण चेतन घन शुद्ध तुरीय निराकार ही सत्य है॥ सकामीयोंकी भावनासे निराकार मिथ्या है॥ और मायिक देहधारी स्वरूप ही सत्य है॥ जब तक स्वप्न अवस्था है तब तक स्वप्नेके पदार्थ सत्य प्रतीत होते हैं॥ जाग्रतमें वे सब मिथ्या हैं॥ उसी प्रकार व्यवहारमें जे हात पग शिरवाले उमा रुद्र मायिक स्वरूप वाले प्रतीत होते हैं॥ और परमार्थमें मायिक स्वरूपसे रहित शुद्ध निराकार तुरीय स्वरूप हैं॥ वास्तविक स्वरूप ही सत्य है॥ १८ ॥

शन्नो॑ दे॒वः स॑वि॒ता त्राय॑मा॒णः शन्नो॑ भवन्तू॒षसो॑ वि॒भा॒तीः ॥ शन्नः॑ प॒र्जन्यो॑ भवतु प्र॒जाभ्य॒ः शन्नः॒ क्षेत्र॑स्य॒ पति॑रस्तु श॒म्भुः ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(सविता-देवः) सूर्य देव (त्रायमाणः) सबकी रक्षा करनेवाला (नः) हमारा (शं) पालन करनेवाला होवे (उषसः) उषायें (विभातीः) विशेष प्रकाशको फेलाती हुई (नः) हमारा (शं) संरक्षण करनेवालीं (भवन्तु) होवें (पर्जन्यः) मेघ देवता (नः) हमारी (प्रजाभ्यः) प्रजाओंके लिये (शं) वर्षा द्वारां पालन करनेवाला (भवतु) होवे (क्षेत्रस्थ) सूर्यमण्डलका

(पतिः) स्वामी (शम्भुः) रुद्र (नः) हम उपासकोंका (शं) कल्याण करनेवाला (अस्तु) होवे ॥ ऋग्० ७। ३५। १० ॥

व्याख्या:—स्थूल मण्डल सूर्य देव सबकी रक्षा करनेवाला, हमारा पालन करनेवाला होवे, उषायें विशेष प्रकाशको विस्तार करती हुई, हमारा संरक्षण करनेवालीं होवें, मेघ देवता हमारी सब प्रजाके लिये वर्षासे प्रतिपालन करनेवाला होवे, सूर्य मण्डलका स्वामी रुद्र हम उपासकोंका कल्याण करनेवाला होवे [**क्षेत्रस्य पते:** ॥ हे सूर्य गण्डलके नियंता रुद्र ॥ ऋग्० ४। ५७। २।] जिस प्रकार अपने त्रिलोकीके सूर्यका स्वामी है उसी प्रकार असंख्य ब्रह्माण्डवर्ती सूर्योंका स्वामी रुद्र है ॥ १९ ॥

शन्न॒ इन्द्रो॒ वसु॑भिर्दे॒वो अ॑स्तु॒ शमा॑दि॒त्येभि॒र्वरु॑णः सु॒शंसः॑ ॥ शन्नो॑ रु॒द्रो रु॒द्रेभि॒र्जला॑षः शन्न॒स्त्वष्टा॒ग्नाभि॑रि॒ह शृ॑णोतु ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(वसुभिः) अष्ट वसुओंके सहित (इन्द्रः) प्रकाशवान् (देवः) अग्नि देवता (नः) हमको (शं) सुख स्वरूप (अस्तु) होवे (आदित्येभिः) वारा आदित्योंके संग (सुशंसः) उत्तम प्रसंशनीय (वरुणः) दुःखको अच्छादन करनेवाला वरुण (शं) सुखप्रद होवे (ग्नाभिः) देवाङ्गनाओंके सहित (त्वष्टा) देव शिल्पी (नः) हमारेको (शं) उत्तम प्रजासे सुखी करनेवाला होवे (रुद्रेभिः) वीर भद्रादिक गणोंके साथ (जलाषः) सुखस्वरूप (रुद्रः) रुद्र (नः) हमारे लिये (शं) आरोग्य सुख करनेवाला होवे (इह) इस प्रातःकालमें हमारी प्रार्थनाको तुम सब (शृणोतु) सुनों ॥ ऋग्० ७। ३५। ६ ॥

व्याख्याः—इस प्रभातमें हमारी प्रार्थनाको सब देव सुनें आठ वसुओंके संग प्रकाशवान् अग्नि देवता हमको धनसे तृप्त करने वाला होवे ॥ बारा आदित्योंके सहित पापको नाश करनेवाला उत्तम प्रसंशनीय वरुण हमको निष्पापमय सुख करनेवाला होवे ॥ देव स्त्रीयोंके संग देव शिल्पी विश्व कर्मा हमारे लिये सुयोग्य प्रजा सुखको करनेवाला होवे ॥ वीरभद्र आदि गणोंके सहित भूलोक कैलास वासी महादेव हमारे लिये रोग रहित् दीर्घआयु सुख करने वाला होवे [अग्नि र्वसुभिः ॥ वसुओंके साथ अग्नि ॥ काठक सं० ११ । ३ ।] रुद्रेभिः सगणः सुशिप्रः ॥ अपने गौरी गणेश स्कन्द नन्दी परिवार युक्त, वीरभद्र आदि गणोंके सहित वह रुद्र सुन्दर सुख नासिकावाला है ॥ ऋग्० ३ । ३२ । ३ ।] देवा-नांच ऋषीणांचा सुराणां च पूर्वजं ॥ महा देव ५ सह-स्राक्ष ५ शिवमावाहयाम्यहं ॥ देव दैत्य पितर, ऋषियोंसे पहिले सविता रूपसे प्रगट हुआ, सो ही महादेव सहस्रकिरण रूप नेत्रवाला है ॥ वही भूलोकस्थ कैलासवासी है उस मंगलमय शिवको मैं नारद मुनि आवाहन करता हूँ ॥ तद्गां गौर्च्याय विद्महे गिरिसुताय धीमहि तन्नो गौरी प्रचोदयात् ॥ वह निर्विकारी ज्ञानरूप उमा मायिक रूपसे प्रकाश पानेवाली हिमालयकी पुत्री पार्वतीके स्वरूपको मैं जानता हुआ ध्यान करता हूँ (तत्) सो अम्बिका माता हम सबको शुभ कर्मों में प्रेरणा करे ॥ तत्कु-माराय विद्महे कार्तिकेयाय धीमहि ॥ तन्नः स्कन्दः प्रचोदयात् ॥ उस रुद्रके पुत्रको हम सब ऋषि जानते हैं और कृत्तिकाओंके पुत्रको हम चिन्तन करते है (तत्) वह स्कन्द कुमार हमारे शत्रुओंका नाश करे ॥ तत्कराटाय विद्महे हस्तिमुखाय धीमहि ॥ तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ उस

गौरीके बडे पेटवालेको हम जानते हैं और हस्तिके मुखवालेका हम पूजन करते हैं सो हस्तिदांतवाला हमारे विघ्नोंको दूर करे॥ मैत्रायणी संहिता २। ९। १।] पुरुषस्य विद्महे सहस्राक्षस्य महादेवस्य धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ महा विराट् रूप अनन्त नेत्रवाले महादेवका हम ध्यान करते हैं सो रुद्र हमको पाप रहित करके अपने स्वरूपकी प्राप्ति करावे॥ तैत्तरीयारण्यक १०। १। २२।] तत्पुरुषाय विद्महे महादेवाय धीमहि। तन्नो रुद्रः प्रचोदयात्॥ उस निराकारके मायिक महेश्वर पूर्ण पुरुषका हम ध्यान पूजन करते हैं, यही महालिंग है जिसको प्रत्येक् शिवालयमें पूजा जाता है॥ जिस लिंग रूप चिन्हके द्वारा उसके वास्तविक शुद्ध तुरीयस्वरूपको प्राप्त करते हैं॥ जैसे पात्रके द्वारा घृत दूध जल प्राप्त होता है॥ तैसेही प्रणव मंत्र रूपलिंगके द्वारा संन्यासी रुद्रको प्राप्त करते हैं॥ अग्निहोत्रके द्वारा गृहस्थ प्राप्त करते हैं॥ और सब अधिकारसे हीन जन, पाषाणलिंगको पूज कर उसी रुद्रकी प्राप्ति करते हैं॥ (तत्) सो रुद्र हमारे सब पापोंको नाश करके अन्त समयमें अपने स्वरूपकी प्राप्ति करावे॥ काठक सं० १७। ११॥ मैत्रायणी सं० २। ९। १॥ तैत्तरीयारण्यक १०। १। २३।] अग्नि चन्द्रमा सूर्य रुद्रके तीन नेत्र हैं॥ ये तीनों प्रत्येक् ब्रह्माण्डोंके भेदसे असंख्य हैं इस हेतुसे ही रुद्र अनन्त नेत्रवाला है॥ २०॥

इन्द्रो वसुभिः परिपातु नो गयमादित्यैर्नो अदितिः शर्म यच्छतु॥ रुद्रो रुद्रेभिर्देवो मृळयाति नस्त्वष्टा नो ग्नाभिः सुविता यं जिन्वतु॥ २१॥

अन्वयार्थः—(वसुभिः) वसुओंके सहित (इन्द्र) अग्नि (नः) हमारे (गयं) घरको (परिपातु) सर्वत्रसे रक्षा करे (आदित्यैः) वारा आदित्योंके संग (अदितिः) पापको भक्षण करनेवाला वरुण (नः) हमको (शर्म) सुख (यच्छतु) देवे (ग्नाभिः) देव स्त्रीयोंके साथ (त्वष्टा) विश्वकर्मा (नः) हमको (सुविताय) सुखके लिये (जिन्वतु) प्रेरणा करे (रुद्रेभिः) रुद्रोंके सहित (देवः) दिव्य शरीरधारी (रुद्रः) ब्रह्माके हृदयमें वेद ज्ञानका प्रकाश करनेवाला रुद्र (नः) हमको मृळयति सुखी करे ॥ ऋग् १० । ६६ । ३ ॥

व्याख्याः—वसुओंके संग अग्नि देवता हमारे घरको चारो तर्फसे रक्षण करे, वारा मासके वारा आदित्य देवताओंके साथ संवत्सर देवता वरूण तम रूप पापको खानेवाला हमको प्रकाशरूप सुख देवे ॥ देवस्त्रीयोंके सहित देवशिल्पी हमको उत्तम प्रजाके सुखके लिये प्रेरणा करे, रुद्र गणोंके सहित मनुष्य देहसे रहित दिव्य तेजोमय मायिक देहधारी ब्रह्माके हृदयमें वेदका प्रकाश करने वाला रुद्र हमको सर्वदा सुखी करे [**नक्षत्राणि वै जनयः** ॥ नक्षत्र ही स्त्रीयाँ हैं ॥ मै० सं० ३ । १ । ८ ।] **ग्नांदेवीं** ॥ सर्वत्र गमन करनेवाली देवता ॥ ऋग्० ५ । ४३ । ६ ।] **छन्दांसि वैग्नाः** ॥ **देवानां वै पत्नीर्जनयः** ॥ देवताओंको ढांकने वाले छन्दहीग्ना हैं ॥ प्रसिद्ध ग्नाही देवताओंकी स्त्री हैं ॥ कपिष्ठल सं० ३० । ५ ।] **त्वष्टा रूपाणि हि प्रभुः पशून् विश्वान्त्समानजे** ॥ त्वष्टा समर्थने ही सब रूपोंको और सब पशुओंको उत्पन्न किया है ॥ ऋग्० १ । १८८ । ९ ॥ **पुरोगा अग्नि देवानां** ॥ अग्नि ही देवताओंके आगे चलनेवाला है ॥ ऋग्० १ । १८८ । ११ ।] **इन्द्रो देवाना मभवत्पुरो गाः** ॥ अग्नि ही देवोंका अग्र

गामी है ॥ मै० सं० ४। १४। १४।] अदिति र्देवः सविता ॥ प्रकाशको उत्पन्न करनेवाला और तमको खानेवाला सूर्य ही अदिति है ॥ ऋग्० १। १०७। ७।] संवत्सरो वै सविता ॥ संवत्सर ही सविता है ॥ काठक सं० ३५। २०।] वरूणो वै देवानां राजा ॥ वरुण ही आदित्य देवताओंका स्वामी है ॥ मै० सं० १। ६। ११।] वरूण नाम सूर्यका है ॥ २१ ॥

प्रातरग्निं प्रातरिन्द्रं हवामहे प्रातर्मित्रावरुणा प्रातरश्विना ॥ प्रातर्भगं पूषणं ब्रह्मणस्पतिं प्रातः सोममुत रुद्रंहुवेम ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(प्रातः) प्रातःकालमें (अग्निं) अग्निको (प्रातः) प्रातःकालमें (इन्द्रं) इन्द्रको (प्रातः) प्रभातमें (मित्रावरुणा) मित्र वरुणको (प्रातः) प्रातःकालमें (अश्विना) अश्विनी कुमारोंको (हवामहे) हम बुलाते हैं (प्रातः) सवेरेही (भगं) भग देवको (पूषणं) पूषाको (ब्रह्मणस्पतिं) अन्नके स्वामीको (सोमं) सोमको (उत) और (प्रातः) प्रातःकालमें (रुद्रं) रुद्रको (हुवेम) आवाहन करते हैं ॥ ऋग्० ७। ४१। १ ॥

व्याख्याः—अग्नि, इन्द्र मित्र वरुण, अश्विनी कुमार, भगदेव, पूषा, गणपति, सोम, आदि महेश्वरको हम उपासक प्रातःकालमें नमस्कार पूर्वक आवाहन करते हैं ॥ वे सब हमारा कल्याण करें [अग्रणीः सर्वेषां देवानामादिभूतो देव रग्निः ॥ सब देवताओंके पहिले प्रगट होनेवाला मुख्य अग्निदेव है ॥ सायण भाष्य अथर्वण ११। ८। १।] प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥

सोऽग्नि मेवाग्रेऽ सृजत ॥ जिस ब्रह्माने प्रजा रची उसने सबके पहिले अग्निको ही उत्पन्न किया ॥ कपिष्ठल कठ सं० ५। ४।] अग्नि वैं देवानां प्रथमं ॥ अग्नि देवताओंके मध्यमें पहिला है ॥ ऐतरेय ब्रा० २०। ११ ११।] इन्द्रो वै देवता द्वितीयं ॥ इन्द्र दूसरा देवता है ॥ ऐ० ब्रा० २०। २। २।] जारं ॥ जल स्वामी इन्द्र सूर्यका नाम जार हैं ॥ ऋग्० १०। १२३। ५।] इन्द्र ज्येष्ठं...ओजिष्ठं ॥ हे इन्द्र तुम उत्तम अतिबलवान् हो ॥ ऋग्० ६। ४६। ५।] अग्नि ज्योंति ज्योंति रग्नि रिन्द्रो ज्योति ज्योंति रिन्द्रः ॥ सूर्यो ज्योतिज्योंति-सूर्यः ॥ अग्नि तत्त्वका ज्योति अग्नि देवता ज्योति है ॥ वायु तत्त्वका ज्योति वायु देवता ज्योति है ॥ सूर्यके प्रकाशकी ज्योति सूर्य ज्योति है ॥ सामवेदीय कौथुमी सं० उत्तरार्चिक २०। ६। १०।] अग्निरेवास्मा अस्मिँल्लोके ज्योति भंवति ॥ वायु-रन्तरिक्षे। सूर्यो दिवि ॥ अग्नि इस भूमीमें ही ज्योति है ॥ अन्तरिक्षमें वायु ज्योति है ॥ द्यौ में सूर्य ज्योति है ॥ कपिष्ठल सं० ३९। १८ ॥ काठक सं० २१। ३।] अग्नि दैंवता वातो देवता सूर्यो देवता ॥ अग्नि वायु सूर्य ये तीन देवता इस त्रिलोकीके इश्वर हैं ॥ काण्व सं० २। ५। ५। ५॥ काठक सं० १७। २।] सुर्योनो दिवस्पातु वातो अन्तरिक्षात् ॥ अग्निर्नः पार्थिवेभ्यः ॥ अग्नि भूलोकसे हमारी रक्षा करे, वायु भुवर्लोकसे हमारी रक्षा करे, सूर्य स्वर्गलोकसे हमारी रक्षा करे ॥ ऋग्० १०। १५९। ११।] इन्द्र वै वृषा ॥ वायु ही वर्षा करने-वाला वृषा है ॥ काठक सं० ३४। ४।] अयं वै लोकोमि त्रोऽसौ वरुणः ॥ यह भूमी लोक मित्र है, और वहद्युलोक वरुण है ॥ श० ब्रा० मा० सं० २९। ६।] अहो रात्रो वै

मित्रा वरुणा ॥ दिन रातके देवता ही मित्र वरुण हैं ।। काठक संं० १३ । ८ ।] अश्विनौ वै देवानां भिषजौ ॥ देवताओंके दोनों अश्विनी कुमार वैद्य हैं ॥ काठक सं० १३ । ७ ॥ तैत्तरीय सं० २ । ३ । ११ । २ ।] दस्रा भिषजौ ॥ दर्शनीय दोनों अश्विनी कुमार वैद्य हैं । ऋग्० १ । ११६ । १६ ।] दध्यङ्ह यन्मध्वाथर्वणो वामश्वस्य शीर्ष्णा प्रयदीमुवाच ॥ प्रसिद्ध अथर्वणके पुत्र दध्यङ् आथर्वणने तुम दोनोंके प्रति मधु विद्याको देनेके लिये इन्द्रका विरोध बताया, तब अश्विनी कुमारोने दध्यङ् अथर्वणके शिरको काटकर एक तर्फ रखकर अश्वके शिरको युक्त कर दिया ॥ उस घोडे वाले शिरवाले दध्यङने इस मधु विद्याको तुम दोनोंको उपदेश किया ॥ इन्द्रने वज्रसे अश्व शिर काट डाला ॥ अश्विनी कुमारोंने फिर उस सुरक्षित शिरको जोड दिया ॥ ऋग्० १ । ११६ । १२ ।] यह कथा शांख्यायन ब्राह्मण और शतपथ ब्राह्मण में है [वध्रि मत्या हिरण्य हस्त मश्विना वदत्तं ॥ नापुंसक पतिवाली राजपुत्रीके प्रति हिरण्य हस्त नामके पुत्रको अश्विनी कुमारोंने दिया ॥ ऋग्० १ । ११६ । १३ ।] ऋज्रं अश्वंत पिताऽन्धं चकार ॥ तस्मा अक्षीना सत्या ॥ पिताने ऋज्रअश्वनामके पुत्रको शापसे अन्धा कर दिया, फिर ऋज्रअश्वने, अश्विनी कुमारोंकी स्तुति किया कपट रहित अश्विनी कुमारोंने ऋज्र अश्व राजाकोनेत्र दिये ॥ विष्णाप्वं ददथु र्विश्वकाय ॥ हे अश्विनी कुमारो मरें हुए पुत्र विष्णाप्वको जीवित करके विश्वकाय कृष्ण नामके मुनिको दिया ॥ ऋग्० १ । ११६ । १६ । २३ ।] कक्षीवान्की पुत्री घोषा कुष्ठसे पीडित हुईकोकुष्टरहित किया ॥ ऋग्० १ । ११७ । ७ ।] युवंच्यवान मश्विना जरंतं पुनर्युवानं चक्रथुः शचीभिः ॥ हे अश्विनौ

तुम दोनोंने अपनी सामर्थ्य रूप औषधियोंसे वृद्ध च्यवन ऋषिको फिर तरुण बना दिया ॥ ऋग्० १। ११७। १३।] **आथर्वणायश्विना दधीचेऽश्व्यवं शिरः प्रत्यैरयत्** ॥ हे अश्विनौ तुमने अथर्वणके पुत्र आथर्वण दधीचके अश्वशिरको इन्द्रने नाश किया, फिर असली दधीचीके शिरको जोड दिया ऋग्० १। ११७। २२।] अत्रिको चोरोंने अग्नि आदि दुःखसे पीडित किया उस ऋषिको तुमने आरोग्य कर दिया ॥ कण्वकी एक आँख दस्युओंने फोड दिया तुमने फिर कण्व ऋषिको नेत्र दिया ॥ ऋग्० १। ११८। ७।] वन्दन ऋषिको दैत्योने कुआमें गिरा दिया, कूपमें पडे हुए वन्दन ऋषिने स्तुति किया फिर अश्विनीकुमारोंने कुआसे निकाल कर रोग रहित कर दिया ॥ ऋग्० १। ११६। ११।] **भग एव भगवाँ अस्तु देवास्तेन वयं भगवन्तः स्याम** ॥ भग देवता ही (भगवान्) धनवान् होवे, हे देवताओ, उस भगदेवके द्वाराही हम सब उपासक धनवान् होवें ॥ ऋग्० ७। ४१। ५।] **भग भक्तस्य** ॥ धनका विभाग करनेवाला ही भगदेवता है ॥ १। २४। ५।] **पूषा भुवनस्य गोपाः** ॥ पूषा जगत्का पालक है ॥ अथर्वण १८। २। ५४।] **रथीतमं कपर्दिनं** ॥ पूषा रथीयोंमें उत्तम रथी जटा जूट युक्त है ॥ **अजाश्व** ॥ हे बकरेसे जूते हुऐ रथवाले पूषन् ॥ **भ्रातेन्द्रस्य सखामम** ॥ इन्द्रका भाई मेरा मित्र है ॥ ऋग्० ६। ५५। २-३-५।] **अजाश्वः पशुपाः** ॥ बकरेकी सवारी करनेवाला पशुओंका रक्षक ॥ ऋग्० ६। ५८। २।] **इनो वाजानां पतिरिनः पुष्टीनां सखा ॥ प्रश्मश्रु** ॥ पूषा सब यज्ञ आदि अन्नोंका स्वामी है सब प्राणियोंका पालन करनेवाला (इनः) प्रभु है सबका उपकार करनेवाला मित्र

है और उत्तम दाढीवाला है ॥ आते रथस्य पूषन्न जाधु रंववृत्युः ॥ विश्वस्यार्थिनः सखा ॥ हे पूषा देव आपके रथके धुरेको खीचनेवाले बकरा हैं याचना करनेवाले सब प्राणियोंको फल देनेवाला मित्र है ॥ ऋग० १० । २६ । ७–८ ।] पुष्टि वैं पूषा ॥ पोषण करनेवाला पूषा है ॥ काठक सं० ३१ । १ ।] पशवोवै पूषा ॥ पशु पालकही पूषा है ॥ काठक सं० २९ । १] परि पूषा परस्ताद्धस्तं दधातु दक्षिणं ॥ पुनर्नो नष्ट माजतु ॥ उपासकके मार्ग गमन करनेमें पूषा अपने दक्षिण हातसे चोर व्याघ्र आदिको हटाता है ॥ और उपासकके खोये हुए पशु-ओंको फिर प्रेरणा करके घरमें भेजता है ॥ ऋग० ६ । ५४ । १० ।] हिरण्यवाशीमत्तम ॥ पूषाके हातमें सुवर्णका भाला है ॥ ऋग० १ । ४२ । ६ ।] यो अन्नादो अन्नपति र्बभुव ब्रह्मणस्पतिः ब्रह्म ॥ जो अन्नके खानेवाले है सो ही अन्नका स्वामी बृह्मणस्पति हुआ ॥ ब्रह्म नाम अन्नका है ॥ अथर्वण १३ । ३ । ५ ।] ब्रह्म ॥ ब्रह्म नाम अन्नका है ॥ ऋग० ॥ १ । १० । ४] अन्न ॐ विराट् ॥ अन्न ही विराट् है ॥ मै० सं० ३ । २ । ९] ब्रह्म वै ब्रह्मणस्पतिः अन्न ही ब्रह्मणस्पति है ॥ अन्नदेह युक्त–चेतन ही ब्रह्मणस्पति है ॥ २ । ५ । ९ काठक सं ११ । ४] वाग्वै ब्रह्म तस्मा एष पतिस्तस्मादु ब्रह्मणस्पतिः ॥ स्थूल विराट् रूप वाणी ही ब्रह्म है उस वाणीका यह चेतन स्वामी है इससे ही ब्रह्मणस्पति नाम कहा है ॥ बृ० उ० १ । ३ । २१] त्वष्टा मायाः...शिशीते...परशुं स्वायसंये वृश्चा देतशो ब्रह्मणस्पतिः ॥ अनेक कलाओंवाले त्वष्टाने उत्तम लोहके परशुकी तीक्ष्णधार तैयार करी जिस परशु से यह बृह्मणस्पति शत्रुओंको काटता है ॥ ऋग्० १० । ५३ । ९]

गणानां त्वा गणपतिं हवामहे...ज्येष्ठराजं ब्रह्मणां ब्रह्मणस्पते ॥ अकार–उकार–मकार-व्यष्टिविश्व तैजस, प्राज्ञ–समष्टि विराट्–सूत्रात्मा–प्राण शक्ति समुहके स्वामी गणपति उत्तम महा प्रकाश करनेवालेको आवाहन करते हैं ॥ हे महासमुहके स्वामी हमारी प्रार्थना को सुनो। ऋग्० २।२३।१ अनुवाक ६। वर्ग। २९ ॥ काठक सं १०।१३ ॥ मा० सं० २३।१९] ज्ञानी स्वात्मरूपसे, योगी प्रणव रूपसे, इतर मूर्ति रूपसे उपासना करते हैं यही ओंकारदेवता रुद्रका पुत्र है ॥ ब्रह्म वै प्रणवः ॥ ओँकार ही ब्रह्म है। व्यापक ओँकार का स्वामी गणपति है ॥ कौषीतकि ब्रा. ११।४] सोमो वै देवानां राजा ॥ देवताओं का राजा सोम है ॥ काठक सं० १३।३।] चन्द्रमा वै सोमोऽनिरुक्त उवै चन्द्रमा ॥ जो अनिरुक्त चन्द्रमा है सो ही चन्द्रमा सोम है ॥ शांख्यायन ब्रा० १६।५] आदित्यो वै सोमः सूर्य ही सोम है ॥ काठक सं० २६।२] चन्द्रमा वै ब्रह्मा ॥ ब्रह्मा ही चन्द्रमा है शतपथ ब्रा० १३।२।७।७] चन्द्रमा वै धाता ॥ धाता ही चन्द्रमा है ॥ कौषीतकि ब्रा० ४।६] प्राणो हि सोमः ॥ प्राण ही सोम है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४८।१४ ॥ प्राणो वै पिता ॥ पिता ही प्राण है ॥ ऐ० ब्रा० १०।६] प्रजापति वैं पिता ॥ पिता ही ब्रह्मा है ऐ० ब्रा० २८।४।] असौ चन्द्रः स ब्रह्मा स मुक्तिः सातिमुक्ति रित्यति मोक्षाः ॥ यह चन्द्रमा है सो ही ब्रह्मा सो ही मुक्तिस्थान है सो ही अतिमुक्तिरूप मार्ग है ॥ इस मार्ग से ही चार प्रकारकी मोक्षोंकी प्राप्ति होती है ॥ बृ० उ० ३।१।६] यहां सोम नाम ब्रह्मा का है ॥ उसी ब्रह्माका यह सूर्य एक स्वरूप है, सोही सूर्य सोमरूप है ॥

इस सूर्य का चेतन पुरुषही रुद्र है सूर्य के सहित रुद्रको बुलाते हैं ॥ २२ ॥

इन्द्रंनो अग्ने वसुभिः स जोषा रुद्रं रुद्रे भिरावहा बृहन्तम् ॥ आदित्ये भिर दिंति विश्व जन्यां बृहस्पति मृक्काभिर्विश्व वारम् ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(अग्ने) हे अग्नि देव तुम (वसुभिः) मरुद्गणोंके सहित (इन्दं) इन्द्रको (रुद्रेभिः) रुद्रोके सहित (बृहन्तं) सबसे बडे (रुद्रं) रुद्रको (आदित्येभिः) देवताओंके सहित (विश्व जन्यां) जगत् माता (अदितिं) द्यौको (ऋक्कभिः) पितृगणोंके सहित (विश्व वारं) सबके पूज्य (बृहस्पतिं) बृहस्पतिको (आवह) आवाहन करो (सजोषः) समान प्रमवाले देवता (नः) हमारा पालन करें ॥ ऋग० ७ । ११ । ४ ॥

व्याख्या:—हे अग्नि देव तुम मरुद्गणोंके सहित इन्द्रको, रुद्रोंके सहित सबसे बडे रुद्रदेवको, देवताओंके सहित विश्वमाता द्यौको, पितृगणोंके सहित सब देवताओंके पूज्य बृहस्पतिको बुलाओ, समान प्रेमवाले देवता हम सब प्रजाका रक्षण करें ॥ बृहस्पति र्देवानां पुरोहित॥ बृहस्पति देवताओंका पुरोहित है ॥ तै० सं० ६ । ४ । १० । ११] देवानां बृहस्पतिर्ब्रह्मणा पव ॥ देवोंका बृहस्पति हि ब्राह्मण है ॥ तै० सं० ६ । १ । ८ । २ ।] समान प्रेमवाले देवता हम सब प्रजाका रक्षण करें [इन्द्रो मरुद्भिः काठक सं० ११ । ३ ।] इन्द्र मरुतोंके साथ रहता है ॥ २३ ॥

अग्नि रिन्द्रो वरुणो मित्रो अर्यमा वायुः पूषा सरस्वती सजोषसः ॥ आदित्यो विष्णु र्मरुतः स्वर्बृहत्सामा रुद्र आदिति ब्रह्मणस्पतिः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(अग्निः) ब्रह्मा (इन्द्रः) प्रजापति (वरुणः) वरुण (मित्रः) मित्र (अर्यमा) अर्यमा (वायुः) वायु देवता (पूषा) पूषा (सरस्वती) सरस्वती (आदित्यः) अदितिपुत्र (विष्णुः) विष्णु (मरुतः) मरुतगण (स्वः) सूर्य (सोमः) सोम (अदितिः) अग्निदेवता (ब्रह्मणस्पतिः) वाणीका पति (बृहत्) महा व्यापक (रुद्रः) रुद्र (सजोषसः) एक प्रेमवाले सब देवता हैं ॥ ऋग्० १० । ६५ । १ ॥

व्याख्याः—ब्रह्मा–अथर्वा–(अर्यमा) इन्द्र, वायु, पूषा, सरस्वती, वरुण मित्र अदितिपुत्र विष्णु, मरुत् गण, सूर्य, सोम, भूमीका देवता अग्नि, गणपति, सब से महान् रुद्र ये सब देवता एक चेतन स्वभाव वाले होने पर नाम रूपसे भिन्न २ प्रतीत होते हैं [अग्नि वै प्रजापतिः ॥ अग्नि नामवाला प्रजापति है ॥ कपि० सं० ७ । १ ।] प्रजापति वैं ब्रह्मा ॥ प्रजापति ही ब्रह्मा है ॥ मै० सं० १ । ११ । ७ ।] सइन्द्रः सभूतानामधिपतिः ॥ सो सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न प्रजापति है ॥ सो ही समस्त प्राणियोंका स्वामी है ॥ ऐतरेयारण्यक ३ । ७ ।] इन्द्र नाम ब्रह्माका है [अग्नि भूताना मधिपतिः समाऽवत्विन्द्रो ज्येष्ठानां ॥ यमः पृथिव्या वायुरन्तरिक्षस्य सूर्योदिवश्चन्द्रमा नक्षत्राणां बृहस्पति ब्रह्मणो मित्रः सत्यानां वरुणोऽपां सोम औषधीना ँ सविता प्रसवाना ँ रुद्रः पशूनां त्वष्टा रुपाणां विष्णुः पर्वतानां मरुतो गणानामधिपतिपतयस्ते माऽवन्तु ॥ ब्रह्म चराचर प्राणियोंका स्वामी सो ब्रह्मा मेरेको पालन करे ॥ सब प्रजापतियोंका स्वामी सर्वैश्वर्य सम्पन्न अथर्वा है (यमः) अग्नि भूमीका स्वामी है ॥ वायु अन्तरिक्षका स्वामी है ॥ सूर्य द्यौका स्वामी है ॥ चन्द्रमा नक्षत्रोंका स्वामी है ॥

बृहस्पति ब्राह्मणोंका स्वामी है ॥ मित्र सत्य वादियोंका वरुण जलोंका स्वामी है ॥ सोम औषधियोंका स्वामी है ॥ सविता उत्पन्न होने वालोंका स्वामी है ॥ रुद्र पशुओंका स्वामी है ॥ त्वष्टा रूपोंका स्वामी है ॥ विद्युत् अभिमानी देवता विष्णु द्योंका स्वामी है ॥ मरुत् अपने २ कार्य रूपगणोंके स्वामी हैं वे सब अधिपति मेरी रक्षा करें ॥ तैत्तरीय सं० ३ । ४ । ५ । १ ।] अदितिः ॥ अदिति नाम अग्निका है ॥ ऋग्० ७ । ९ । ३ ।] अदिति रन्तरिक्षं ॥ अदिति नाम अन्तरिक्षका है ॥ सा० सं० २५ । २३ ।] विष्णु स्तद्यदन्तरिक्षे ॥ जो विद्युत् चेतन है सो ही विष्णु अन्तरिक्षमें बसता है ॥ मै० सं० २ । २ । १ ।] जो उत्पन्न मात्रका स्वामी है, सो ही सविता जीवन युक्त वृद्धिवाले पशुओंका रुद्र नामसे स्वामी है ॥ एक ही महात्मा रुद्र असंख्य नाम रुपोंकी उपाधिसे अनन्त नामवाला है ॥ २४ ॥

अग्न इन्द्र वरुण मित्र देवाः शर्धः प्रयन्त मारुतोत विष्णो ॥ उभाना सत्या रुद्रो अधग्नाः पूषा भगः सरस्वती सजुषंत ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(अग्ने) हे अग्नि देव (इन्द्र) हे इन्द्र (वरुण) हे वरुण (मित्र) हे मित्र (उत) और (विष्णो) हे विष्णो (मारुत) मरुत सम्बधि (शर्धः) बलको (देवः) तुम सब देवता, हमारे में (प्रयन्त) स्थापन करे (अध) और (भगः) भग देवता (पूषा) पूषा (सरस्वती) माध्यमिका वाणी देवता (ग्नाः) देव स्त्रीयाँ (उभा) दोनों (नासत्या) अश्विनी कुमार (रुद्रः) ऋषियोंके द्वारा प्राप्त होनेवाला देवता, हमारी प्रार्थनाको (सजुषन्त) अङ्गिकार करें ॥ ऋग्० १० । १३ । ४ ॥

व्याख्याः—हे अग्ने, हे इन्द्र, हे वरुण मित्र और हे विद्युत् देवता मरुत संबंधि बलको हम उपासकोंमें स्थापन करे। और भग, पूषा, सरस्वती-देवाङ्गनायें, दोनों अश्विनी कुमार, अति सूक्ष्म दर्शी ऋषियोंके द्वारा ही—जाना जाता है, सो ही रुद्र है॥ ये सब देवता हमारी प्रार्थनाको स्वीकार करें [कस्मादुच्यते रुद्रोयस्मादृषिभिर्नान्यैर्भक्तैद्रुतमस्यरूपमुपलभ्यते तस्मा-दुच्यते रुद्रः ॥ रुद्र किस लिये कहते हैं, आपका स्वरुप ऋषियोंके द्वारा ही जाना जाता है, सामान्य उपासकोंके द्वारा इस देवका स्वरूप जल्दि जाननेमें नहीं आता है इस लिये ही रुद्र कहा है॥ अथर्वण शिर उपनिषद ४।] ग्नाः॥ देव पत्न्यः॥ ग्ना देव स्त्री हैं॥ सायण भाष्य॥ ऋग् ६। ५०। १५।] मित्रा वरुणौ॥ वायु सूर्य—प्राण अपान॥ मा० सं० २। १६।] मित्र आदि शब्द विशेषण हैं, इस लिये ही वेदमें रूढी शब्द नही है॥ योग रूढ ही हैं॥ २५॥

तेनो॑ रु॒द्रः सर॑स्वती स॒जोषा॑ मीळ्हु॒ष्मन्तो॒ विष्णु॑र्मृळ-न्तु वा॒युः॥ ऋ॒भु॒क्षा वाजो॒ दैव्यो॑ विधा॒ता प॒र्जन्या॒ वाता॑ पिप्यता॒मिषं॑ नः॥ २६॥

अन्वयार्थः—(सजोषाः) एक स्वभाव वाले (ऋभुक्षाः) मरुत गण (सरस्वती) नदी देवता (पर्जन्या वाता) वर्षा युक्त वायु देवता (वाजः) अन्न देवता (दैव्यः) सृष्टि आदि अद्भुत कर्म करनेवाला (विधाता) ब्रह्मा (वायुः) प्रजापति रूप दक्षिणा अग्नि देवता (रुद्रः) गार्हपत्य अग्नि देवता (विष्णुः) आहवनीय

अग्नि देवता (ते) वे सब देवता (मीढुष्मन्तः) कामनाओंकी वर्षा करनेवाले (नः) हम सब प्रजाओंको (इषं) अन्न (पिष्यतां) देवें, और (नः) हमको (मृळन्तु) सुखी करें ॥ ऋग्० ६। ५०। १२॥

व्याख्याः—समान स्वभाववाले मरुत गण, सरस्वती नदीकी देवी, अन्न देवता सोम, सृष्टि आदिक आश्चर्य्य कर्म करनेवाले ब्रह्मा, वर्षा युक्त वायु देवता इन्द्र, गार्हपत्य अग्नि देवता, दक्षिणा अग्नि देवता, आहवनीय अग्नि देवता, वे सब देवता कामनाओंकी वर्षा करनेवाले हम सब प्रजाओंको अन्न देवें और हमको सब बातोंसे सुखी करें (अन्नं वै वाजः) अन्न ही वाज है॥ तै० सं० ५। १। २। २।] विष्णोः ॥ विष्णो र्व्यापक स्येन्द्रस्य ॥ विष्णु नाम व्यापक इन्द्रका है॥ सायण भाष्य ऋग्० ५। ८७। ८।] अग्निं दर्शतं बृहन्तं ॥ दर्शनीय आहवनीय महा अग्निको पदं देवस्य ॥ आहवनीय अग्निके (पदं) स्थानको ॥ ऋग्० ६। १। ३। ४।] विष्णुरित्था परम मस्य...जातो बृहत् ...तृतीयं ॥ इस अग्निका तीसरा जन्म महा (विष्णुः) व्यापक आहवनीय अग्निरूप उत्तम स्थान सूर्य मण्डल है॥ ऋग्० १०। १। ३।] विष्णोर्यत्परमंपदं ॥ आहवनीय अग्निका जो उत्तम स्थान सूर्य मण्डल है॥ ऋग्० १। २। २९।] सोमका नाम विष्णु है॥ मा० सं० ८। ५७।] विष्णु र्गोपाःपरमं पाति पाथः ॥ अग्नि उत्तम स्थानकी रक्षा करता है॥ ऋग्० ३। ५५। १०।] अग्नि र्वै देवानां गोपः ॥ अग्नि देवताओंका रक्षक है॥ ऐ० ब्रा० ५। २। २८।] अग्नि रपरा इन्द्रः पूर्वः ॥ गार्हपत्य अग्नि प्रथम है॥ और (इन्द्र) प्रकाशवान् आहवनीय

दूसरा अग्नि है ॥ मै० सं० ३ । ९ । १ ।] विष्णु नाम उखा अग्निका है ॥ मा० सं० १२ । ५ ।] विष्णु सूर्यका विशेषण है ॥ ऋग्० १ । ८५ । ७ ।] विष्णो ॥ हे विष्णो व्याप्नोति स्व रश्मिभिः सर्वं ब्रह्माण्डान्तरालं इति विष्णु रादित्य ॥ हे विष्णो सब ब्रह्माण्डके मध्यमें अपनी किरणोंसे व्यापक है, यही सूर्य विष्णु है ॥ सायण भाष्य अथर्वण १७ । १ । ६ ।] वायु वै वृष्टयः ॥ वायु ही वर्षाको करनेवाला है ॥ तै० सं० २ । ४ । ९ । १ ।] अस्मै वै लोकाय गार्हपत्यः ॥ अमुष्मा आहवनीयः ॥ इस भूलोकके लिये गार्हपत्य देवता ॥ उस द्यौके लिये आहवनीय अग्नि है ॥ रुद्रो वसुभिः ॥ गार्हपत्य देवता रुद्र आठ वसुओंके सहित है ॥ तैत्तरीय सं० ६ । १ । ८ । ५-२ यज्ञो वै विष्णु र्यज्ञेनैव यज्ञ ँ संतनोति ॥ विष्णु नाम ही यज्ञका है, यज्ञके द्वारा ही आहवनीय यज्ञका विस्तार होता है ॥ तै० सं० ६ । १ । ४ । ४ ।] तीनों अग्निका नाम, रुद्र, विष्णु, प्रजापति, इन्द्र सोम आदि है ॥ २६ ॥

आ॒दि॒त्या सो अति॒ स्रिधो॒ वरु॑णो मि॒त्रो अ॒र्य॒मा ॥
उ॒ग्र म॒रुद्भी॑ रु॒द्रं हु॑वे॒मेन्द्र॑ म॒ग्नि स्व॒स्तये॑ऽति॒द्विषः॑ ॥२७॥

अन्वयार्थः—(मित्रः) शिवरूप (वरुणः) युद्ध कुशल देव (अर्यमा) सबका स्नेही देवता (आदित्यासः) अदिति पुत्र (स्रिधः) हिंसकोंको (अति) नाश करो (अग्नि) अग्निको (मरुद्भिः) मरुद्गणोंके सहित (इन्द्रं) इन्द्रको (उग्रं) श्रेष्ठ (रुद्रं) रुद्रको (हुवेम) बुलाते हैं (अतिद्विषः) शत्रुओंका नाश करें (स्वस्तये) और हम उपासकोंके लिये सुखकी प्राप्ती करें ॥ ऋग्० १० । १२६ । ५ ॥

व्याख्याः—मित्र, वरुण, अर्यमा, चारा अदितिके पुत्र हिंसक प्राणियोंसे हमारी रक्षा करें, अग्निको, मरुद्गणोंके संग इन्द्रको उत्तम रुद्रको हम उपासक आवाहन करते हैं वे सब देवता हमारे लिये सुख करें, और शत्रु वर्गका नाश करें [मित्रो वै शिवो-देवानां ॥ रुद्रो वै क्रूरः ॥ देवताओंका मित्र ही मंगल रूप है ॥ (रुद्रः) वरुण ही युद्ध कुशल सेनापति है ॥ तै० सं० ६। १। ७। ६–७।] रुद्राः ॥ हे दुःख नाश करनेवाले मित्र वरुण तुम हो ॥ रुद्राः ॥ रुद्र नाम मित्र और वरुणका है ॥ ऋग्० ५। ७०। २–३।] मित्रेणच वाइमाः प्रजागुप्ताः क्रूरेणच ॥ मित्रं मित्रः क्रूरं वरुणः ॥ ये सब प्रजायें मित्रसे और वरुणसे सुरक्षित हैं ॥ युद्धसे रहित शांत रूप मित्र है, और युद्ध कुशल वरुण है ॥ काठक सं० ७। ११।] मित्रः सत्यानां वरुणो धर्माणां रुद्रः पशूनां ॥ सत्य मार्ग गामियोंका मित्र रक्षक है ॥ विश्वको दारण करनेवाला देवताओंका स्कन्द रक्षक है ॥ मित्र रूप गणेश, और वरुण रूप कुमारका पिता रुद्र ही देखने वाले सब देह धारीयोंका स्वामी है ॥ काठक सं० १५। ५। ६॥ मा० सं० ९। ३९।] बिभ्रद्रापिं हिरण्ययं वरुणः ॥ वरुण सुवर्णके बख्तरको धारण करता है ॥ ऋग्० १। २५। १३] त्वमग्ने वरुणो जायसे ॥ हे व्यापक रुद्र तुम वरुण रूपसे प्रगट होते हो ॥ ऋग्० ५। ३। १।] अग्नेरनीकं वरुणस्य वपुः दृश्यते ॥ रुद्रका मुख्य पुत्र देवोंके दुःखको वारण करनेवाले कातिकका देह दीखता है ॥ ऋग्० ७। ८८। २।] त्रिः सप्त नाम ॥ एक कण्ठ दो चरण चार हात छः मुख हैं ॥ ऋग्० ७। ८७। ४।] अग्नि वैं देवानां सेनानीः ॥ समर्थ कुमार देवताओंका सेनापति है ॥ काठक सं० ३६। ८।] मित्रो वै यज्ञस्य

शान्तिः ॥ यज्ञके विघ्नोंका नाश करके शान्ति करनेवाला मित्र है ॥ काठक सं० ३५ । १९ ।] ब्रह्म वै मित्रः ॥ अन्न देवता ही मित्र है ॥ तै० सं० ५ । १ । ९ । ३ ।] यही मित्र वरुण रुद्र नामवाले गणेश और स्कन्द कुमार हैं ॥ २७ ॥

तेनो॑ मि॒त्रो वरु॑णो अर्य॒माऽयुरिन्द्र॑ ऋभु॒क्षा म॒रुतो॑ जुषन्त ॥ नमो॑भिर्वा॒ ये दध॑ते सुवृ॒क्तिं स्तोमं॑ रु॒द्राय॑ मी॒ळ्हुषे॑ स॒जोषाः॑ ॥ २८ ॥

अन्वयार्थः—(सजोषाः) समान प्रेमवाले (ऋभुक्षाः) महा बलवान् (मरुतः) मरुत्गण (मित्रः) मित्र (वरुणः) वरुण (अर्यमा) अर्यमा (आयुः) वायु (इन्द्रः) इन्द्र (ये) जे देवता (नमोभिः) हवियोंके द्वारा प्रसंन होते हुए (सुवृक्ति) उत्तम स्तुति रूप (स्तोमं) स्तोत्रको सुनकर—उपासकोंके लिये (दधते) सुखको धारण करते हैं (ते) वे सब देवता (वा) ही (मीळ्हुषे) चारो पदार्थोंकी वर्षा करनेवाला (रुद्राय) रुद्रकी प्राप्तिके लिये (नः) हमारे सब विघ्नोंको नाश करें और (जुषन्त) हमारी हवि आदि नमस्कारोंको स्वीकार करें ॥ ऋग्० ५ । ४१ । २ ॥

व्याख्याः—एक स्वभाव युक्त महा बलवाले मरुत् गण, मित्र, वरुण अर्यमा, वायु, इन्द्र, जे देवता, हवियोंके द्वारा प्रसंन होते हुए, उत्तम प्रार्थनारूप स्तोत्रको सुनकर उपासकोंके लिये सुख सम्पादन करते हैं ॥ वे सब देवता ही, धर्म आदि पदार्थोंकी वर्षा करनेवाले, रुद्रकी प्राप्तिके लिये विघ्नोंको नाश करें और हमारी हवि आदि नमस्कारोंको स्वीकार करें ॥ जन्म मरण आदि दुःखको दूर करता है सो ही रुद्र है ॥ २८ ॥

विश्वे॑ दे॒वानो॑ अ॒द्यास्व॒स्तये॑ वैश्वान॒रो वसु॑र॒ग्निः स्व॒स्तये॑ ॥ दे॒वा अवं॑त्वृ॒भवः॑ स्व॒स्तये॑ स्व॒स्तिनो॑ रु॒द्रः पा॒त्वं॑हसः ॥ २९ ॥

अन्वयार्थः—(अद्य) इस मनुष्य लोकमें (विश्वे देवः) सब देवता (स्वस्तये) सुखके लिये (नः) हमारी अवन्तु रक्षा करें (वैश्वानरः) सूर्य (वसुः) वायु (अग्निः) अग्नि देवता (स्वस्तये) सुखके लिये हमारी रक्षा करें (देवः) देव भावको प्राप्त हुए (ऋभवः) अङ्गिरा गण (स्वस्तये) सुखके लिये हमारी रक्षा करें (रुद्रः) परम दयालु रुद्र (नः) हमारी (अंहसः) सव पापसे (पातु) रक्षा करे और (स्वस्ति) अक्षय सुख देवे ॥ ऋग्० ५ । ५१ । १३ ॥

व्याख्याः—इस मनुष्य लोकमें सब देवता सुखके लिये हमारा प्रतिपालन करें, देव भावको प्राप्त, अङ्गिरा गण सुखके लिये हमारा पालन करें, सूर्य वायु अग्नि देव सुखके निमित्त हमारा रक्षण करें, रुद्र भगवान् हमारे समस्त पापोंको छुडाकर रक्षा करे और देह पातके अनन्तर अपने वाचक ॐ मय तारक मंत्रको स्मरण करता हुआ अपने शुद्ध तुरीय वाच्य अविनाशी स्वरूपकी प्राप्ति करावे ॥ **संवत्सरो वा अग्नि वैंश्वानरः** ॥ संवत्सर ही व्यापक सूर्य वैश्वानर है ॥ काठक सं० ११ । ८ ।] **रुद्र स्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे** ॥ रुद्र अपने व्यापक तारक मंत्ररूप प्रणवको अन्त समयमें उपासकोंको स्मरण कराता है ॥ जो तू तीन मात्रा जीवरूप ओंकार है सो तू उपाधि रहित शुद्ध चतुर्थ रुद्र है ऐसा अपनेको जान ॥ जाबाल उ० १ । १ ।] अपने स्वरूपको ही उपदेश करता सो ही तारनेवाला रुद्र है ॥ २९ ॥

अस्य देवस्य मीळ्हुषों वयाविष्णोरेषस्य प्रभृथे

हविर्भिः ॥ विदेहि रुद्रो रुद्रियं माहित्वं यासिष्टं वर्तिं

रश्विना विरावत् ॥ ३० ॥

अन्वयार्थः—(एषस्य) यह प्रत्यक्ष (विष्णोः) सूर्यकी (तथाः) सात रंग वाली किरण व्याप्त हो रही हैं (मीळ्हुषः) ऋतुओंकी वर्षा करनेवाले (अस्य) इस (देवस्य) सूर्यका (रुद्रः) स्वयं प्रकाशी स्वामी रुद्र है ॥ (महित्वं) महा (रुद्रियं) तेजोमय (इरावत्) मण्डल देहको धीरण करनेवाला (अश्विनौ) अश्विनी कुमारोंको पालन करनेवाला पिता (हविर्भिः) हवियोंके द्वारा (प्रभृथे) प्राप्त करने योग्य सो ही रुद्र (वर्तिः) हमारे घरमें (यासिष्टं) आवे (विदेहि) सब सुख स्थापन करे ॥ ऋग्० ७ । ४० । ५ ॥

व्याख्याः—यह प्रत्यक्ष सूर्यकी सात वर्ण वालीं किरण विस्तृत हो रही हैं ऋतुओंकी वर्षा करनेवाला इस सूर्यका स्वामी स्वयं प्रकाशी रुद्र है, वही महा तेजोमय मण्डल देहको धारण करने वाला, अश्विनी कुमारोंको पालन करनेवाला पिता हवियोंके द्वारा प्राप्त करने योग्य है ॥ सो ही रुद्र हमारे घरमें आवे और सब सुखको स्थापन करे [रुद्रा ॥ हे रुद्र पुत्र अश्वनी कुमारो ॥ ऋग्० ५ । ७३ । ८] रुद्रा ॥ हे दोनों अश्वनी कुमारो ॥ ऋग्० ५ । ७५ । ३] रुद्र वर्तनी ॥ रुद्रकी आज्ञामें वर्तने वाले दोनों अश्विनी कुमार हैं ॥ ऋग्० १ । ६ । ३] अश्विनौ प्राणस्तौ ॥ मित्रा वरुणयोः प्राणस्तौ ॥ अश्विनी कुमार वेदोनों प्राण अपान हैं ॥

मित्र वरुण वेदोनों प्राण अपान हैं ॥ काठक सं० ११ । ७] अश्विनौ ॥ अश्विनौका अर्थ सर्व व्यापक है ॥ ऋग्० ७ । ७४ । ५] प्राणापानौ मित्रावरुणौ ॥ प्राण अपानही मित्र और वरुण है ॥ तै० सं० ७ । २ । ७ । २] प्राणा वैदक्षोऽपानः क्रतुः ॥ प्राणही दक्ष है ॥ और अपानही क्रतु है ॥ तै० सं० २ । ५ । २ । ४] दक्ष क्रतुभ्यां चक्षुर्भ्यां ॥ दोनों नेत्रों से दक्ष और क्रतु का ग्रहण है ॥ तै० सं० ३ । २ । ३ । २] प्राणापानौवा इन्द्राग्नी ॥ प्राण अपानही इन्द्र अग्नि हैं ॥ गोपथ ब्रा० २ । २] इन्द्रो वै वरुणः ॥ इन्द्र नाम वरुणका है ॥ गोपथ ब्रा० १ । २२] मित्र वरुणही अश्विनी कुमार हैं ॥ ३० ॥

ते॒वा रा॒जा॑नो अ॒मृत॑स्य म॒न्द्रा अ॑र्य॒मा मि॒त्रो वरु॑णः॒ परि॑ज्मा ॥ कद्रु॒द्रो नृ॒णां स्तु॒तो म॒रुत॑ः पू॒षणो॒ भग॑ः ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(अर्यमा) अर्यमा (मित्रः) मित्र (वरुणः) वरुण (भगः) भगदेवता (पूषणः) पोषणकर्त्ता (मरुतः) मरुत (कत्) सुखरूप (परिज्मा) सर्वत्र व्यापक (रुद्रः) रुद्र (स्तुतः) स्तुतियोग्य (ते) वे सब (घ) ही (मन्द्राः) हर्षित होनेवाले देवता (नृणां) मनुष्योंके (अमृतस्य) जीवनके (राजानः) स्वामी हैं ॥ ऋग्० १० । ९३ । ४ ।

व्याख्याः—[अर्यमा सुजातः राजा ऋतस्य गोपाः ॥ जो उत्तम स्नेह करनेवाला अर्यमा प्रगट हुआ सोही यज्ञकी रक्षा करनेवाला स्वामी है ॥ ऋ० ७ । ६४ । २] अर्यमा मित्र वरुण, भगदेव विश्वका पालन करने वाले मरुत स्तुति योग्य सर्व व्यापक सुख स्वरूप रुद्र आदिकही वे सब देवता हर्षित होनेवाले मनुष्योंके जीवन सुखके स्वामी हैं ॥ ३१ ॥

द॒स्मो हि॑ष्मा॒ वृष॑णं॒ पिन्व॑सि॒ त्वचं॒ कं चि॑द्यावी॒ररुं॑ शूर॒ मर्त्यं॑ परिवृ॒णक्षि॒ मर्त्य॑म् ॥ इन्द्रो॒त तुभ्यं॒ तद्दि॒वे तद्रु॒द्राय॒ स्वय॑शसे ॥ मि॒त्राय॑ वोचं॒ वरु॑णाय स॒प्रथः॑ सुमृळी॒काय॑ स॒प्रथः॑ ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थः—(शूर) हे वीर (दस्मः) दर्शनीय (वृषणं) वर्षा करनेवाले (त्वचं) मेघको (पिन्वसि) जलसे पूर्ण करता है (कं) सबके सुखरूप जलको (यावीः) भिन्न २ देशमें वर्षाताहुआ (चित्) ही (मर्त्यं) मरण धर्मवाले (मर्त्यं) प्राणि मात्रको सुखी करनेके लिये (अररुं) मेघको (परिवृणक्षि) सर्वत्र जलको वर्षाके रूपमें परित्याग करता है. (इन्द्र) हे जल ऐश्वर्य्य वाले वायो (तुभ्यं) आपके लिये (उत्त) और आपके (तत्) उस (दिवे) अन्तरिक्ष स्थानके लिये (तत्) उस (स्वयशसे) अपनी उमा शक्तिरूप महिमा वाले (रुद्राय) सर्व अमंगल नाशक और समस्त मंगल स्वरूप रुद्र के लिये (सप्रथः) प्रख्यात (सुमृळीकाय) परमदयालु (वरुणाय) वरुणके लिये (सप्रथः) प्रसिद्ध (मित्राय) मित्रके लिये (हिस्म) अवश्यही हम उपासक (वोचं) प्रार्थना रूप वचनको पठन करते हैं ॥ ऋग्० १ । १२९ । ३ ॥

व्याख्या:—हे दर्शनीय वीर कर्म करने वाले वायो तू वर्षा करने वाले मेघको जलसे पूर्ण करता है, सबको सुख देने वाले जलको विभक्त करता हुआही, मरण धर्म वाले प्राणी मात्रको सुखी करनेके लिये, सर्वत्र जलको वर्षाके आकार में वर्षाता है, हे जल रूप ऐश्वर्य्य सम्पन्न वायुदेव आपके लिये और आपके निवास उस अन्तरिक्षके लिये, उस उमा शक्तिरूप अपनी महिमा

वाले सर्व दुःख नाशक और समस्त सुखस्वरूप रुद्रकेलिए, देव सेनाके स्वामी रूपसे प्रख्यात परम कृपालु सर्व शोकनिवारक स्कन्द कुमारके लिये और ऋद्धि सिद्धिके दाता प्रसिद्ध गणेशके लिये हम उपासक अवश्यही प्रणामके सहित मंत्रोंका पठन करते हैं ॥ ३२ ॥

वायुरस्मा उपामन्थत्पिनष्टि स्मा कुनन्नमा ॥ केशी विषस्य पात्रेण यद्रुद्रेणापिबत्सह ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थः—(केशी) सप्तकिरण स्वरूप सूर्य (रुद्रेण) अग्निमय (पात्रेण) पात्रके (सह) द्वारा (कुनन्नमा) नमन स्वभाववाली भूमीसे (विषस्य) व्यापक हविका (अपिबत्) भक्षण करता है (यत्) जिस हविरूप जलको सूर्यने शोषण किया (स्म) उसको (वायुः) वायु (उप) भूमीके समीप मेघोंके रूपमें (अमन्यत्) मथन करता हुआ (अस्मै) इस चराचर जगत्के सुखके लिये (पिनष्टि) गर्जना युक्त जलको वर्षाता है ॥ ऋग्० १० । १३६ । ७ ॥

व्याख्याः—सात किरण युक्त सूर्य अग्नि मुख रूप पात्रके द्वारा हविमय जलका पान करता है, जिस हुत द्रव्यको सूर्यने शोषण करके जलके रूप में परिपक्व किया, उस परिपक्व सूक्ष्म वाष्पको अन्तरिक्षके नीचे और भूमीके समीप वायुरूप इन्द्र मेघोंके आकार में, मथन करता हुआ, इस चराचर विश्वके हितके लिये गर्जनाके सहित जलको वर्षाता है [वायु वेन्द्रो वान्तरिक्ष स्थानः ॥ वायु ही इन्द्र है और उस इन्द्र का स्थान अन्तरिक्ष है ॥ निरुक्त ७।५।२] एकही वायु वर्षा युक्त इन्द्र है और वर्षा रहित अन्तरिक्ष चारी मातरिश्वा है ॥ ३३ ॥

प्र॒रु॒द्रेण॒ य॒यिना॑ य॒न्ति॒ सिन्ध॑व॒ स्ति॒रो॒म॒ ही॑ म॒रम॑तिं द॒धन्वि॑रे ॥ ये॒ भिः॒ परि॑ज्मा परि॒ य॒न्नु॒रु॒श्र॒यो॒ वि॒रो॑रु॒व॒ज्ज॒ठरे॒ वि॒श्वं॑ मु॒क्षतें॑ ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थः—(ययिना) भ्रमणशील (रुद्रेण) सन्सनाट शब्द करने वाले वायु के संग (सिन्धवः) वाष्पात्मक जल (दधन्विरे) मेघके आकारको धारण करते हुए (अरमति) शुष्क (मही) भूमी को (तिरः) वर्षाके आगमनसे (प्रयन्ति) पृथ्विके समीप प्राप्त होते हैं (येभिः । जिन विविध रंगोंके सहित (उरुश्रयः) बहुत जल युक्त (परिज्मा) सर्वत्र व्यापक बलवाला (परियन्) पर्य्यटन करता हुआ (जठरे) अन्तरिक्ष में (वि) विशेष गर्जना करने वाल (रोरुवत्) मेघ देवता (विश्वं) सम्पूर्ण जगत्को (उक्षते) सिंचन करता है ॥ ऋग् सं० १० । ९२ । ५ ॥

व्याख्या:—भ्रमण शीलसन्सनाट शब्द करने वाले वायुके सहित वाष्पमय जल मेघके रूपको धारण करते हुए सूकी भूमीको वर्षा ऋतुके आगमनके कुछ पहिले पृथिवीके समीप प्राप्त होते हैं, जिन विचित्र वर्णके रंगोंके सहित बहुत जलयुक्त सर्वत्र व्यापक बलवाला पर्य्यटन् करता हुआ, अन्तरिक्षमें विशेष गर्जना करने वाला मेघ देवता, समस्त चराचर जगत् को जलसे सिंचन करता है ॥ रुद्र नाम वायुका है ॥ ३४ ॥

त्रिः स॒प्त स॒स्रा न॒द्यो॑ म॒ही॒र॒पो॑ व॒न॒स्पती॒न्पर्व॑ताँ अ॒ग्नि मू॒तये॑ ॥ कृ॒शानु॒ मस्तॄ॒न्ति॒ष्यं॑ स॒धस्थ॒ आ॒रु॒द्रं रु॒द्रेषु॑ रु॒द्रियं॑ हवामहे ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थः—(त्रिः सप्त) इक्कीस (महीः) बहुत (अपः) जलवालीं (सस्रा) बहनेवालीं (नद्यः) नदीयोंको (वनस्पतीन्) वनस्पतियोंको (पर्वतान्) पर्वतोंको (कृशानुं) वडवानल (अग्निं) अग्निको (रुद्रेषु) नक्षत्रोंमें (रुद्रियं) स्तुतियोग्य (अस्तृन् किरणरूप बाणोंके फेंकने वाले (तिष्यं) सूर्यमण्डलस्थ (रुद्रं) रुद्रको (ऊतये) सबकी रक्षाके निमित्त (सधस्थे) यज्ञमें (आहुवामहे) आवाहन करते हैं ॥ ऋग० १० । ६४ । ८ ॥

व्याख्याः—इक्कीस बहुत जलयुक्त बहनेवालीं नदीयोंके देवताओंकों, वनस्पतियोंके सोम आदि देवताओंको, पर्वतोंके देवताओंको, समुद्रको शोषण करने वाले वडवानल अग्निके देवताको, सप्तग्रह नक्षत्रोंके मध्यमें स्तुतिके योग्य, सूर्य मण्डलस्थ रुद्रको प्रजाकी रक्षाके लिये यज्ञमें हम सब यजमानके सहित ऋत्विक् आवाहन करते हैं [रुद्रो वै तिष्यः सोमः पूर्णमासः ॥ पौष महिनेकी पूर्ण मासीका चन्द्रमाही पुष्य नक्षत्र युक्त होता है ॥ उस योगके देवताका नाम रुद्र है ॥ तैत्तरीय सं० २ । २ । १० । १–२ ॥ काठक सं० ११ । ५] तिष्यः ॥ तिष्य नाम सूर्यका है ॥ ऋग्० ५ । ५४ । १३] अस्यश्रवो नद्यः सप्त बिभ्रतिद्यावा क्षामा पृथिवी दर्शतं वपुः ॥ इस रुद्रकी कीर्तिको सात नदी धारण करती हैं द्योभूमी और (पृथिवी) अन्तरिक्ष है, इन त्रिलोकीमें जिसका प्रकाशरूप देह दीखता है ॥ ऋग्० १ । १०२ । २] त्रिः सप्तम सूर्यः सप्त स्वसारो अग्रुवः ॥ इक्कीस भागरूप मोरीयाँ हैं, सात बहिन रूप नदी हैं ॥ ऋग० १ । १९१ । १४] सप्त सिन्धून् सप्त लोकान् देव मनुष्य पितरः ॥ सात लोकोंमें सात नदी हैं. उन सात नदीयोंके जलको पान करने वाले क्रमसे देव, पितर, मनुष्य हैं, द्योमें सातभेद युक्त सिन्धु नदी है ॥

अन्तरिक्षमें सरस्वती सातभेद युक्त है ॥ भूमीमें सात भेद युक्त सरयु है ॥ यही सरयु भूमीमें सरस्वती नामसे प्रसिद्ध है ॥ मैं० सं० ४ । १४ । १४] सरस्वती सरयुः सिन्धुः ॥ सरस्वती सरयु सिन्धु ये तीन महा नदीयाँ हो सात २ भेदसे इक्कीस हैं ॥ ऋग्० १० । ६४ । ९] त्रिः सप्त नद्यः ॥ इक्कीस नदी हैं ॥ ऋग्० १ । ९२ । ४] सप्त सप्त त्रेधा ॥ तीन रूपसे सात सात हुई ॥ ऋग० १० । ७५ । १] ऋषियोंने तीनों लोकोंकी नदीयोंको आवाहन करके हिमालयसे प्रगटकिया है ॥ सब नदीयोंके मध्यमें सरस्वती महा नदी है [अम्बितमे नदीतमे देवितमे सरस्वति ॥ हे सरस्वति तुम माताओंमें उत्तम माता हो, नदीयोंमें तुम महान नदी हो, देवीयोंमें तुम महादेवी हो ॥ ऋग्० २ । ४१ । १६] त्रिसधस्था सप्त धातुः पंच जाता वर्धयन्ती ॥ तीनों लोकोंमें व्यापक सात विभागवाली, चारवर्ग पाँचमा निषाद जातिके मनुष्य वास करते हैं जिस सरस्वतीके तटपर ॥ ऋग्० ६ । ६१ । २...१२] [अवद्रप्सो अंशुमती मतिष्ठ दियानः कृष्णोदशभिः सहस्रैः ॥ आवत्तमिन्द्रः शच्या धमन्त - मपस्नेहितीर्नृमणा अधत्त ॥ कृष्ण नामका दैत्यने दिक यज्ञोंको नाश करनेवाला वेगसे चलनेवाला दशहजार अपने सम्बंधि दैत्योंके संग चढ़ाई करता हुआ (अंशुमती) सरस्वती नदीपर आकर प्राप्त हो गया उसके बाद (शच्यः) अपनी मायासे जगत्को भयंकर शब्दसे कम्पित करने वाले उस कृष्णको मारनेके लिये इन्द्र प्राप्त हुआ इसके अनन्तर उपासकोंकी रक्षामें चित्त लगा है जिस देवराजका ऐसे कृपालु इन्द्र दश हजार हिंसक सेनाको मारता हुआ कृष्णको मारकर उसकी सब सेनाको भी मारडाला ॥ ऋग्० ८ । ८५ । १३ ॥ साम संहिता ३ । १० । १] उपासकों को धन धान्य

देती है ॥ ऋग० ७ । ९५ । २] दिवोदासं वध्र्यूराश्वाय ॥ नपुंसक वध्र्यूराश्व राजके प्रतिदिवोदास नामके पुत्रको सरस्वतीने दिया ॥ ऋग० ६ । ६१ । १] (दिवः) स्वर्गवासी देवोंके (दासः). शत्रुसमुहका नाशकरे सोही दिवोदास है [आर्याहतो दासानि ॥ आर्योंके कर्मद्वारा वृत्र आदिके उपद्रवोंको नष्ठकिया ॥ ऋग० ६ । ६० । ६] दासस्य ॥ दासनाम कपटीका है ॥ ऋग्० ४ । ३० । १५] दासानां ॥ राक्षसोंका ॥ ऋग्० ४ । ३० । २१] दासस्य नमुचेः ॥ नमुची शत्रुका ॥ ऋग० ५ । ३० । ८] शिरो दासस्यनमुचेः ॥ नमुचिशत्रुका शिर ॥ ऋग्० ६ । २० । ६] नमुचिंदासं ॥ ऋग० १० । ७३ । ७] दासं शुष्णं कुयवं ॥ शुष्ण और कुयव (दासं) शत्रुको ॥ ऋग० ७ । १९ । २] दासं शम्बरं ॥ शम्बर दैत्य शत्रुको ऋग० ६ । २६ । २१] दासीः ॥ दैत्य प्रजाका नामदासी है ॥ ऋग्० ६ । २० । १०] दासीः ॥ वैदिक कर्महीन प्रजा है ॥ ऋग० ४ । २८ । ४] महीदास-मही-वेदवाणीसे दास-नास्तिक दलका पराश्रय किया जिस एतरा माताके पुत्रने सोही महीदास है ॥ दास शब्द कर्म-संस्कार रहित शूद्रका वाचक है ॥ वैदिक कर्मके सहित वेद मंत्रोंका त्याग कर, मनुष्यरचित मंत्र और मरे हुए मनुष्योंको पूजते है वे सबही राक्षस हैं ॥ [सप्त स्वसासुजुष्टा सरस्वती ॥ सात भगियोंके मध्यमें अति प्रिय सरस्वती है ॥ ऋग० ६ । ६१ । १०] यह महानदी ऋग्वेदकालमें सातधाराओंके रूपसे विभक्तथी ॥ सबसे बडीधारा तिब्बतके कैलास पर्वतके समीप तीर्थापुरीके प्लक्ष वनसे प्रगट होकर केदार नाथके पास होकर कुरुक्षेत्रमें आई, उस क्षेत्रसे बहती हुइ आबुके पास होकर काठियावाड देशके गिरनार पर्वतके भी समीप होकर प्रभास क्षेत्र सोमनाथके समुद्रमें मिल गई ॥ इस

सहा नदीके तटवासी महर्षि थे ॥ और सब राजे कुरुक्षेत्रमें यज्ञ करते थे ॥ यमुना नदीभीइस संरस्वतीमें मिली हुईथी ॥ गंगानदी सरस्वतीके समयमें नहीं थी ॥ सरस्वती नदीके प्रवाहसे पर्वतोंका चूर्ण होकर जोरेती हुईथी सोही मरुस्थलकी रेती है कितनेक समयके पश्चात् सरस्वती पाँच धाराओंके आकारमें हो गई [पञ्च नद्यः सरस्वती मपि यन्ति सस्रोतसः । सरस्वती तु पंचधासो देशे भवत्सरित् ॥ हिमालयसे प्रगट होकर प्रभास पर्य्यन्त सरस्वती पांच शाखाओंमें युक्त होकर वहनेवाली हुई ॥ माध्यन्दिन सं० ३४ । ११] इयं शुष्मेभिर्बिसखाइवारुजत्सानुगिरीणांतविषेभिरूर्मिभिः ॥ नदीकी देवता सरस्वती है, यह सरस्वती नदी अपनी बलरूप महातरंगोंसे तीरवर्ती पर्वतोंके शिखरोंको कमलकी जडके समान उखाडती हुई बडे वेगसे समुद्रमें मिलती है ॥ ऋग० ६ । ६१ । २] यस्या अनन्तो अह्रुतः ॥ जिस सरस्वतीका अपरिमित जल प्रवाह है ॥ सब नदीयोमें बडी नदी ह ॥ ऋग० ६ । ६१ । ८] दृषद्वत्यां मानुष आपयायां सरस्वत्यां ॥ आपया नामकीही यमुना नदीके तीरपर. दृषवतीके तटपर सरस्वतीके किनारे पर मनुष्य विचरते हुए यज्ञ करते हैं ॥ इस मंत्रसे तीन सरस्वतीयोंका नाम है ॥ ऋग० ३ । २३ । ४] ऋषयोवै सरस्वत्यां सत्रमासत इति ॥ सरस्वती नदीपर ऋषियोंने यज्ञकिया ॥ ऐ० ब्रा० २ । १९] सरस्वत्या यान्त्येष वैदेवयानः पन्थास्तमेवान्वारोहन्ति ॥ उस सरस्वतिके तटपर प्रतिदिन जाते हैं, यहसरस्वती तटवर्ती मार्गही स्वर्गका प्राप्त कराता है, राजे ऋषिमुनि, इसके तटपर यज्ञ तपके द्वारा देवभावको प्राप्त हुए हैं ॥ और रुद्रकी कृपासे मुनिमोक्ष गये ॥ तैत्तरीय सं० ७ । २ : १ । ४] देवावै सत्रमासंत कुरुक्षे

३ त्रे ॥ देवताओंनेही कुरुक्षेत्रमें यज्ञकिया ॥ मैत्रायणी सं० २। १।४] वास्तो वैं वास्त्वं जात ९ वास्त्वमयं खलु वै रुद्रस्य ॥ यज्ञ स्वामी यज्ञसे प्रगट हुआ, निश्चयही रुद्रका नाम वास्तु देवता है वास्तु स्वरूप है ॥ मै० सं० २।२।४] इदं कुरुक्षेत्रं देवानां देवयजनं सर्वेषां भूतानां ब्रह्म सदनम त्रहि जन्तोः प्राणेषूत्क्रममाणेषुरुद्रस्तारकं ब्रह्म व्याचष्टे येनासावमृती भूत्वा मोक्षीभवति तस्मादविमुक्तमेव निषेवेताविमुक्तं नमुंचेत् ॥ यह कुरुक्षेत्र देवताओंका और प्राणि मात्रोंका, यज्ञ करनेका स्थान है, यहीरुद्रका निवास स्थान है, इस स्थाणु नामके स्थानमेंही देहधारी मात्रका प्राणोंके निकलते समय रुद्र अपने व्यापकतुरीय स्वरूपकी चतुर्थ मात्रामय तारकको उपदेश करता है ॥ हे जीव तू शुद्ध मेराही स्वरूप है ॥ जिस रुद्रके प्रणव रूप तारक मंत्रसे वह मनुष्य अमर होकर मोक्ष होता है, इस हेतुसेही कुरुक्षेत्रके स्थानेश्वर महादेवका त्याग न करे यही मुक्तिका परम स्थान है ॥ जाबालोपनिषद् ॥ १।१] ब्रह्मदेवा वास्तोष्पतिं ॥ यज्ञके स्वामी (ब्रह्म) रुद्रको देवताओंने प्रसन्न किया ॥ ऋग० १०।६१।७] सदा शिवोम् ॥ मैं देहत्यागके अनन्तर (सदाशिव) निरंतर कल्याण स्वरूप (ओं) अहं भवामि ॥ मैं होउँ ॥ ओंकारही शिव है शिवही ॐ है ॥ तैत्तरीयारण्यक १०।२१] तारं ॥ तारनेवालाही तारक मंत्र है ॥ अथर्वण ४। ३७।३] नमस्ताराय ॥ प्रणव स्वरूप रुद्रके लिये नमस्कार है ॥ काठक सं० १७।१५ ॥ मै० सं० २।९।७॥ कपिष्ठल कठ सं० २७।५ ॥ मा० सं० १६।४० ॥ तै० सं० ४। ५।८।१ ॥ काण्व सं० १७।४०] य ॐ कारः स प्रणवो यः प्रणवः स सर्व व्यापी सोऽनन्तो योऽनन्तस्तत्तारं

यत्तारं तत्सूक्ष्मं यत्सूक्ष्मं तच्छुक्लं यच्छुक्लं तद्वैद्युतं यद्वैद्युतं तत्परं यत् ब्रह्म सएकः यएकः सएको रुद्रः सईशानः सभगवान्स महेश्वरः समहादेवः ॥ तार–ब्रह्म ॐ आदि शब्द रुद्रके वाचक हैं ॥ इस प्रकरणसे यहि सिद्ध हुआ रुद्रही परब्रह्मरूप और अपरब्रह्म रूप ॐ है ॥ अथर्वशिर उपनिषद् ॥ ४] यदग्नावग्निं मथित्वा प्रहरति तेनैवाग्नय आतिथ्यं क्रियते ॥ जिस अग्निको अग्निमें मथकर संपादन करता है उसी अग्निसे यजमान अग्निकेलिये सत्कार करता है ॥ तै० सं० ६ । १ । ७] तैसेही रुद्र अपने अपर रूप ओंकार तारक मंत्रका उपदेश करके उस तारकसेही, अपने परब्रह्म–अभेद स्वरूपको जीवकेलिये सत्कार करता है ॥ अपने शुद्ध स्वरूपका उपदेश करनाही तारना है [यत्र प्राची सरस्वती ॥ यत्र सोमेश्वरो देव स्तत्रमाममृतं ॥ जहाँ प्राची सरस्वती है जहाँ सोमनाथ देव है, तहाँ मेरेको मोक्षकरे ॥ ऋग्० परिशिष्ट १० । ५] ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म अग्निर्देवता ब्रह्मइत्यार्षम् ॥ ओंकार यह एक अक्षर स्वरूप है, रुद्रही देवता और ऋषि है ॥ एकोहि रुद्रः ॥ एकही रुद्र है ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । ३३]

शिव पार्वती सम्वाद—वैवस्वत मनुके प्रथम त्रेता युगमें और्वमुनीके क्रोधसे वडवानल प्रगट हुआ वह कोप जगत्का नाश करनेवाला है ऐसा ब्रह्माने जानकर सरस्वती देवीसे कहा ॥ हे देवी तू नदी रूप होकर इस वडवानलको समुद्रमें लेजा ब्रह्माकी आज्ञासे योगबलके द्वारा सरस्वती देवता, नदीके स्वरूपको धारण करके लक्ष वनमें वसने वाले पिप्पलाद मुनीके आश्रममें अन्तरिक्षसेगिरी, अगाध जलवाली सरस्वती, वडवानलको धारणकर पश्चिम

दिशाको मुखकरके बडे वेगके साथ वहने लगी, इस समय, केदार नामक जो तीर्थ है, उसी स्थानमें प्लक्षवनसे आई, केदारसे वहती हुई, देव प्रयाग-हरद्वार हस्तिनापुर-मेरठ-स्थानेश्वर कुरुक्षेत्रमें मिलगई तेतीसमाँ त्रेतामें समुद्र कुरुक्षेत्र तक फैल गया और चोवीशमें त्रेतामें समुद्र हट गया ॥ फिर सरस्वती श्री कण्ठदेशमें वहती हुई ॥ इस समय श्री कण्ठ देशका नाम, मियान्डाव है, इसके वडे नगरोंका नाम, सहरनपुर-मेरठ-दिल्ही-है ॥ मियाँडावसे, मत्स्यदेशकों प्लावित करती हुई पुष्कर, अर्बुद-आनर्त होकर प्रभासमें समुद्रको मिलगई ॥ अलवर, जैपूर, यही मत्स्यदेश इसकी राजधानी जयपुरसे तीसमीलकी दूरीपर मेड विराट् नामका नगर है ॥ विराट्नगरसे वहती हुई, पुष्करमें आई, उससे निकलकर आबुके पास होकर सिद्धपूर-वढवाण होकर प्रभासमें मिलगई ॥ स्कन्द पुराणके प्रभास खण्ड अध्याय ३३ । ३४-३५-३६ में कथा है ॥ अष्टाविंशती त्रेतामें भगिरथने रुद्रको प्रसंन करके उस सरस्वती जलके वडे भागको गंगाके नामसे पूर्व समुद्रमें मिलाय दिया ॥ फिर महादेवभी स्थानेश्वरको छोडकर दिवोदासकी वसाई हुई काशीपुरीमें विश्वेश्वर नामसे विराजमान हुआ ॥ अब कुरुक्षेत्रमें सरस्वती और दृषद्वती नामकी स्वल्प जलवाली नदी हैं ॥ ये दोनों महानदीकी शाखा हैं ॥ पुष्करमें आबुके समीप पिण्डवाडा स्टेशनसे तीन मीलपर मार्कण्डेश्वरमें, अम्बाजीके, कोटेश्वरसे निकलकर सिद्धपुरमें प्राचीसे प्रगट होकर प्रभास सोमनाथमें सरस्वती हैं । इस प्रमाणसे यह सिद्ध हुआ के, महा नदी सरस्वती इन मार्गसे वहती हूई प्रभासके समुद्रमें गिरी ॥ और कैलासके पाससे प्रगट होकर शतद्रु (सतलज) नदी पहिले कच्छके कोटेश्वरके पास समुद्रमें मिलतीथी ॥ फिर कालक्रमसे शतद्रुभी सिन्धुमें मिलती है ॥ मुख्य सरस्वती जलही गंगा है ॥ और गौण जल यमुना-दृषद्वती-सरस्वती है ॥

[अन्य नदीयोंके नामः—कूल्लु देशके वसिष्ठ आश्रमसे अर्जीकीया-विपासा-व्यास प्रगट हुई ॥ परुष्णी-इरावतीरावी मनमहेशसे प्रगट हुई है ॥ चन्द्र और भागापर्वतसे असिक्नी-चन्द्रभागा-चिनाव प्रगट हुई ॥ काश्मीर-देशके तक्षक सरोवर-भेरीनागसे वितस्ता-झेलम प्रगट हुई ॥ कैलासके समीपके एक महाशिखरसे सिन्धु नदी प्रगट हुई ॥ और गोमती-गुलम-नदी कौञ्च गिरिके पश्चिम भागसे प्रगट हुई ॥ क्रमु-कुरम नदी और कुभा-कावुल नदी ॥ सुसर्तु-स्वात नदी ॥ मेहत्नु ॥ तृष्टामा ॥ येसवनदीयेंही आर्योंकी जन्मभूमी हैं ॥ ऋग्० १०। ७५। ५-६] इन महा नदीयोंके तटपर असंख्य रुद्रके वहुत प्राचीन स्थान हैं ॥ शिव-भव-उग्र, महादेव-प्रजापति-भीम, पशुपति, अग्नि इन्द्र, वरुण, मित्र, भर्ग, ब्रह्म आदि विशेषण एक अद्वितीय स्वरूप रुद्रकेही हैं ॥ रुद्रकी सत्तामें सबकी सत्ता कल्पित हैं ॥ जिसभावसे उपासक रुद्रके स्वरूपका ध्यान करता है उसीके अनुकूल, मायिक दिव्य शरीर धारण करके दर्शन देता है ॥ जिस प्रकार भूलोकके ऊँचे भागमें कैलास है ॥ उसी प्रकार ब्रह्मलोक के ऊँचे भागमें कैलास है ॥ ब्रह्माके उपासक ब्रह्मामें लय होते हैं, और रुद्रके उपासक रुद्रमें शान्ति प्राप्त करते हैं ॥ यह उपासक भावना है ॥ वास्तविक एक अद्वितीय स्वरूपही रुद्र है ॥ वही रुद्र अपनी इच्छासे ब्रह्मा आदि स्वरूप धारण करता है ॥ जैसे मूल वृक्षमें शाखा होती हैं ॥ तैसेही रुद्रमें वैदिक देवता विभूति हैं ॥ बिभूतिरूप देवताओंकी उपासना करनेसे उपासक क्रमसे रुद्रको प्राप्त करता है ॥ और रुद्रकी उपासना करनेसे सब देवताओंकी उपासनाका फलभी पाता हुआ एकही जन्ममें रुद्रको प्राप्त होता है ॥ रुद्रकी उपासनासे सब देवोंकी उपासनाका फल

मिल जाता है ॥ लिंग पूजनसे सब देवताओंकी पूजा हो जाती है ॥ ३५ ॥

इति श्री ऋग्वेदीय रुद्र ॥ तृतीय सूक्त ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्यायाख्या समाप्त ॥३॥

॥ अथ ऋग्वेदीय चतुर्थ सूक्त ॥

प्रयेमे बन्ध्वेषेगां वोचन्तसूरयः पृश्निं वोचन्त मातरम् ॥ अधापितरमिष्मिणं रुद्रं वोचंत शिक्वसः ॥१॥

अन्वयार्थः—(मे) मेरेदेहके (बन्धुएषे) ये कारणभूत (सुरयः) तींनो अवस्थामें स्वास प्रस्वास रूपसे वीरकर्म करनेवाले प्राण (गां) वाणी आदि इन्द्रियोंके आकारको (वोचन्त) धारण करते हुए व्यापकहैं (ये) जे प्राण दशेन्द्रियोंके स्वरूपमें प्रगट हुई वेही (प्र) अतिसूक्ष्म (पृश्निं) नाना रूपको स्मरण करनेवाली वुद्धि (मातरं) माताके रूपको (वोचन्त) धारण करते हुए (अध) और उस वुद्धि अवस्थाके द्वारा (इष्मिणं) सर्व व्यापक (पितरं) पिता (रुद्रं) रुद्रको—जीव रूपसे प्रसिद्ध (वोचन्त) करते हुए, उसी चेतनके द्वारा (शिक्वसः) पंचवृत्ति रूपसे प्रकाश पानेवाले प्राण हैं ॥ ऋग्० ५ । ५२ । १६ ॥

व्याख्याः—मंत्र द्रष्टा ऋषिने कहा, मेरी शरीरके ये कारणरूप पाँच प्राण तीनों अवस्थाओंमें, स्वास प्रस्वासमय वीरकर्म

करनेवाले वाणी आदि दशेन्द्रियोंके आकारका, धारण करते हुए व्यापकहैं, जे प्राण दशेन्द्रियोंके रूपमें प्रगट हुए, वेही अतिसूक्ष्म नानारूपको स्मरण करनेवाली बुद्धिमाताके आकारको धारण करते हुए, और उस बुद्धिके द्वारा सर्वगत अधिष्ठान पालक रुद्रको, जीवरूपसे प्रसिद्ध करते हुए, उस चेतनके द्वारा पाँच भेदसें प्रकाशित होनेवाले प्राणहैं [रुद्राणां ॥ प्राणोंका नाम रुद्रहै ॥ जो चेतन प्राणोंका प्रेरक है सो रुद्र है ॥ ऋग्० १ । १०१ । ७] मित्राः ॥ सवइन्द्रियोंकी उत्पत्ति स्थितिलय करनेवाले मरुत हैं ॥ ऋग्० ९ । १०१ । १०] प्राणो वै मरुतः] प्राणसमुहही मरुत हैं ॥ ऐ० ब्रा० १२ । ६] रुद्रकी प्राणशक्ति अवस्था है, जैसे अग्निकी प्रकाश अवस्था है ।। तैसेही चेतनकी प्राणसत्ता हैं [क्रत्वेदक्षाय ॥ मित्ररूप निर्विकारी दक्ष अवस्था है ॥ और वरुणरूप संकल्पसे आवरण करनेवाली माया विकारी क्रतु अवस्था है ॥ ऋग्० ९ । १०० । ५] ब्रह्मवा ऋत ब्रह्महि मित्रो ब्रह्मोह्यृतं वरुण एवायुः ॥ रुद्रही ऋत है, व्यापक रुद्रही मित्ररूप निर्विकारी उमा ज्ञान स्वरूप है ॥ ब्रह्मः उमाही ॥ ऋतं–रुद्र स्वरूप है ।। वरुणही आयुरूप वायु है ॥ चेतन वरुणही महेश्वर और प्राणशक्तिरूप वरुणही माया है ॥ चेतन वरुणकी जड प्राणरूप माया वरुण है ॥ शतपथ ब्रा० ४ । १ । ४ । १०] माययाहिस ॥ उस अग्निकीही मायासे ॥ ऐ० ब्रा० ५ । ४] तमस्य राजा वरुणः ॥ तमका स्वामी महेश्वर है ॥ ऐ० ब्रा० ५ । ४] रेतो वा आपः ॥ व्यापक प्राणशक्ति मायाही कार्य कारण है ॥ ऐ० ब्रा० १ । ३] द्विता वरुणो मायी ॥ द्वैत माया देहको धारण करके वरुण मायिक महेश्वर है ॥ ऋ० ७ । २८ । ४] असुरा मायाभिः ॥ मित्र वरुणरूप उमा महेश्वरही दशभेदरूप प्राण शक्तिके द्वारा स्त्री

पुरुषोंके स्वरूपोंसे व्यापक हैं ॥ ऋग्० १ । १५२ । ८] मायावाँ मित्रा वरूणा ॥ माया देहधारी दोनों उमा महेश्वर हैं ॥ ऋग्० ५ । ६३ । ४] ताहिदेवानामसुरातावर्या ॥ वेदोनोंही सबदेव आदि प्राणि मात्रके स्वामी हैं, वेदोनों प्राणशक्ति धारी हैं ॥ ऋग्० ७ । ६५ । २] प्राणापानावग्निषोमौ ॥ प्रसवाय सविता प्रतिष्ठित्या अदितिः ॥ प्राणरूप अग्नि है, अपानरूप उमाहै ॥ प्रेरक सवितारुद्र है ॥ और प्रतिष्ठारूप भूमी उमा है ॥ ऐ० ब्रा० २ । २] प्राणो वै मित्रोऽपानो वरूणः ॥ प्राणही मित्र और अपानही वरुण है ॥ ओजो वाइन्द्र ओजो विष्णुः ॥ वलही इन्द्र और वलही विष्णु है ॥ इन्द्रही महेश्वर और विष्णुही सोमहै ॥ काठक सं० २१ । १] सोमका नाम विष्णु है ॥ ऋग्० १० । ११३ । २] आपो वै वरुणः ॥ व्यापक प्राणशक्तिही वरुण है ॥ काठक सं० १२ । ११] समुद्र वै वरुणः ॥ समुद्रही वरुण है ॥ मै० सं० ४ । ७ । ८] प्राणा वा आपः ॥ प्राणही व्यापक कारण हैं ॥ तै० ब्रा० ३ । ८ । ३ । १] प्राणो वा अर्णवः ॥ प्राणही समुद्र है ॥ शत० ब्रा० ७ । ५ । २ । ५०] प्राणो वै दक्षः ॥ प्राणही दक्षरूप अद्भुत मित्र है ॥ तै० सं० २ । ४ । २ । ४] सोमो वैशुक्रः ॥ सोमही कारण है ॥ मै० सं० १ । ६ । ८] आपो वै रात्रिः ॥ व्यापक सोमही जड माया है ॥ मै० सं० ५ । ५ । १] आपो वै वरुणः प्रजा वै बर्हिः ॥ प्राण शक्तिही वरुण है उस मायाकी प्रजाही यज्ञ है ॥ मै० सं० ६ । ८ । ५] सोमो वै रेतो धाः ॥ उमाकी मायाशक्तिही संकल्पमय वीर्यको धारण करती है ॥ मै० सं० ५ । ३ । ६] आपश्चातान्नासत्यादाश्विना यातमधरा दुदक्तात् ॥ हे अश्विनौ रूप उमामहेश्वर तुम दोनों

पूर्व पश्चिम दक्षिण, उत्तर आदि दिशाओंसे हमारी रक्षाके लीये आतेहो ॥ **अतारिष्म तमस स्पारमस्य** ॥ इस मायाके अज्ञान रूप कारणके पार हम तरनेवाले होवे ॥ उमा रुद्रको कृपासेही तरेँगे ॥ ऋग्० ७ । ७२-७३ । ५-१] यह सब चराचर उमा महेश्वरकी अद्भुत माया है, उन मातापिताकी दयासेही प्राणि तरते हैं ॥ १ ॥

ते जज्ञिरे दिव ऋष्वा संउक्षणो रुद्रस्य मर्या असुरा अरेपसः ॥ पावकासः शुचयः सूर्या इव सत्वानो नद्रप्सिनो घोर वर्पसः ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(**रुद्रस्य**) रुद्रके (**मर्याः**) कुमार (**दिवः**) अन्तरिक्षसे (**जज्ञिरे**) उत्पन्नहुए (**ते**) वेमरुद्गण (**सूर्याः इव**) सूर्योंके समान (**ऋष्वासः**) दर्शनीय (**असुराः**) बलवान् (**अरेपसः**) पापरहित (**शुचयः**) निर्मल (**उक्षणः**) वर्षा करनेवाले (**पावकासः**) प्रकाशमान् (**द्रप्सिनः**) उपासकोंपर प्रसंन होनेवाले और दुष्टोंके लिये (**सत्वानोन**) भूत गणोंके समान (**घोरवर्पसः**) भयंकर स्वरूपधारी हैं ॥ ऋग्० १ । ६४ । २ ॥

व्याख्या:—वायुरूप रुद्रके मरुत पुत्र, अन्तरिक्ष मातासे उत्पन्न हुए वे मरुत सूर्योंके समान प्रकाशवाले दर्शनीय, निर्मल, पाप रहित, बलवान जलवर्षानेवाले उपासकों पर प्रसन्न होनेवाले, और शत्रुओंके लिये भूतोंके समान भयंकर देहधारी हैं [**रुद्रो रौतीति सतोरोरूयमाणो द्रवतीतिवा** ॥ मेघमण्डलमें वायु गर्जनारूप शद्ध करता हुआ भागता है ॥ वायु गर्जनाका चेत-

नही रुद्रदेवता है ॥ निरुक्त १० । ५] अग्निर्वै रूरो रुद्रोऽग्निः ता. १२ । ४ । ४ । रुद्रही शब्द करनेवाला व्यापक है । उस वायु देहधारी रुद्रके मरुत पुत्र हैं ऊनकी माता–पृश्नि, अन्तरिक्ष है ॥ २ ॥

प्र॒ये॒शुम्भ॑न्ते॒ जन॑यो॒न सप्त॑यो॒ याम॑न् रु॒द्रस्य॑ सू॒नवः॑ सु॒दंस॑सः ॥ रोद॑सी॒हि म॒रुत॒ श्चक्रि॒रे वृ॒धेमद॒न्ति वी॒रा वि॒दथे॑षु॒ घृष्व॑यः ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्रस्य) रुद्रके (सुनवः) पुत्र (सुदंससः) उत्तम कर्म करनेवाले (घृष्वयः) शत्रुओंको मर्दन करनेवाले (वीराः) मरुतोंने (रोदसी) द्यो भूमीको सुरक्षित रूपसे (चक्रिरे) बनाया (ये) जे मरुत (विदथेषु) यज्ञ आदि कर्मोंमें (वृधे) यजमानकी वृद्धिकेलिये (यामन्) चलते समय (जन यः न) स्त्रीयोंके समान (प्रशुम्भन्ते) सजते हुए (सप्तयः) शीघ्र गतिवाले (मरुतः) मरुत (हि) ही (मदन्ति) हर्षित होते हैं ॥ ऋग्० १ । ८५ । १ ॥

व्याख्याः—वायुके पुत्र उत्तम कर्म करनेवाले, शत्रुओंको मारनेवाले वीरोंने द्यौ पृथिवीको सुरक्षित रूपसे बनाया अर्थात् विचरनेका मार्ग तैयार किया ॥ जे मरुत यज्ञोंमें यजमानकी रक्षाके लिये चलते समय स्त्रीयोंके समान सजते हुए, शीघ्रगति वाले मरुतही प्रसंन होते हैं [रोदसी ॥ रुद्र पत्नी ॥ अर्थात् रुद्रसे सुरक्षित द्यावा भूमी है ॥ ऋग्० ५ । ५६ । ८ ॥ १० । ९२ । ११] क्षत्रस्यपत्नी रोदसी ॥ बलवान् रुद्रकी पालनकी हुई द्यो भूमी है ॥ तै० सं० ४ । ७ । १५ । १] रुद्रस्य पत्नी रोदसी ॥ रुद्रकी पत्नी स्वर्गभूमी है रुद्रकी सत्तासेही स्वर्गभूमी सत्तावान् है ॥

तै० सं० २। ६। १०। ४] वायुरूप रुद्रसेही स्वर्ग, अन्तरिक्ष, भूमीसुरक्षित हैं एक रुद्रही अग्नि वायु सूर्य सोम इन्द्र वरुण प्रजापति ब्रह्मा आदि स्वरूप है ॥ ३ ॥

द्यावो नस्तृभिं श्चितयन्त खादिनो व्य१ भ्रियान द्युतयन्त वृष्टयः ॥ रुद्रोयद्वो मरुतो रुक्म वक्षसो वृषा जनिपृश्न्याः शुक्रऊधनि ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(**मरुतः**) हेमरुतो (**वः**) तुमको (**स्तृभिः**) नक्षत्रोंके सहित (**पृश्न्याः**) अन्तरिक्षके (**शुक्रे**) निर्मल (**ऊधनि**) उँचे प्रदेशमें (**वृषा**) जलकी वर्षा करनेवाले (**रुद्रः**) वायुरूपइन्द्रने (**यत्**) जब (**जनि**) उत्पन्नकिया, तब (**द्यावोन**) द्योके समान (**चितयन्त**) प्रकाशितहोते हुए (**वृष्टयः**) वर्षा करनेवाले (**खादिनः**) हातोंमें कङ्कण धारण करनेवाले (**रूकम वक्षसः**) वक्ष स्थलपर सुवर्णहार धारणकरनेवाले (**अभ्रियान**) विजलीके सदृश (**विद्युतयन्त**) दमकतेहो ॥ ऋग्० २। ३४। २ ॥

व्याख्याः—हेमरुतो तुमको नक्षत्रोंसे युक्त अन्तरिक्षके शुद्ध उँचे स्थानमें वर्षारूप ऐश्वर्य्यवाले वायुरूप इन्द्रने जब उत्पन्न किया तब, द्योके समान प्रकाशित होते हुए, वर्षाकरनेवाले, हातोंमें कङ्कण धारणकरनेवाले हृदयपर सुवर्ण आभूषण धारण करनेवाले बिजलीके समान चमकनेवाले हो [**इन्द्रो वृषा ॥ प्रजापति वृषा ॥** इन्द्रही वृषा नामवाला है ॥ और प्रजापतिही वृषा है ॥ काठक सं० ३४। १] वायु देहधारी जे देवता अन्तरिक्ष चारी हैं वेहीमरुत हैं ॥ ४ ॥

अज्येष्ठासो अकनिष्ठास एते सं भ्रातरो वावृधुः सौभगाय ॥ युवा पिता स्वपा रुद्र एषां सुदुघा पृश्निः सुदिना मरुद्भ्यः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(अकनिष्ठासः) छोटेपनसे रहित (अज्येष्ठासः) बडे पनसे रहित (एते) ये (संभ्रातरः) एक स्वभाववाले भाई हैं (सौभगाय) सुन्दर भाग्यके लिये (सुअपः) उत्तमकर्म करनेवाले (ववृधुः) विजयकरके वृद्धि पानेवाले (एषां) इनका (पिता) पालक (युवा) तरुण (रूद्रः) रुद्रहै (मरुद्भ्यः) और मरूतोंके पोषणके लिये (सुदुघा) सुन्दर दूध देनेवालीं (सुदिना) उत्तमप्रकाश वाली (पृश्निः) नाना वर्णकी रश्मिवाली सूर्य मण्डल माता है ॥ ऋग्० ५ । ६० । ५ ॥

व्याख्याः—बडे छोटे भावसे रहित एकही जन्मवाले समान मरुत भाई हैं जगत्के सौभाग्य बढानेके लिये उत्तम कर्म करनेवाले और शत्रुओंको जीतकर वृद्धि पानेवाले इनमरुतोंका पालन करनेवाला नित्य तरुण रुद्रहै, और मरुतोंके पोषणके लिये सुन्दर मधुरूप दूध देनेवाली, उत्तम प्रकाशवाली नाना वर्णकी रश्मिवाली सूर्य मण्डल माता है [प्रश्निः ॥ सूर्यका नामही प्रश्नि है ॥ ऋग० ५ । ४७ । ३ ॥ ९ । ८४ । ३] असौवा आदित्यो देव मधु ॥ यह सूर्यही देवताओंका मधुरूप दूध है ॥ छां० उ० ३ । १ । १] अपः ॥ अपनाम कर्मका है ॥ मा० सं० २ । ६] वायु और सूर्य मण्डलका स्वामी रुद्र हैं ॥ ५ ॥

कई व्यक्ता नरः सनीळा रुद्रस्य मर्या अधास्वश्वाः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(व्यक्ताः) प्रगट (सनीळाः) एक समान स्थानवाले (सुअश्वाः) उत्तम घोडेकी सवारीवाले (ई) ये (कः) कौन हैं (अध) प्रश्नका उत्तर (रुद्रस्य) रुद्रके (मर्याः) पुत्र (नरः) व्यापक मरुत हैं ॥ ऋग्० ७ । ५६ । १ ॥

व्याख्याः—जे अधिदैव रूपसे मरुत हैं वेही अध्यात्म प्राणरूपसे दशेन्द्रियोंके सहित मन बुद्धिके आकारमें प्रकट हुए अपने २ प्रत्येक् कार्यको करनेमें एक समान स्थानवाले, स्थूल देह-मय घोडेकी सवारी करनेवाले, ये कौनहै इस प्रश्नका उत्तर रुद्रके पुत्र व्यापक मरुत हैं [वीर्यं वैमरुतः । अन्नं वैमरुतः ॥ कार्यात्मक- स्थूलशक्तिही मरुत है ॥ तै० सं० २ । १ । ५ । २] कार्यक्रियामय मरुतही रुद्रके पुत्र हैं ॥ ६ ॥

तं वृधन्तं मारुतं भ्राजदृष्टिं रुद्रस्यसूनुं हवसावि-वासे ॥ दिवःशर्धाय शुचयोमनीषा गिरयो नापउग्रा अस्पध्रन् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(दिवः) अन्तरिक्षके वासी (गिरयःन) मेघोंके समान (अपः) व्यापक (शुचयः) निर्मल (मनीषाः) बुद्धिमान् (उग्राः) महाबलवाले (अस्पध्रन्) शत्रुओंसे वैर रखनेवाले (वृधन्तं) विजयरूप वृद्धि पानेवाले (रुद्रस्य) रुद्रके (भ्राजदृष्टिं) तेजस्वी (मारुतं) गणसमुह (तं) उस (सूनुं) पुत्रको (शर्धाय) बलकी वृद्धिकेलिये (हवसा) स्तुतिके द्वारा (अविवासे) उपासना करता हूँ ॥ ऋग्० ६ । ६६ । ८ ॥

व्याख्याः—आकाशके नीवासी मेघोंके समान व्यापक शुद्ध अन्तःकरणवाले महा बलयुक्त शत्रुओंसे स्पर्धा करनेवाले रुद्रके पुत्र

विजयरूपसे वृद्धि पानेवाले तेजस्वी उस गणप्रमुखको मेरी शक्तिकी वृद्धि करनेके लिये स्तुतिके द्वारा उपासना करता हूँ ॥ ७ ॥

आ नो॑ रु॒द्रस्य॑ सू॒नवो॑ नमन्तामु॒द्या हू॒तासो॒ वस॒वोऽधृ॑ष्टाः यदी॒मर्भे॑ मह॒ति वा॑ हि॒तासो॑ बा॒धे म॒रुतो॒ आह्वा॑म दे॒वान् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्रस्य) रुद्रके (सुनवः) पुत्र (अधृष्टाः) निर्भय स्वभाववाले (महति) द्यौमें (बाधे) अन्तरिक्ष रूप युद्ध स्थलमें (अर्भे) दोनों लोकोंकी अपेक्षासे स्वल्प भूमीमें (हितासः) अवस्थितहुए (ईं) इन तीन लोकोंमें (वसवः) वसनेवाले (मरुतः) मरण धर्मसे रहित अमर (देवान्) देवताओंको (अद्य) इस उपासनाके स्थानमें (यत्) जब (आह्वाम) हम आवाहन करते हैं (वा) तब (नः) हमारे (आहुतासः) बुलानेपर (नमन्तां) आवें ॥ ऋग्० ६ । ५० । ५ ॥

व्याख्याः—रुद्रके पुत्र निर्भय स्वभाववाले द्युलोकमें, देवदैत्योंके युद्ध स्थलरूप अन्तरिक्षमें इन दोनों लोकोंकी अपेक्षासे भुलोक स्वल्प है, उस भूमीमें अवस्थित हुए इन तीन लोकोंमें वसनेवाले मरण धर्मसे रहित अमरदेवताओंको, इस यज्ञ शालामें जब हम उपासक आवाहन करते हैं, तब हमारे बुलाने पर आवें ॥ त्रिलोकीमें रुद्रगण वास करते हैं ॥ ८ ॥

ए॒षः स्तोमो॑ मारु॒तं शर्धो॑ रु॒द्रस्य॑ सू॒नूँ यु॑व॒न्यूँ रुदे॑श्याः ॥ कामो॑ रा॒ये हव॑ते मास्व॒स्त्युप॑स्तुहि॒ पृष॑दश्वाँ अ॒यासः॑ ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(एषः) यह (स्तोमः) स्तोत्र (मारुतं) मरुतसंबंधि (शर्धः) बलको बढानेवाला (अश्याः) होवे (युवन्यून्) मिश्रितहुए (पृषदश्वान्) विन्दुवाले हरिणके समान वर्णवाले अन्तरिक्षवासी (अयासः) आवाहन करने पर-आने वाले (रुद्रस्य) रुद्रके (सूनून्) पुत्रोंकी (उपअच्छ) निरंतर (स्तुहि) स्तुतिकर (कामः) हेमन (उत्) अति (स्वस्ति) आरोग्य (राये) अजा, मेष अश्व गौ आदि प्रजाके लिये (मा) मेरेको (इवते) संयुक्तकर ॥ ऋग्० ५।४२।१५॥

व्याख्याः—मैंने सम्पादन किया यह दिव्य स्तोत्र मरुतोंके बलरूप प्रसन्नताको करनेवाला होवे, परस्पर मिलेहुए, तारागणरूप नाना विन्दुओंवाले अन्तरिक्षवासी, आवाहन करनेपर आनेवाले रुद्रके पुत्रोंकी निरंतर शुद्ध स्तुतिकर, हे चंचल चित्त, अति आरोग्य सुख बकरी भेड़ घोडा गौ आदि प्रजाके लिये मेरेको प्रेरणाकर [पृश्नतूयोनिः। हिरणके समान नक्षत्र युक्त विन्दुवाला अन्तरिक्ष स्थानरूप पृश्नि है ॥ ऋग्० ५।४२।१] ब्रह्मणो बापषयोनिः ॥ भर्गरूप रुद्रका यह सूर्य मण्डल स्थान है। और वायुरूप रुद्रका अन्तरिक्ष स्थान है, अग्नि रुद्रका भूमी स्थान है ॥ काठक सं० १२।३] योनिर्वै प्रजापतिः ॥ यह सूर्यरूप प्रजापतिही योनि है ॥ मै० सं० २।५।१] यज्ञं सुकृतस्य योनिं ॥ यज्ञही उत्तम कर्म करनेका स्थान है ॥ तै० सं० ३।५।११] सुकृतयोनौ अग्निः ॥ उत्तम पुण्य करनेके स्थानमें अग्निरूप चिह्न स्थित है ॥ ऋ० ३।२९।८] गो अर्णसः ॥ दूधरूप जलका समुद्र सूर्य और अन्तरिक्ष है ॥ ऋग्० १।११२।१८] असुरस्य योनौ ॥ रुद्रके मण्डलरूप स्थानमें ॥ ऋग्० १०।३१।६] ऋतस्य योनौ ॥ रुद्रके स्थानरूप अन्तरि-

क्षमें ॥ ऋग्० १ । ७९ । ३] योनिःसदने ॥ सूर्य द्यौसमुद्रमें है ॥ ऋग० ७ । २५ । १] ऋतस्य योनौ सुकृतस्यलोके ॥ उत्तम कीये हुए पुण्य (ऋतस्य) यज्ञफलका भोगना द्युलोक स्थानमें होता है ॥ मै० सं० १ । १ । १२] इयं वै पृश्नि- वाग् ॥ माध्यमिका वाणीही पृश्नि है—अन्तरिक्ष ॥ मै० सं० २ । २ । ८] पृश्न्या वै मरुतो जाता ॥ वाचो वास्यावा पृथिव्या मारुताः सजाता ॥ पृश्निसेही मरुत प्रगट हुए ॥ अन्तरिक्ष वाणीसेही सोमरुत उत्पन्न हुए ॥ सूर्य और अन्तरिक्षका नाम पृश्नि है ॥ पृथिवी वाणी नाम अन्तरिक्षके हैं ॥ काठक सं० १० । ११] सप्त गणावै मरुतः ॥ सात भागमें उगनूपचा- सही मरुत हैं ॥ तै० सं० ५ । ५ । ८ । ७] पृश्निमातरः ॥ त्रिसप्तासो मरुतः ॥ तीन सप्तक भेदसे तीनों लोकोंमें व्यापक पृश्निमाता वाले मरुत पुत्र हैं ॥ अथर्वण १३ । १ । १०] त्रिवै सप्तसप्त मरुतः ॥ सात २ भेद युक्त तीन लोकमें विभक्त हुएही उगञ्चास मरुत हैं ॥ काठक सं० ३७ । ४] गणावै मरुतः ॥ गणही मरुत समुह है ॥ तै० सं० २ । ३ । १ । ५] येमरुत भी असंख्य है ॥ ९ ॥

यथा रुद्रस्य सूनवो दिवोवशन्त्यसुरस्य वेधसः ॥
युवानस्तथे दसत् ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(वेधसः) सर्वज्ञ (असुरस्य) सर्व उपाधि रहित (रूद्रस्य) रुद्रके (सूनवः) पुत्र (युवानः) तरुण (दिवः) अन्तरिक्षकी (यथा) जिसप्रकार (वशन्ति) रक्षा करते हैं (तथा) उसीप्रकार (इत्) हीभूमी रक्षा (असत्) करते हैं ॥ ऋग० ८ । २० । १७ ॥

व्याख्या:—सर्वज्ञ अधिष्ठान सर्व उपाधिसे शून्य रुद्रके पुत्र नित्य तरुणमरुत, आकाशकी जिस प्रकार रक्षा करते हैं, उसी प्रकारही भूमीकी रक्षा करते हैं [वरूणस्य मायया ॥ उपासकोंके दुःखोंको सुख करके आच्छादन करनेवाले रुद्रकी मायासे यह सब चराचर प्रगट हो रहा है ॥ ऋग्० १ । ७३ । ९] रुद्रही ब्रह्मा है ॥ १० ॥

मिमातु द्यौ रदितिर्वीतयेनः सन्दानु चित्रा उषसो यतन्ताम् ॥ आचुच्यवुर्दिव्यंकोशमेत ऋषे रुद्रस्य मरुतो गृणानाः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(द्यौः) स्वर्ग (नः) हमारी (वीतये) रक्षाकेलिये (मिमातु) सुख उत्पन्न करे (अदितिः) भूमी सुख उत्पन्नकरे (दानुचित्राः) विचित्र प्रकाशका दान करनेवालीं (उषसः) उषायें (संयतन्तां) भली प्रकारसे प्रकाशको फैलावें (ऋषेः) सर्व द्रष्टा अन्तर्य्यामी (रुद्रस्य) रुद्रके (एते) ये पुत्र (मरुतः) मरुत (गृणानाः) स्तुतियोंसे प्रसंन होनेवाले (दिव्यं) दिव्य जलयुक्त (कोशं) मेघको (आचुच्यवुः) सर्वत्र वर्षावें ॥ ऋग्० ५ । ५९ । ८ ॥

व्याख्या:—स्वर्ग और भूमी हमारी रक्षाके लिये सुख उत्पन्न करें, चित्र विचित्र प्रकाशके दान करनेवालीं उषायें उत्तम प्रकाशको फैलावें, सर्वदर्शी रुद्रके ये पुत्र मरुत देवता स्तुतियोंसे प्रसन्न होनेवाले आकाशीय जलयुक्त मेघको सर्वत्र वर्षावें ॥ ११ ॥

ताँ आ रुद्रस्य मीळ्हुषो विवासे कुविन्नं संन्तो मरुतः पुनर्नः ॥ यत्सस्वर्ता जिहीळिरे यदाविरवतदेनईमहे तुराणाम् ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(मिळ्हुषः) ज्ञानसिंचक (रुद्रस्य) रुद्रके (तान्) उनपुत्रोंकों (आविवासे) मैं उपासना करता हुँ (मरुतः) मरुत (पुनः) फिर (कुवित्) बहुवार (नः) हमारे (नंसन्ते) सामने आवें (सस्वर्ता) अप्रगट (यत्) जिससे (जिहीळिरे) क्रोधित हुए (यत्) जिस (आविः) प्रकाशित पापसे कोपायमान हुए (तुराणां) शीघ्र गतिवाले मरुतोंके (तत्) उस उभयात्मिक (एनः) पापको (अवईमहे) स्तुतिके द्वारा दूर करतेहुए क्षमा माँगते हैं ॥ ऋग्० ७।५८।५ ॥

व्याख्याः—मोक्ष ज्ञानके सिंचन करनेवाले सर्व दुःख हर्ता रुद्रके उन पुत्रोंको मैं उपासना करता हूँ मरुत फिर बारंबार हमारे सन्मुख आवें ॥ अप्रकाशित जिस पापसे मरुत क्रोधित हुए, और जिस प्रकाशित पापसे कोपायमान हुए, जल्दिसे चलनेवाले मरुतोंके उन दोनों पापोंको प्रार्थनाओंके द्वारा दूर करते हुए क्षमा माँगते हैं ॥ वे मरुत हम पर प्रसंन होवें ॥ १२ ॥

रुद्रस्य ये मीळ्हुषः सन्ति पुत्रायाँ श्चोनुदाधृविर्भरध्यै ॥ विदेहि माता महोमहीषासेत्पृश्निः सुभ्वे ३ गर्भमाधात् ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(मीढ्हुषः) दयालु (महः) महा (रुद्रस्य) रुद्रके (ये) जे (पुत्राः) पुत्र (सन्ति) हैं (यान्) जिनको (चोनु) सर्वत्रसे (दाधृविः) धारण (भरध्यै) पोषण करनेमें (विदेहि) सर्वज्ञ (माता) निर्माता (सा) सो (महा) बडीहै (सादूत्) सोही (पृश्निः) अदिति (सुभ्वे) उत्तम सुखकेलिये (गर्भं) सारको (आधात्) धारण करती है ॥ ऋग्० ६ । ६६ । ३ ॥

व्याख्याः—सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाले महारुद्रके जे पुत्र है—उन पुत्रोंको सर्वदा, धारण पोषण करनेमें सो सर्वज्ञ माता महा समर्थ है, सोही अदिति उत्तम सुखके लिये सारको धारण करती है [ऋतायद्गर्भमदितिर्भरध्यै ॥ सूर्यरूप अदिति प्राणियोंके उत्तम सुखके लिये जिस दिनरात अभिमानी मित्र वरुण रूप सारको धारण करती है ॥ ऋ० ६ । ६७ । ४] सूर्य मण्डल माता ॥ आदित्य, रुद्ररूप मरुत, वसु, देवता आदियोंको मधु-पानके द्वाराही तृप्त करती है ॥ ये सब देवता रुद्रके पुत्र हैं [अदितिः ॥ अदिति नाम सूर्यका है ॥ ऋग्० १ । १०७ । ७] पृश्निः ॥ पृश्नि नाम सूर्यका है ॥ ऋग्० ४ । ३ । १० ॥ ७ । १८ । १०] आदित्या वै सोमः ॥ सूर्यही सोम है ॥ ऊमारूप मण्डलके सहित चेतन रुद्रही सोमहै ॥ रुद्रके सहित सूर्य मण्डलही सोम है ॥ काठक सं० २६ । २] सोमाय ॥ उमया-सह वर्तत इति सोमः ॥ उमाके साथ स्थित यही सोमरूप रुद्र है ॥ सायण भाष्य, तै० सं० ४ । ५ । ८ । १] ऊमाः ॥ उमा नाम रक्षक पालन करनेवालेका है ॥ ऋग्० ५ । ५२ । १२ ॥ मा० सं० ३३ । ८०] सोमउमा—अवति, रक्षतीति उमा ॥ रक्षा करती है सोही उमा है ॥ सूर्यके विशेषण सोम,

विष्णु, योनि, अदिति, पृश्नि, ऊधा, यज्ञ, गौ, आदिहैं ॥ उमारूप विष्णु माता और रुद्ररूप सविता पिता है ॥ इस वेदके गुप्त रहस्यको जो जानता है सोही उपासक परम सुख पाता है ॥१३॥

घृषुं पावकं वनिनं विचर्षणिं रुद्रस्य सूनुं हवसा गृणीमसी ॥ रजस्तुरं तवसं मारुतं गणमृजीषिणं वृषणं सश्चतश्रिये ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्रस्य) रुद्रके (सूनुं) कुमार (पावकं) निर्मल (वनिनं) वनवासी मुनियोंसे प्रेम करनेवाला (तवसं) अतिज्ञानी प्रवृद्ध (विचर्षणिं) विशेषकर्म करनेवाला (ऋजीषिणं) शीघ्र सामने आनेवाला (घृषुं) शत्रुओंको मारनेवाला (रजस्तुरं) पाप नाश करनेवाला (वृषणं) कामना पूर्ण करने वाला (मारूतं) मरुत सम्बंधि (गणं) समुहको (श्रिये) आश्रयके लिये (हवसा) आवाहनके सहित (सश्चत) तुम सेवन करो (गृणीमसि) मैं प्रार्थना करता हुँ ॥ ऋग्० १ । ६४ । १२ ॥

व्याख्याः—रुद्रका पुत्र पवित्र वनवासी मुनीयोंसे प्रेम करने वाला अतिज्ञानी प्रवृद्ध विशेष कर्मको करनेवाला, उपासकोंकी आर्तनाद सुनकर तुरंत सन्मुख आनेवाला, शत्रुओंको मारनेवाला, पाप नाश करनेवाला, उपासकोंकी मनोरथ पूर्ण करनेवाला, मरुत सम्वन्धि समुदायको आश्रमके लिये आवाहनके सहित हवियोंसे तुम ऋत्विक् उपासना करो मैं यजमान प्रार्थना करता हूँ [त्रिः षष्टि स्त्वा मरुतः ॥ तीनसो साठ दिनके देवताही मरुत हैं ॥ ऋग्० ८ । ८५ । ८] ऋतवो वै मरुतः ॥ वसंत ऋतुरूपही

मरुत हैं ॥ मै० सं० ४ । ६ । ८] सप्तर्तवः ॥ सात ऋतु हैं ॥ अधिक मासकी सातमी ऋतु है ॥ अथर्वण ८ । ९ । १८] **मरुतो वै देवानांविशः** ॥ मरुतही वारा आदित्योंकी प्रजा हैं ॥ तै० सं० ५ । ८ । ७] **आदित्या वै देवविशः** ॥ वारा आदित्यही रुद्रकी प्रजा हैं ॥ काठक सं० ११ । ६] **द्वादश वै मासाः सम्वत्सरस्यैत आदित्याः** ॥ वर्षके ये बारा महिनाही आदित्य हैं ॥ बृ० उ० ३ । ९ । ५] **मरुतः ॥ आदित्या उत्पन्ना रुद्र पुत्राः** ॥ रुद्रके पुत्र उत्पन्न हुए आदित्य हैं ॥ सायण भाष्य अथर्वण १९ । ५६ । ३] **पशवो वै मरुतः** ॥ देखनेवालेही आदित्य हैं ॥ मै० सं० १ । १० । १५] **पशवोवा आदित्याः** ॥ पशुही आदित्य हैं ॥ मै० सं० ४ । ६ । ९] सब देवताओंका विशेषण मरुत हैं, और मरुतोंके विशेषण सब देवता हैं ॥ वसु, रुद्र, आदित्य सबही रुद्रकी महिमा हैं [**प्राणा वै विश्वेदेवाः** ॥ अध्यात्मरूप मनुष्यही अधिदैव स्वरूप सब देवता हैं ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३१ । २] सर्वत्र एक रुद्रही अपनी मायासे ओतप्रोत हो रहा है ॥ कार्य कारणकी उपाधिसेही अनेक नाम हैं ॥ १४ ॥

सोमा रुद्रा धारयैथा मसुर्यं१ प्रवामिष्टयोरमश्नुवन्तु ॥ दमेदमे सप्तरत्ना दधाना शन्नो भूतंद्विपदेशं चतुष्पदे ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(**सोमारुद्रा**) हेउमा महेश्वर (**असुर्यं**) बलको (**दमेदमे**) प्रत्येक् घरोंमें (**धारयेथां**) स्थापन करो (**इष्टयः**) यज्ञ (**अरं**) पूर्ण (**प्रअश्नुवन्तु**) अत्यन्त व्याप्त

होवें (वां) तुम दोनों (सप्तरत्ना) सात उत्तम लोकोंको (दधान) धारण करते हुए (नः) हमारे (द्विपदे) दो चरणवाले मनुष्योंके लिये (शं) सुखरूप (भूतं) होवो (चतुष्पदे चार पगवाले पशुओंके लिये (शं) सुखप्रद होवो ॥ ऋग्० ६ । ७४ । १ ॥

व्याख्याः—हे उमा महेश्वर प्रत्येक् घरोंमें बलरूप ऐश्वर्यको स्थापनकरो, जिस धनके द्वारा ग्राम २ में पूर्ण विधिसे यज्ञ व्याप्त-होवें, तुम दोनों सात लोकोंको धारण करते हुए ॥ हमारे दो पगवाले चार पगवाले मनुष्य और पशुओंके लिये, अत्यन्त सुख-रूप होवो [दाम ॥ दाम नाम पापका है दारिद्ररूप पाप भरा है जिस घरमें सोही दम नाम वाला घर है ॥ अथर्वण ६ । ६३ । १] सूर्यरूपसे सात किरणोंको और ब्रह्मा रूपसे सात लोकोंको धारण करते हैं ॥ १५ ॥

सोमारुद्रा विवृहतं विषूचीममीवा यानो गयमाविवेश ॥ आरेबाधेथां निर्ऋतिं पराचैरस्मे भद्रासौश्रवसानिसन्तु ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(सोमारुद्रा) हेसोमरुद्र (या) जो (अमीवा) रोग (नः) हमारे (गयं) घरमें (आविवेश) प्रविष्टहुआहै (विषूची) महा मारी आदिरोगको (विवृहतं) नष्टकरो (निऋतिं) दरिद्रताकों (पराचैः) पराङ्मुख (आरे) दूर (बाधेथां) करो (अस्मे) हमको (भद्रा) पशु धनमय सुख (सौ श्रवसानि) वस्त्र अन्न (सन्तु) प्राप्त होवें ॥ ॥ ऋग्० ६ । ७४ । २ ॥

व्याख्याः—हे सोमरुद्र तुम दोनों मेरी प्रार्थनाको सुनो जो रोग हमारे घरमें घुस गया है उसमहामारी आदि रोगोंको नाश करो, और निर्धनताको हमारे घरसे पराङ्मुख करके दूर निकालो, हमको पशु धनमय सुख, अन्न वस्त्र आदि प्राप्त होवें ऐसी दयाकरो ॥ १६ ॥

सोमारुद्रा युवमेतान्यस्मे विश्वा तनूषु भेषजानि धत्तम् ॥ अवस्यतं मुञ्चतं यन्नो अस्तितनूषु बद्धं कृतमेनो अस्मत् ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(सोमारुद्रा) हे सोमरुद्र (युव) तुम दोनों (अस्मे) हमारे (तनूषु) अंगोमें (एतानि) इन (विश्वा) सब (भेषजानि) सुखोंको (धत्तं) स्थापन करो (कृतं) किया (यत्) जो (एनः) पाप (नः) हमारे (तनूषु) अवयवोंमे (बद्धं) लगा (अस्ति) है उस पापको (अवस्यतं) निकालो (अस्मत्) हमसे (मुञ्चतं) छुडावो ॥ ऋग्० ६ । ७४ । ३ ॥

व्याख्याः—हे उमा महेश्वर तुम दोनों हमारे देहके अंगोमें इन सब सुखोंको स्थापन करो ॥ किया हुआ जो पाप हमारे अवयवरूप प्रजाओंमे लगाहुआ है, उस पापको शिथिल करो हमारी प्रजासे छुडाओ ॥ १७ ॥

तिग्मा युधौ तिग्महेती सुशेवौ सोमारुद्रा विहसुमृळतंनः ॥ प्रनो मुञ्चतं वरुणस्य पाशाद्गोपायतंनः सुमनस्यमाना ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(सोमारुद्रौ) हे उमारुद्र (तिग्मायुधौ) तीक्ष्ण धनुषवाले (तिग्महेती) तीक्ष्ण वाणोंवाले (सुशेवौ) उत्तम सुख देनेवाले (सुमनस्यमाना) सुन्दर मनवाले तुम दोनों (इह) इस लोकमें (नः) हमको (सुमृळतं) उत्तम सुख करो (नः) हमको (वरुणस्य) वरुणकी (पाशात्) फाँशीसे (प्रमुञ्चतं) अत्यन्त मुक्त करो (नः) हमको (गोपायतं) रक्षाकरो ॥ ऋग० ६ । ७४ । ५ ॥

व्याख्याः—हे उमारुद्र तुम दोनों शत्रुओंको जीतने वाले घोर धनुष वाणोंको धारण करनेवाले हो, उत्तम सुख स्वरूपहो और उत्तम सुख देनेवाले, सुन्दर मनवाले तुम इन लोकमें हमको सुन्दर सुख करो, हमको प्रलय वारक सृष्टिकारक रुद्रकी मायाके वन्धनसे निर्मुक्त करो और जबतक देह रहे तबतक हमारा पालन करो ॥ महेश्वरकी विकारी माया बन्धनका हेतु है, और निर्विकारीही मोक्षका हेतु है ॥ उमारुद्रकी कृपा होनाही रुद्रकी दैवी मायाका दूर होना है ॥ १८ ॥

तवश्रिये मरुतोमर्जयन्त रुद्रयत्ते जनिमचारु चित्रम् ॥ पदंयद्विष्णोरुपमं निधायि तेनपासी गुह्यं नामगोनाम् ॥ १९ ॥

अन्वार्थः—(रुद्र) हेरुद्र (तव) आपके (श्रिये) सौंदर्य्यके लिये (गोनां) मेघोंको (मरुतः) मरुत (मर्जयन्त) मार्जन करते हैं (ते) आपका (यत्) जो (चारु) सुन्दर (चित्रं) आश्चर्यकारक (जनिम) जन्महोता है (विष्णोः) सूर्यके (उपम) समान (यत्) जो (नाम) विद्युत् नामवाला

(पदं) स्वरूप (गुह्यं) अदृश्य रूपमें (निधायि) निरंतर स्थित है (तेन) उससे (पासि) हमारी रक्षा करो ॥ ऋग्० ५ । ३ । ३ ॥

व्याख्या:—हे रुद्रात्मक अग्ने आपके सौन्दर्य्यके लिये मेघोंके जलोंको मरुत शुद्ध करते हैं आपका जो सुन्दर अद्भुत विद्युतरूप जन्महोता है सूर्यके समान जो विद्युत् नामवाला स्वरूप, अदृश्यरूपमें निरंतर स्थित है उस विद्युतसे हमारी रक्षा करो ॥ १९ ॥

त्वम॑ग्ने रु॒द्रो असु॑रो म॒हो दि॒वस्त्वं शर्धो॒ मारु॑तं पृ॒क्ष ई॑शिषे ॥ त्वं वातै॑ररु॒णैर्या॑सि शं॒गयस्त्वं पू॒षा वि॑ध॒तः पा॒सि नु त्मनः ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(अग्ने) हे व्यापकदेव (त्वं) तुम (महः) महा (दिवः) द्युलोकका वासी (असुरः) बलवान् (रुद्रः) रुद्रहो (त्वं) तुम (मारुतं) प्राणसम्बन्धि (शर्धः) बलको धारण करनेवाले (पृक्षः) अन्नके (ईशिषे) स्वामीहो (वातैः) बडे वेगवाले (अरुणैः) लाल वर्णके घोड़ोंसे जुते हुए रथमें बैठकर (त्वं) तुम (यासि) आतेहो (शंगयः) सुख चाहनेवाले (विधतः) उपासकका (त्वं) तुम (पूषा) पोषण करनेवाले (त्मनः) अपने बलसे (नु) ही (पासि) रक्षा करते हो ॥ ऋग्० २ । १ । ६ ॥

व्याख्या:—हे सर्व व्यापक देव तुम महा द्युलोकके वासी बलवान् रुद्रहो, तुम प्राण संबन्धि बलको धारण करनेवाले अन्नके स्वामीहो ॥ बडे वेगवाले लाल घोड़ोंसे जुतेहूए रथमें बैठकर तुम आतेहो, सुख चाहनेवाले उपासकका तुम पोषण करनेवाले अपने बलसेही रक्षा करते हो ॥ २० ॥

आवो राजानमध्वरस्य रुद्रं होतारं सत्ययजं रोदस्योः अग्निं पुरा तनयित्नो रचित्ताद्धिरण्यरूपमवसे कृणुध्वम् ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(रोदस्योः) द्यावा भूमीके मध्यमें (सत्ययजं) प्रत्यक्ष पूज्य (हिरण्यरूपं) आदित्य मण्डल देहधारी (अध्वरस्य) यज्ञका (राजानं) स्वामी (होतारं) हवनकर्ता (अग्नि) व्यापक (रुद्रं) अन्तर्यामीको (तनयित्नः) वज्रके समान भयंकर (रचितात्) मरणसे (पुरा) पहिले (अवसे) रक्षाकेलिये (वः) तुम सव मनुष्य (आकृणुध्वं) उपासनासे प्रसंन करो ॥ ऋग्० ४ । ३ । १ ॥

व्याख्याः—स्वर्ग भूमीके बीचमें प्रत्यक्ष पूजनीय सूर्य मण्डल देहधारी यज्ञका स्वामी सम्वत्सररूप धनुषसे बारामासरूप बाणोंको छोडकर प्राणियोंका संहाररूप हवनकर्त्ता सर्व व्यापक रुद्रको, वज्रपातके समान भयानक मरणसे प्रथम अपना उद्धार करनेकेलिये तुम सव मनुष्य कर्म उपासना ज्ञानकेद्वारा पसंनता पूर्वक प्राप्त करो [दर्शत्तं वपुर्दिवः ॥ स्वर्गकावासी दर्शनीय मण्डल देहधारी ॥ ऋग० ७ । ६६ । १४] जगतस्तस्थुषस्पतिं ॥ चराचर जगत्के स्वामीको ॥ ऋग्० ७ । ६६ । १४ ॥ रुद्रो वा अग्निः ॥ रुद्रही अग्नि नामवाला है ॥ काठक सं. २६ । २] अग्निं रुद्रं ॥ अग्निही रुद्र है ॥ ऋग्० ३ । २ । ५] सर्व व्यापकही रुद्र है ॥२१॥

स्तोमं वो अद्य रुद्राय शिक्वसे क्षयद्वीराय नमसादिदिष्टन ॥ येभिः शिवः स्ववाँ एवयावभिर्दिवः सिषक्ति स्वयशा निकामभिः ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(एवयावभिः) घोडोंके द्वारा आनेवाले (येभिः) जिन मरुतोंके सहित (स्ववान्) स्वतंत्र (स्वयशाः) अपनी महिमासे व्यापक कीर्तिवाला (शिवः) सुख स्वरूप रुद्र (दिवः) स्वर्गसेही उपासकोंको (सिशक्ति) सेवन करता है (वः) हे मनुष्यो तुम अद्य इस मनुष्य देहमें (निकामभिः) नियत कामनावाले मरुतोंके सहित (क्षयद्वीराय) शत्रुओंको नाशकरनेवाले (शिक्कसे) रणमें समर्थ (रुद्राय) रुद्रके प्रति (नमसा) नमस्कारके सहित (स्तोमं) स्तोत्रको (दिदिष्टन) अर्पण करो ॥ ऋग्० १० । ९२ । ९॥

व्याख्याः—घोडारूप रश्मियोंके द्वारा आनेवाले जिन मरुतोंके सहित स्वतंत्र अपनी महिमासे व्यापक महा यशवाला परम सुख स्वरूप रुद्र स्वर्गसेही उपासकोंको पालन करता है हे मनुष्यो तुम इस दुर्लभ मनुष्य शरीरमेंही, नियत कामनावाले मरुतोंके सहित शत्रुओंको नाश करनेवाले, युद्धमें समर्थ रुद्रको प्रसंन करनेकेलिये नमस्कारके सहित वैदिक स्तुतियोंको भेट करो ॥ महा प्रलयके समय सब प्राणि जिसमें सुखपूर्वक सोते हैं ॥ और ज्ञानी सर्वदा शिवस्वरूप होकर रुद्रमय हो जाता हैं, सोही रुद्र शिव विशेषणवाला है ॥ २२ ॥

इमा रुद्राय स्थिर धन्वने गिरः क्षिप्रेषवे देवाय स्वधाव्ने ॥ अषाळ्हाय सहमानाय वेधसे तिग्मायुधाय भरता शृणोतुनः ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(स्थिर धन्वने) दृढ धनुषधारी (क्षिप्रेषवे) शीघ्र बाण चलानेवाले (स्वधाव्ने) सर्वशक्ति सम्पन्न

अषाह्ळाय) किसीसे भी तिरस्कार न पानेवाला (सहमानाय) शत्रुओंके सन्मुख जानेवाला (वेधसे) जगत्का विधाता (तिग्म आयुधाय) भयंकर त्रिशूलधारी (रुद्राय) रुद्र (देवाय) देवकी प्रसंनताके लिये हे होताओ तुम (इमाः) इन (गिरः) स्तुतियोंको (भरत) सम्पादन करो सो रुद्र (नः) हमारी प्रार्थनाको (शृणोतु) सुने ॥ ऋग्० ७ । ४६ । १ ॥

व्याख्याः—मजबूत धनुषधारी–जल्दि वाणोंको फेंकनेवाला सर्वशक्ति सम्पन्न स्वतंत्र किसीसे नहारनेवाला, शत्रुदलके सामने जाकर युद्ध करनेवाला विश्वकर्ता शत्रुओंका भय उत्पन्न करनेवाला त्रिशूलको धारण करनेवाला रुद्रदेवको प्रसंन करनेके निमित हे उपासको तुम इन स्तुतियोंको सम्पादन करो वह रुद्र हमारी प्रार्थनाको सुने [अषाह्ळमुग्रं पृतनासु ॥ सेनाओंके मध्यमें विजयरूप दण्डधारी रुद्रको भजो ॥ ऋग्० ८ । ५९ । ४] रुद्रसे बलीष्ठ कोई नहीं है ॥ २३ ॥

साहिक्षयेण क्षम्यस्य जन्मनः साम्राज्येन दिव्यस्य चेतति ॥ अवन्नवन्ती रुपनो दुरश्चरा नमीवो रुद्र जासुनो भव ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(सः) सोरुद्र (हि) निश्चय (क्षम्यस्य) भूमीका (जन्मनः) ऊँचा भाग जन्मधारी कैलासमें (क्षयेण) वासकरके (साम्राज्येन) उत्तमैश्वर्यसे सम्पन्न है (दिव्यस्य) मायिक देहधारी रुद्रका स्वरूप (चेतति) प्रकाशित है (रुद्र) हे गिरिवासीदेव (त्वं) तुम (नः) हमारी प्रजाको (अवन्)

पालन करते हुए (दुरः) घरके (उपचर) समीप विचरो (नः) हमारीप्रजा आपको (अवन्तीः) हवि नमस्कार जल आदिसे तर्पण करती हैं (जासु) प्रजाओंमें जे रोग भरे हैं उनको नाश करके (अनमीवः) रोग रहितपना करनेवाला (भव) हो ॥ ऋग्० ७ । ४२ । २ ॥

व्याख्याः—निश्चय जो रुद्र ब्रह्मलोकमें वसनेवाला है सोही, भूमीके उच्च भागमय कैलासमें निवास करनेवाला सर्वैश्वर्य सम्पन्न मनुष्यके देहसे रहित दिव्य तेजोमय देहधारी प्रकाशित है, कैलासमें वासकरनाही जन्म धारण करना है ॥ हे कैलासवासी रुद्र तुम हमारी प्रजाओंको पालन करते हुए घरके समीप यज्ञशालामें विचरो, हमारी प्रजा आपको हवि नमस्कारके सहित जलसे तर्पण करती हैं उन प्रजाओंमें जे रोग भरे हैं, उनको नाश करके आरोग्यपना प्रदान करनेवाले हो ॥ २४ ॥

याते दिद्युदवसृष्टा दिवस्परि क्ष्मया चरति परिसा वृणक्तु नः ॥ सहस्रंते स्वपिवात भेषजामानस्तोके पुतनयेपुरीरिषः ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(ते) हे रुद्र आपकी विद्युत् संवन्धि शक्ति (दिवः) अन्तरिक्षसे (अवसृष्टा) छोडीहुई (या) जो (दिद्युत्) वज्ररूपशस्त्र (क्ष्मया) भूमीमें (परि) सर्वत्र (चरति) विचरती है (सा) सो विद्युत् (नः) हमको (परिवृणक्तु) सर्वत्रसे परित्यागकरे (स्वपिवात) हे प्राण शक्तिके आधार (ते) आपकी (सहस्रं) वहुत (भेषजा) सुखप्रद औषधि हैं उनको (नः) हमारे (तोकेषु) अतिशिशु-

ओंमें (तनये) कुमार अवस्थावालोंमें स्थापनकरों और (रीरिषः) हिंसारूप रोगको मत फैलाओ ॥ ऋग्० ७ । ४६ । ३ ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपकी विजली संवंधि शक्ति आकाशसे छोडीहुई जो वज्रमयशस्त्रपृथिवीके संग सर्वत्र विचरती है, सोविजली हमको सर्वत्रसे त्यागे, हे प्राणशक्तिके प्रेरक आधार महेश्वर, आपके पास असंख्य औषधि हैं उनको हमारे छोटे वडे पुत्र पौत्रोंमें स्थापनकरों, और दुष्टोंको दमन करनेकेलिये हिंसक शस्त्र हैं उनको रोगरूपसे मत फैलाओ ॥ २५ ॥

मानोंवधीरुद्रमापराद्मामतें भूमप्रसितौ हीळितस्यं ॥ आनों भज वर्हिषि जीवशंसे यूयंपात स्वस्तिभिःसदांनः ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हेरुद्र (नः) हमको (मावधी) मतमार (मापरादाः) त्यागमतकर (ते) आपके (हीळितस्य) क्रोधके (प्रसितौ) मायारूप बन्धनमें (माभूम) हम नहोवें (जीवशंसे) जीवोंसे पूजनीय (बर्हिषि) यज्ञमें (नः) हमको (आभज) भागीदार करो (यूयं) हे रुद्र तुम आदि सब देवताओ (नः) हमको (स्वस्तिभिः) सुखोंसे (सदा) सर्वदा (पात) पालन करो ॥ ऋग्० ७ । ४६ । ४ ॥

व्याख्याः—हे रुद्र हमारा नाश मतकर और हमारा त्यागभी मतकर, आपके मायारूप कोपके बन्धनमें हम उपासक नफसें, सब मनुष्योंके द्वारा पूजनीय यज्ञमें हमको भागिदार बनाओ, हे रुद्र तुम आदि सब देवताओ, हमको उत्तम सुखोंसे सर्वदा पालन करो ॥ २६ ॥

इमा रुद्रायतवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरा महे-
मतीः ॥ यथा शमसद्विपदे चतुष्पदे चतुष्पदे विश्वं
पुष्टंग्रामे अस्मिन्ननातुरं ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्राय) सर्व दुःख नाशकरुद्र, (क्षयद्वीराय) वीरोंके आधारस्वामी (कपर्द्दिने) जटामुकुटधारी (तवसे) अति ज्ञानीगुरुके प्रति (इमाः) इन (मतीः) स्तुतिमय वचनोंको (प्रभरामहे) अर्पण करते हैं (यथा) जिस प्रकार (द्विपदे) दो पगवाले मनुष्यकेलिये (चतुष्पदे) चारपगवाले पशुकेलिये (शं) सुख (असत्) होवे उसीप्रकार (अस्मिन्) इस वर्तमान (ग्रामे) गाँममें (विश्वं) सब प्राणिमात्र (अनातुरं) रोगरहित (पुष्टं) हृष्ट पुष्ट होवें ॥ ऋग्० १ । ११४ । १ ॥

व्याख्याः—सबपापके मूलका नाशकरुद्र, वीरोंका आधार स्वरूप, जटाधारी, अतिज्ञानी महागुरुकेलिये-इन स्तुतियोंको हम सम्पादन करते हैं ॥ जिसप्रकार दो पगवाले मनुष्यकेलिये और चार पगवाले पशुमात्रकेलिये सुख होवे, उसीप्रकार इस वर्तमान ग्राममें समस्त प्राणिमात्र रोगरहित हृष्ट पुष्ट होवें ॥ यही रुद्रसे हमारी प्रार्थना है ॥ २७ ॥

मृळानो रुद्रोतनो मयस्कृधि क्षयद्वीराय नमसा विधे-
मते ॥ यच्छंचयोश्च मनुरायेजे पिता तदश्याम
तवरुद्र प्रणीतिषु ॥ २८ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हेरुद्र (नः) हमारेलिये (मृळ) सुखरूपहो (उत) और (नः) हमारेको (मयः) सुख

(कृधि) करो (क्षयद्वीराय) ऐश्वर्ययुक्त मरुतोंके पालक (ते) आपके प्रति (नमसा) नमस्कारके सहितहवि (विधेम) हम अर्पण करते हैं (पितामनुः) उत्पन्नकर्त्ता मनुने अपनी प्रजाओंके लिये (योः) उभयात्मक भयको दूरकर (यत्) जिस (शं) सुखको (आयेजे) देवसे प्राप्तकिया (तत्) उस सुखको (तव) आपके (प्रणीतिषु) बताये हुए वेदमंत्रोंमेंही (रुद्र) हेरुद्र (अश्याम) हम प्राप्तकरें ॥ ऋग्० १ । ११४ । २ ॥

व्याख्याः—हे रुद्रहमारे ऊपर प्रसंनहो और हमारेलिये सुख करो, ऐश्वर्य्य युक्त देवताओंके पालक आपके प्रति नमस्कारके सहित हविको हम भेट करते हैं ॥ प्रजाका उत्पन्न कर्त्ता मनु-पिताने अपनी प्रजाके सुखके निमित्त दोनों प्रकारके रोगोंको शमन करनेके लिये रुद्रसे जिससुखको सम्पादनकिया, हे रुद्र आपके प्रदर्शित वेदोंमें उस सुखको हमभी सम्पादन करें ॥ २८ ॥

अश्यामते सुमतिंदेव यज्ययाक्षयद्वीरस्य तवरुद्र मीढ्वः ॥ सुम्नायं निद्विशो अस्माक माचरारिष्ट वीरा जुहावमते हविः ॥ २९ ॥

अन्वयार्थः—(मीढ्वः) हे कामनाओंको पूर्ण करनेवाले (क्षयद्वीरस्य) देवताओंके आधार (ते) आपकी (सुमतिं) उत्तम बुद्धिको (देवयज्यया) देवयज्ञकेद्वारा (आश्याम) हमप्राप्त करें (रुद्र) हे रुद्रतुम (अस्माकं) हमारी (विशः) प्रजाओंको (सुम्नयन्) सुखी करतेहुए (इत्) ही (आचर) आओ (ते) आपकेलिये (अरिष्टवीराः) अंगहीनतासे रहित–

शुभ अंगवाले कर्ममें कुशलऋत्विजोंके संग (हविः) हविको (तव) आपके उपासक (जुहोम) हम स्वाहाकार करते हैं ॥ ऋग्० १ । ११४ । ३ ॥

व्याख्या:—हे नित्य तरुण कामनाओंको पूर्ण करनेवाले देवताओंके आधार आपकी उत्तम बुद्धिको रुद्रयज्ञके द्वाराही हम सम्पादन करें, हे रुद्र तुम हमारी प्रजाओंको सुखी करते हुए आवो, आपकेलिये हविको काणा, पङ्गुआदि अंगहीन ऋत्विक् जनोंसे रहित, कर्मकुशलपूर्ण अवयववाले होताओंके सहित आपके उपासक हम स्वाहाकार करते हैं [कुनखीश्यावदति परिवित्तः परिविविदाने ॥ अग्रेदिधिषुर्दिधिषूपतौ ॥ वीरहा ब्रह्महणि ॥ ब्रह्महाभ्रूणहनि ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४७ । ७] यत्कीटावपन्नेन जुहुयाद् प्रजाअपशुर्यजमानः स्यात् ॥ यदनायतने निनयेदनायतनः स्यात् ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४८ । १६] काले पीले नखदाँतवाला, काणा लूला ज्येष्ठ भाई बिवाह रहित और छोटा भाईका विवाह हुआ, और अग्निहोत्र करता है सोही परिवेता है ॥ भाईकी स्त्रीसे लगाहुआही दिधिषु पति हैं ॥ वैदिक कर्मरहितसे दान लेनाही परिविविदान है ॥ गोत्रकी कन्यासे गमन करनेवाला, प्रजा रक्षक राजाका नाश करनेवाला, वैदिक अनुष्ठान करनेवालेका वधही ब्रह्महत्या है ॥ गर्भपाती, नित्य वैश्वदेव त्यागी ये सब यज्ञमें वर्जनीय है ॥ कीट आदि जन्तुओंसे दूषित हुआ हविद्रव्यसे हवन करनेसे यजमान पशुप्रजा हीन होता है ॥ अशुद्ध मनुष्योंसे व्यासही, अपवित्र स्थान है ॥ उस स्थानमें यज्ञ करनेवाला स्वर्गसे रहित नरकमें जाता है ॥ वैदिक उपासनासे रहित और यजमानसे प्रेम नहीं है ऐसे होताओंको यज्ञमें निमंत्रण न करे ॥ २९ ॥

त्वेषंव॒यं रु॒द्रंय॑ज्ञ॒साधं॑ वं॒कुंक॒विमव॑से॒ निह्वयामहे ॥ आ॒रे अ॒स्मद्दैव्यं॒ हेळो॑ अस्य तुसु॒मतिमि॒द्व॒यम॒स्या वृ॒णीमहे ॥ ३० ॥

अन्वयार्थः—(वयं) हम (अवसे) रक्षाकेलिये (त्वेषं) महा (रुद्रं) रुद्रको (निह्वयामहे) निरंतर आवाहन करते हैं (यज्ञसाधं) यज्ञ रुद्रसेही पूर्ण होती है यज्ञसाधक (कविं) सर्वज्ञ (वंकुं) स्वेच्छारूपसे टेडीचाल चलनेवाला रुद्र (दैव्यं) देवसम्बन्धि (हेळः) कोपको (अस्मात्) हमसे (आरे) दूर (अस्यतु) फेंके (अस्य) इसरुद्रकी (सुमतिं) दयारूप बुद्धिको (इत) ही (वयं) हम (आवृणीमहे) सर्वत्रसे चाहते हैं ॥ ऋग्० १ । ११४ । ४ ॥

व्याख्याः—हम रक्षाकेलिये महादेवको निरंतर बुलाते हैं, सो रुद्र कैसा है ॥ सबका अंन्तर्य्यामी स्वतंत्रता पूर्वक स्वरूप धारण करके विचरनेवाला यज्ञ रुद्रसेही पूर्ण होता है, देवोंने रुद्रको निकालदिया जब यज्ञके भागको नष्ट करदिया, तब देवताओंने रुद्रको भाग देकर प्रसन्न किया ॥ फिर यज्ञ पूर्ण हुआ ॥ सो रुद्र देव सम्बंधि क्रोधको हमसे दूर देशमें फेंके इस रुद्रकी कृपामयी सुन्दर बुद्धिकोही हम उपासक सर्वदा चाहते हैं [स्विष्ट वैनं इदं भविष्यति ॥ देवोंने बहुत अच्छा कहकर, इस रुद्रकाही यहस्विष्ट कृत भाग होगा ॥ तै० सं० २ । ६ । ८] रुद्रके स्वरूपको देवता भी नहीं जानते तो तर्क बुद्धिवाले कैसे जान सकते हैं ॥ उसको उपासकही प्राप्त करते हैं ॥ ३० ॥

दिवो वराह मरुषं कपर्दिनं त्वेषं रूपं नमसा निह्वया महे ॥ हस्ते बिभ्रद्भेषजा वार्य्याणि शर्म्म वर्म्मच्छर्दि रस्मभ्यं यंसत् ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—(दिवः) द्युलोकका वासी (अरुषं) प्रकाशमान् (कपर्दिनं) किरणरूप जटाधारी (वराहं) उत्तम जलका आहार करनेवाला सूर्य्य (रूपं) वेदान्तकेद्वारा निरूपण करने योग्य (त्वेषं) महा तेजस्वी रुद्रको (नमसा) नमस्कारके द्वारा (निह्वयामहे) हम निरंतर आवाहन करते हैं (वार्य्याणि) रमणीय (भेषजा) औषधियोंको (हस्ते) हातमें (बिभ्रत्) धारण करताहुआ (अस्मभ्यं) हमारेलिये (शर्म) आरोग्य, और (वर्म) आयुध निवारण कवचको (छर्दिः) निर्भय स्थानको (यंसत्) देवे ॥ ऋग्० १ । ११४ । ५ ॥

व्याख्याः—द्युलोकवासी उपद्रव रहित प्रकाशमान् रश्मिमय जटाधारी समुद्र आदिके क्षारको त्यागकर उत्तम जलका किरणों द्वारा आहार करनेवाला, वेदान्तसे वर्णन करने योग्य महा तेजस्वी रुद्रको नमस्कारके सहित हम निरंतर बुलाते हैं ॥ प्राप्त करने योग्य औषधियोंको हातमें धारण करता हुआ, हमारेलिये आरोग्य और शत्रुओके शस्त्र निवारण करनेका अभेद्य कवचको, तथा निर्भय स्थानको देवे [त्वेषं ॥ त्वेषनाम महान्का वाचक है ॥ मा० सं० ३४ । ३२] अरुषं ॥ हिंसारहित गतिशील ॥ ऋग्० १ । ६ । १ ॥ अथर्वण १० । २६ । ४] अरुषः ॥ प्रकाशमान् ॥ ऋग० ९ । २४ । ४] अरुष नाम सूर्यका है [हरिकेशः सूर्यरश्मिः ॥ सुवर्ण रंगवाले केशही सूर्यकी किरण हैं ॥ काटक सं० २७ । ९]

यह सूर्य मण्डल निरुक्तरूप लिंग है ॥ इस लिंगमें चेतन स्वरूप अलिंगी, रुद्र है [देवानां ब्रह्मा निरुक्तं ॥ सब देवताओंका स्वामी अनिरुक्त अलिंग स्वरूप अलिंगी (ब्रह्म) रुद्रहै ॥ काठक सं० ९ । १६] ब्रह्म, शिव, येदोनों विशेषण रुद्रके हैं ॥ ३१ ॥

इदं पित्रे मरुतामुच्यते वचः स्वादोः स्वादीयो रुद्राय वर्धनम् ॥ रास्वाचनो अमृतमर्त भोजनंत्मने तोकाय तनयायमृळ ॥ ३२ ॥

अन्वयार्थः—(मरुतां) देवताओंके (पित्रे) पिता (रुद्राय) रुद्रकेलिये (स्वादोः) घृतमधु आदि मीठेसे (स्वादीयः) अत्यन्त स्वादिष्ट (इदं) यह (वर्धनं) प्रसंशारूप वृद्धि करनेवाला (वचः) वचन (उच्यते) उच्चारणकिया जाता है (अमृत) हे जन्म मरण रहित रुद्र (नः) हमारेलिये (मर्तभोजनं) मनुष्योंके उपभोग करने योग्य पदार्थोंको (रास्व) देओ (च) और (त्मने) मेरे (तोकाय) दुग्ध पान करनेवाले बालक और अन्नखानेवाले बालकके निमित्त (मृळ) सुख करनेवाला हो ॥ ऋग्० १ । ११४ । ६ ॥

व्याख्याः—देवताओंके पिता रुद्रके प्रति घृत मधु आदि मीठेसे अत्यंत मीठा यह प्रसंशामय वृद्धि करनेवाला वचन उच्चारण कियाजाता है ॥ हे जन्ममरण आदिविकार रहित अविनाशी रुद्र तुम हमारेलिये मनुष्योंके उपभोग करने योग्य पदार्थोंको देओ ॥ तथा मेरे दूध पीनेवाले बालक और अन्न खानेवाले बालकोंकेलिये सुख करनेवालेहो [स्कन्दो अमृतस्य ॥ रुद्रके पुत्र देवता है ॥.

ऋग्० ६ । ५२ । ९ ॥ साम उत्तरार्चिक १६ । ३ । १] जो देवताओंका पालक है, सोही मनुष्योंका रक्षक है ॥ ३२ ॥

मानो॑ म॒हान्त॑मु॒त मानो॑ अर्भ॒कं मा न॒ उक्ष॑न्तमु॒त मा न॑ उक्षि॒तम् ॥ मानो॑ वधीः पि॒तरं॒ मोत मा॒तरं॒ मा नः॑ प्रि॒यास्त॒न्वो॑ रुद्ररीरिषः ॥ ३३ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (नः) हमारे (महन्तं) वृद्ध गुरु जनको (मा) मत (वधीः) मारो (उत) और (नः) हमारे (अर्भकं) दूधपीनेवाले बालकको (मा) मतमारो (नः) हमारे (उक्षन्तं) कुमार अवस्थावालेको (मा) मतमारो (उत) और (नः) हमारे (उक्षितं) युवा अवस्थावालेको (मा) मत नाशकरो (नः) हमारे (पितरं) पिताको (मा) मतमारो (उत) और (मातरं) माताको (मा) मतमारो (नः) हमारे (तन्वः) शरीरसे सम्बन्ध रखनेवाले (प्रियाः) प्रियमित्र गणोंको (मा) मत (रीरिषः) पीडितकरो ॥ ऋग्० १ । ११४ । ७ ॥

व्याख्या:—अधिदैव और अध्यात्मरूपसे व्यापकही, रुद्र है ॥ अधिदैवरूपसे अध्यात्मका संहार करता है ॥ इसलियेही अध्यात्म उपाधिक जीव, अधिदैव रुद्रकी प्रार्थना करता है ॥ हे रुद्र हमारे वृद्धगुरु समुहको मत नष्ट करो, और दूधसे जीवीत रहनेवाले बालकको मतमारो, हमारे कुमार अवस्थावाले बालकको मतमारो और हमारे, युवा अवस्थावालोको मतमारो, हमारे पिता माताको मतमारो, और हमारे देहसे सम्बन्ध रखनेवाले प्रियमित्र गणोंको पीडित मत करो ॥ ३३ ॥

मा नस्तोके तनये मा न आयौ मा नो गोषु मा नो अश्वेषु रीरिषः ॥ वीरान्मा नो रुद्र भामितो वधीर्हविष्मन्तः सदमित्त्वा हवामहे ॥ ३४ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (नः) हमारे (तोके) पुत्रमें (मा) रोगमतकरो (नः) हमारे (तनये) पौत्रमें (मा) मत (रीरिषः) हिंसक रोगको फैलावो (नः) हमारे (आयौ) भृत्य आदिमें (मा) मत प्रविष्टकरो (नः) हमारी (गोषु) गौओंमें (मा) मतकरो (नः) हमारे (अश्वेषु) घोडोंमें (मा) मतकरो (भामितः) कोपमें भरकर (नः) हमारे (वीरान्) वीरोंको (मा) मत (वधीः) संहारकरो (हविष्मन्तः) हवियोंसे युक्त हुए (इत्) ही (सदं) सर्वदा (त्वा) आपको (हवामहे) हम बुलाते हैं ॥ ऋग्० १ । ११४ । ८ ॥

व्याख्याः—हे रुद्र हमारे पुत्र समुहमें रोग मत फैलावो हमारे पौत्र समुदायमें रोग मत होनेदो, हमारे नौकर समुहमें पीडा मतकरो, हमारी गौओंमें रोग प्रविष्ट नकरो, हमारे घोड़ोंमें रोगमत घुसनेदो, हमारे वीरोंको क्रोधमें भरकर मत नष्ट करो, हवियोंसे युक्तहुएही निरंतर आपको हम आवाहन करते हैं ॥ ३४ ।

उप ते स्तोमान्पशुपा इवाकरं रास्वा पितर्मरुतां सुम्नमस्मे ॥ भद्रा हि ते सुमतिर्मृळयत्तमाथा वयमव इत्ते वृणीमहे ॥ ३५ ॥

अन्वयार्थः—(पशुपाःइव) जैसे पशुपालक गोवाल अपने स्वामीको पशु सौंपता है, तैसेही (मरुतां) देवताओंके (पितः) हेपितारुद्र (ते) आपकेलिये (स्तोमान्) स्तोत्रोंको (उपाकरं) भेट करताहुँ (अस्मे) हमारेलिये (सुम्नं) सुख (रास्व) देओ (ते) आपकी (भद्रा) कल्याणरूप (सुमतिः) दयावाली बुद्धि (हि) निश्चय (मृळयत्तमा) अति सुखको करनेवाली है (अथ) इससमय (ते) आपकी (अवःइत्) रक्षाकोही (वयं) हम (वृणीमहे) माँगते हैं ॥ ऋग्० १ । ११४ । ९ ॥

व्याख्याः—जिस प्रकार गोवाल अपने स्वामीको पशु अर्पण करता है, उसी प्रकार देवताओंके पिताहे रुद्र आपके प्रति मन्त्रोंको मैं अर्पण करता हुँ, हमारेलिये सुखको देओ, आपकी कल्याणमयी दयावाली सुन्दर बुद्धि निश्चय अति सुखको करनेवाली है ॥ इस समय आपकी रक्षाकोही हम उपासक चाहते हैं ॥३५॥

आरेते गोघ्नमुत पूरुषघ्नं क्षयद्वीर सुम्नमस्मेते अस्तु ॥ मृळाचनो अधिचब्रूहि देवाऽधाचनः शर्मयच्छद्वि-बर्हाः ॥ ३६ ॥

अन्वयार्थः—(क्षयत्वीर) सबदेवताओंके आधाररूप हे रुद्र (ते) आपका (गोघ्नं) पशुओंको मारनेवाला (उत) और (पुरुषघ्नं) मनुष्योंको नाश करनेवाला आयुध है वह शस्त्र (आरे) दूर देशमें रहे (अस्मे) हमपर (ते) आपका (सुम्नं) अनुग्रह (अस्तु) हो (मृळ) तुमपर दयाकरो (च) और (देव) हे रुद्र तुम (अधि) विशेष वेदके रहस्य सहित

(च) और तारकरूप प्रणवको (नः) हमारेलिये (ब्रूहि) कहो (अध) इस ज्ञानमय उपदेशके अनन्तर (च) और (नः) हमारी सकामी प्रजाओंकेलिये (शर्म) दीर्घजीवनरूप आश्रयको (यच्छ) देओ जिस जीवनकेद्वारा (द्विबर्हाः) पितृमध्यमलोक स्वर्ग उत्तम लोकोंको प्राप्त करें ॥ ऋग्० १।११४।१० ॥

व्याख्याः—सब देवताओंके आधार स्वरूप हे रुद्र आपका पशुओंके पीडित करनेवाला और मनुष्योंको नष्ट करनेवाला दैवी शस्त्र है उसको दूर करो, हमपर आपका अनुग्रह होवे, तुम परम दया करो, औरहे रुद्र तुम वेदोंके विशेष रहस्यके सहित तथा तारकरूप ओंकारको हम मुमुक्षुओंकेलिये प्रेरणारूप उपदेश कहो ॥ इस ज्ञानमय उपदेशके पश्चात् हमारी सकामी प्रजाओंके प्रति बहुत आयुरूप आश्रयको प्रदानकरो—जिस जीवनकेद्वारा कनिष्ठ भूलोकमें शुभ कर्मोंसे मध्यम पितृलोक और उत्तम स्वर्गलोकोंको सम्पादन करें [क्षयं ॥ क्षयनाम आधाररूप घरका है ॥ ऋग्० ५। ५४। २] द्विबर्हाः ॥ मध्यम उत्तम स्थानोंके दिव्य भोगोंके भोक्तारूपसे स्वामी होवें ॥ ऋग्० ४।५।३] सर्व शक्ति सम्पन्न रुद्र है ॥ ३६ ॥

अवोचाम नमो अस्मा अवस्यवः शृणोतुनो हवं रुद्रोमरुत्वान् ॥ तन्नोमित्रो वरुणो मामहन्तामदितिः सिन्धुः पृथिवी उतद्यौः ॥ ३७ ॥

अन्वयार्थः—(अस्मै) इस रुद्रकेलिये (नमः) प्रणाम होवे (अवस्यवः) रक्षाकी इच्छावाले (अवोचाम) हमने कहा है

(मरुत्वान्) मरुतोंसेयुक्त (रुद्रः) रुद्र (नः) हमारी (हवं) पुकारको (शृणोतु) सुने (उत) और (नः) हमारे (तत्) उसी आवाहनको (मित्रः) दिन अभिमानीदेव (वरुणः) रात्री अभिमानीदेव (आदितिः) अग्निदेव (पृथिवी) भूलोक (सिन्धुः) भुवर्लोक (द्यौः) स्वर्गलोक (मामहन्तां) आदर करें ॥ ऋग्० १। ११४। ११ ॥

व्याख्याः—इस रुद्रके प्रति प्रणाम होवे, रक्षाकी कामना करनेवाले हमने कहा है मरुतोंके संग रुद्र हमारी प्रार्थनाको सुने, और हमारे उसी आवाहनको दिनका स्वामी मित्र, रातका स्वामी वरुण-अग्निदेव, भूमी, अन्तरिक्ष, द्यौ आदि सब देवता आदर करें ॥ ३७ ॥

प्रजावतीः सुयवसं रिशंतीः शुद्धा अपः सुप्रपाणे पिबन्तीः ॥ मावःस्तेननईशत माघशंसः परिवोहेती रुद्रस्य वृज्याः ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थः—(प्रजावतीः) हे बच्छडोंवाली तुमगौयें (सुयवसं) उत्तम घासको (रिशन्तीः) चरतीहुई (सुप्रपाने) सुरक्षित तलाव आदि स्थानोंमें (शुद्धाः) निर्मल (अपः) जलको (पिबन्तीः) पीतीहुई (वः) तुमको (स्तेनः) चोर (ईशत) वशमें करके मालिक (मा) नबने तथा (अघशंसः) व्याघ्र आदि हिंसक जन्तु (मा) नमारे (वः) तुमको (रुद्रस्य) कालरूपी रुद्रकी (हेतिः) शक्ति (परिवृज्याः) परित्यागकरे ॥ ऋग्० ६। २८। ७॥

व्याख्याः—हे बच्छडोंसे युक्तगौयें तुम उत्तम घासको चरती हुई सुरक्षित तलाव आदि स्थानोंमें निर्मल जलको पीती हुई तुमको चोर वशमें करके मालिक नवने ॥ तथा व्याघ्र आदि जन्तु हिंसा नकरें, और कालरूपी रुद्रकी शक्ति तुमको सर्वत्रसे बचावे यही प्रार्थना रुद्रसे है [आपोहेतिः वातप्रहेतिः ॥ अति वृष्टिके सहित विजलीही हेति है ॥ अत्यंत शीतयुक्त वायुही प्रहेति है ॥ कपिष्ठल कठ सं० २६ । ८] चेतन देवकी सत्ताही सब पदार्थोंमें व्यापक है ॥ ३८ ॥

मयो भूर्वातो अभिवातूस्रा ऊर्जस्वतीरोषधीरारिशन्ताम् ॥ पीवस्वती जीवधान्याः पिबन्त्यवसाय पद्वते रुद्रमृळ ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थः—(वातः) वायु (मयोभूः) सुख उत्पन्न करनेवाला होवे (ऊस्राः) गौयें (अभिवातु) वनमें जावें वे गौयें (ऊर्जस्वतीः) रसवाले घासको (आरिशन्तां) स्वाद लेती हुई चरें, तसेही (पीवस्वतीः) फैला हुआ (जीवधान्याः) जीवोंका प्राण पोषक जल (पिबन्तु) पीवें (रुद्र) हे ज्वर आदि रोगके खेलसे संहार करता देव (पद्वते) चरणयुक्त (अवसाय) घृत दूधरूप अन्नके कारण गौ समुहकेलिये (मृळ) तुम समीप दयाकरो ॥ ऋग्० १० । १६९ । १ ॥

व्याख्याः—वायुदेवता गौओंकेलिये सुख उत्पन्न करनेवाला होवे, गौयें वनमें जावें रसयुक्त घासको स्वाद लेती हुई चरें, तथा फैला हुआ जन्तुओंका जीवनरूप जलपीवें, हे ज्वर आदि रोगके

देखने मात्रसेही मारनेवाले देव, घी दूधरूप अन्नकाहेतु पगवाली गौ समुहकेलिये तुम समीप दयाकरो ॥ आपकी दयासे रोगरहित पशु होवें ॥ ३९ ॥

इति श्री ऋग्वेदीय रुद्र चतुर्थ सूक्त ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत् परमहंस परिव्राजकाचार्य स्वामी

शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्यायाख्या समाप्त ॥४॥

॥ अथ ऋग्वेदीय पंचम सूक्त ॥

आते पित मरुतां सुम्नमेतुमानः सूयस्य संदृशो युयोथाः ॥ अभिनो वीरो अर्वति क्षमेत प्रजायेमहि रुद्र प्रजाभिः ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(मरुतां) देवताओंके (पितः) हे पितारुद्र (ते) आपका (सुम्नं) सुख हमारेलिये (आएतु) आवे ॥ तथा (नः) हमसे (सूर्यस्य) सूर्यका (संदृशः) प्रकाशक आपका स्वरूप (युयोथाः) पृथक् (मा) मतकरो (वीरः) तुमबलवान् (अर्वति) शत्रुओंपर चढाई करते समय (नः) हमारे (अभिक्षमेत) अपराधोंके क्षमाकरो (रुद्र) हे परमकृपालु देव (प्रजाभिः) प्रजाओंके सहित (प्रजायेमहि) हम वृद्धिको प्राप्त होवें ॥ ऋग्० २ । ३३ । १ ॥

व्याख्याः—देवतओंके उत्पन्न पालन करनेवाले हे पितारुद्र आपका सुख हमरेलिये सर्वत्रसे आवे ॥ तथा सूर्यमण्डलके प्रेरक

आपका दर्शनीय स्वरूपको हमसे भिन्नकभी मतकरो, बलवान तुम, शत्रुओंपर धावा करते समय, हमारे अपराधोंको क्षमाकरो, हे महा-दयालुदेव, प्रजाओंके सहित हम समृद्धिको प्राप्त होवें ॥ १ ॥

त्वादत्तेभी रुद्रशन्तमेभिः शतंहिम अशीय भेषजेभिः ॥ व्य१स्मद्द्वेषो वितरं व्यंहो व्यमीवाश्चा तयस्वा-विषूचीः ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हेरुद्र (ते) आपकी (दत्तेभिः) दिहुई (शन्तमेभिः) अतिशय सुख करनेवालीं (भेषजेभिः) औषधियोंकेद्वारा (शतं) सैकड़ो (हिमाः) वर्णोंकी आयुको (अशीय) प्राप्त करें (अस्मत्) हमसे (द्वेषः) द्वेषकरनेवाले शत्रुओंको (विचातयस्व) नाशकरो (अंहः) पापको (वितरं) अत्यन्त नाशकरो (विषूचीः) समस्तदेह व्यापी (अमीवाः) रोगोंको (विवि) भिन्नकरके नाशकरो ॥ ऋग्० २ । ३३ । २ ॥

व्याख्या:—हे रुद्र आपकी दीहुई अतिसुख करनेवालीं, औषधियोंके द्वारा सैकड़ों वर्षोंकी आयुको हम उपासक प्राप्त करें, हमसे द्वेष करनेवाले शत्रुओंको नाश करो, और पापको अत्यन्त नाश करो, समस्त देह व्यापी रोगोंको भिन्न २ करके नष्ट करो ॥२॥

श्रेष्ठो जातस्य रुद्र श्रियासि तवस्तमस्तवसां वज्र-बाहो ॥ पार्षिणः पारमंहसः स्वस्ति विश्वा अभीतीरपसो युयोधि ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हेरुद्र (जातस्य) उत्पन्न होनेवाले सब जगत्के मध्यमें (श्रिया) सर्व शक्ति सम्पन्नरूप ऐश्वर्यसे

युक्त (श्रेष्ठः) उत्तम (असि) है ॥ तथा (वज्रबाहो) हे पिनाक हातमें धारण करनेवाले रुद्र (तवसां) ब्रह्मा आदि वृद्धोंके मध्यमें (तवस्तमः) अति वृद्ध अनादि तुमही सो तुम (नः) हमको (अंहसः) पापके (पारं) पार (स्वस्ति) सुखके साथ (पर्षि) लगाओ ॥ और (रपसः) पापमात्रके (विश्वा) सम्पूर्ण (अभीतीः) भयसे (युयोधि) पृथक् करो ॥ ऋग्० २ । ३३ । ३ ॥

व्याख्याः—हे रुद्र तुम उत्पन्न होनेवाले जगत्के बीचमें अपनी महिमाके द्वारा व्यापक होकरभी निर्लिप्त उत्तम स्वरूप हो, हे हातमें पिनाक धारण करनेवाले देव, ब्रह्मा आदि महा वृद्धोंके बीचमें अत्यंत अनादि प्रपितामह तुमहींहो, सो तुम हमको पापके पार सुखके साथ लगाओ, तथा पाप मात्रके सम्पूर्ण भयसे निर्मुक्त करो ॥ ३ ॥

मात्वा रुद्र चुक्रुधामा नमोभिर्मा दुष्टुती वृषभमा सहूती ॥ उन्नो वीरॉं अर्पय भेषजेभिर्भिषक्तमंत्वा भिषजां शृणोमि ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (त्वा) आपको (नमोभिः) विधि रहित नमस्कारोंके द्वारा (माचुक्रु धाम) कोपाय मान न करें (वृषभ) हे धर्म स्वरूपरुद्र (दुष्टुती) अवैदिकरूप स्तुतियोंसे आपको हम (मा) क्रोधित नकरें (सहूती) विश्व आधारको अन्यदेवताओंके समान विभूति मानकर आपको आवाहन करके हम क्रोधायमान (मा) नकरें (त्वा) आपको (भिषजां)

सबवैद्योंके मध्यमें (भिषक्तमं) अति उत्तम वैद्यराज हो एसा (शृणोमि) सुनताहुँ, सोतुम (नः) हमारे (वीरान्) वीर कर्म करनेवालोंको (भेषजेभिः) औषधियोंके द्वारा (उदर्पय) संयुक्त करो ॥ ऋग्० २ । ३३ । ४ ॥

व्याख्याः—रुद्र आपको विधिरहित अपवित्रताके साथ नमस्कारोंके द्वारा क्रोधित हम नकरें, हे धर्म स्वरूप रुद्र वैदिक ऋचाओंको त्यागकर मनुष्यकृत वेदविरुद्ध स्तुतियोंसे आपको, कोपायमान हम नकरें ॥ अनादि अखण्ड रुद्रको उत्पत्ति नाशवान् देवताओंके समान मानकर हम आपका अपराध नकरें ॥ अपुत्रको पुत्र, श्रेष्ठको अश्रेष्ठ कहनाही महा अपराध है ॥ असंख्य महिमारूप देवताओंमेंसे रुद्रको एक देवतारूप विभूतिमें गणनाकरके अपमान करना है ॥ सर्व व्यापकको एक देशी माननाही पाप है ॥ व्यवहार दृष्टिमें सबदेवता उसकी सत्तामें असस्थित होंकर सत्तावान् हैं ॥ इसलिये सब देवता रुद्र स्वरूप हैं ॥ परमार्थमेंतो उससे भिन्न कोई सत्तावान् नहीं है ॥ वह रुद्र सब महिमाओं में व्यापक होने परभी सब महिमारूप विभूतियोंसे रहित शुद्ध तुरीय है ॥ उस रुद्रको किसी देवताकी बराबरी कहनाही उपहास करना है ॥ यही अपमान करना है, जैसे समुद्रमें तरंग कल्पित है ॥ तरंगोंमें समुद्र कल्पित नही है ॥ तैसेही रुद्रमें समस्त विश्वकल्पित है ॥ उस ब्रह्माण्डमें रुद्र कल्पित नहीं है ॥ हे रुद्र आपको सब वैद्योंके मध्यमें वैद्योंकाभी परमगुरु स्वरूप महावैद्य सुनता हुँ, वैद्यतो आगन्तुक रोगकाही नाश करता है ॥ और, आपतो सब रोगोंके सहित जन्म मरणके मूल कारणभूत अज्ञानका नाश करतेहो ॥ सो तुम हमारे शिष्य, पुत्र, मित्रभृत्यवर्ग आदिकोंको सब प्रकारकी औषधियोंसे रोगरहित करके सुयोग्य अपना उपासक बनाओ ॥ ४ ॥

हवीमभिर्हवते यो हविर्भिरव स्तोमेभी रुद्रं दिषीय ॥ ऋदूदरः सुहवो मा नो अस्यै बभ्रुः सुशिप्रो रीरधन्मनायै ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जोरुद्र (हविभिः) पुरोडास हवियोंके सहित (हवीमभिः) स्तुतियोंके द्वारा (हवते) बुलाया जाता है (रुद्रं) उस रुद्रके कोपको (स्तोमेभिः) स्तुतियोसे (अवदिषीय) प्रसंन करता हुँ (सुहवः) सुन्दर बुलाने योग्य (ऋदूदरः) कोमल उदरवाला (सुशिप्रः) सुन्दर मुखनासिकावाला (बभ्रुः) श्वेत देहवाला रुद्र है (अस्यै) इस हमारी अल्प (मनायै) बुद्धिके अपराधके निमित्त (नः) हमारा (मारीरधत्) नाश न करे ॥ ऋग्० २। ३३। ५॥

व्याख्याः—जो रुद्र पुरोडास हवियोंके सहित, स्तुतियोंके द्वारा बुलाया जाता है सुन्दर स्तुति योग्य, कोमल अन्तःकरणवाला, सुन्दर मुख नाक आदि अवयववाला, शुद्ध स्फाटिक मणिके समान श्वेत मायामय देहधारी रुद्र हैं ॥ परम कृपालु रुद्रका हमसे अपराध हुआ है, हमारी इस अल्प बुद्धिके कारणसे, हमारा नाश न करे, उस रुद्रको वैदिक ऋचाओंसे प्रसन्न करता हूँ ॥ ५ ॥

उन्मा ममन्द वृषभो मरुत्वान्त्वक्षीयसा वयसा नाधमानम् ॥ घृणीवच्छायामरपा अशीया विवासेयं रुद्रस्य सुम्नम् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(मरुत्वान्) देवताओंके सहित (वृषभः) कामनाओंकी वर्षा करनेवाला रुद्रदेव (त्वक्षीयसा) तेजयुक्त

अन्नसे (नाधमानं) याचना करनेवाले (मा) मेरेको (उन्ममन्द) विशेष करके तृप्तकरे (घृणी) सूर्यकी तापसे तपाहुआ प्राणि (छायइव) जैसे छायाको प्राप्त करता है ॥ तैसेही मैं सब दुःखसे पीडित हुआ (रुद्रस्य) रुद्रके (अरपाः) पापरहित शुद्ध (सुम्नं) सुखमय स्वरूपको (अशीय) प्राप्त करूँ जिस सुखका इस देहमेंही (विवासेयं) अनुभव करूँ ॥ ऋग्० २ । ३३ । ६ ॥

व्याख्या:—देवताओंके सहित सब कामनाओंको पूर्ण करनेवाला रुद्र, अन्न घृत आदि सारवाले पदार्थोंसे याचना करनेवाले मेरेको विशेष करके तृप्त करे, सूर्यकी तापसे तप्त हुआ प्राणि जैसे छायाको प्राप्त करता है तैसेही मैं सब दुःखोंसे तपाहुआ रुद्रके निरुपाधिक स्वरूपमय सुखको प्राप्त करूँ, जिस परम सुखका आनन्द इस वर्तमान देहमेंही अनुभव करूँ ॥ ६ ॥

क्व॑ स्यते रुद्र मृळयाकुर्हस्तो॒यो अस्ति॑ भेष॒जो जला॑षः ॥ अ॒प॒भ॒र्ता रप॑सो॒ दैव्य॑स्या॒भी नु मा॑ वृषभ चक्षमीथा ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (ते) आपका (मृळयाकुः) सुखकारक (स्यः) सो (हस्तः) हात (क्व) कहाँहैं (यः) जो (भेषजः) अभयकारक (जलाषः) सुखस्वरूप (अस्ति) है उस दक्षिण सुखरूप हातसे मेरी रक्षा करो (वृषभ) हे धर्मस्वरूप (दैव्यस्य) देव सम्बंधि इन्द्रियोंके (रपसः) बहिर्मुख पापका (अपभर्ता) नाश करनेवाले (नु) अवश्य तुम हो (मा) मेरेको (अभिचक्षमीथाः) सर्वत्रसे बचाओ ॥ ऋग्० २ । ३३ । ७ ॥

व्याख्या:—हे रुद्र आपका सुखमयशान्त स्वरूप है सो ज्ञातरूप आधार कहाँ है, जो अभय देनेवाला परम सुख है॥ उस दक्षिणसुखात्मक हातसे मेरी तुम सर्वदा रक्षाकरो ।। हे धर्म स्वरूप रुद्र अधिदैवोंकाही अध्यात्मस्वरूप इन्द्रियाँ हैं, उनको बहिर्मुख विषयाकार पापका तुम अश्यही नाश करनेवाले हो, मेरेको भीं उन पापोंसे सर्वदा बचाओ [अज्ञात इत्येवं कश्चिद्भीरुः प्रतिपद्यते ॥ रुद्रयत्ते दक्षिणं मुखं तेनमांपाहि नित्यं ॥ हे रुद्र तुम (अजातः) जन्ममरण आदि धर्मसे रहित है, ऐसा कहकर कोई संसारसे भयभीत हुआ आपकीही शरणमें प्राप्त होता है, जो आपका (दक्षिणं) शान्त (मुख) स्वरूप है, उससे सर्वदा मेरी रक्षाकरो ॥ श्वेता० उ० ४ । २१] रुद्रही भवबन्धनसे मुक्त करनेवाला है, और कोई नहीं है ॥ ७ ॥

प्रबभ्रवे वृषभायश्वितीचे महोमहीं सुष्टुति मीरयामि ॥ नमस्या कल्मलीकिनं नमोभिर्गृणीमसित्वेषं रुद्रस्य नाम ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(बभ्रवे) सब जगत्के पालक (वृषभाय) धर्म आदि चारो पदार्थोंको पूर्ण करनेवाले (श्वितीचे) श्वेतवर्ण—नित्य शुद्ध रुद्रकेलिये (महः) महान्‌सेभी (महीं) महान् (सुष्टुतिं) सुन्दर स्तुतिको (प्रेरयामि) अति प्रेमसे उच्चारण करता हूँ (कल्मलीकिनं) स्वयं प्रकाशी रुद्रको हे ऋत्विक् तुम (नमोभिः) हविके सहित नमस्कारोंके द्वारा (नमस्य) पूजनकरो (रुद्रस्य) रुद्रके (त्वेषं) महा उत्तम ॐ (नाम) नामको (गृणीमसि) स्मरण करता हूँ ॥ ऋग् २ । ३३ । ८ ॥

व्याख्याः—समस्त चराचरके पालक, धर्म आदि चारों पदार्योंको पूर्ण करनेवाले, नित्य शुद्ध श्वेतवर्ण रुद्रके प्रतिमहान्से भी महान् सुन्दर स्तुतिको अति श्रद्धाके साथ पठन करता हूँ, स्वयं प्रकाशी उस रुद्रको, हे होताओ तुम हवियोंके सहित नमस्कारोंके द्वारा पूजन करो, और मैं रुद्र वाच्यके उत्तम वाचक ॐ नामको स्मरण करता हूँ [**रुद्रयत्ते क्रिविपरन्नाम** ॥ हे रुद्र आपका जो क्रिविनाम सब नामोंमें श्रेष्ठ है ॥ जगत्की उत्पत्ति स्थितिलय करता है सोही क्रिविनाम वाला ॐ तारकमंत्र है ॥ मा० सं० १० । २० ॥ काठक सं० १५ । ६] **नामनाम्ना जोहवीतिपुरा सूर्यात्पुरोषसः ॥ यदजः प्रथमं संबभूव सहतत्स्वराज्यमियाय ॥ यस्मान्नान्यत्परमस्ति भूतं ॥** जन्म मरण रहित रुद्र सबके पहिले स्वयंम्भू ज्योति स्वरूपसे आविर्भावहुआ ॥ अर्थात् अपनी मायाके द्वारा मायिक स्वरूपसे प्रतीत होनाही स्वयंभू ज्योतिर्मय लिंग है ॥ इस विन्दुरूप लिंगकी संकल्प सत्ताही अर्ध चंद्राकार क्रियाशक्ति है ॥ यही क्रियाशक्तिरूप जलाधारी ॥ मकार उकार, अकारके रूपमें प्रगट हुई ॥ मकार कारण ॥ उकार सूत्रात्मा ॥ अकार विराट् है (**नाम्ना**) पंच मुखीलिंग स्वरूपके द्वाराही सब जगत् प्रगट हुआ है ॥ जिस प्रणव नामको, सूर्यके और उषाके उदयसे पहिले स्मरण करता है, उस ॐ को जपनेवाला वह उपासक अपने अखण्डरुद्र स्वरूपकोही प्राप्त होता है ॥ जिस स्वयं प्रकाश स्वरूपसे बढकर दूसरा सत्य स्वरूप नहीं है ॥ अथर्वण १० । ७ । ३१ **यो वेदादौस्वरः प्रोक्तो वेदान्तेच प्रतिष्ठितः ॥ तस्य प्रकृतिलीनस्य यः परः समहेश्वरः ॥** जो प्रणव वेदके आदिमें उच्चारण किया जाता है और वेदके अन्तमें प्रतिपादन किया जाता है, विराट्को

हिरण्यगर्भमें, हिरण्यगर्भको अव्यक्तमें, अव्याकृतको–तुरीय अवस्थामें लय करे ॥ विशेष अवस्थारूप जालके लीनहोनेपर जो उस प्रणवकी उत्तम चतुर्थ मात्रा है सोही महादेव है ॥ अर्ध चन्द्राकार और विन्दु है, सोही उमामहेश्वररूप, जलाधारी और लिङ्ग है ॥ तै. आरण्यक १० । १०] व्यवहार दृष्टिसे योनि उमा, लिंग महादेव है ॥ ज्ञान दृष्टिसे, उमामहेश्वरकी अभेद अवस्थाही अलिंग अवस्था है ॥ यही अवस्था एक अद्वितीय स्वरूप रुद्र है ॥ ८ ॥

स्थिरेभिरङ्गैः पुरुरूप उग्रो बभ्रुः शुक्रेभिः पिपिशे हिरण्यैः ॥ ईशानादस्य भुवनस्य भूरेर्न वा उ योषद्रुद्राद् असुर्यम् ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(पुरुरूपः) अष्ट मूर्ति भेदसे अपरिमित स्वरूपोंवाला (**स्थिरेभिः**) दृढ (**अङ्गैः**) अवयवोंसे युक्त (बभ्रुः) सबविश्वका भरण पोषण करनेवाला (उग्रः) महा तेजस्वी रुद्र (**शुक्रेभिः**) निर्मल (**हिरण्यैः**) प्रकाशमान् नक्षत्रोंसे (**पिपिशे**) शोभित है (**अस्य**) इस (**भूरेः**) (**भुवनस्य**) ब्रह्माण्डका (**ईशानात्**) स्वामी (**रुद्रात्**) रुद्रसे (**असुर्यं**) उमा अनन्त ज्ञान स्वरूपबल (**योषत्**) भिन्न (**वाउ**) कभी (**न**) नहीं है ॥ ऋग्० २ । ३३ । ९ ॥

व्याख्याः—आठमूर्ति भेदसे असंख्य स्वरूपोंवाला, सब जगत्का पालन करनेवाला, महातेजस्वीरुद्र, निर्मल प्रकाशमान् अनन्त ब्रह्माण्ड नक्षत्रमय दृढ अङ्गोंसे शोभित है ॥ इस महा विराट्रूप ब्रह्माण्डका अधिपति रुद्रसे उमा स्वरूप अनन्त बल पृथक् कभी नहीं है [**एक एवरुद्रो नद्वितीयायतस्थे** ॥ एक अद्वितीय

रुद्रही सर्वत्र ओतप्रोतहोरहा है, उससे भिन्न दूसरा कोई अवस्थित नहीं है ॥ तैतरीय सं० १ । ८ । ६ । १] चेतन ज्ञान स्वरूप है, ज्ञानशक्ति उमासे चेतन रुद्र भिन्न नहींहै ॥ और चेतनसे ज्ञान सत्ता पृथक् नहीं है ॥ ९ ॥

अर्हन्बिभर्ति सायकानि धन्वार्हन्निष्कंयजतं विश्वरूपम्॥ अर्हन्निदं दयसे विश्वमभ्वंनवाओजीयोरुद्रत्व-दस्ति ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्रतुम (अर्हन्) योग्य समय परही (सायकानि) वाणोंको और (धन्व) धनुषको (बिभर्ति) धारणकरतेहो (अर्हन्) योग्य समय परही (यजतं) पूजनीय (विश्वरूपं) बहुत स्वरूप (निष्कं) हारको धारण करतेहो (अर्हन्) योग्य समय परही (इदं) यह (विश्व) सब (अभ्वं) विशाल जगत्को (दयसे) पालन करतेहो (त्वत्) आपसे (ओजीयः) अधिक बलवांन् (वा) कोईभी (न) नहीं (अस्ति) है ॥ ऋग्० २ । ३३ । १० ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपसे अधिक बलवान् कोईभी नहीं है, क्योंकि तुम प्रलयके अन्त समयपर पूज्य मायिक स्वरूपको धारण करके अनन्त शिरवाले महा सूत्रात्मा विराट्मय हारको धारण करते हो ॥ इस समष्टि सूक्ष्म स्थूल मालामें असंख्य त्रिलोकीरूप मुण्ड-मालाओंको धारण करनेसेही आपका नाम मुण्डमाला धारी है ॥ यही मायिकरूप जगत्की उत्पत्ति करता है ॥ जगत् उत्पत्तिके अनन्तर, उसस्थितिकालमें असंख्य लोकात्मक महा विराट्रूप सब संसारको, हेरुद्र तुम पालन करतेहो ॥ सृष्टिका अन्त और प्रलयके

आदिमें इस योग्य समय परही सूर्यरूप धनुषसे प्रचण्ड किरणमय बाणोंको छोडकर सब चराचरका संहार करतेहो ॥ यही आपका धनुष और बाणोंका धारण करना है [एकोहिरुद्रोन ॥ श्वेता० उ० ३ । २] रुद्रोवै देवानामोजिष्ठः ॥ सब देवतारूप विभूतियोंके मध्यमें अनन्त बलशक्ति स्वरूप रुद्रही है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३७ । ५] समस्त जगत्का उत्पत्ति पालन संहार करनेवाला एक रुद्रही है ॥ १० ॥

स्तुहि श्रुतं गर्तसदं युवानं मृगंनभीममुपहत्नुमुग्रम् ॥ मृळाजरित्रे रुद्रस्तवानोन्यंते अस्मान्निवपन्तु-सेनाः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(श्रुतं) प्रख्यात (गर्तसदं) हृदयवासी (युवानं) नित्यएकरस तरुण (मृगंत) सिंहके समान (भीमं) भयंकर (उपहत्नुं) शत्रुओंको मारनेवाले (उग्रं) श्रेष्ठरुद्रको (स्तूहि) हेमेरे मन, तू स्तुतिकर (रुद्र) हे रुद्र तुम (स्तवानः) देवताओंसे प्रशंसित (जरित्रे) स्तुति करनेवालेके लिये (मृळ) दयाकरो (ते) आपकी (सेनाः) शत्रुको (निवपन्तु) मारें ॥ ऋग्० २ । ३३ । १२ ॥

व्याख्या:—प्रख्यात प्राणियोंके हृदयमें वासकरनेवाला, नित्य तरुण एक रस परिपूर्ण जैसे सिंहसे, वनके प्राणिमात्र डरते हैं ॥ तैसेही रुद्रकी भयसे सब देवता अपने २ कार्यको सम्पादन करते हैं, और मर्य्यादा ध्वन्सीयोंको मारनेवाले उत्तम रुद्रको, हे मेरे मन तुस्तुतिसे प्राप्त कर ॥ हे रुद्र तुम देवताओंसे स्तुति किये जातेहो, स्तुतिकरनेवाले उपासककेलिये सुख करो ॥ आपकी शत्रुओंको

मारनेवाली सेना, हमसे भिन्न शत्रुओंको मारें [रथोऽपि गर्त उच्यते ॥ रथभी गर्त नामसे कहा जाता है ॥ निरुक्त ३ । ५] रथरूप सूर्य मण्डल श्मशानमें रुद्र स्थित है [बाहुर्वै मित्रावरुणौ पुरुषोगर्तः ॥ दिनरातके देवता मित्रवरुणकोही प्रकाश करनेवाला (बाहुः) ऊँचासूर्य है ॥ सोही पूर्ण मण्डल देहगर्त है ॥ शत० ब्रा० ५ । ४ । १ । १५] गर्त ॥ गर्तनाम देहका है ॥ सा० सं० १० । १६] पुरुषे ॥ पुरुष नाम देहका है ॥ अथर्वण १० । ७ । १७] शत्रनाम बलरूप इन्द्रियोंका है ॥ जिस प्राणमय श्मशानमें सुषुप्ति अवस्थामें शयन करतीहैं, उस सुषुप्तिरूप श्मशान भूमीमें एक चेतनरूप रुद्रही अपने स्वरूपमें आनन्द भोगता है ॥ और क्रियात्मक मूर्ते सूर्य मण्डलमें अवस्थित हैं, उस आदित्यमय श्मशानमें रुद्र विराजमान है ॥ तथा महा प्रलयरूप महा श्मशानमें एक अद्वितीय रुद्रही वास करता है, सोहीगर्त सदात्मक श्मशान वासी है ॥ ११ ॥

कुमारश्चित्पितरं वन्दमानं प्रति नानाम रुद्रोपयन्तम् ॥ भूरेर्दातारं सत्पतिं गृणीषे स्तुतस्त्वं भेषजा रास्यस्मे ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(कुमारः) बालक (चित्) जिस प्रकार (उपयंतं) समीप आनेवाले (पितरं) पिता आदि गुरुको प्रणाम करता है, उसी प्रकार (रुद्र) हे रुद्र (वन्दमानं) सबके पूज्य (भूरेः) बहुतसी सम्पदाके (दातारं) देनेवाले (सत्पतिं) सत्पुरुषोंके स्वामी आपको (प्रतिनानाम) वारंवार प्रणाम करता हुआ (गृणीसे) स्तुति करता हूँ (स्तुतः)

स्तुतिसे प्रशंसित हुए (त्व) तुम (अस्मे) हमारेलिये (भेषजा) औषधियोंको (रास्व) देओ ॥ ऋग् २ । ३३ । १२ ॥

व्याख्या:—जिस प्रकार बालक पास आनेवाले पिता आदि गुरुको नमस्कार करता है, उसीप्रकार समस्त देवताओंके पूजनीय बहुत सम्पत्ति देनेवाले, सत्य पुरुषोंका पालन करनेवाले, हे रुद्र आपको वारंवार प्रणाम करता हुआ स्तुति करता हूँ, स्तुतिसे प्रशंसित हुए तुम हमारेलिये भेषजात्मक सुखोंको प्रदान करो ॥१२॥

या वो भेषजा मरुतः शुचीनि या शन्तमा वृषणो या मयोभु ॥ यानि मनुरवृणीता पिता नस्ता शं च योश्च रुद्रस्य वश्मि ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(मरुतः) हे अमर देवताओ (वः) तुम्हारे पिता रुद्रके पास (या) जो (भेषजा) औषधि हैं (या) जो (शंतमा) अतिसुखरूप (या) जो (मयोभु) सुखके उत्पन्न करनेवालीं हैं (यानि) जिन औषधियोंको (नः) हमारे (पिता) पिता (मनुः) मनुने (अवृणीत) प्राप्त कींथीं (ता) उन औषधियोको (रुद्रस्य) रुद्रके (शं) सुखसे (च) और (योःच) दुःखप्रद भयोंकोही (वश्मि) वशमें करने चाहता हूँ ॥ ऋग्० २ । ३३ । १३ ॥

व्याख्या:—हे देवताओ तुम्हारेपिता रुद्रके पास जो सुखरूप औषधि हैं, जो अतिशय सुखदायी जो सुख उत्पन्न करनेवालीं हैं ॥ जिन औषधियोंको हम सब मनुष्योंके उत्पन्नकर्त्ता मनुपिताने रुद्रसे प्राप्त करींथीं, उन औषधियोंको हम भी रुद्रदेवकी उपासनासे

प्राप्त करें, और रुद्रके सुखसे, दोनों प्रकारके भयके असंख्य रोगोंको मैं वशमें करना चाहता हूँ ॥ १३ ॥

परि॑णो हे॒ती रु॒द्रस्य॑ वृ॒ज्याः परि॑त्वे॒षस्य॑ दुर्म॒ति र्म॒हीगा॑त् ॥ अवा॑स्थि॒रा म॒घव॑द्भ्यस्तनुष्व॒ मीढ्व॑स्तो॒काय॒ तन॑याय मृळ ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्रस्य) महेश्वरका (हेतिः) आयुध (नः) हमको (परिवृज्याः) सर्वत्रसे त्यागे (त्वेषस्य) प्रकाशमान् रुद्रकी (मही) महा (दुर्मतिः) दुःखदायनी संहार बुद्धि (परिगात्) हमको परित्याग करके दूसरे स्थानमें जावे (मीढ्व) हे परिणाम रहित नित्य तरुण मायाके द्वारा जगत् रचने में समर्थरुद्र (स्थिरा) आपके रचे हुए औषधिमय सुखोंको (मघवद्भ्यः) सुखरूप ऐश्वर्य्यके चाहनेवाले उपासकोंके प्रति (अवतनुष्व) वितीर्ण करो (तोकाय) पुत्रकेलिये (तनयाय) पौत्रके निमित्त (मृळ) तुम सुख करो ॥ ऋग्० २।३३।१४॥

व्याख्याः—महादेवका प्रलयकारी आयुध हमको सब स्थानसे परित्यागे, तथा प्रकाश स्वरूप रुद्रकी बडी दुःखदायिनी संहार बुद्धि हमको परित्याग करके अन्यत्र स्थानमें जावे, हे परिणाम रहित एकरस नित्य तरुण अपनी मायाकेद्वारा जगत् रचनेवाले रुद्र आपके रखे हुए विविधरूप सुखोंको, आरोग्यादि धन चाहनेवाले उपासकोंके प्रति रक्षाके सहित बाँटो—देओ, तथा पुत्र शिष्य आदिके निमित्त और पौत्र प्रशिष्य आदिकेलिये तुम दया करो ॥ जैसे पुरुष अपनी भार्याको परपुरुषके व्यभिचारसे बचायकर स्वयं व्यभिचार करता है ॥ उस लौकिक मर्य्यादित व्यभिचारको, मर्य्यादा

रहित व्यभिचार कोई नहीं बताते हैं ॥ तैसेही रुद्र क्रमपूर्वक जगत्को रचकर पालन करता हुआ प्रलयमें संहार करता है ॥ जब रुद्रको विश्वकी उत्पत्ति पालनका पुण्य नहीं लगता, तो संहारका अपवादरूप पाप कहाँसे लगेगा ॥ इसलिये रुद्र पाप पुण्य रहित तुरीयस्वरूप है ॥ मनुष्योंके पापपुण्यसेही रुद्र दुःखी सुखी करता है ॥ जब प्राणि अपने पाप फलको भोगकरनेमें दुःख मानता हुआ, रुद्रकी प्रार्थनारूप पुण्यमार्गमें प्रवृत्त होता है ॥ तब प्राणि उसके पुण्य मार्गद्वारा, पापरूप कँटकको रुद्रभस्म करदेता है ॥ कर्म जड है कर्मफलदाता तटस्थ रुद्र है ॥ प्राणिके कर्मानुसार, पापकाफल देनेसे रुद्रको दुष्ट बुद्धिवाला, और पुण्यका फल देनेसे उत्तम बुद्धिवाला कहा है ॥ जैसे वादि और प्रतिवादि अपने २ पक्षको धर्म सभामें निवेदन करते हैं ॥ उन दोनोंके वक्तव्यको सुनकर, धर्म सभा निष्पक्षपातसे विचारकर अन्यायीको दण्ड और न्यायीको मुक्त करती है ॥ अन्यायी पुरुष सभाको दुष्ट कहता है ॥ और न्यायी पुरुष सत्य कहता है ॥ तैसेही हमारे शुभाशुभ कर्मफलके प्रेरक रुद्रको घोर अघोर कहा है ॥ दूसरोंके पापसे बचायकर कर्त्ताके पापकोंही भुगाता है ॥ वास्तवमेंतो वह देव परम कृपालु है ॥ मेरे स्वरूपको भूलकर प्राणि दुःख सागरमें डूब रहे हैं, इन दुःखीयोको देखकर मेरे नेत्रोंसे अश्रुधारा बहती है, इसहेतुसेही वेदवेत्ता ऋषियोंने मेरानाम रुद्र कहा है ॥ १४ ॥

एवा॑ब॒भ्रो॒वृ॒ष॒भचे॒कि॒तान॒ यथा॑देव॒न॒ हृ॑णी॒षे॒ नहंसि॑ ॥ ह॒व॒न॒श्रु॒नो॑ रुद्रे॒हबो॑धि बृ॒हद्व॑देमवि॒दथे॑ सु॒वीराः॑ ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(बभ्रो) हे सबके पालन करनेवाले (वृषभ) धारण करनेवाले (चेकितान) महाज्ञानी गुरु (देव) मायाके द्वारा बहुतरूप धारण करनेवाले रुद्र तुम (यथा) जिसप्रकार (हृणीषे) क्रोधित (न) नहीं होगे (हंसि) हननभी (न) नही करोगे (एव) इस प्रकारही (हवनश्रुत्) हमारी पुकारको सुननेवाले (नः) हमको (रुद्र) हेदेव (इह) इस भूलोकमें (बोधि) गुरु मूर्तिको धारणकरके अध्यात्म ज्ञानका उपदेशकरो (बृहत्) उस महाज्ञानको (विदथे) सभामें (सुवीराः) उत्तम वैदिक कर्म करनेवाले हम सब उपासक (वदेम) परस्पर भाषण करेंगें ॥ ऋग्० २ । ३३ । १५ ॥

व्याख्याः—सब चराचरके पालन करनेवाले, सबको उत्पन्न करके धारण करनेवाले, सर्वज्ञ महाज्ञानी गुरु, मायाकेद्वारा अनन्त स्वरूप धारणकरनेवाले हे रुद्र आप जिस प्रकार हम अज्ञात अपराधियोंपर कोप न करते हुए, हननभी न करोगे ॥ इस प्रकारही हमारी प्रार्थनाओंको सुनकर हमको इस भूमीमें, हे रुद्रदेव अध्यात्म ज्ञानका उपदेश करो गुरुस्वरूप होकर, उस आपके महाज्ञानको सभाओंमें, सुन्दर वैदिक कर्म करनेवाले हम सब उपासक परस्पर भाषण करेंगें, जिस भाषणसे सब प्रजा आपके यथार्थ स्वरूपको प्राप्त करनेमें समर्थ होवेगी ॥ १५ ॥

कद्रुद्रायप्रचेतसेमीह्ळुष्टमायतव्यसे ॥ वोचेमशंतमंहृदे ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(कत्) सबके प्रशंसनीय (प्रचेतसे) महाज्ञानी (मीह्ळुष्टमाय) सब पदार्थोंकी वर्षाकरनेवाले (तव्यसे)

अनादि प्रपितामह (हृदे) सब प्राणियोंके हृदयमें विराजमान (रुद्राय) रुद्रकेलिये (शंतमं) अत्यन्त सुखरूप वैदिक मंत्रोंको (वोचेम) प्रार्थनाके समय हम उच्चारण करते हैं ॥ ऋग० १ । ४३ । १ ॥

व्याख्या:—सबके पूजनीय सुखस्वरूप अनादि सिद्ध प्रपितामह, महाज्ञानीगुरु, उपासक प्रजाओंकी भावनाके अनुसार, सब पदार्थोंको वर्षानेवाले, प्राणि मात्रके हृदयमे वास करनेवाले, सब सुखके प्रकाश करनेवाले रुद्रके प्रति अति सुख कारक वैदिक मंत्रोंको उपासनाके समय हम पठन करते हैं ॥ १६ ॥

यथा॑ नो॒ अदि॑तिः॒ कर॒त्पश्वे॒ नृभ्यो॒ यथा॒ गवे॑ ॥ यथा॑ तो॒काय॑ रु॒द्रिय॑म् ॥ १७ ॥

अन्वयार्थ:—(यथा) जिसप्रकार (अदितिः) सूर्य (नः) हमारे (पश्वे) घोड़ेकेलिय (गवे) गौंकेलिये (नृभ्यः) मनुष्योंकेलिये (रुद्रियं) सुखको (करत्) करता है (यथा) जैसेही (तोकाय) बालक समुहकेलिये सुख करता है (यथा) जिस प्रकारही रुद्र सुखकी प्रेरणा करता है ॥ ऋग० १ ४३ । २॥

व्याख्या:—जैसे सूर्य उदय अस्त रुपसे हमारे गौ घोड़ोंके लिये पोषण विश्रामरूप सुखको करता है जैसेही बडे मनुष्योंकेलिये सुख करता है और तैसेही छोटे बालकोंके प्रति सुख करता है ॥ जिस प्रकारही रुद्र सब प्राणियोंकेलिये सृष्टि और प्रलय सुख करता है जब प्राणिजन्म मरणके व्यापारसे परिश्रमित होते हैं ॥ तब प्राणियोंको महाप्रलयरूप निद्रा सुख देता है ॥ जब प्राणिमात्र महा निद्रासे सृष्टिके आकारमें आनेकी इच्छा करते हैं ॥ तब उनको सृष्टिके रूपमें प्रगट करके कर्मोंके अनुसार सुख देता है । १७ ॥

यथा॑नो मि॒त्रो वरु॑णो॒ यथा रु॒द्रश्चिकै॑तति ॥ यथा॒ विश्वे॑ स॒जोष॑सः ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(यथा) जैसे (नः) हमको (मित्रो वरुणः) दिनरातमें मित्रवरुण सुखी करते हैं (यथा) जैसे (विश्वे) सव (सजोषसः) समान प्रेमवाले मरुत हमको सुखी करें (यथा) जिस प्रकारही हमको अन्तकालके समय (रुद्रः) अपने प्रणव स्वरूपका रुद्र (चिकेतति) उपदेश कर्त्ता होवे ॥ ऋग० १।४३।३॥

व्याख्याः—जैसे दिनरात्रिमें मित्रवरुण हमको सुखी करते हैं, जैसेही समान प्रेमवाले सवदेवता हमको सुखी करें ॥ जिस-प्रकारही अन्तकालके समय हम सवको, अपने ओंकार मंत्रका उपदेश कर्त्ता रुद्र होवे ॥ १८ ॥

गा॒थप॑तिं मे॒धप॑तिं रु॒द्रं जला॑सभेषजं ॥ तच्छं॒योः सु॒म्नमी॑महे ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(गाथपतिं) वेदके पालक (मेघपतिं) यज्ञके स्वामी (जलाषभेषजं) सुखरूप प्रणव दिव्य औषधिके उपदेष्टा गुरु (रुद्रं) रुद्रके (तत्) उस (सुम्नं) अक्षय सुखको (शंयोः) जन्ममरणरूप मुख्य दोनों व्याधिके शमनकेलिये (ईमहे) हम याचना करते हैं॥ ऋग० १।४३।४॥

व्याख्याः—वेदके पालक यज्ञके स्वामी, सुखरूप प्रणव दिव्य औषधिके उपदेशकर्त्ता गुरु रुद्रके अविनाशी उससुखको प्राप्त करनेकेलिये, और जन्ममरणरूप मुख्य दोनों रोगोंको नाशकरनेके लिये रुद्रकी दयाको हम सम्पादन करते है ॥ १९ ॥

यः॒शु॒क्रइ॑व॒ सूर्यो॒ हिर॑ण्यमि॒वरोच॑ते ॥ श्रेष्ठो॑ दे॒वानां॒ वसुः॑ ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(यः) जोरुद्र (देवानां) सब देवताओंका (वसुः) वासरूप परम कारण (हिरण्यंइव) सुवर्ण समान (शुक्रः) निर्मल (सूर्यःइव) सूर्य ज्योतिके समान अक्षय (रोचते) स्वयंप्रकाशित है (श्रेष्ठः) सो उत्तम स्वरूप रुद्र है ॥ ऋग० १ । ४३ । ५ ॥

व्याख्या:—[ब्रह्मसूर्य समंज्योतिः ॥ सूर्यके समान (ब्रह्म) रुद्र, स्वयं प्रकाशी है ॥ मा० सं० २३ । ४८] रुद्रो वै ज्येष्ठश्च श्रेष्ठश्चदेवानां ॥ देवताओंका अनादि प्रपितामह-रूप ज्येष्ठ है, और सबका स्वामी रूपसे श्रेष्ठ है ॥ शांखायन ब्रा० २५ । १३] वेद वर्णित देवको छोडकर, मरण जन्मवाले मनुष्यको रुद्रसे अधिक मानकर पूजन करते हैं, वे सब अनार्य्य हैं जोरुद्र सबदेवताओंका आधारस्वरूप परम कारण, सुवर्णके समान शुद्ध, सूर्यके समान स्वयं प्रकाशित है सोही महा उत्तमदेव रुद्र है ॥ २० ॥

शं नः॑कर॒त्यर्व॑ते सु॒गंमे॒षाय॒ मेष्यै॑ ॥ नृभ्यो॒नारि॑-भ्यो॒गवे॑ ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(नः) हमारे (अर्वते) अश्वकेलिये (शं) कल्याण (करति) करता है (गवे) गौकेलिये (मेषाय) भेड़केलिये (मेष्ये) भड़ेजातिके अन्तरगत बकरीकेलिये (नृभ्यः) पुरुष मात्रकेलिये (नारिभ्यः) स्त्रीमात्रकेलिये (सुगं) सुखकरता है ॥ ऋग० १ । ४३ । ६ ॥

व्याख्याः—जैसे राजाको आज्ञासे कर्मचारी प्रजाको सुख-देते हैं, वह प्रजा राजाकोही सुखका कर्त्ता मानती है ॥ तैसेही सबदेवता रुद्रकी आज्ञासेही प्रजाको सुखी करते हैं, वह सब सुखका हेतु रुद्रही है ॥ हमारे घोड़े गौ मात्रकेलिये रुद्रदेव सुख करता है ॥ भेड़ बकरी स्त्रीपुरूष मात्रकेलियेही रुद्र सुख करता है ॥ २१ ॥

अस्मे सोमश्रियमधिनिधेहिशतस्य नृणाम् ॥ महि श्रवं स्तुविनृम्णम् ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(सोम) हे सोमतुम (शतस्य) सैकड़ों (नृणां) मनुष्योंके धनके समान (श्रियं) धनको (अस्मे) हम उपासकोंमें (निधेहि) स्थापनकरो ॥ और (अधि) विशेष करके (महि) महा (तुविनृम्णं) वलयुक्त (श्रवः) यशको देओ ॥ ऋग० १ । ४३ । ७ ॥

व्याख्याः—हे सोमदेवता तुम सैकड़ों मनुष्योंके धनके बराबरी सम्पत्तिको और विशेष करके महा वलयुक्त यशको, हम उपासकोंमें स्थापन करो ॥ २२ ॥

मानः सोमपरिबाधो मारातयो जुहुरन्त ॥ आनइन्दो वाजेभज ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(सोमपरिबाधः) सोम याग रहित (नः) हमको (मा) पीडत नकरें—और (अरातयः) शत्रु (माजुहुरन्त) हमको नमारें (इन्दो) हे सोम (नः) हमको (वाजे) अन्नकी प्राप्तिकेलिये (आभज) सर्वदा सहायता करो । ऋग० १ । ४३ । ८ ॥

व्याख्याः—हे सोमदेवता, सोमयज्ञमें विघ्न करनेवाले राक्षस हमारा वधनकरें और दूसरे शत्रुभी हमको मारें, हेसोम तुम हमको अन्नकी प्राप्तिकेलिये सर्वदा सहायता करो ॥ २३ ॥

यास्ते॑ प्र॒जा अ॒मृत॑स्य॒पर॑स्मि॒न्धाम॑न्नृ॒तस्य॑ ॥
मू॒र्धा नाभा॑सोम॒वेन आ॒भूष॑न्तीः सोम वेदः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(सोम) हे सोम (ते) आपकी (याः) जे (प्रजाः) प्रजायें (परस्मिन्) उत्तम (नाभौ) यज्ञ स्थानमें (आभूषन्तीः) सर्वत्रसे सुशोभित हो रहीं हैं, उनपर (वेन) प्रेमकरो, और (अमृतस्य) अविनाशी (ऋतस्य) रुद्रके (धामन्) दिव्य कैलासमें (सोम) हे सोम तुम (वेदः) पहुँचाओ, वह रुद्रका धाम कैसा है (मूर्धा) सबलोकोंका शिर है, अर्थात् सबसे उत्तम है ॥ ऋग० १। ४३। ९॥

व्याख्याः—हे सोम आपकी प्रार्थना करनेवालीं जे प्रजा सर्वत्रसे सुशोभित, श्रेष्ठ यज्ञस्थानमें अवस्थित हैं, उन यज्ञ करनेवालीं प्रजाओंके ऊपर, प्रेमकरो और अविनाशी रुद्रके धाममें हे सोम तुम पहुँचाओ ॥ सो धाम कैसा है ॥ सबलोकोंका मस्तक स्वरूप उत्तमधाम है ॥ ब्रह्मलोककी अन्तिमअवस्थाही कैलास है ॥२४॥

इति श्री ऋग्वेदीय रुद्र पंचम सूक्त ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य स्वामी

शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्यायाख्या समाप्त ॥५॥

॥ अथ ऋग्वेदीय षष्ठं सूक्तम् ॥

पूर्वापरं चरतो माययैतौ शिशू क्रीळन्तौ परियातो अध्वरम् ॥ विश्वान्यन्यो भुवनाभिचष्ट ऋतूँरन्यो विदधज्जायते पुनः ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(मायया) रुद्रकी अद्भुत प्राणशक्तिके द्वारा (पूर्व अपरं) आगे पीछे (एतौ) ये दोनों (शिशु) बालक (क्रीळन्तौ) खेल करते हुए (चरतः) विचरते हैं (अध्वरं) अन्तरिक्षमें (परियातः) पर्य्यटन करते हैं (अन्यः) एक सूर्य (विश्वानि) समस्त (भुवना) त्रिलोकीके पदार्थोंको (अभिचष्टे) सर्वत्र देखता है (अन्यः) दूसरा चन्द्रमा (ऋतून्) वसंत आदि ऋतुओंको (विदधत्) धारणा करता हुआ (जायते) शुक्ल कृष्णके पक्षमें प्रगट होता है (पुनः) बारंबार ॥ ऋग० १० । ८५ । १८ ॥

व्याख्याः—रुद्रकी मायाके द्वारा आगे पीछे ये दोनों बालक दिनमें सूर्य और रात्रिमें चन्द्रमा, खेल करते हुए विचरते हैं, आकाशमें पर्य्यटन करते हैं ॥ प्रथम बालक सूर्य समस्त त्रिलोकवर्ती चराचर पदार्थोंको सर्वत्र प्रकाश करता है॥ और द्वितीय बालक चन्द्रमा–वसन्त आदि ऋतुओंको धारण करता हुआ, बारंबार शुक्लकृष्णपक्षरूपसे उत्पन्न होता है [क्रीडन्तौ परियात्तोर्णवम् ॥ अन्तरिक्षमें खेल करनेवाले दोनों सूर्यशशि चलते हैं ॥ अथर्वण ७ । ८६ । १] सूर्य एकाकी चरति चन्द्रमा जायते पुनः ॥ सूर्य क्षय वृद्धिमय जन्म मरण रहित अक्षयरूपसे एकही विचरता है ॥ और क्षयवृद्धि रूपसे चन्द्रमा बारंबार मरण और जन्मलेता है ॥ काण्व सं० ३ । ५ । ३ । ७ ॥ मा० सं० २३ । १०] सूर्य रुद्र है और चन्द्रमा जीव है ॥ पंद्रह कलासे चन्द्रमा पृथक् भ्रमण करता हुआ, सोलमी कलासे अमावास्याके सूर्यके साथ वास करता है [अमासह वसतः सूर्य चन्द्रावस्याम् इति अमावास्या ॥ एक साथ सूर्यचन्द्रमा वसते हैं इस तिथीमें, यही तिथी अमावास्या है ॥ सायण भाष्य, अथर्वण ७ । ८४ । १] चन्द्रमा किञ्चित् भेदयुक्त, चतुर्दशीकी रात्रीमें सूर्यरूप शिवकी अभेद प्राप्तिकेलिये समीप जाता है ॥ यही संधि रात्रीकी मध्य अवस्थारूप शिवरात्री है ॥ इस शिवरात्रीके अनन्तर–चन्द्रमाजीव, सूर्य शिवके साथ अमावस्यामें अभेद अवस्थाको प्राप्त होता है ॥ चन्द्रमा विशेष करके फाल्गुन–माघ, चतुर्दशीकी रात्रीमें सूर्यके मण्डलको लक्षकरता हुआ अमावस्यामें सूर्यमय हो जाता है ॥ जैसे जीव सुषुप्तिमें आनन्द भोक्ता है । तैसेही सूर्यकी अभेदता प्राप्त करता है ॥ इस घटनाको लेकरही आर्यप्रजा शिवरात्रीका उपवास करती है ॥ योगी अपने मनको

सुषुम्नाके द्वारा चेतन शिवमें लय करते हैं ॥ अधिदैवरूप सूर्य चक्षु और चन्द्रमा मनहै ॥ सूर्यही प्रत्येक् प्राणियोंका अध्यात्मरूप नेत्र है ॥ और अधिदैव चन्द्रमाही प्राणिमात्रका अध्यात्म मन है ॥ मन उपाधिक चेतन भोक्ता जीव है, और नेत्र उपाधिक चेतन द्रष्टा ईश्वर है ॥ अधिदैव पक्षमें सूर्यरूप चेतन, रुद्र और चन्द्रमा में स्थित चेतन जीव है ॥ ये दोनों बालक त्रिलोकात्मक विराट् देहमें एकमित्र भावसे स्थित हैं ॥ तथा अध्यात्म पक्षमें नेत्र उपाधिक और मन उपाधिक चेतन, व्यष्टिदेहमें भिन्न भावसे वास करते हैं ॥ जैसे स्वातीजल सर्पमें विष और सूक्तीमें मोती बनता है ॥ तैसेही अद्वितीय रुद्र-चन्द्रसूर्य मण्डलकी उपाधिसे उमा महेश्वर हुआ ॥ व्यष्टि मन और नेत्रकी उपाधिसे जीव ईश्वर हुआ ॥ तथा उपाधिरहित चेतन न जीव न ईश्वर है ॥ केवल अद्वितीय रुद्र है ॥ १ ॥

ये अर्वाञ्चस्ताँ उपरा च आहुर्ये पराञ्चस्ताँ उअर्वा च आहुः ॥ इन्द्रश्चया चक्रथुः सोमतानि धुरा नयुक्ता रजसो वहन्ति ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जेनक्षत्र (अर्वाचः) इधर आनेवाले हैं (तान्) उनको (ऊँ) ही (पराचः) परेजानेवाले (आहुः) कहते हैं (ये) जे (पराञ्चः) परेजानेवाले हैं (तान्) उनको (ऊँ) ही (अर्वाचः) इधर आनेवाले (आहुः) कहते हैं (सोम) हे चन्द्रमा देवता तुम (च) और (इन्द्र) सूर्यने (या) जिन नक्षत्रोंको (चक्रथुः) बनाया है (तानि) वेनक्षत्र (न) वैलोंके समान (धुरा) सूर्यरूप धुरेसे (युक्ताः)

जुड़े हुए (रजसः) अन्तरिक्षको (वहन्तिः) खेंचते हैं ॥ ऋग० १ । १६४ । १९ ॥

व्याख्याः—जे नक्षत्र अपनी तर्फ आते प्रतीत होते, उनकोही परेजानेवाले ऋषि कहते हैं, जे परे जानेवाले प्रतीत होते, उनकोही इस्तर्फ आनेवाले ऋषि वताते हैं ॥ हे सोम तुम और सूर्यने जिन नक्षत्रोंकी गति वनायी है, वे नक्षत्र रथमें जुते हुए वैलोंके समान, सूर्यमण्डल रथमें जुते हुए, मानो आकाशको खेंचते हुए जारहे हैं [असौवा आदित्य इन्द्रः ॥ यह सूर्यही इन्द्र है ॥ काठक सं० ३६ । १०] चन्द्रमा वै सोमः ॥ चन्द्रमाही सोम है ॥ काठक सं० ११ । ३] जैसे सूर्य दिनमें प्रकाशित है ॥ और चन्द्रमा रात्रिमें ॥ सूर्यरश्मि सुषुम्नासे प्रकाशित होता हुआ, प्रकाशता है ॥ तैसेही नेत्र पुरुष जाग्रत् अवस्थामें देखता है ॥ और मन स्वप्न अवस्थामें नेत्रस्थपुरुष विश्वके तैजस नामसे प्रकाशित होता हुआ स्वप्नके पदार्थोंके आकारमें प्रकाशता है ॥ २ ॥

द्वा॑सु॒प॒र्णा स॒युजा॒ सखा॑या समा॒नं वृ॒क्षं परि॑षस्व जाते ॥ तयो॑र॒न्यः पिप्प॑लं स्वा॒द्वत्यनश्न॒न्नन्यो अ॒भि- चा॑कशीति ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(द्वा) दो (सुपर्णा) सुन्दर किरणवाले सूर्य चन्द्रमा (सयुजा) संग रहनेवाले (सखाया) मित्ररूप दोनों (समानं) एक स्वभाववाले (वृक्षं) विराट्मय वृक्षको (परिषस्वजाते) सर्वत्रसे आश्रय पाते हैं (तयोः) उन दोनों पक्षियोंमें (अन्यः) एक सोम पक्षी (स्वादु) मीठे (पिप्पलं)

सुषुम्ना किरणके प्रकाशको (अत्ति) भक्षण करता है (अन्यः) दूसरासूर्य (अनश्नन्) न खाता हुआ (अभिचाकशीति) सर्वत्र देखता है ॥ ऋग० १ । १६४ । २० ॥

व्याख्याः—सुन्दर रश्मिवाले सूर्य चन्द्रमा संग रहनेवाले मित्र स्वभाववाले दोनों एक विराट्रूप वृक्षको आश्रय करके रहते हैं, उन दोनोंमें एक चन्द्रमा मीठे जलवालीं सुषुम्नाकिरणके प्रका-शको भक्षणरूपसे धारण करता हुआ, प्रकाशित होता है, दूसरा सूर्यकिसीके प्रकाशको ग्रहणरूपसे न भक्षण करता हुआ स्वयं प्रकाशीरूपसे सर्वत्र प्रकाशित होता है [सुपर्णाः ॥ सुपर्ण नाम किरणोंका है ॥ ऋग० १ । १०५ । ११ ॥ १ । ७९ । २ ॥ **दिवआजातादिव्या सुपर्णा** ॥ आकाशसे प्रगट होनेवाले दिव्य गतिवाले सर्वत्र व्यापक दो सुन्दर पक्षी हैं ।। ऋग० ४ । ४३ । ३] **चन्द्रमा अप्स्वन्तरा सुपर्णो धावतेदिवि** ॥ जलवाले अन्तरिक्षके मध्यमें सुषुम्ना किरणके पान करनेवाले चन्द्रमा सुन्दर पक्षी महा वेगसे भ्रमण करता है ॥ ऋ० १ । १०५ । १] **सुषुम्णः सूर्यरश्मि श्चन्द्रमागन्धर्वा** ॥ सूर्यकी किरण सुषुम्ना-मय गौको धारण करनेसे चन्द्रमा गन्धर्व है ॥ काण्व सं० २ । १ । १ । ३ ॥ काठक सं० १८ । १४ ॥ मा० सं० १८ । ४०] **वयः सुपर्णः** ॥ उड़नेवाला सुन्दर सूर्य पक्षी है ॥ ऋ० १० । ७३ । ११] **पिप्पलं** ॥ जलका नाम पिप्पल है ॥ निरुक्त २ । २४ । १२] **विषः** ॥ विषनाम व्यापकका है ॥ ऋग० १० । १०९ । ५] **विषं** ॥ विषनाम जलका है ॥ ऋ० १० । ८७ । १८] **सुपर्णः** ॥ सुपर्ण नाम व्यापकका है ॥ ऋग्० ९ । ४८ । ५] अप—शब्द जल और व्यापक अर्थमें है, सुषुम्नारूप फलको पान करनेवालाही चन्द्रमा है [**विसुपर्णो**

अन्तरिक्षाणी...असुरः सूर्य...रश्मिः ॥ विविध किरण समुद्रवाला सुन्दरपक्षी अन्तरिक्षके सहित भूमी के सब भागोंको (असुरः) प्रकाशित करनेवाला असुरही सूर्य है ॥ ऋग० १। ३५। ७] वह अधिदैव पक्षही अध्यात्मरूपसे व्याप्त है [समाने वृक्षे पुरुषो निमग्नोऽनीशया शोचति मुह्यमानः॥ जुष्टं यदा पश्यत्यन्यमीशमस्य महिमानमितिवीतशोकः ॥ एक वृक्षके समान अङ्गोंवाले देहमें मन उपाधि पुरुष अपने सर्वज्ञ स्वरूपको भूलकर, स्वप्नके पदार्थोंके समान जाग्रत्के स्त्रीपुत्र धन आदि पदार्थोंके समान जाग्रत्के स्त्रीपुत्र धन आदि पदार्थोंको सत्य मानकर मोहको प्राप्त हुआ शोक करता है ॥ जब अपनेसे भिन्न इस चक्षु व्यापी प्रियमित्र समर्थ पुरुषकी महिमाको देखता है, तब सब शोक रहित होता है ॥ जो मैं मनके धर्मसे रहित चक्षुके मध्यवर्ती निर्लिप्त पुरुष हूँ ॥ जो मैं अध्यात्म उपाधि नेत्रस्थ पुरुष हूँ ॥ सोही मैं अधिदैव सूर्यमण्डलस्थ रुद्र हूँ ॥ मु० उ० ३। १। २ ॥ श्वेता० उ० ४। ७] तत्रको मोहः कः शोक एकत्वमनुपश्यतः ॥ उपाधि रहित अपने शुद्ध स्वरूप अद्वितीय रुद्रको साक्षात्कार करके देखता है, उस अभेद अवस्थामें कौन मोह है कौन शोक है ॥ अद्वितीय स्वरूपके जाग्रत् होतेही स्वप्न जाल विलीन होजाता है ॥ काण्व सं० ४। १। १। ७ ॥ मा० सं० ४०। ७] तदपश्यत्तद्भवत्तदासीत् ॥ उस निर्मल अपने स्वरूपको अभेद रूपसे देखता है ॥ सोही अद्वितीय स्वरूप होता है, वह जीव प्रथम रुद्र स्वरूपथा ॥ नवीन जीव वस्तु कुछभी नहींथी ॥ जीव भ्रमका नाश होनाही रुद्रकी प्राप्ति है ॥ काण्व सं० ४। ५। ३। ९ ॥ मा० सं० ३२। १२] द्वासुपर्णा मंत्र अधिदैवस्वरूप सूर्यचन्द्रमाका वर्णन करता

है ॥ जीव ईश्वरका भेद कर्त्ता यह मंत्र तीन कालमें भी नहीं, यह वेदका अटल सिद्धान्त है ॥ समाने वृक्षे यह ऋचाभी अध्यात्मरूप मन चक्षुकी उपाधिको भिन्न करती हुई चेतन औपाधिकको अभेदरूपसे वर्णन करती है [**योऽयंचक्षुषि पुरुषएष इन्द्र एष प्रजापतिः** ॥ जो यह नेत्रमें पुरुष है यही इन्द्र यही ब्रह्मा पशुपति है ॥ सामवेदीय जैमिनीय ब्रा० १ । १४ । २ । १०] **असौवा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः** ॥ यह सूर्य मण्डलवर्ती पुरुष ही इन्द्र है यही पशुपति ब्रह्मा है ॥ तैत्तरीय सं० ५ । ७ । १ । ३] जो नेत्रपुरुष है सोही सूर्यवर्ती पुरुष है [**यएषोऽक्षिणि पूरुषो दृश्यते एष आत्मेति** ॥ यह जो नेत्रमें पुरुष दीखता है, यही आत्मा व्यापक है ॥ छां० उ० ४ । १५ । १] **इन्धोहवै नामैष योऽयं दक्षिणेऽक्षन् पुरुषस्तं वा एतमिन्ध ँ सन्तमिन्द्रइत्याचक्षते** ॥ जो यह पुरुष दाहिने नेत्रमें है यह प्रसिद्ध इन्ध नामवालाही है, इस प्रकाशित होते हुएको इन्द्र ऐसा परोक्ष नामके द्वाराही वेद वेत्ता कहते हैं ॥ **अथैतद्वामेऽक्षणि पुरुषरूपमेषास्य पत्नी विराट्** ॥ और इस पुरुषका बायें नेत्रमें स्वरूप है, इस दक्षिण पुरुषका, वाम पुरुषही यह विराट्रूप स्त्री है ॥ बृ० उ० ४ । २ । २-३] ये दोनोंही उमा महेश्वर हैं ॥ जो अध्यात्म स्वरूप उमा महेश्वर, इन्द्र इन्द्राणी है ॥ सोही अधिदैव सूर्य मध्यवर्ती महेश्वर और चन्द्रमा मण्डल मध्यवती उमा है ॥ यही उमा और रुद्र, असंख्य स्त्री पुरुषरूप है ॥ जब स्त्रीपुरुष अपने अधिदैव स्वरूपको अनुभव करते हैं, तब उमामहेश्वर बन जाते हैं ॥ ३ ॥

स्त्रियः सतीस्ताँ उमे पुंस आहुःपश्य दक्षण्वा नविचेतदन्धः ॥ कविर्यः पुत्रः सईमाचिकेतयस्ताविजानात्सपितुः पितासत् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(मे) मेरेहृदयमें मंत्रोका स्फुर्ण हो रहा है (स्त्रियः) स्त्रीका देह धारण करने परभी जे स्त्रीयें आत्मज्ञानी हैं (तान्) उन (सतीः) ज्ञानी स्त्रीयोंको पुरुष (आहुः) ऋषि कहते हैं (ऊँ) और (पुंसः) पुरुषका देह धारण करनेपरभी आत्मज्ञान रहित पुरुषोंकोही स्त्री कहते हैं (अक्षण्वान्) नेत्रोंवाला (पश्यत्) देखता है (अन्धः) अन्धा (न) नील पीत आदिरूपको नहीं (विचेतत्) जानता है ॥ नेत्र होनेपरभी आत्माको नहीं देखता है वही अन्धा है ॥ चर्म्मचक्षु रहित होनेपरभी अपने स्वरूपको जानता है, सोही देखनेवाला है (यः) जो (कविः) आत्मदर्शी (पुत्रः) स्थूल देहके उत्पादक पिताका पुत्र होने परभी (सः) सो पुत्र (आचिकेत) अपने स्वरूपको सर्वत्र व्यापक हुआ जानता है (ता) उस अभेद अवस्थाको (यः) जो (विजानात्) जानता है (सः) सो (ई) ही पुत्र अपने स्थूल देहके (पितुः) निर्माता पिताका (पिता) सूर्य मण्डलवर्ती पिता (असत्) होता है ॥ ऋग्० १ । १६४ । १६ ॥

व्याख्याः—दीर्घतमा ऋषि परंपरा गत वेदमंत्रोंको तपके द्वारा देखता है ॥ मेरे हृदयमें मंत्रोंका दर्शन हो रहा है, यह सोलमी ऋचा है ॥ स्त्रीके देह धारणकरने परभी जे स्त्रीयें आत्मज्ञानी हैं, उन स्त्रीयोंको पुरुष कहते हैं, नरदेहके धारण करने

परभी, जे पुरुष आत्मज्ञान रहित हैं उन पुरुषोंको मुनिगण स्त्री कहते हैं ॥ नेत्रोंवाला देखता है और अन्धा नीलपीत आदि रूपोंको नहीं जानता है, नेत्र होनेपरभी ज्ञानचक्षुहीन अन्धा है, और चर्म्म चक्षुरहित ज्ञाननेत्रयुक्त जो है सोही देखनेवाला है ॥ जो आत्मदर्शी पुत्र—अपने देहके उत्पन्न करनेवाले पिताकाभी अधिदैव स्वरूप पिता है, उस रुद्र पिताको सो ज्ञानी स्वात्मरूपसे साक्षात्कार करता है ॥ उस अभेद अवस्थाको जो ज्ञानी अद्वितीयरूपसे जानता है, सोही पुत्र अपने लौकिक पिताका पिता होता है, जब ज्ञानी सूर्य पुरुषमें लय हो गया, तव मनुष्य आदिपिताका भी पिता बनगया ॥ ४ ॥

यत्रा॑ सु॒प॒र्णा अ॒मृत॑स्य भा॒गमनि॑मेषं वि॒दथा॑ऽभि॒स्वर॑न्ति ॥ इ॒नो विश्व॑स्य॒ भुव॑नस्य गो॒पाः स मा॒धीरः॒ पाक॒मत्रा॒ विवे॑श ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(यत्र) जिस मण्डलमें (सुपर्णाः) सात किरण रूप सुन्दरपक्षी (अनिमेषं) निरंतर (विदथ) आठ मास पर्य्यन्त (अमृतस्य) जलके (भागं) अंशको (अभिस्वरन्ति) भूमीके सब भागोंसे पीते है, वह पिया हुआ जल, अन्तरिक्षमें (पाकं) परिपक्व हुए जलकी भस्मरूप मेघ वर्षता है, वर्षासे अन्न आदि घास उत्पन्न होता है, उसके भक्षणसे वीर्य, और वीर्यसे प्रजा प्रगट होती है (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) चराचरका (गोपाः) पालन करनेवाला (इनः) ईशान, स्वामी है (सः) सो सूर्यका अन्तर्यामी (धीरः) विषयभोगकी अभिलाषासे रहित रुद्र (मा) मेरे स्वरूपको धारण करके (अत्र)

इस भूलोकमें (आविवेश) व्यष्टिरूपसे विराजमान हुआ ॥ ऋग्० १ । १६४ । २१ ॥

व्याख्या:—इस सूर्य मण्डलमें सातकिरणमय सुन्दरपक्षी निरंतर आठमास पर्य्यन्त जलके भागको भूमीके सब भागोंसे पान करते हैं वह शोषण किया हुआ जल, अन्तरिक्षमें परिपक्क हुए जलकी भस्म होती है, सो भस्म मेघके आकारसे जल वर्षाती है, जल वर्षासे अन्न आदि वनस्पतियें उत्पन्न होती हैं, उनके भक्षणसे वीर्य और वीर्यसे मनुष्यादि प्राणि उत्पन्न होते हैं, सब चराचर जगत्का रक्षा करनेवाला ईशान स्वामी है, वह सूर्य मण्डलका पुरुष, विषय आदि भोगोंसे उपरत रुद्रदेव इस भूलोकवर्ती स्थूल देहमें, मेरे स्वरूपको धारणकरके जीव स्वरूपसे प्रविष्ट हुआ [अभ्रंवा अपांभस्म ॥ जलकी भस्मही मेघ है ॥ शतपथ ब्रा० ७ । ५ । २ । ४८] समुद्रोवा अपांयोनिः ॥ अन्तरिक्षही जलोंका स्थान है ॥ शतपथ ब्रा० ७ । ५ । २ । ५८ ॥ जो सूर्यमें पुरुष है सोही मैं हूँ ॥ यही सत्य स्वरूपकी प्राप्ति करानेवाली उपासना है ॥ ५ ॥

यस्मिन्वृक्षे मध्वर्दः सुपर्णा निविशन्ते सुवतेचाधि-विश्वे ॥ तस्येदाहुः पिप्पलं स्वाद्वग्रे तन्नोन्नशद्यः पितरं नवेद ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(यस्मिन्) जिस (वृक्षे) सूर्य मण्डलमें (मधुअदः) जल पीनेवालीं (सुपर्णाः) सुन्दर किरणरूप मधु मक्षिका (निविशन्ते) निवास करती हैं (च) और (अधि) जिसमें वास करती हैं (तस्य) उसके (अग्रे) अगले भागमें

(विश्वे) वे सब किरणरूप मक्षिकायें (स्वादु) मीठे (पिप्पलं) जलको (सुवते) वर्षाती हैं (तत्) उसमण्डलवर्ती (पितरं) पिताको (यः) जो मनुष्य (न) नहीं (वेद) जानता है (उत्) कभीसो (नइत्) नहीं (नशत्) प्राप्त होता (आहुः) आत्मवेत्ता कहते हैं ॥ ऋग्० १ । १६४ । २२ ॥

व्याख्याः—जिसमण्डलमें मधुखानेवालीं सुन्दर किरणमय मधुमक्षिका निवास करती हैं, और जिस भागमें वास करती हैं, उसके अग्र भागमें, वे सब रश्मिरूप मक्षिकायें मीठे जलको उत्पन्न करती हुई वर्षाती हैं ॥ उस आदित्यवर्ती पिता रुद्रको जो मनुष्य अभेद रूपसे नहीं जानता है वह मनुष्य कभी रुद्रको प्राप्त नहीं होता है ऐसा ऋषि कहते हैं ॥ बारंबार जन्म मरणको प्राप्त होता है [पुष्करे मधु ॥ सूर्य मण्डलमें मधु है ॥ ऋग्० ८ । ६१ । ११] असौवा आदित्यो देवमधु ॥ वह सूर्यही देवताओंका मधु है ॥ छां० उ० ३ । १ । १] यदा पश्यः पश्यते रुक्मवर्णं कर्त्तारमीशं पुरुषं ब्रह्मयोनिं ॥ तदाविद्वान् पुण्यपापे विधूय निरंजनः परमं साम्यमुपैति ॥ जब उपासक, (ब्रह्मयोनिं) व्यापक मण्डलमें स्थित, जगत्कर्त्ता निर्मल ज्योति स्वरूप (ईशं) रुद्र पुरुषको स्वात्मरूपसे देखता है, तब बुद्धिमान् पाप पुण्य मनके धर्मोंको त्यागकर शुद्ध हुआ, उत्तम शान्तिमय सुखको प्राप्त होता है ॥ जैसे नदी समुद्ररूप होती है ॥ तैसेही ज्ञानी रुद्रमय हो जाता है ॥ मु० उ० ३ । १ । ३] ब्रह्मविद् ब्रह्मैव भवति ॥ रुद्रके जाननेवाला रुद्रही होता है ॥ मु० उ० ३ । २ । ९] ब्रह्मदेवा वास्तोष्पतिं ॥ देवोंने यज्ञको स्वामी (ब्रह्म) रुद्रको प्रसन्नकिया ॥ ऋग्० १० । ६१ । ७] शिवोऽद्वैतः ॥ शिव अद्वैत है ॥ मांडूक्योपनिशद् ॥१२]

ब्रह्म और शिव ये दोनों विशेषण रुद्रके हैं [योसावादित्ये पुरुषः सोऽसावाहम् ॥ जो यह पुरुष सूर्य मण्डलमें है ॥ सो यह पुरुष मैं हूँ ॥ मा० सं० ४० । १७] ये पुरुषे ब्रह्म विदुस्ते विदुः परमेष्ठिनम् ॥ जे उपासक अपने (पुरुषे) देहमें व्यापक रुद्रको जानते हैं वेही सूर्यमण्डलवर्ती रुद्रको जानते हैं ॥ अथर्वण १० । ७ । १७] यह अभेद उपासनाही दुःख नाशक है ॥ ६ ॥

एकः सुपर्णः ससंमुद्रमाविवेश सइदंविश्वंभुवनं विचष्टे ॥ तं पाकेनमनसा पश्यमन्तितस्तं मातारेह्ळिसउरेह्ळिमातरम् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(एकः) अद्वैत (सुपर्णः) उत्तम व्यापक (सः) वहरुद्र (समुद्रं) सूर्य मण्डलमें (आविवेश) प्रविष्ट हुआ (सः) सो रुद्र, सूर्यका अन्तर्य्यामी (इदं) इस (विश्वं) सब (भुवनं) उत्पन्न होनेवाले जगत्को (विचष्टे) देखता है (तं) उस रुद्रके मण्डलको (माता) रात्री (रेह्ळि) निगल जाती है (ऊँ) और (सः) सो सूर्य (मातारं) रात्रीको (रेह्ळि) निगल जाता है (तं) उस मण्डलवर्ती रुद्रको (पाकेन) शुद्ध (मनसा) अन्तःकरणके द्वारा (अन्तितः) अपने हृदयमें (अपश्यं) मैं देखता हूँ ॥ ऋग० १० । ११४ । ४ ॥

व्याख्या:—अद्वैत व्यापक स्वरूप रुद्र है सोही उत्तम रुद्र विशेषरूपसे सूर्य देहमें प्रविष्ट होकर विराजमान है वही रुद्र सूर्य शरीरका अन्तर्य्यामी, इस सब उत्पन्न होनेवाले जगत्को साक्षी

रूपसे देखता है, उस रुद्रके मण्डलको अस्त होतेही रात्रिमाता निगल लेती है, और उदय होतेही सो सूर्य रात्रिमाताको निगल जाता है ॥ उस मण्डलवर्ती रुद्रको शुद्ध आहारके सहित निर्मल अन्तःकरणके द्वारा, अपने हृदयमें मैं अभेदरूपसे साक्षात्कार करता हूँ [गोऽर्णसः ॥ किरणोंके समुद्ररूप समुद्रमें ॥ ऋग्० १। ११२ । १८] समुद्रे अन्तः शयते ॥ सूर्य मण्डलके बीचमें विराजमान है ॥ ऋग्० ८ । ८९ । १२] समुद्रेहृदि ॥ सूर्यके मध्यमें रुद्र है ॥ मा० सं० १७ । ९९] रुद्रःखलु वै वास्तोष्पतिः ॥ दिनरूप सूर्यका स्वामी निश्चय रुद्रही है ॥ तैत्तरीय सं० ३ । ४ । १० । ३] रुक्मो वै समुद्रः पुरुषः सुपर्णः ॥ प्रकाशित सूर्य मण्डलही समुद्र है और पुरुषही सुपर्ण है ॥ शतपथ ब्रा० ७ । ४ । २ । ५] रुक्मः ॥ रुक्म नाम सूर्यका है ॥ ऋ० ७ । ६२ । ४] पुष्करमाविवेश ॥ सूर्य मण्डलमें रुद्रने विशेषरूपसे प्रवेश किया ॥ अथर्वण १२ । १ । २४] पुरुषो वै रुद्रः ॥ पुरुष ही रुद्र है ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १६] आहार शुद्धौ सत्त्वशुद्धिः सत्त्वशुद्धौ ध्रुवास्मृतिः स्मृतिलम्भे सर्वग्रन्थीनां विप्रमोक्षः ॥ आहारकी शुद्धिमें अन्तःकरणकी शुद्धि है, अन्तःकरणकी शुद्धिमें अविच्छिन्न स्मृति होती है, उस मेधाकी प्राप्तिमें विशेष करके सब मोहमयी ग्रन्थीयोंका नाश हो जाता है ॥ छां० उ० ७ । २६ । २] नतुतद्द्वितोयमस्ति ततोऽन्यद्विभक्तं यत्पश्येत् ॥ तहाँ उससे दूसरा और कुछभी, भिन्न नहीं है, जिसको देखे ॥ वृ० उ० ४ । ३ । २३] यएषोऽन्तरादित्ये ॥ जो यह पुरुष सूर्य मण्डलके बीचमें है ॥ सएषोऽन्तरें हृत्पुष्करएवाऽऽश्रितोऽन्नमत्ति सएषोऽग्निर्दिविश्रितः ॥ आदित्यवर्ती पुरुषही कहा है, सो यह

स्थूल देहके मध्य हृदयकमलमें स्थित होकर उसी स्थानमें प्राणात्मा विषयोंको भोक्ता है ॥ सोही यह अग्नि द्युलोकमें सूर्य रूपसे स्थित है ॥ प्राणयुक्त चेतनही अग्नि है ॥ आदित्य युक्त चेतनही अग्नि है ॥ यही अग्निरुद्र नामसे सूर्यका पुरुष और शरीरोंका जीव है ॥ उपाधिके लयहोनेसे एकही रुद्र है ॥ मैत्रायणी उ० ६ । २] तपसा प्राप्यतेसत्त्वं सत्त्वात्संप्राप्यते मनः ॥ मनसः प्राप्यतेह्यात्मायमाप्त्वा ननिवर्तते ॥ वैदिक कर्मसे निर्मल चित्तकी प्राप्ति होती है, शुद्ध अन्तः करणसे विवेकरूप विज्ञान प्राप्त होता है उस संशय रहित मनसे अद्वैत स्वरूप प्राप्त होता है जिस अपने वास्तविक स्वरूपको जानकर फिर संसारमें नही आता है ॥ मैत्रायणी उ० ४ । ३] यतो वाचो निवर्तन्ते अप्राप्य मनसा सह ॥ अनुभव रहित शब्द मात्र बहिर्मुख मनके साथ वाणी निर्मल स्वरूपसे लौट आती है ॥ तैतरीयारण्यक ८ । ४ । १] मनसैवेदमाप्तव्यं नेहनानास्ति किंचन ॥ मृत्योः समृत्युं गच्छति यइहनानेवपश्यति ॥ शुद्ध मनके द्वाराही यह आत्मा प्राप्त करने योग्य है, इस अधिदैव अध्यात्म उपाधिक चेतनमें कुछभेद नहीं है, इस चेतनमें जो मनुष्य नाना-रूपसे भेद देखता है ॥ सो द्वैतदर्शी अज्ञानरूप मृत्युसे बँधा हुआ जन्म मरणको प्राप्त होता है ॥ कठो० ४ । ११] अमृतस्य चेतनं ॥ अविनाशीके स्वरूपका ज्ञान करनेवालेको चेतन कहा है यही लिंग, जीव और सूर्यस्थ रुद्र है ॥ सामान्य व्यापक स्वरूपकी उपलब्धिको करानेवाला जो उपाधिक पुरुष है सोही विशेषरूप लिंग है ॥ ऋग्० १ । १७० । ४] ज्योतिरेकं बहुभ्यः ॥ बहुत स्वरूपोंको धारण करनेके लिये एक ज्योतिरूप रुद्रको जानो ॥ ऋग्० १ । ९३ । ४] आदित्यगर्भं पयसा ॥ सूर्यके मध्यमें

अवस्थित अग्निको दूधसे सिंचन करो ॥ मा० सं० २३ । ४२] अग्नि नाम रुद्रका है ॥ इस लियेही लिंगको दूधसे अभिषेक करते हैं ॥ जैसे अग्निको मथकर अग्निका हवनसे सत्कार किया जाता है, तैसेही जीवसे सूर्यस्थ पुरुषका सत्कार होता है, उस अधिदैव रुद्रसेही रुद्रका निरालम्बस्वरूप प्राप्त होता है ॥ इस देहमेंही सर्व उपाधि रहित अवस्थाका नाम जीवनमुक्ति और मरणके बाद कैवल्यमुक्ति है ॥ तथा क्रमसे ब्रह्मलोककी प्राप्ति है ॥ महेश्वरकाही ब्रह्मा, इन्द्र, भर्ग, सविता आदिनाम, कार्यकारणकी उपाधिसे हैं ॥७॥

पतङ्गमक्तमसुरस्य मायया हृदा पश्यन्ति मनसा विपश्चितः ॥ समुद्रे अन्तः कवयो विचक्षते मरीचीनां पदमिच्छन्ति वेधसः ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(असुरस्य) प्राणआदि व्यापारसे रहित रुद्रका (मायया) प्राणशक्तिके द्वारा (अक्तं) ब्रह्मारूपसे प्रादुर्भाव हुआ (पतङ्गं) सूत्रात्मादेहधारी ब्रह्माको (मनसा) शुद्ध विचारमय (हृदा) अन्तःकरणके द्वारा (विपश्चितः) बुद्धिमान् (समुद्रे अन्तः) सूर्य मण्डलके मध्यमें (पश्यन्ति) देखते हैं (कवयः) सूक्ष्मदर्शी मुनिगण (विचक्षते) स्वात्मरूपसे सर्वत्र देखते हैं (मरीचीनां) अग्निवायु सूर्य चन्द्रमाके स्थूल (पदं) स्थानको (वेधसः) सामान्य उपासक (इच्छन्ति) उपासना करते हैं ॥ ऋग्० १० । १७७ । १ ॥

व्याख्याः—प्राण आदिक सर्व व्यापारसे रहित रुद्रका मायाके द्वारा ब्रह्मा रूपसे प्रगट होनाही ब्रह्मारूप रुद्र है—यही रुद्ररूप ब्रह्माने सूर्यको रचकर स्वयं भर्गस्वरूपसे मण्डलका प्रकाशक हुआ, उस

भर्गको शुद्ध विचारमय अन्तःकरणकेद्वारा बुद्धिमान् ऋषिगण सूर्य मण्डलके वीचमें देखते हैं ॥ और ज्ञानी मुनिगण स्वस्वरूपसेही सर्वत्र देखते हैं ॥ अर्थात् यह सब प्रपंच रज्जुके कल्पित सर्पके समान मेरेमें अध्यस्त हो रहा है, इस प्रकार जे जानते हैं वेही मुनिगण हैं ॥ और सकामी प्रजा सामान्य उपासक, अग्निके अग्नि होत्रको वायुके विद्युत्को, चन्द्रमण्डलको, प्रत्यक्ष सूर्य मण्डलमय स्थानको उपासना करते हैं [**येनाऽवृतं खंचदिवंमहींचये नादित्यस्तपतितेजसाभ्राजसाच ॥ यमन्तः समुद्रे कवयो वयन्ति तदक्षरे परमेप्रजाः** ॥ जिसपुरुषके द्वारा द्यौ, अन्तरिक्ष, भूमी व्याप्त हो रहा है और जिस तेजके प्रकाशसे सूर्य तप रहा है—अक्षय सूर्यमण्डलके मध्यमें, जिस रुद्रको ज्ञानी प्रजागण ओतप्रोतरूपसे देखते हैं ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १ । ३] **समुद्रं** ॥ समुद्र नाम सूर्यका है ॥ ऋग्० ५ । ४४ । ९] **समुद्रात्** ॥ **अमृतत्वं** ॥ सूर्यसे मोक्षको प्राप्त करता है ॥ **समुद्रं** ॥ सूर्य मण्डल धाम है ॥ ऋग्० ४ । ५८ । १–११] **योनौ** ॥ रुद्रके स्वरूपका उपलब्धि स्थान सूर्य मण्डल और अपना हृदय है ।ः अथर्वण १९ । ५६ । ३] **तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः ॥ दिवीवचक्षुराततम्** ॥ व्यापक सूर्यके उस उत्तम स्वरूप रुद्रको सदाज्ञानी देखते हैं ॥ आकाशके समान प्रकाश व्यापक है ॥ ऋग्० १ ॥ २२ । २०] **प्राणो वै पतङ्गः** ॥ प्राणही पतंग है ॥ जैमिनीय ब्रा० ३ । ६ । ७ । १] **मरीच्याइव वा एता देवता यदग्निर्वायु रादित्य श्चन्द्रमा ॥ एतासां देवतानां** ॥ किरणोंके समान जो अग्नि वायु सूर्य चन्द्रमा ये सब देवता हैं, इन देवताओंकी उपासना करते हैं ॥ जैमिनीय ब्रा० ३ । ६ । ८ । १] सूर्य क्षेत्रका जो प्रकाशक अन्तर्य्यामी सोही क्षेत्रज्ञ पुरुष है ॥ ८ ॥

ऋचो अक्षरे परमेव्योमन्यस्मिन् देवाअधिविश्वे निषेदुः ॥ यस्तन्नवेद किमृचाकरिष्यति यइत्तद्विदुस्तइमे समासते ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(यस्मिन्) जिस (अक्षरे) अक्षय तेजोमय (परमेव्योमन्) सूर्यमण्डलमें (ऋचः) वेदमंत्ररूप ऋचायें (अधि) और जिसमें (विश्वे) सब (देवाः) देवता (निषेदुः) स्थित हैं (यः) जो मनुष्य (तं) उस मण्डलवर्तीको (न) नहीं (वेद) जानता तो (ऋचा) वेदपढ़कर (किं) क्या (करिष्यति) करेगा (ये) जे कर्म उपासना ज्ञानवाले हैं (ते) वे सब (इत्) ही (तत्) उस रुद्रको (विदुः) जानते हैं (इमे) ये सब (तत्) उसको प्राप्त होकर (समासते) अभेद स्वरूपसे विराजते हैं ॥ ऋग्० १ । १६४ । ३९ ॥

व्याख्याः—जिस अक्षय तेजोमय उत्तम धामरूप सूर्यमण्डलमें सब वेदमंत्र स्थित हैं और जिसमेंही सब किरणरूप देवता अवस्थित हैं ॥ जो अभेदज्ञानसे शून्य मनुष्य उस मण्डलवर्ती देवको नहीं जानता तो वेदपढ़कर क्या करेगा ॥ जे कर्म उपासनाके सहित आत्मज्ञानी हैं, वेही उस रुद्रको साक्षात्कार करनेमें समर्थ हैं, देह त्यागके पश्चात् ये सब उसको प्राप्तकर, तादात्म्यरूपसे विराजते हैं ॥ विष्णो......माधेहि परमेव्योमन् ॥ हे सूर्य आपके उत्तम स्थानमें मरणके बाद मेरेको स्थापन करो ॥ हे विष्णो व्याप्नोति स्वरश्मिभिः सर्वब्रह्माण्डान्तरालं इति विष्णुरादित्यः । हे विष्णो अपनी किरणोंके द्वारा सब ब्रह्माण्डके मध्यमें व्यापक है यह सूर्यही विष्णु है ॥ सायणभाष्य, अथर्वण १७ । १ । ६] यत्र ज्योतिरजस्रं यस्मिँल्लोके

स्वर्हितं ॥ तस्मिन्मांधेहिपावमाना मृतेलोके अक्षिते ॥ हे सोम जिसमें अविनाशी प्रकाश है, जिसमण्डलमय लोकमें सुख-रूपदेव हैं, उस मरणरहित अक्षयधाममें मेरेको स्थापनकरो ॥ ऋग्० ९ । ११२ । ७] सूर्यवर्ती पुरुषही एक ज्योतिस्वरूप है ॥ ९ ॥

इन्द्रं मित्रं वरुणमग्निमाहुरथो दिव्यः ससुपर्णो गरुत्मान् ॥ एकं सद्विप्रा बहुधा वदन्त्यग्निं यमं मातरिश्वानमाहुः ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(एकं) अद्वितीय स्वरूप (सत्) होते हुए (अग्निं) व्यापक रुद्रको (विप्राः) सूक्ष्मदर्शी ऋषि (बहुधा) बहुत प्रकारसे (वदन्ति) कल्पना करते हैं (गरुत्मान्) उदय अस्तरूपसे गमनआगमन करनेवाला (दिव्यः) द्युलोकवासी (सुपर्णः) रश्मिवान् है (आहुः) कहते हैं (अथ) और (सः) सोही (इन्द्रं) इन्द्र (मित्रं) मित्र (वरुणं) वरुण (अग्निं) अग्नि (यमं) यम (मातरिश्वानं) वायु आदि नामोंको धारण करता है (आहुः) ऐसा ऋषि कहते हैं ॥ ऋग० १ । १६४ । ४६ ॥

व्याख्याः—अद्वितीय स्वरूप होते हुए व्यापक रुद्रको अतीन्द्रियदर्शी ऋषि अनेक प्रकारसे वर्णन करते हैं, उदय अस्त-रूपसे गमनागमन करनेवाला द्युलोकवासी, सुन्दर सप्त किरणवाला कहते हैं, और सोही इन्द्र, मित्र, वरुण, अग्नि, यम, वायु आदि नामोंको धारण करता है, ऐसा ऋषि कहते हैं [रुद्रो वा अग्निः ॥ रुद्रही अग्नि नामवाला है ॥ काठक सं० २६ । २] सुपर्णोसी

गरुत्मान् ॥ हे अग्ने तुम सूर्यरूप गरुड हो ॥ मा० सं० १७। ७२ ॥ काठस सं० १९ । १२] **वायु वैं तार्क्ष्यः प्राणोवयो वै सुपर्णः** ॥ वायुही तार्क्ष्य है ।। प्राण पक्षीही सुपर्ण है ।। शांखायन ब्रा० १८। ४] **त्रयः सुपर्णाः** ॥ अग्निवायु सूर्यरूप तीन पक्षी हैं ॥ अथर्वण ५। २८। ८] **सप्त सुपर्णाः** ॥ सात किरण, सात अग्नि जिह्वा, सातवायु, ये २१ सुन्दर पक्षी हैं ॥ अथर्वण ८। ९। १७] जैसे चेतनके तीन स्थान–हृदय, कण्ठ, नेत्र है ॥ तैसेही रुद्रके प्राप्तिरूप लिंग अग्नि, वायु, सूर्य है [**दिव्यः सुपर्णः सहस्रपात् शतयोनिः** ॥ द्युलोक निवासी हजारों किरणवाला, कार्यकारण भेदसे असंख्य नाम रूपोंको धारण करनेवाला सूर्य है ॥ अथर्वण ७। ४२। २] **हरिः सुपर्णः** ॥ तमरूप अन्धकार नाशक सूर्यही सुपर्ण है ॥ अथर्वण १९। ६५। १] **दिव्यः सुपर्णः सवीरो अदितेः पुत्रः** ॥ ब्रह्माका पुत्र द्युलोकवासी सुन्दर रश्मिवाला एक वीर सूर्य है॥ अथ १३। २९] **दिवमारुहत् तपसातपस्वी ॥ सयोनिमैति सउजायते पुनः सदेवानामधिपतिर्बभूव** ॥ द्यौमें आरूढ हुआ तेजसे तपनेवाला सो सविता (योनि) मण्डलको अस्तरूपसे प्रेरणा करता है, सोही उदयरूपसे फिर प्रगट होता है ॥ सो रुद्रही देवताओंका अधिपति हुआ ॥ **रोचसेदिवि रोचसे अन्तरिक्षे पतङ्ग पृथिव्यां रोचसे रोचसे अप्स्वन्तः** ॥ **उभासमुद्रौ** ॥ हे प्राणदेवतारुद्र तुम द्यौमें प्रकाशते हो, आकाशमें प्रकाशते हो, भूमिमें प्रकाशते हो, व्यापक सूर्य चन्द्रमाके दोनों मण्डलोंमें प्रकाशित हो॥ **विष्णुर्विचित्तःशवसाधितिष्ठन्** ॥ नानाकिरण समूहसे युक्त (**शवसा**) मण्डलबलके द्वारा अवस्थित हुआ व्यापक सूर्य है ॥ **पक्षौहरेर्हंसस्य पततः स्वर्गं** ॥ अन्धकारका नाशक गमन

करनेवाला सूर्यके दक्षिणायण उत्तरायणरूप दोनों पाँखे स्वर्गमें गिरती हैं ॥ अथर्वण १३ । २ । २५–३०–३१-३८] सरति गच्छति सततं इति सूर्यः ॥ निरंतर उदय अस्तरूपसे चलता है यही सूर्य ॥ सायण भाष्य अथर्वण १७ । १ । ६] सूर्यस्य ॥ सबका प्रेरक सूर्य है ॥ ७ । ७९ । २] सूर्यका अर्थ व्यापक है ॥ अग्निका नाम सुपर्ण है ॥ अथर्वण ४ । १५ । २] इन्द्रस्य युज्यःसखः ॥ इन्द्ररूप सूर्यका मित्र विष्णु है ॥ ऋग० १ । २२ । १९ ॥ अथर्वण ७ । २६ । ६] देवानाममृतस्य पत्नी कुहूः ॥ अमावस्या देवरूप पितृओंके अन्नका पालन करनेवाली है ॥ अथ० ७ । ४९ ।] अमावस्या विष्णोः पत्नीः ॥ अमावास्या अग्निकी रक्षित तिथी है ॥ अथ० ७ । ४८ । ३] इन्द्रनाम अग्निका है ॥ अथ० ७ । १ । १] विष्णुका तेज अग्निवायु सूर्य है ॥ अथ० १० । ५ । २५–२८] अग्नेत्रेधात्रयाणि विद्माते धाम ॥ हे अग्ने आपके तीनों स्थानों में तीनरुप हैं, भूमीमें अग्नि, अन्तरिक्षमें वायु, स्वर्गमें सूर्यहै हम जानते हैं ॥ ऋग० १० । ४५ । २] इन्द्राग्न्योः ॥ सूर्य अग्नि दोदेवता हैं ॥ अथ० १६ । ८ । २७] विष्णुः ॥ द्यौही विष्णु है ॥ अथ० ६ । ३ । १] विष्णु विशेपण अग्नि और सूर्यका है ॥ इन्द्र अग्निका विशेषण है ॥ अथ० ९ । ५५ । ६] चेतन ज्योति ॥ और विष्णु सूर्य है ॥ अथ० १७ । १ । १९] अश्वत्थः ॥ अश्वत्थनाम सूर्यका है ॥ यह सूर्य मण्डल किरणरूप शाखाओंसे विश्व व्याप्त हो रहा है ॥ इस व्यापक पिप्पलवृक्षमें ज्योतिस्वरूप अग्नि छिपा है ॥ अथ० १९ । ३९ । ६] भर्गः । ज्योति है ॥ अथ० १९ । ३६ । ६] भर्गः ॥ तेजरूप अग्नि है ॥ अथ० १९ । ३७ । १] हरः ॥ तेजरूप हर है ॥ अथ० १९ । २७ । १०] मुनेः ॥ मनन

शीलरुद्रका स्थान सूर्य है ॥ अथ० ७ । ७९ । १] ज्योतिर्हरः सवितः ॥ हरः ॥ हे प्रेरक तूही हरनामवाला है ॥ ऋग० १० । १५८ । २] स्वर्ज्योतिरगामहम् ॥ सूर्यके अन्तर्य्यामी ज्योतिको मैं प्राप्त हुआ हूँ ॥ काण्व सं० २ । ८ । ६ । ३ ॥ मा० सं० १७ । ६७] मृत्यु वैं तमो ज्योतिरमृतं ॥ मृत्यो र्माऽमृतं गमय ॥ मृत्युही तम है अमृतही ज्योति है ॥ मरणसे अविनाशी ज्योतिमें मेरेको हे मंत्रदेवता तू लेजा ॥ बृ० उ० १ । ३ । २८] जैसे क्षुद्र नदी नाले गंगाको मिलकर समुद्रमें जाते हैं ॥ उसी प्रकार सूर्यदेहके देही रुद्रको ज्ञानी प्राप्त होकर ब्रह्माको प्राप्त होते हैं और ब्रह्मा महाप्रलयमें निर्विकारी रुद्रको प्राप्त होता है ॥ इस प्रकारही प्रत्येक् त्रिलोकोंके प्राणीयोंकी गति है ॥ एक चेतन मायाकी उपाधियोंसे नाना रूप नामवाला प्रतीत होता है [सुपर्णं विप्राः कवयो वाचोभिरेकं सन्तं बहुधा कल्पयन्ति ॥ उस सुन्दर व्यापक अद्वैतस्वरुप होतेहुएको, कार्यकारण भेदकोलेकर असंख्य नामरुपोके सहित अपनी २ वाणीयोंकेद्वारा कल्पना करते हैं ॥ ऋग्० १० । ११४ । ५] यथा सौम्यैकेनमृत्पिण्डेनसर्वं मृन्मयं विज्ञात ँ स्याद्वाचाऽऽरम्भणं विकारो नामधेयं मृतिके त्येवसत्यं ॥ उद्दालक पिताने कहा हे श्वेतकेतुपुत्र जैसे एक मट्टीके पिण्डरूप ढेलेका ज्ञान होजानेपर, सब नामरूपवाले घट शराव आदि पदार्थ मृत्तिकाके कार्य मात्रोंका ज्ञान हो जाता है ॥ जो कुछ वाणीका विषय विकाररूप कार्य है, वह नाम मात्र कहनेकोही है वास्तवमेंतो मट्टीही सत्य है ॥ तैसेही अनेक नामरूप कहनेमात्र हैं और सत्यचेतन धनतो सर्वदा द्वैतरूप भ्रमसे रहित अखण्ड परिपूर्ण एक रस अद्वैत हैं ॥ छां० उ० ६ । १ । ५]

जैसे चेतन देहीके देहद्वारा नख केश प्रगट होते हैं, तैसेही मायिक महेश्वरके मायादेहसे जड प्रपंच प्रगट होता है ॥ वह कार्यात्मक जड प्राणशक्तिकाही अवस्थान्तर है ॥ उस कार्यमें प्राणशक्ति छिपी हुई है और कहीं प्रगट है ॥ जहाँ प्राणशक्ति प्रगट है तहाँ महेश्वरका देव दैत्य मनुष्य आदि प्राणिमात्र विशेष स्वरूप हैं ॥ जहाँ प्राणका व्यापार नहीं तहाँ विकाश प्रतीत नहीं होता ॥ जैसे काष्ठमें अग्निका सामान्य रूप है, तैसेही जडमात्रमें चेतनसामान्यरुपसे व्यापक है ॥ अग्नि सामान्य विशेषरुपसे व्यापक है, तैसेही महेश्वर सामान्य विशेषरुपसे व्यापक है ॥ १० ॥

हंसः शुचिषद्वसुरन्तरिक्षसद्धोतावेदिषदतिथि दुरोणसत् ॥ नृषद्वर सदृत सत्व्योमसदब्जागोजा ऋतजा अद्रिजा ऋतं ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(ऋतं) महा व्यापक रुद्र (व्योमसद्) अनन्ताकाश व्यापी महाप्रलयमें स्थित है (ऋतजाः) रुद्रसे प्रगट होनेवाला ब्रह्मा (वरसत्) सत्यलोकमें स्थित है (अद्रिजाः) सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्मासे प्रगट होनेवाला प्रजापति (ऋतसत्) यज्ञरुपसे विराजमान हैं सोही प्रजापति (अतिथिः) बृहस्पति, इन्द्र, सोमरुपसे (दुरोणसत्) जनलोक महर्लोकमें स्थित हैं (अब्जाः) द्यौसे प्रगट हुआ (हंसः) सूर्य (शुचिसत्) द्यौमें स्थित है (वसुः) वायु (अन्तरिक्षसत्) आकाशमें स्थित है (होता) अग्नि (वेदिसत्) यज्ञवेदिमें स्थित है (गोजाः) सूर्य मण्डलसे प्रगट होनेवाला पुरुषही (नृसत्) मनुष्य आदि शरीरोंमें चेतनरुपसे स्थित है ॥ ऋग्० ४ । ४० । ५ ॥

व्याख्या:—महाव्यापक रुद्र अनन्ताकाशव्यापी महाप्रलयमें स्थित है महेश्वरसे उत्पन्न होनेवाला ब्रह्मा उत्तम सत्यलोकमे स्थित है, ब्रह्मासे प्रगट होनेवाला अथर्वा प्रजापति महाविराट् देहको धारण करके स्थित है सोही प्रजापति अतिथिरुपवाला. बृहस्पति, इन्द्र, सोम नामसे जनलोक महर्लोकमें स्थित हैं, द्यौसे प्रगट होनेवाला सूर्य पवित्र द्यौमें स्थित है, वायु अन्तरिक्षमें स्थित है।। अग्नि भूमिरुप वेदिमें स्थित है, सूर्यमण्डलमें विशेपरुपसे प्रकाशमान् भर्गही मनुष्यादि शरीरोंमें चेतनरुपसे विराजमान हुआ।। प्रत्येक् प्राणियोंका सम्बन्ध सूर्यसे है, इसलियेही प्रत्येक त्रिलोंकोंके प्राणि सूर्यमण्डलवर्ती रुद्रकीही उपासना करते हैं [ऋतं सत्यं परं ब्रह्म पुरुषं ॥ उत्तम व्यापक रुद्र पुरुषही सत्य स्वरुप है ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १२ । १] जिसलोकका मुख्य देवता है।। उसको उपासना करना चाहिये, और विभुतियोंकोभी उसका अवयव मानकर पूजन करना ।। ११ ।।

चत्वारि शृङ्गा त्रयो अस्य पादा द्वेशीर्षे सप्त हस्तासो अस्य ।। त्रिधा बद्धो वृषभोरोरवीति महोदेवो मर्त्याँआ विवेश ।। १२ ।।

अन्वयार्थः—(अस्य) इस रुद्रके (त्रयः) तीन (पादाः) चरण (त्रिधा) तीन प्रकारसे (बद्धः) गुँथाहुआ है (अस्य) इसके (चत्वारिशृङ्गा) चारसींग (द्वेशीर्षे) दोशिर (सप्त) सात (हस्तासः) हात (वृषभः) सब पदार्थोंको सिंचन करनेवाला (रोरवीति) महाशब्द करनेवाला (महः) बड़ा

(देव) रुद्र (मर्त्यान्) मृत्यु मुखवाले शरीरोंको रचकर (आविवेश) प्रविष्टहुआ ॥ ऋग्० ४ । ५८ । ३ ॥

व्याख्या:—इस रुद्रके तीनचरण गार्हपत्य, दक्षिणाग्नि, आहवनीय है, तीन सवनसे गुँथा हुआ है ॥ इसके चार सींगरुप अग्नि, आहवनीय है, तीन सवनसे गुँथा हुआ है ॥ इसके चार सींगरुप अग्निवायु सूर्य चन्द्रमा है, दोशिर घोर अघोर हैं, छन्दमय सात हात हैं, कामनाओंकी वर्षाकरनेवाला वडा भारी शब्द करता हुआ महादेव मनुष्योंको स्वर्गकी प्राप्ति करानेकेलिये पुण्यरुपसे प्रवेश करगया ॥ दूसरा अर्थ—इस रुद्रके तीन चरणरुप विराट्, हिरण्यगर्भ, अव्याकृत है, तीन प्रकार, विश्व, तैजस, प्राज्ञरुपसे वँधा है ॥ इसके चार सींगरुप चार मुक्ति है, दो शिररुप उपासना और आत्मज्ञान, सातलोकरुपहात हैं, मैं, एक हूँ वहुत होऊँ इस संकल्पको करनेवाला महादेव ब्रह्मा स्वरुपसे मरणधर्मी देव दानव मनुष्य आदिके शरिरोंको रचकर जीवनरुपसे विराजमान हुआ [अव्यस्तश्चव्यचसश्चबिलंविष्यामिमायया ॥ सर्व व्यापकता रहित व्यष्टिदेह उपाधिक जीवका और समष्टि व्यापक देवका प्राप्ति स्थानरूप हृदयको (मायया) अज्ञानसे, रहित करता हूँ ॥ अथर्वण १९ । ६७ । १] इन्द्रजीव सूर्यजीव देवाजीवा जीव्यासमहम् ॥ हे अग्ने (जीव) तुम आयुमान् हो, हे सूर्य तुम वहुत आयुष्मान् हो हे देवताओ तुम दीर्घ जीवनवाले हो ॥ तुम सबकी कृपासे मैं उपासकभी वहुत जीनेवाला हूँ ॥ अथर्वण १९ । ७० । १] तस्याभिध्यानात् विश्वमाया निवृत्तिः ॥ उस रुद्रके निरंतर ध्यानसे सब अज्ञानरूप माया जाल नाश हो जाता है ॥ श्वेता० उ० १ । १०] माया मायिनां ॥ प्रसिद्ध लोकमें इन्द्रजालके खेल करनेवालोंकी माया

हैं ॥ तैत्तरीय सं० ३। १। ११। ७] माया शब्द अज्ञान और मिथ्याका विशेषण है ॥ जब रुद्रकी दया होती है, तबही अनादि अज्ञानरूप मोहसे उपासक छूटता है ॥ १२ ॥

अ॒ग्निर॑स्मि॒ जन्म॑ना जा॒तवे॑दा घृ॒तं मे॒ चक्षु॑र॒मृतं॑म आ॒सन् ॥
अ॒र्कस्त्रि॒धातू॒ रज॑सो वि॒मानो॑ऽज॑स्रो घ॒र्मो ह॒विर॑स्मि॒ नाम॑ ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(जन्मना) महेश्वरसे जन्म पानेवाले ब्रह्मासे प्रगट हुआ (मे) मेरे अग्नि सोमात्मकदेहसे (त्रिधातुः) भूमी, अन्तरिक्ष, द्यौको धारण करनेवाला (अग्निः) व्यापक रुद्र (अस्मि) हूँ (हविः) हविको भक्षण करनेवाला पृथिवीमें (अर्कः) पूज्य अग्नि मैं हूँ (रजसः) अभ्रमण्डलको (विमानः) रचनेवाला अन्तरिक्षमें (जातवेदाः) वायुरूप इन्द्र मैं हूँ (अजस्रः) अक्षय (घर्मः) सूर्य (नाम) संज्ञावाला (अस्मि) मैं हूँ (घृतं) प्रज्वलित अग्निको (अमृतं) वायुको (चक्षुः) सूर्यको (मे) मेरा स्वरूप जानकर उपासना करें ॥ इन तीनोंके द्वारा सब प्रजाओंकी रचना, पालन, संहार आदि कार्य (आसन्) होते हैं ॥ ऋग० ३। २६। ७ ॥

व्याख्या:—महेश्वरसे उत्पन्न होनेवाले ब्रह्मासे मैं महेश्वर प्रगट हुआ, मेरे अग्नि सोमात्मक देहसे तीनों लोकोंको धारण करनेवाला व्यापक मैं रुद्र हूँ, हविको भक्षण करनेवाला भूमीमें पूज्य अग्नि मैं हूँ, अन्तरिक्षमें जलका रचनेवाला वायुरूप इन्द्र मैं हूँ, द्योमें अक्षय तेजरूप सूर्य नामवाला मैं हूँ ॥ अग्नि, वायु, सूर्यको मेरा स्वरूप जानकर उपासक पूजें ॥ ये तीनों देवता जगत्की रचना पालन संहार करनेमें समर्थ होते हैं [अर्कोवा अग्निः ॥

अर्कही अग्नि है ॥ काठक सं० २१ । ५] वायुर्वै जातवेदा ॥ वायुही जातवेदा है ॥ ऐत्तरेय ब्रा० १० । ८] वायुर्वै वृष्ट्यः ॥ वायुही जल वर्षाता है ॥ तैत्त० सं० २ । ४ । ९ । १] अमृतं खलुवै प्राणाः ॥ निश्चय प्राणही अमृत हैं ॥ तै० सं० ५ । २ । ९ । २] प्राणो वै वायुः ॥ प्राणही वायु है ॥ तै० सं० २ । १ । १ । २] असौवा आदित्यो घर्मः ॥ यह सूर्यही घर्म है ॥ काठक सं० ३१ । ६] सत्यंवै चक्षुः । प्रत्यक्ष सूर्यही चक्षु है ॥ मैत्रायणी सं० १ । ८ । १] तेजोवैं घृतं ॥ तेजरूप अग्निही घृत है ॥ तै० सं० २ । २ । ९ । ४] सब रुद्र स्वरूपही है ॥ १३ ॥

अहंमनुरभवं सूर्यश्चाहं कक्षिवाँ ऋषिरस्मिविप्रः ॥
अहंकुत्सं मार्जुनेयन्यृञ्जेहं कविरुशना पश्यतामा ॥१४॥

अन्वयार्थः—(मनुः) मनु (सूर्यः) सूर्य (कक्षिवान्) कक्षिवान् (ऋषिः) मंत्रदृष्टा (विप्रः) ज्ञानी (अहं) मैं वामदेव (अस्मि) हूँ (आर्जुनेयं) आर्जुन्या नामकी माताका पुत्र (कुत्सं) कुत्सको (निऋञ्जे) निरंतर सिद्ध बनानेमें (अहं) मैं हूँ (कविः) कविपुत्र (उशना) शुक्राचार्य्य आदि नामको धारण करनेवाला (अहं) मैं (अभवं) हुआ (मा) मेरे सर्वज्ञ स्वरूपको (पश्यता) देखो (च) और मेरे समान बनो ॥ ऋग्० ४ । २६ ॥ १ ॥

व्याख्याः—वामदेवको गर्भमेंही सर्वज्ञ रुद्रका स्वरूपसे ज्ञान हुआ, मनु, सूर्य, दीर्घतमाका पुत्र मंत्र दृष्टा महर्षि ज्ञानी कक्षिवान् मैं वामदेव नामका मुनि हूँ, आर्जुन्या नामकी ब्राह्मणीका पुत्र

कुत्स नामके ऋषिको सिद्ध बनानेमें, मैं हूं ॥ अर्थात् रुद्र मैं हूं रुद्रकी कृपासे सिद्धि प्राप्त करी ॥ कविपुत्र शुक्राचार्य्य आदि नामको धारण करनेवाला मैं हुआ, मेरे सर्व व्यापक स्वरूपको तुम सब देखो, और मेरे समान बनो ॥ अज्ञानसे बन्धन ज्ञानसे निवृत्ति यह अनादिशान्त प्रवाह है [यएव वेदाहं ब्रह्मास्मीति ॥ सइद ꣳ सर्वं भवति तस्यहन देवाश्चानु भूत्या ईशते ॥ आत्माह्येषा ꣳ सभवति ॥ अथयोऽन्यां देवतामुपास्ते ऽन्योऽसावन्योऽहमस्मीति न सवेद यथा पशुरेव ꣳ सदेवानां यथाह्वै बहवः पशवो मनुष्यं भुंज्युरेव मेकैकः पुरुषो देवान् भुनक्ति ।' जो मनुष्य मैं रुद्र हूं इस प्रकारही जानता है सो यह सब हो जाता है प्रसिद्ध देवताभी उस ज्ञानीके समान सामर्थ्यवाले नहीं होते सर्वज्ञ ऐश्वर्यके रोकनेको समर्थ कभी नहीं होते हैं क्योंकि वह इन सब देवताओंका स्वरूप होता है, और जो मनुष्य अपनेसे भिन्न मानकर देवताकी उपासना करता है यह देवता दूसरा है और मैं दूसरा हूँ इस प्रकारकी भेदबुद्धिवाला सो अपने अधिदैव स्वरूपको नहीं जानता है, जैसे गौ आदि पशु होता है उसी प्रकार सो उपासक देवताओंका पशु है ॥ जैसे वहुतसे पशु मनुष्यको दूध सवारी आदिसे पालन करते हैं, इसी प्रकार एक २ पुरुष देवताओंको पालन करता है ॥ वृ० उ० १ । ४ । १०] जैसे मनुष्य प्रतिकुल पशुको ताडन करता है तैसेही प्रतिकुलको देवता शाप आदि विघ्नोंसे दुःख देते हैं ॥ और आत्मवेत्ताको सत्कार करते हैं ॥ एतस्मिन्नुदरमन्तरं कुरुते ॥ अथ तस्य भयं भवति ॥ इस निराकार रुद्रमें थोड़ासा भेद करता है और उस भेदवादीको जन्ममरणका भय होता है ॥ तैत्तरीयारण्यक ८ । २] सत्यहीन्द्रः सहोवाच

मामेव विजानीहि ॥ सत्यही इन्द्रका स्वरूप है ॥ सत्यनिष्ठ इन्द्रने कहा, हे प्रतर्दन मेरे स्वरूपको जानलें ॥ मैं अपने सत्य स्वरूपके प्रभावसे विश्वरूप, कालखंज पुलोमा विरोचन आदितीनों लोकोंके दैत्योंका मारा, वेदविमुख नास्तिक यतिरूपधारी दैत्योंको मारा ॥ इनके वधकापाप मेरेको जरामी नहीं लगा क्योंकी इस इन्द्र देवताके आत्माको सर्व व्यापक अद्वैतरूपसे जानता हूँ सोही चेतनघन मैं इन्द्र हूँ ॥ जो कोईभी आत्मज्ञानी मेरे स्वरूपको अपना स्वरूप जानता है, सोभी मैं इन्द्र हूँ, जिस किसीको अपने स्वरूपका साक्षात्कार ज्ञान होता है, वह पुरुष अपने स्थूल आदि देहके अभिमानको त्यागकर, समष्टि स्वरूपको लक्षकरके मैं सर्व व्यापक जगत्की उत्पत्ति स्थिति लय आदि करनेवाला महेश्वर हूँ ॥ इस प्रकार अपने शिष्य आदि प्रजाको उपदेश करता है ॥ ऐसे उपदेष्टाके देहको परब्रह्म मानकर कोई मनुष्य उपासना करे ॥ और अपनेको जीवमानता हुआ, अन्यदेवताओंकी अवहेलना करे वह मनुष्य प्रच्छन्न राक्षस है ॥ **सहोवाच प्राणोऽस्मि प्रज्ञा-त्मातंमामायुरमृतमित्युपास्स्व** ॥ प्रसिद्ध भगवान् इन्द्रने कहा हे प्रतर्दन, प्राणशक्ति उपाधिक मायिक महेश्वर मैं हूँ, मेरेको जगत् उत्पत्ति स्थितिरूप आयु और संहारके सहित मोक्ष जानकर उपासना कर ॥ अर्थात् तू मेरेको अपना स्वरूप जानकर ध्यानकर ॥ **एष लोकाधिपतिः ॥ एष सर्वेशः ॥ सयआत्मेति विद्यात्** ॥ यह प्रज्ञात्माही लोकपाल है यही सब लोकोंका स्वामी है, यही सर्वेश्वररूप महेश्वर है इसको जो कोई पुरुष अपना स्वरूप जानता है सो महेश्वरस्वरूप है ॥ कौषीतकि ब्राह्मणारण्यक० ३ । १–२–८] जैसे पितासे पुत्र उत्पन्न होकर अवस्थांतरमें पिता बन जाता है ॥ तैसेही उपदेशक गुरुसे शिष्य उत्पन्न होकर काला-

न्तरमें गुरु बनजाता है ॥ जब दयालुगुरु अपने शिष्यको कहता है हे शिष्य तू मेरेकोही अद्वैत ब्रह्म जानकर उपासनाकर ॥ तब शिष्य गुरुका ध्यान करता हुआ परिपक्व अवस्थामें महेश्वर होजाता है ॥ जैसे स्वल्प जलवाले नदीनाले समुद्रगामी महानदीको प्राप्त होकर स्वयं समुद्र हो जाते हैं ॥ आत्मनिष्ठ गुरुकी प्राप्तिसे शिष्य-स्वयं रुद्र स्वरूप हो जाता है ॥ १४ ॥

गर्भेनुसन्नन्वेषामवेदमहंदेवानां जनिमानि विश्वा ॥
शतंमापुरआयसीररक्षन्नधश्येनोजवसा निरदीयम् ॥१५॥

अन्वयार्थः—(गर्भेनु) माताके गर्भवासमेंही (सन्) स्थित हुआ (अहं) मैं वामदेव (एषां) इन (देवानां) देवताओंके (विश्वा) सब (जनिमानि) जन्मोंको (अनु) क्रमपूर्वक (अवेद) जानगया (शतं) असंख्य (आयसीः) लोहके समान दृढ़ जालीवालीं (पुरः) तीन देहरुप नगरीं (मा) मेरेको (अरक्षन्) रक्षाकरती हुई आवरणरुप हैं (अध) और जैसे (श्येनः) बाजपक्षी अपने बन्धनको नष्ट करके (जवसा) वेगसे चला जाता है ॥ उसी प्रकारमें भी संसारके मोहरुप बन्धनसे (निरदीयं) निकलगया हूँ ॥ ऋग० ४ । २७ । १ ॥

व्याख्याः—माताके गर्भमें स्थित हुआही मैं वामदेव इन देवताओंके सब जन्म कर्मोंको भली प्रकार जान गया, जैसे सैकड़ों लोहके सलियोंसे युक्त पींजराको बाजपक्षी नाशकरके बडे वेगसे उड जाता है, उसी प्रकार वासनाकेद्वारा अनन्त शरीर धारण करने वाले तीन देहमय पुर मेरेको जीवरूपसे बाँधकर रक्षा करते हैं, उन कल्पित सत्ताके पुरोंको अधिष्ठानमें लय करके मुक्त हो गया

हूँ ॥ इस अवस्थावालेके प्राण परलोकमें गमनरूप व्यापार न करते हुए उसी स्थान व्यापी सामान्य चेतनमें विशेष चेतन लयहो जाता है ॥ जैसे विशेष बुद्बुदा अपने पहिले सामान्य जलमें लय होता है ॥ उसी प्रकार उपाधिक चेतनका निरुपाधिक अवस्थाही लयहोना है ॥ १५ ॥

संयद्वयंयवसादोजनानामहं यवाद उर्वज्रे अन्तः ॥
अत्रायुक्तोवसातारमिच्छादथोअयुक्तं युनजद्ववन्वान् ॥१६॥

अन्वयार्थः—(जनानां) प्रगट होनेवाले प्राणियोंके (उरुअज्रे) विस्तृत हृदय स्थानके (अन्तः) मध्यमें स्थित है (यवसदः) यवके घासको भक्षण करनेवाले हम पशु हैं (यवअदः) यव अन्नके खानेवाले (वयं) हम मनुष्य हैं (सं) जन्मसे मरण पर्य्यन्त (यत्) जो व्यवहारिक ज्ञान है सोहीज्ञान स्वरूपसे चेतन (अत्र) इस स्थूल देहमें (अहं) वसुक्रनामका ऋषि मैं (अवसातारं) देहसे अपने स्वरूपको भिन्न जानता हूँ (अथ) और मेरे समान (युक्तः) अन्तर्मुख वृत्तिवाला जो कोईभी अपने स्वरूपको जाननेकी (इच्छत्) इच्छा करता है, वह मुक्त होजाता है (ववन्वान्) विषयोंको सेवन करनेवाले (अयुक्तं) बहिर्मुखवालेको (युनजत्) संसारमें वारंवार बाँधता है ॥ ऋग० १० । २७ । ९ ॥

व्याख्याः—यवके घासको भक्षण करनेवाले गौ आदि पशु हम हैं, यवरूप अन्नके भोजन करनेवाले हममनुष्य हैं, इस प्रकारका जोज्ञान प्राणियोंके विस्तृत हृदयस्थानके बीचमें है सोही ज्ञान इन्द्र भगवानकी कृपासे मैं वसुक्र नाम ऋषि सर्वज्ञ व्यापकताको

प्राप्त हुआ हूँ ॥ मैं अपने ज्ञानस्वरूपको देहके संघातसे सर्वदा पृथक् मानता हूँ, और जो कोईभी पुरुष वैराग्ययुक्त अपने स्वरूपको, मेरे समान जाननेकी इच्छा करता है वह मुक्त हो जाता है ॥ तथा वैराग्य रहित बहिर्मुख विषयाकार वृत्तिवाला पुरुष वारंबार जन्ममरणके बंधनसे बँधता है [यस्यानक्षादुहिता जात्वासकस्ताँ विद्वाँअभिमन्याते अन्धाम् ॥ जिस इन्द्रकी दुहिता, चेत्तन इन्द्रमें अधिष्ठित हुई भिन्नरूपसे प्रतीत होती है सोही अद्भुत माया दुहिता है वह जड स्वभाववाली समर्थ्य माया प्रलय और ज्ञान दशाके समय मेरेमें लय होती है ॥ कौन विद्वान् उस अचेतन मायाको मेरे अधिष्ठान चेतन स्वरूपसे भिन्न सत्ता मानेगा ॥ अर्थात् मेरेसे भिन्न माया नहीं किंतु मैं वसुक्र अवश्य भिन्न हूँ । जैसे तरंग जलसे भिन्न नहीं परंतु तरंगसे जलभिन्न है ॥ तैसेही कल्पितरुप विकारी अवस्था, निर्विकारी सत्तासे प्रथक् नहीं है उस विकारी सत्तासे निर्विकारी सत्ता अवश्य भिन्न है ॥ ऋग्० १० । २७ । ११] इसप्रकार इन्द्रसे ज्ञान पाकर वसुक्र सर्वज्ञ होगया ॥ १६ ॥

अहं रुद्रेभि र्वसुभिश्चराम्यहमादित्यैरुतविश्व दैवैः ॥
अहं मित्रावरुणोभाविभर्म्यहमिन्द्राग्नीअहमश्विनोभा ॥१७॥

अन्वयार्थः—(अहं) मैं (रुद्रेभिः) एकादश रुद्रोंके स्वरुपसे (चरामि) विचरती हूँ (वसुभिः) वसुओंके रुपसे स्थित हूँ (अहं) मैं (आदित्यैः) आदित्योंके रुपसे व्यापक हूँ (उत) और सबदेवोंके रुपसे हूँ (अहं) मैं (उभा) दोनों (मित्रावरुण) मित्र वरुणको (बिभर्मि) धारण करती हूँ (अहं) मैं (इन्द्राग्नी) सूर्य अग्निको धारण करती हूँ (अहं)

मैं (उभा) दोनों (अश्विना) अश्वनी कुमारोंको धारण करती हूँ ॥ ऋग्० १० । १२५ । १ ॥

व्याख्याः—अम्भृण महर्षिकी पुत्री वाङ्नामवाली अपनी आत्माको सर्वज्ञ जानकर उपदेश करती है ॥ एकादशरुद्रोंके स्वरूपको धारण करके मैं कन्या अन्तरिक्षमें अधिदैवरूपसे विचरती हूँ और देहमे दशप्राण ग्यारमाँ मन अध्यात्मरूपसे विचरती हूँ, आठ वसुओंके स्वरूपको धारणकरके भूमीमें वासकरती हूँ, और देहमें आठ धातुरूप हूँ, स्वर्गमें बारा आदित्यरूपसे मैं हूँ ॥ और सब देवता स्वरूप मैं हूँ, सूर्य अग्नि मैं हूँ, दोनों मित्रवरुणके रूपको मैं धारण करती हूँ, दोनों अश्विनी कुमारके रूपको मैं धारण करती हूँ, मैं सबका पालन करती हूँ [**आपोवा इदमग्रे सलिलमासीत्तस्मिन्प्रजापतिर्वायुर्भूत्वाऽचरत्सइमामपश्यत्तां वराहो भूत्वाऽहरत्तां विश्वकर्मा भूत्वाव्यमार्ट् साऽप्रथतसा पृथिव्यभवत्** ॥ खण्ड प्रलयमें इस चराचरकी उत्पत्तिसे पहिले व्यापक जलहीथा उस दिव्यजलमें अथर्वा वायुरूपको धारणकरके विचरताभया, उसने इस भूमीको जलमयी देखा, उस जलमग्नहुई भूमीको (**वराहः**) उत्तम जलका आहार करनेवाला सूर्यरूपको धारणकरके जलको किरणसे शुष्ककर उद्धार किया, फिर उस भूमीको सूर्यने विश्वकर्मा नामको धारण करके मार्जनकिया, किसो भूमी फैलगई, फैलनेसे सो पृथिवी नामवाली हुई ॥ तै० सं० ७ । १ । ५ । १] वराहः ॥ उत्तम दिनरूप सूर्यका नाम वराह है ॥ ऋग्० ९ । ९७ । ५८] **अस्येदुमातुः सवनेषुसद्यो महः पितं पपिवाञ्चार्वन्ना ॥ मुषायद्विष्णुः पचतं सहीयान् विध्यद् वराहं तिरो अद्रिमस्ता** ॥ सब जगत्का निर्माण करनेवाला, यज्ञके प्रातआदि तीनों सवनोंमें, अग्नि मुखसे होमके

समय सोमरसको पिताहुआ (**विष्णुः**) व्यापक वायुरूप इन्द्र, और सुन्दर हविमय अन्नको भक्षण करके, अन्तरिक्षरूप उदरमें धूम्रमय हविके सारको बाष्परूप पुरीषके आकारमें पचाता है, उसके पश्चात् सूक्ष्म बाष्पको किञ्चित स्थूल जलकेरूपमें त्यागता है, वहजल मेघके आकारमें परिणित होता है, सोही जलका रूपान्तर मेघ है वर–उत्तम जलका आहार करनेसे मेघका नाम वराह हुआ ॥ सो वराह कैसा है, सब प्राणियोंका जीवनमय जल है. उसजलको वराह नामका असुर चुराता हुआ, अन्तरिक्षमें विचरता है, शत्रुओंको जीतनेवाला, वज्रको फेंकनेवाला इन्द्र विश्वके हितकेलिये विद्युतसे मेघरूप वराहको दोनोंतरफ छेदता है उस वज्रपातसे मराहुआ मेघ जल वर्षाता है ॥ ऋग्० १ । ६१ । ७ ॥ अथर्वण २० । ३५ । ७] **विश्वेत्ता विष्णुराभरदुरुक्रमस्त्वेषितः ॥ शतंमहिषान् क्षीरपाकमोदनं वराहमिन्द्रएमुषं ॥** हे इन्द्र आपसे प्रेरित हुआ, आपकी स्तुति करता हूँ, विस्तृत गतिसे तीनों लोकमें कदम रखनेवाले सर्वत्र व्यापक अग्निने अपरिमित, जलोंको धारण किया है, उन जलोंको जगत्के हितकेलिये वर्षा रूपसे देता है, परिपक्व जल मेघरुप वराहको धारण करके जल न वर्षाता हुआ इधर उधर भ्रमण करके प्रजाको ठगता है, उस वराहको विद्युत्रूप वज्रसे इन्द्र मारता है जलके वर्षनेसे प्रजाहर्षित होती है ॥ महिष नाम मेघोंका है ॥ ऋग्० ८ । ६६ । १०] **वराहोऽयं वाममोषः ॥** यह वराहरुपमेघ सुन्दर जलकी चोरी करनेवाला है ॥ तै० सं० ६ । २ । ४ । २] अमृतः । अप् । विषं । अक्षरं । पुरीषं । अभ्रं । क्षपः । क्षोदः । रेतः । जन्म । पिप्पलं । अहिः । उग्रपुत्रः । मधु । क्षीरं । वाः । ई । इदं । वपुः । अन्नं । हेम । शम्बरं । गहनं । रसः । शुक्रं । हविः । पवित्रं । नाम ।

कशः । ओजः । पूर्णं । वर्हिः । क्षत्रं । कृपीटं । गर । शवः । तेजः । यशः । व्योम । सदनं । जलाषं । शिवं । हरः । कं । स्वः । स्वर्गाः ॥ स्वधा । ऋतं । काष्ठाः ॥ रविः । महत् । औदनः । योनिः । गर्भ । नभः । पयः । गो । मृगः । वृतः । असुरः । वराहः । दासः । नमुचिः । अदिः । गोत्रः । वलः । अश्मा । पर्वतः । सलिलं । गिरिः । वज्रः । चारुः । कोशः ॥ इत्यादिक जलके नाम ऋग्वेद में है [इन्द्रका नाम विष्णु है ॥ ऋग्० ५ । ८७ । १] वराहं ॥ जलवाले मेघका नाम वराह है ॥ ऋग्० १० । ९९ । ६] तस्यामश्राम्यत्प्रजापतिः सदेवान सृजत ॥ वसुन्रुद्रानादित्यान्ते ॥ प्रजापति उस भूमीमें सृष्टिके विचाररुप श्रमको प्राप्त हुआ, उसने आठ वसु, ग्यारा रुद्र, बारा आदित्योंको रचा ॥ तेऽग्निनाऽऽयतनेना श्राम्यन्ते संवत्सर एकांगामसृजन्त ॥ वे देवता अग्निके आश्रयसे विचार कर एक वर्षरुप गौको प्रगट करते भये ॥ प्रजापतिने गौको वसु–रुद्र–आदित्योंको क्रमसे दिया–तीनों गणरुप देवोंने तीन भाग गौके किये ॥ प्रत्येक् देवतागणोंने तीनगौके तीनसौ तेतीसको त्रिगुणी करके हजार किया ॥ प्रजापतिने वसुओंको भूमी, रुद्रोंको अन्तरिक्ष, आदित्योंको द्यौ स्थानदिया ॥ तदन्तरिक्षं व्ययैर्यत तस्माद्रुद्रा घातुका अनायतनाहि तस्मादाहुःशिथिलं वै मध्यममहस्त्रिरात्रस्य ॥ रुद्रोंका जो अन्तरिक्ष स्थान मेघमण्डल था सो स्थान बिखर गया ॥ उस स्थानके नष्ट होनेसे स्थान रहित ग्यारा रुद्र कोपमें भरकर सर्वत्र प्राणियोंका नाश करते हैं ॥ उनकी शान्तिके लिये मध्यम दिनका भाग त्रिरात्र यज्ञका अनुष्ठान है ॥ इन्द्रश्च विष्णुश्च व्यायच्छेता ँ स इन्द्रोऽमन्यता नयावा इदं विष्णुः सहस्रं वक्ष्यत ॥ इन्द्र और विष्णुके बीचमें कलह

हुआ सहस्र गोओंके निमित्त, इन्द्रने विचार किया उस गौ समुहको लेकर विष्णुमेरेको त्याग कर इस गौंके यह सहस्र सब भागको अपने आधीनमें करेगा ॥ **द्विभागइन्द्रस्तृतीये विष्णुः ॥** दो भागरूप आठ मासकी किरणोंका स्वामी इन्द्र हुआ ॥ और चार मासकी किरणरूप गौओंका स्वामी विष्णुहुआ ॥ तै० सं० ७। १। ५। ३-४-५] **उभाजिग्यथुर्न पराजयेथे नपराजिग्यो करतश्चनैनोः ॥ इन्द्रश्च विष्णो यदपस्पृधेथां त्रेधा सहस्रं वितदैरयेथां** ॥ इन्द्र विष्णु विजय करनेवाले हैं वे दोनों कभी नहीं हारते हैं, इनमेसे एक इन्द्र अथवा विष्णु कभी नहीं हारते हैं, येदोनों परस्पर युद्ध करते रहते हैं, और इस कलहमें एक हजार गौओंको तीन भागमें विभक्त करते हैं ॥ ऋग्० ६। ६९। ८] दो भागरूप आठमास तक किरणोंसे जल उपरको खीचना, और तीसरा भाग चार मास पर्य्यन्त उपरसे जलको वर्षाकिरूपमें भूमीपर वर्षाना, विद्युतरूप विष्णु और सूर्यरूप इन्द्रका यही युद्ध परस्पर होता रहता है ॥ चार मासकी रश्मियोंका स्वामी श्रवण नक्षत्रका देवताही विजली देहधारी है ॥ यह सब महिमा एक चेतनकी है ॥ जिसको अद्वैत अपरोक्ष ज्ञान है वही सर्वदेव स्वरूप है ॥ १७ ॥

अहं सोमं माहनसं विभर्म्यहं त्वष्टारमुत पूषणंभगं ॥ अहं दधामि द्रविणं हविष्मते सुप्राव्ये३ यजमानाय सुन्वते ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(**आहनसं**) पापरूप शत्रुओंका नाशकरनेवाले (**सोमं**) सोमदेवताको (**अहं**) मैं (**बिभर्मि**) धारण

करती हूँ (उत) और (त्वष्टारं) त्वष्टाको (पूषणं) पूषाको (भगं) भगको (अहं) मैं धारण करती हूँ (सुप्रअव्ये) उत्तमदेवताओंको तर्पण करनेवाले (हविष्मते) हवियुक्त (सुन्वते) सोमलताको निचोड़नेवाले (यजमानाय) यजमानकेलिये (द्रविणं) यज्ञरूप फलको (अहं) मैं (दधामि) देती हूँ ॥ ऋग्० १० । १२५ । २ ॥

व्याख्या:—शत्रुओंका नाशकरनेवाले सोमदेवताको मैं धारण करती हूँ, और देव शिल्पी विश्वकर्माको पूषाको भगको मैं धारण करती हूँ, उत्तम हविसे देवताओंको तर्पण करनेवाले, क्षीर घृत यव मिश्रित हवियुक्त, सोमरसके निचोड़नेवाले यजमानके प्रति यज्ञरूप फलको स्वर्गमें देती हूँ ॥ १८ ॥

अहंराष्ट्री संगमनी वसूनां चिकितुषी प्रथमायज्ञियानाम् ॥ तांमादेवा व्यदधुःपुरुत्रा भूरिस्थात्रांभूर्यावेशयन्तीम् ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(अहं) मैं (राष्ट्री) महेश्वरी हूँ (वसूनां) धनोंकी (संगमनी) देनेवाली हूँ (यज्ञियानां) यज्ञसे पूजे जानेवाले देवताओंके (प्रथमा) पहिले (चिकितुषी) सबके जाननेवाला जातवेदा मैं हूँ (देवाः) अधिदैव स्वरूप देवता (पुरुत्रा) अध्यात्मरूप इन्द्रियोंकि आकारसें बहुत शरीरोंमें व्यापक होकर (विअदधुः) धारण करते हैं (भूरिस्यात्रां) बहुत शरिरोंमें (भूरि) असंख्य अन्तःकरण हैं उनमें अनन्त जीवरुपसे (आवेशयन्तीं) प्रवेशकरनेवाली (तां) उस आत्माको (मा) मेरेकोही जानो ॥ ऋग्० १० । १२५ ॥ ३ ॥

व्याख्या:—समस्त सुखरूप पदार्थोंकी देनेवाली मैं महेश्वरी हूँ, यज्ञसे पूजे जानेवाले सब देवताओं के मध्यमें प्रथम पूज्य सबके जाननेवाला अग्नि मैं हूँ, अपरिमित शरीरोंमें अधिदैव देवताही, अध्यात्म इन्द्रियोंकेरूपको धारण करके व्यापक हैं, शरीरोंके भेदसे बहुत अन्तःकरणोंकाभी भेद है ॥ जैसे घटके भेदसे घटस्थ जलका भी भेद है ॥ तैसेही स्थूलके भेदसे सूक्ष्मदेहकाभी भेद है—इन असंख्य अन्तःकरणोंमें अनन्त जीवनरूपसे प्रवेश करनेवाली उस आत्माको मेरेकोही जानो ॥ अन्तः करणके सुख दुःखमय धर्मको तादात्म्यरूप अंगिकार करनाही आत्माका प्रवेश करना है, तादात्मकता रहितही आत्माका अप्रवेशपना है ॥ सर्व व्यापीमें अप्रवेश तीन कालमें नहीं है जैसे स्वप्नकी स्त्रीसे पुत्रका उत्पन्न और मरना है, तैसेही अज्ञानसे प्रवेश और ज्ञानसे अप्रवेश है ॥ १९ ॥

मया॒सो अन्न॑मत्ति॒यो वि॒पश्य॑ति॒ यः प्राणि॑ति॒ य ईं॑-शृणोत्युक्तम् ॥ अ॒म॒न्तवो॒मांतउप॑क्षियन्ति श्रुधि श्रु॑तः श्रद्धिवं॑ते॑ वदामि ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (अन्नं) अन्नको (अत्ति) खाता है (यः) जो (विपश्यति) विशेष देखता है (यः) जो (प्राणिति) स्वास आदि व्यापार करता है (उक्तं) कहा हुआ वचन (शृणोति) सुनता है (सः) सो (मया) मेरे द्वाराही सब कुछ करता है (ईं) इसप्रकार (मां) मेरेको नहीं जानते हैं (ते) वे मनुष्य (अमन्तवः) नजाननेवाले (उपक्षियन्ति) बारंबार जन्ममरण आदि दुःखसे नाश पाते हैं (श्रुत) हे श्रवण करनेवाले मुमुक्षो (श्रद्धिवं) श्रद्धासे युक्त (श्रुधि)

तू सून (ते) तेरे प्रति स्वात्म स्वरुपको (वदामि) उपदेश करती हूँ ॥ ऋग्० १०।१२५।४॥

व्याख्याः—जो समस्त देह धारी भोजनको करता है, जो विशेष देखता है जो स्वास प्रस्वास आदि व्यापार करता है, कहे हुए वचनको सुनता है, सो सब प्राणिमात्र मेरे द्वाराही सबकुछ करता है, इस प्रकार मेरेको नहीं जानते हैं, वे सब न जानने· वाले बारंबार जन्ममरण आदि दुःखमें पड़कर नाश होते हैं, हे वैदिकधर्मके सुननेवाले धर्मज्ञ, श्रद्धायुक्त तू सुन तेरेप्रति अपने अखण्ड स्वरुपको उपदेश करती हूँ ॥ मेरे मायिक सष्टि स्वरुप- सेही व्यष्टि स्वरुपको धारण करनेवाला जीव है, व्यष्टि उपाधिक चेतन समष्टि स्वरुपको अपना स्वरुप नहीं जानता तब तक भव सागरमें गोते खाता रहता है ॥ जो मेरे स्वरुपको जानता है सोही नरनारी मेरा स्वरुप है महेश्वरी महेश्वर रुपसे मैं प्रत्येक् ज्ञानियोंके द्वारा शिष्योंको उपदेश करती हूँ ॥ मैं रुद्र और रुद्राणी हूँ इस अपरोक्ष ज्ञानके अनुभव करनेवाले प्रत्येक् नरनारी उमामहेश्वर हैं ॥ जब ये गुरु अपने शिष्य आदि प्रजाको अपरोक्ष ज्ञानका उपदेश करते समय मैं ब्रह्म हूँ तुम मेरा ध्यान सेवन करो यह उपदेशही शिष्यको गुरु बनादेता है ॥ मैं ईश्वर हूँ तूमेरा सखारुप पुत्र वा शिष्य है ॥ मेरे बताये हुए मार्गपर चल इससे भिन्न दुःखरुप है ॥ यह उपदेश वैदिककालकी शैली है ॥ २० ॥

अहमेव स्वयमिदं वदामि जुष्टं देवेभिरुतमानुषेभिः ॥ यं कामयेतंतमुग्रं कृणोमितं ब्रह्माणं तमृषिं तंसुमे- धाम् ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(अहं) मैं (स्वयंएव) स्वयंही (इदं) इस अपरोक्ष व्यापक स्वरुपको (वदामि) उपदेश करती हूँ (तं) उसको गृहण करने वालेका (देवेभिः) देवता (उत) और (मनुषेभिः) मनुष्योंसे (जुष्ट) सत्कार होता है (यं) जिस उपासकको (कामये) चाहति हूँ (तं) इच्छाके अनुसार उसको (उग्रं) श्रेष्ठ रुद्र बनादेती हूँ (ब्रह्माणं) ब्रह्मा (तं) उसको (कृणोमि) बनादेती हूँ (ऋषिं) ऋषि (तं) उसको बनादेती हूँ (सुमेधां) उत्तम बुद्धिवाला (तं) उसको बनादेती हूँ ॥ ऋग्० १० । १२५ । ५ ॥

व्याख्याः—मैं स्वयंही अपने इस अपरोक्ष स्वरुपको गुरु बनके उपदेश करती हूँ जिस उपासकको चाहती हूँ उसको उत्तमदेव रुद्र बन देती हूँ, उसको ब्रह्मा बनादेती हूँ, उसको सर्वज्ञ ऋषि बनादेती हूँ, उसको उत्तम बुद्धिवाला बनादेती हूँ, उस उपासकको सब देवता और मनुष्योंके द्वारा सत्कार होता है ॥ २१ ॥

अहं रुद्राय धनुरातनोमि ब्रह्मद्विषे शरवे हन्तवाउ ॥
अहंजनाय समदं कृणोम्यहं द्यावापृथिवी आविवेश ॥२२॥

अन्वयार्थः—(अहं) मैंने (रुद्राय) रुद्रके स्वरुपको धारण करके त्रिपुर युद्धमें (धनुः) धनुषको (आतनोमि) तानती हूँ (ब्रह्मद्विषे) वैदिक धर्मके द्वेषि (शरवे) हिंसक असुर समुहके (हन्तवै) मारनेकेलिये हूँ (ऊँ) और (जनाय) उपासककेलिये (समदं) शत्रुओंके साथ संग्रामको (अहं) मैं (कृणोमि) करती हूँ (द्यावापृथिवी) स्वर्ग और भूमीमें (अहं) मैं (आविवेश) अग्नि सूर्यरुपसे प्रविष्ट हुई हूँ ॥ ऋग्० १० । १२५ । ६ ॥

व्याख्याः—मैं रुद्रके स्वरुपको धारणकरके त्रिपुरयुद्धमें धनुषको खेंचती हूँ वैदिक धर्मद्वेषी हिंसक दैत्यसमुहके नाश करनेके लिये हूँ, और उपासककी रक्षाकेलिये शत्रुओंके संग युद्धको मैं करती हूँ द्यौ भूमीमें अग्निसूर्य स्वरूपसे मैंने प्रवेशकिया है [इन्द्राग्नी वै देवानामोजिष्ठौ बलिष्ठौ ॥ सूर्यअग्निही देवोंके वीचमें तेजस्वी वलवान है ॥ ऐ० ब्रा० १० । ४ । ३६] इन्द्राग्नी सर्वा देवताः ॥ सूर्य और व्यापक अग्निहो सब देवस्वरूप हैं ॥ काठक सं० ३४ । १] जो उमा हैं सोहीरुद्र है, जोरुद्र है सोही उमा है यह सब चराचर विश्व उमारुद्रकामायामय स्परूप है ॥२२॥

अहंसुवेपितरमस्यमूर्धन्ममयोनिरप्स्व १ न्तः समुद्रे ॥ ततो वितिष्ठे भुवनानुविश्वो तामूंद्यां वृष्मणो पस्पृशामि ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(अप्सु) महा प्रलयकी व्यापक अवस्थाके (अन्तः) समयमें (मम) मेरा (योनिः) ज्ञान स्वरूप चेतन घन है, मैं नित्यज्ञान स्वरूप उमाहूँ प्रत्येक् महाप्रलयके अन्त और प्रत्येक् सृष्टिकी उत्पत्तिके कुछपूर्व मेरी एक बीज सत्ताही विकारी-रूपसे भासती है उसी (समुद्रे) अर्णवरूप प्राणशक्तिमें (मूर्धन्) असंख्य ब्रह्माण्डोंके मूल स्वरूप सत्यलोकमें वसनेवाले (अस्य) इस चराचर जगत्की उत्पत्ति करके (पितरं) पालन करनेवाले ब्रह्माको (सुवे) उत्पन्न (अहं) मैं करती हूँ (उत) और (ततः) उस पितामहके प्रगट होनेके अनन्तर (द्यां) द्योमें (वष्मंणा) सूर्यमण्डल देहधारण करके (अमूं) उस स्वर्गवर्ती सूर्यमें (उपस्पृशामि) चेतन स्वरूपसे बिराजती हूँ (अनु)

अधिदैव सूर्यकी उत्पत्तिके पीछे (विश्वा) समस्त (भुवना) शरीरोंको रचकर, उन जड शरीरोंमें (वितिष्ठे) विशेष चेतन-रूपसे विराजमान होती हूँ ॥ ऋग्० १० । १२५ । ७ ॥

व्याख्याः—महाप्रलयकी व्यापक अवस्थाके समयमें मेराज्ञान स्वरूप चेतन घन है, मैं नित्यज्ञान स्वरूप उमा हूँ, प्रत्येक् महा-प्रलयके अन्त और प्रत्येक् सृष्टिकी उत्पत्तिके कुछ पहिले, मेरी एक बीज अवस्थाही अवस्थान्तररुपसे भासती है उस विशेष माया-रुप प्राणशक्तिमें, अनन्त सौरमय जगतोंके कारणस्वरुप ब्रह्मलोकमें वास करनेवाले, इस चराचर विश्वकी उत्पत्ति करके पालन करनेवाले ब्रह्माको मैं उत्पन्न करती हूँ, और उस विधाताके प्रगट होनेके पश्चात् द्यौमें सूर्यदेहको धारणकरके उस स्वर्गवर्ती सूर्यमें चेतन स्वरुपसे विराजती हूँ, अधिदैव सूर्यकी उत्पत्तिके पीछे सम्पूर्ण शरीरोंको रचकर, उनजड शरीरोंमें विशेष चेतन स्वरुपसे अवस्थित हूँ ॥ ब्रह्मा–प्रजापतिके स्वरुपको धारण करके प्रत्येक् त्रिलोकोंके सूर्योंको रचता है उनमें स्वयं भर्ग रुपसे विराजता है ॥ जैसे नदीके अनेक घाट होते हैं, उन घाटोंके मध्यमेंसे किसी एक घाटका जल कहै, मैं नदीरुपसे सब घाटोंमें व्यापक हूँ, घाट उपाधिका त्यागकर, जलकी व्यापकताको लक्ष करकेही घाटका जल नदी है उसी प्रकार आत्माके अनुभव करनेवाले प्रत्येक् नरनारी अपनी व्यष्टि उपाधिको त्यागकर, समष्टि व्यापक स्वरुपको लक्षकरकेही मैं जगत्की उत्पत्ति स्थितिलय आदि करनेवाला उमामहेश्वर हूँ, इन्द्र, वरुण, मित्र, विष्णु, अग्नि, सूर्य, चन्द्रमा आदि सब मेरी विभूती हैं, यह अपरोक्षज्ञान महाशुद्ध अन्तःकरणवालोंमें स्फुरित होता है ॥ जोवेदोंमें भिन्न २ सृष्टिकी उत्पत्ति आदि प्रतीत होती है, सो सबही समष्टिको लक्षकरके मंत्रदृष्टा ऋषियोंने अनेक नामरूपसे वर्णन

किया है ॥ इससे यह सिद्ध हुआ सबका कर्त्ता एक अद्वितीय स्वरूप रुद्रही है ॥ इसलियेही मूलका सेवन करना चाहिये ॥ जिन ज्ञानीयोंसे मूल स्वरूपकी प्राप्ति होवे उन गुरुओंको शिवरूप जानकर सेवा करनी चाहिये ॥ उन ज्ञानियोंके देहपातके अनन्तर पूर्ण ज्ञानकी प्राप्ति शिष्यको नहुई होवेतो अन्यदेहधारी गुरुकी प्राप्ति करनाही उत्तम है ॥ जैसे जलयुक्त सरोवरका प्राणिसेवन करते और जल-रहित तलावसे सुख नहीं मिलता है ॥ तैसेही देहधारी प्रत्यक्ष गुरुसे ज्ञान मिलता है ॥ देह त्याग करनेवालेसे ज्ञान नहीं मिलता ॥ जलवाले सरोवरका त्याग और जल रहितका सेवन दुःखरूप है ॥ तैसेही जीवित ज्ञानीका त्याग और मृतक पुरुषका पूजन है ॥२३॥

अहमेव वातइव प्रवाम्यारभमाणा भुवनानि विश्वा ॥
परो दिवा पर एना पृथिव्यै तावती महिना संबभूव ॥२४॥

अन्वयार्थः—(विश्वा) सब (भुवनानि) प्रगट होनेवाले भुवनोंको (आरभमाणा) कार्य कारणसे प्रगट करनेवाली (अहं) मैं हूँ (वातइव) जैसे वायु विचरता हुआ सर्व दोषके संसर्गसे निर्लिप्त है (एव) तैसेहीमैं अपनी इच्छाके द्वाराही जगत्की उत्पत्ति आदि करनेमें (प्रवामि) प्रवृत होती हूँ (दिवा) प्राणशक्तिसे (परः) उत्तम (एना) इसकार्यात्मक (पृथिव्या) स्थूल विराट् मृत्युसे (परः) श्रेष्ठमैं चेतन हूँ (एतावती) इतनी मृत्यु अमृतमय अव्याकृत प्राणशक्तिरुप (महिना) महिमाके द्वारा मेरा अधिदैव चेतन स्वरूप (संबभूव) भलीप्रकार स्थावर जंगम शरीरोंमें अध्यात्मजीवनरूपसे व्यापक हो रहा है ॥ ऋग० १० । १२५ । ८ ॥

व्याख्याः—उत्पन्न होनेवाले सम्पूर्ण भुवनोंको अमृतकारण, मृत्युकार्यके द्वारा मैं प्रगट करती हूँ, जैसे वायु सर्वत्र विचरता

हुआ सब संसर्ग रहित निर्मल है, तैसेही मैं अपनी इच्छासेही जगत्‌की उत्पत्ति आदि करनेमें प्रवृत्त होती हूँ, अमृतशक्तिरुप प्राण-शक्तिसे उत्तम और उस प्राणशक्तिकी बाह्य अवस्था मृत्युरूप कार्यसे श्रेष्ठ मैं चेतन रुद्र हूँ, मेरा अमृत और मृत्यु शक्तिरुप अव्याकृत प्रभाव है, इतनी महिमाके द्वाराही मेरा अधिदैव स्वरूप चेतन, भली प्रकार स्थावर जंगम शरीरोंमें अध्यात्म जीवरूपसे व्याप्तहो रहा है [**कात्यायनाय विद्महेकन्या कुमारी धीमहितन्नो दुर्गिः प्रचोदयात्** ॥ कृतिरूपसिंहके चर्म्म वस्त्रधारी रुद्रके वाम भागमें ज्ञान स्वरूप उमा स्थित है सो अर्धाङ्गिनी उमा अभिन्नरुपसे रुद्रात्मक पिता कात्यायन है और भिन्न रुपसे माता कात्यायनी है, कुत्सित पापादि शत्रुको मारती है सोही कुमारी कन्या है (**दुर्गिः**) रुद्रस्वरुपही दुर्गिमाता दुर्गा है हम उस उमाको जानते हैं और माताको पितास्वरूप जानकर ध्यान करते हैं ॥ सो रुद्रपिता, माता उमा रूपसे हमको अपने स्वरुपमें लयकरे ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १ । २५] **तामग्निवर्णां तपसा ज्वलन्तीं वैरोचनीं कर्म-फलेषु जुष्टाम् ॥ दुर्गांदेवी ँ शरणमहं प्रपद्येसुतरसि तरसे नमः** ॥ महा अज्ञानरुप किलेका ध्वन्स करनेवाली दुर्गादेवीकी शरणको प्राप्त होता हूँ ॥ वह उमाकैसी है अग्निके समानवर्णवाली अपने तेजसे शत्रुओंको भस्म करनेवाली स्वयं प्रकाश स्वरुप रुद्र विरोचन है उस रुद्रकी अभेद ज्ञानसत्ताही वैरोचनी उमा है स्वर्ग पशु पुत्र धन आदि और रुद्रके स्वरुपकी प्राप्तिकेलिये हम जिस उमाकी उपासना करते हैं ॥ हे सुन्दर अध्यात्मज्ञानरुप नौकाकेद्वारा संसार समुद्रसे तारनेवाली देवी प्रणव गायत्री स्वरुप तारनेवाली उमाकेलिये हमारा नमस्कार होवे ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १ । ४८] आंभृणी कन्याको जिस स्वस्वरुपके अभेदज्ञानसे सर्वज्ञत्वलाभ हुआ ॥ उसी प्रकार अद्वैत ज्ञानकेद्वारा हमकोभी साक्षात्कार होगा ॥ सांसारिक

सुखकेलिये उमारुद्रके मायिक स्वरुपका ध्यानयुक्त पूजन करना चाहिये ॥ और मोक्षकेलिये शुद्ध तुरीय स्वरुपयुक्त रुद्रका ध्यान करना चाहिये ॥ मनुष्य देहधारी महापुरुष होनेपरभी यम आदि देवताओंके आधीनमें होता है ॥ देवता प्रजापतिके वशमें हैं ॥ विराट् देहधारी अथर्वा प्रजापति, ब्रह्माके वशवर्ती है और ब्रह्मा महेश्वरसे प्रगट होकर महा प्रलयमें महेश्वर स्वरुपही होता है ॥ सबदेवता ब्रह्माकी विभूति हैं और ब्रह्मारुद्र स्वरुप है ॥ इस लियेही प्रत्यक्ष अग्नि वायु सूर्य आदिमहिमाओंके सहित ब्रह्मा रुद्रकी उपासना करना अति उत्तम है ॥ गोत्रप्रवर्त्तक अङ्गिरा, भृगु, वसिष्ठ, कश्यप, भरद्वाज आदि वैदिक धर्मके उपासकथे ॥ इसलियेही हम सब प्रजागण उनके मार्गके अनुगामी बनें [संगच्छध्वं संवदध्वं संवोमनांसि जानताम् । हे मनुष्यो तुम सब एक वैदिक मार्गमें चलो, विरोधरहित त्रिविधकर्म—उपासना ज्ञानको अधिकार भेदसे उपदेश करो, त्रिविध स्वभाव होनेपरभी सबका गंतव्य स्थान एकही है विचार करके जानो ॥ ऋग० १० । १९१ । २] परस्पर द्वेष भावको त्यागकर भीतर बहारसे वैदिक आचरण करनेवाले बनो ॥ २४ ॥

ॐ भद्रंनो अपिवातय मनोदक्ष मुतक्रतुम् ॐ शान्तिः । शान्तिः । शान्तिः ॥

इति श्री ऋग्वेदीय रुद्रषष्ठं सूक्तम् ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य स्वामी

शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्यायाख्या समाप्त ॥६॥

मार्गशीर्ष मास शुक्लपक्ष त्रयोदशी बुधवार वि० सं० १९९०

॥अथ अथर्वण वेदीय रुद्र सूक्तानि॥

यास्कं निरुक्तकर्त्तारं शंकरार्य्यं शिवात्मकम् ॥
सर्ववेदभाष्यकारं सायणं प्रणमाम्यहम् ॥
भद्रंनो अपि वानय मनोदक्षमुत क्रतुम् ॥

ॐ शान्तिः । शान्तिः । शान्तिः ॥

हे सोमः—उमाके सहित रुद्र तुम दोनों मातापिता हमारे मनको–प्राण और अपानको शुभ मार्गमें प्रवृतकरो ॥ ऋग्० १० । २० । १ ॥ साम० सं० ४ । ८ । ४ ॥ प्राणो वैदक्षोऽपानः क्रतुः ॥ तैतरीय सं० २ । ५ । ३ । ६ ॥ उमा महेश्वरको प्रणाम करके ॥ अथर्वण वेदके रुद्र मन्त्रोंको शृङ्खलाबद्ध कर उस रुद्रपर गौरी व्याख्या करता हूँ ॥

॥अथ अथर्वण वेदीय प्रथम सूक्तम्॥

बृहती परिमात्राया मातु र्मात्राऽधि निर्मिता ॥
माया ह जज्ञे मायाया मायाया मातली परि ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(मातुः) माता उमाकी (मात्रायाः) एक सत्तारूप निर्विशेष बीज शक्तिसे (ह) प्रसिद्ध (माया) माया (अधि) सविशेष (मात्रा) अवस्थान्तर (जज्ञे) प्रगट हुई (परि) व्यापक (बृहती) महाप्राणशक्ति (निर्मिता) जगत्की कारणबनी है (मायायाः) कारणोन्मुख मायाकी (मायायाः) अव्यक्तसे (मातली) सूत्रात्मा विराट्रूप रथका प्रेरक ब्रह्मा (परि) उत्पन्न हुआ ॥ अथर्वण० ८ । ९ ५॥

व्याख्याः—रुद्र पिताके सहित उमा माताकी एक सत्तारूप निर्विशेष बीजशक्तिसे सविशेष विकारी रुपान्तर प्रसिद्धमाया प्रलयके अन्त और विश्व रचनाके कूछ पहिले आगन्तुक रुपसे भासी यही भास मायाका प्रादुर्भाव है ॥ सो माया कैसी है कारण कार्यके

रूपसे सर्वत्र व्यापक महाप्राण शक्ति जगत्की कारणवनी है ॥ निर्विशेषसे सविशेष अवस्थामें आनेकेलिये जो तैयार हुई सोही बीजसत्ता माया है इसक्रियाकी अभिव्यक्ति हुई सोहीमाया अव्याकृत आकाश है, मायाकी कारण अवस्थासे सूत्रात्मा महा विराटमय रथका प्रेरक ब्रह्मा प्रगट हुआ ॥ (मा) माया (त) उस चेतनमें (ली) लीन होती है सोही मायिक महेश्वर मायाके सूक्ष्म स्थूल कार्य रथका संचालक मातलीरूप ब्रह्मा है ॥ १ ॥

प्रयोजज्ञे विद्वानस्य बन्धुर्विश्वादेवानां जानिमा विविक्ति ॥ ब्रह्म ब्रह्मणउज्जभार मध्यान्नीचैरुच्चैः स्वधा अभि प्रतस्थौ ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(अस्य) इस जगत्का (बन्धुः) कारण (विद्वान्) सर्वज्ञ (यः) जो ब्रह्मा (विश्वा) समस्त (देवानां) देवताओंके (जनिम) जन्मोंको (विविक्ति) पृथक् करता है सोही (प्रजज्ञे) प्रगट हुआ (ब्रह्मणः) ब्रह्माके (मध्यात्) मध्य भागरूपदेहसे (ब्रह्म) अन्तरिक्षवायु अग्निरूप व्यापक और (स्वधा) जल भूमीरूप अन्न (अभि) प्रगट हुआ (उच्चैः) उपरको प्रकाशित होनेवाला अमृत और (नीचैः) नीचेको गतिवाला मृत्यु (प्रतस्थौ) स्थित है (उज्जभार) ब्रह्मा धारण करता है ॥ अथर्वण० ४ । १ । ३ ॥

व्याख्याः—इस प्रपंचका कारण सर्वज्ञ जो प्रगट हुआ सोही ब्रह्मा सम्पूर्ण प्राणियोंके सहित देवताओंके जन्मोंको भिन्नकरने में समर्थ है ॥ ब्रह्माके सूत्रात्मा देहसे व्यापक आकाशवायु, अग्नि, और जल भूमीरूप अन्न प्रगटहुआ अमृतशक्तिका भाग आकाश आदि

तीनभूत ऊर्ध्व गतिवाले और मृत्युशक्तिका भाग अधोगतिवाला जल भूमी है अमृत मृत्युक्रिया कार्यरूपसे स्थित है । इन पंचभूतोंको ब्रह्माधारण करता है ॥ २ ॥

ब्रह्मज्येष्ठा संभृतावीर्याणि ब्रह्माग्रे ज्येष्ठंदिवमाततान ॥ भूतानांब्रह्मा प्रथमोतजज्ञे तेनार्हति ब्रह्मणा स्पर्धितुं कः ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(भूतानां) पञ्चभूतोंके (प्रथमः) पहिले (ब्रह्मा) प्रभु पितामह (जज्ञे) प्रगटहुआ (उत) और (अग्रे) चराचर विश्वके पूर्व (ब्रह्मा) ब्रह्माने (ज्येष्ठंदिवं) वडे विराट् देहयुक्त अथर्वा प्रजापतिको (आततान) सूक्ष्मसे स्थूलमय विस्तारकिया (वीर्याणि) अप्रतिहत ज्ञानधर्म वैराग्य वल आदि ऐश्वर्योंको (संभृता) जन्मके साथही धारण करनेवाला (ब्रह्मज्येष्ठा) सवदेवताओंका उत्तम कारण स्वरूप (तेन) उस स्वयंभू (ब्रह्मणा) ब्रह्माकेसंग (स्पर्धितुं) वरावरी करनेको (कः) कौन (अर्हति) समर्थ है ॥ अथर्वण० १९ । १२ । २१ ॥

व्याख्याः—पञ्च महाभूतोंके प्रथमब्रह्मा प्रगटहुआ और चराचर जगत्‌की उत्पत्तिके पहिले ब्रह्माने वडे विराट देहयुक्त अथर्वा प्रजापतिको सूत्रात्मादेहसे स्थूल देहके आकारमें विस्तार कियाजो अप्रतिहतज्ञान वैराग्य धर्मवल आदि एश्वर्य्योंको जन्मके साथही धारणकरनेवाला सवदेवताओंका उत्तमकारणस्वरूप पितामह है उसब्रह्माके साथवरावरी करनेको कौन समर्थ है ॥ जिस ब्रह्मासे अग्नि इन्द्र विष्णु—वरुण सूर्य आदि सवदेव दैत्यगन्धर्व पितर मनुष्य प्रगट हुए हैं तो कैसे बरावरी करसकते हैं ॥ ३ ॥

यत्र देवाश्च मनुष्या श्चारा नाभा विवश्रिताः ॥
अपांत्वा पुष्पं पृच्छामि यत्र तन्मायया हितं ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(नाभौइव) जैसे रथके चक्रनाभि में (आराः) आरे लगे रहते हैं उसी प्रकार (यत्र) जिस प्रजापति में (देवाः) देवता (च) और पितर गंधर्व दैत्य (च) और (मनुष्याः) मनुष्यादि प्राणि (श्रिताः) स्थित हैं (अपां) व्यापक प्राण-शक्तिके (पुष्पं) सूक्ष्मदेहधारी सबके साररूप कारण ब्रह्माको (त्वा) आपको (पृच्छामि पूछता हूँ (यत्र) जिस समष्टि व्यष्टि, देहमें (तत्) सो रुद्रही ब्रह्मा—जीवरूप (मायया) मायासे (हितं) स्थित है ॥ अथर्वण० १०। ८। ३४ ॥

व्याख्याः—होता प्रश्न करता हैं सबकर्मके ज्ञाता ब्रह्मा नामके ऋत्विक्से ॥ हे यज्ञकुशल ऋत्विक् आपको पूछता हूँ उस प्रश्नका उत्तर देदो ॥ जैसे रथके चक्र नाभिमें आरे लगे रहेते हैं, उसी प्रकार जिस सूत्रात्मादेहधारी ब्रह्मामें देव दैत्य राक्षस गंधर्व पितर और मनुष्यादि प्राणिमात्र स्थित हैं, व्यापक प्राणश-क्तिके प्रथम विकाशरूप सबके पितामह जो रुद्र स्वरूपब्रह्मा जिस समष्टि व्यष्टि देहमें मायाके द्वारा स्थित है सो रुद्ररूप ब्रह्मा अनन्त स्वरूप है ॥ ४ ॥

पुण्डरीकं नवद्वारं त्रिभिर्गुणेभिरावृतम् ॥ तस्मिन्यद् यक्षमात्मन्वत्तद्वै ब्रह्म विदो विदुः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(त्रिभिः) तीन (गुणेभिः) मूल स्वभावोंके द्वारा (आवृतं) ढकाहुआ (नवद्वारं) नवछिद्रवाला (पुण्डरीकं)

समष्टि व्यष्टि हृदयाकाश है (तस्मिन्) उसमें (यत्) जो (यक्षं) रुद्र (आत्मन्वत्) स्थावर जंगम स्वरूप व्यापी (तत्) उस अद्वैतको (वै) निश्चय ध्यान करके (ब्रह्म) वेदके (विदः) जाननेवाले (विदुः) जानते हैं ॥ अथर्वण० १० । ८ । ४३ ॥

व्याख्या:—तीन कार्यक्रिया करणमय मूल धर्मोंसे ढका हुआ नव छिद्रवाला समष्टि व्यष्टि हृदयाकाश है, उस हृदयमें जो सबका पूज्य रुद्र स्थावर जंगम व्यापी स्वरूप है उस अद्वैतको श्रद्धायुक्त ध्यानकेद्वाराही वेद जाननेवाले साक्षात्कार करते हैं ॥ व्यष्टि हृदय अपना अधिदैव सूर्यमण्डल हृदय है ॥ और समष्टि सत्यलोक है ॥ तीनलोक आवरणोके–परे आवरण रहित ब्रह्मलोक है ॥ स्थूल मण्डल–जल–तेजइन तीनोंसे परभर्ग है ॥ देह–प्राण–अन्त:करणसे परे चेतन है ॥ ५ ॥

त्वं स्त्री त्वं पुमानसि त्वं कुमार उतवा कुमारी ॥
त्वं जीर्णोदण्डेन वञ्चसित्वं जातो भवसि विश्वतो मुखः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(त्वं) तू स्त्री (त्वं) तू (पुमान्) पुरुष (उत) और (वा) ही (कुमारः) कुमार (कुमारीः) कन्या (असि) है (त्वं) तू (जीर्णः) वृद्ध (दण्डेन) दण्डकेद्वारा (वंचसि) विचरता है (त्वं) तू विश्वतो मुखः) सर्व व्यापी (जातः) प्रगट (भवसि) होता है ॥ अथर्वण० १० । ८ ।२७॥

व्याख्या:—हे रुद्र तू उमारूपसे स्त्री मात्र है ॥ तू महेश्वररुपसे नर मात्र है ॥ तू स्कन्दरुपसे बालमात्र है ॥ और तूही

कात्यायनी रुपसे कन्या मात्र है ॥ तू ब्रह्मारुपसे लकुटी पकडकर विचरनेवाला वृद्ध अवस्था मात्र है ॥ तू सर्व व्यापी होनेपर भी मायाकेद्वारा प्रगट होता है [स्कन्दाय रुद्राय ॥ कार्तिकेयरुप रुद्रकेलिये प्रार्थना करे ॥ तैत्तरीयारण्य क० ४ । २०] यहीरुद्रकी अद्भुत माया है ॥ ६ ॥

उतैषां पितोतवा पुत्र एषामुतैषां ज्येष्ठउतवा कनिष्ठः॥ एकोह देवो मनसि प्रविष्टः प्रथमो जातः सउ गर्भे अन्तः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(उत) और (एषां) इन प्राणियोंका (पिता) उत्पन्न करता पिता है (उतवा) औरभी (एषां) इनोंका (पुत्रः) ऊत्पन्न होनेवाला पुत्र है (उत) और (एषां) इनोंका (ज्येष्ठः) वडाभाई (उतवा) और भी (कनिष्ठः) लघुभ्राता है (ह) प्रसिद्ध (एकः) एक (देवः) रुद्र (मनसि) सृष्टि संकल्पकी क्रियामें (प्रविष्टः) प्रविष्टहुआ (सः) सो (ऊँ) ही (गर्भे) अव्याकृतके (अन्तः) मध्यमें (प्रथमः) सबके पहिले (जातः) उत्पन्न होता है ॥ अथर्वण० १० । ८ । २८ ॥

व्याख्या:—जो रुद्र और इन प्राणियोंका उत्पादक पिता औरही इनका पुत्र है ॥ और इनका बडाभाई औरही छोटाभाई है ॥ प्रसिद्ध एक अद्वितीय रुद्र अपनी सृष्टि रचनात्मक संकल्पकी क्रियारूप अव्यक्तमें मैं एक हूँ बहुत होऊँ इस मायाकेद्वारा प्रवेश-किया सोही मायिक सबकी उत्पत्तिके पहिले ब्रह्मारूपसे अव्यक्तके मध्यमें प्रगट होता है ॥ ७ ॥

असुच्छाखां प्रतिष्ठन्तीं परमामिव जनाविदुः ॥ उतो सन्मन्यन्तेऽवरेयेते शाखा मुपासते ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(**प्रतिष्ठन्तीं**) कारणरूपसे अवस्थित हुई (**असत्शाखां**) उमाकी एकशक्ति विकारी प्राणमायाको (**परमंइव**) उत्तम नाश रहित चेतन देवके समान (**जनाः**) अनुभवहीन मनुष्य (**विदुः**) जानते हैं (**उतो**) और (**ये**) जे (**अवरे**) विषयी लम्पटीस्वभाववाले मूढजन अव्याकृत कारणके सत् सूक्ष्म समष्टि कार्यको (**मन्यन्ते**) मानते हैं (**ते**) वेही (**शाखां**) सूत्रात्मा देहकी (**उपासते**) उपासना करते हैं ॥ अथर्वण० १० । ७ । २१ ॥

व्याख्याः—आगन्तुक अवस्था उपादान कारणके रूपसे अवस्थित हुई—अनन्तशक्ति स्वरूप उमाकी विकारी एक प्राणशक्ति मायाको—श्रेष्ठ अविनाशी नित्य सुख स्वरूप रुद्रके समान ध्यानयोग रहित अनुभवहीन स्वर्गीय सुख विलासी कर्मठ जन जानते हैं और जे इस लोकके विषयभोगमें लम्पटस्वभाववाले मूढजन अव्यक्त माया कारणके सूक्ष्म स्थूल कार्यको मानते हैं वे सबही सूत्रात्मा देहकी उपासना करते हैं ॥ चेतन अधिष्ठान कल्पित मायासे सर्वदा निर्लिप्त है [**मायया** ॥ मोह करनेवाली शक्तिका नाम माया है ॥ अथर्वण० ४ । ३८ । ३ । ८ । ४ । २४] **मायया** ॥ मायाके द्वारा शरीरोंको धारण करता है ॥ अथ० ६ । ७२ ।] यह सब जगत् मायामय है ॥ ८ ॥

यत्प्राङ् प्रत्यङ् स्वधयायासि शीभं नाना रूपे अहनी कर्षिमायया ॥ तदादित्य महितत्ते महिश्रवो यदेको विश्वं परिभूम जायसे ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(**आदित्य**) हे अखण्ड स्वरूप सविता तुम (**यत्**) जब (**प्राङ्**) पूर्व में (**प्रत्यङ्**) पश्चिममें (**स्वधया**)

अपनी स्वतंत्र (मायया) मायाकेद्वारा (शीभं) शीघ्र (यासि) चलता है (नानारूपे) विविधरूपवाले (अहनी) दिनरात्रीको (कर्षि) बनाता है (तत्) तव (ते) आपका (महिमहि) महाउत्तम (श्रवः) यश है (यत्) जो (विश्वं) मण्डलवर्ती (एकः) अद्वितीयदेव है तत् सो (परि) सर्वत्र व्यापक (भूम) बहुतरूपसे (जायसे) प्रगट होता है ॥ अथ० २३ । २ । ३ ॥

व्याख्या:—हे सवितारूप अखण्डदेव तुम जब उदय होते समय पूर्वमें अस्तके समय पश्चिममें अपनी स्वतंत्र विस्मय कारक शक्तिके द्वारा शीघ्र गमन करते हो नाना स्वरूपवाले रातदिनको बनाते हो तव आपका महा उत्तम यश है, जो सर्व व्यापक मण्डलवर्ती अद्वितीय स्वरूप है सोही बहुत प्रकारसे प्रगट होता है ॥ प्राणिमात्रके रूपसे उत्पन्न होता है-इस भर्गकी यह चराचर माया है ॥ ब्रह्माकी माया असंख्य त्रिलोकवर्ती सूर्य हैं ॥ और महेश्वर मायिक देवका स्वरूपही ब्रह्मा है ॥ जैसे प्रत्येक् प्राणिमात्र सूर्यकी मायासे उत्पन्न हुए हैं ॥ तैसेही महेश्वरकी माया देहसे अनन्तलोक प्रगट हुए हैं [अश्विनो रूपं परिधाय मायां ॥ दोनों अश्विनी कुमारोंने मायामयरूपको धारणकरके सोमपीया ॥ अथर्वण० २ । २९ । ६] बिलं चिष्यामि मायया ॥ व्यष्टि देहवासी जीवको मायासे रहित करता हूँ ॥ मायासे रहित मेरा जीवरूप रुद्र स्वरूपही है ॥ इसमंत्रमें मायाको स्वरूपमें भेद करनेवाली आवरणात्मक मिथ्या कहा है ॥ अथर्वण० १९ । ६८ । १] तस्याभिध्यानात् ॥ विश्वमायानिवृतिः ॥ उस अद्वैत रुद्रका अभेदरूप ध्यान करनेसे सब मायाजाल नाश होजाता है ॥ श्वेताश्वेतरोपनिषद् ॥ १ । १०] मायावाद वेदमेंही है इसलियेही बुद्ध जैनभी मायावादके माननेवाले प्रच्छन्न वैदिक हैं ॥ ९ ॥

सर्वे॑ दे॒वा उपा॑शिक्ष॒न् तद॑जानाद् व॒धूः स॒ती ॥
इ॒शा व॒शस्य॒ या जा॒यासा॒स्मि॒न् वर्ण॒माभ॑रत् ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(या) जो उमा (वधूः) रुद्रपत्नी (वशस्य) मोहितकरनेवाली मायाकारणकी (ईशा) स्वामी है (सा) सो (जाया) रुद्रपत्नी (सती) भगवती (अस्मिन्) इस ब्रह्माण्डमें (वर्णं) अनेक स्वरूप समुहको (आभरत्) धारण करती है, (सर्वेदेवाः) सब देवता (उप) उमाके समीप जाकर ही (अशिक्षन्) आत्मविद्याकी शिक्षा पाते हुए (तत्) उस उमाकेपतिरुद्रको (अजानात्) जानते हैं ॥ अथर्वण० ११। १०। १७ ॥

व्याख्याः—जो रुद्र पत्नी उमा—जींवको मोहित करनेवाली माया कारणकी नियंत्री स्वामी है—सो रुद्र पत्नी भगवती इस ब्रह्माण्ड में अनेक स्वरुप समुहको धारण करती है सब देवता उमाके समीप प्राप्त होकर आत्मविद्याकी शिक्षापाते हुए उस उमाके स्वामी रुद्रको जानते हैं ॥ १० ॥

तस्माद्वै विद्वान् पुरुषमिदं ब्रह्मेति मन्यते ॥ सर्वाह्य-
स्मिन्देवता गावो गोष्ठ इवासते ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(तस्मात्) उस आत्मज्ञानसे (वै) ही (विद्वान्) जाननेवाला (पुरुषं) शरीरमें (इदं) इस अन्दर-बाहिर व्यापक होकर विराजमान हुआ (ब्रह्म) व्यापक स्वरूप रुद्रको (इति) इस प्रकार (मन्यते) जानता है (गावः) गौयें (इव) जैसे (गोष्ठे) गोशालामें वासकरती हैं (हि)

तैसे ही (अस्मिन्) इस देहमें (सर्वाः) सव इन्द्रियोंको (देवताः) अग्निवायु सूर्य आदि देवता (आसते) निवास करते हैं ॥ [परमे व्योमन्त्सत्येनावृतममृतं ॥ जैसे हृदयाकाशमें जन्म मरण रहित आत्मा नामरुपवाले देहसे ढका है ॥ उसी प्रकार सूर्य मण्डलसे भर्ग आच्छादित है ॥ और ब्रह्मलोकमें स्थित ब्रह्मा विराट्से ढका है ॥ सूत्रात्मा विराट उपाधिक चेतनही ब्रह्मा-अव्याकृतसे अन्तर्य्यामी-मायासे महेश्वर है सोही उपाधि रहित रुद्र है ॥ यही रुद्र सबमें और सबसे रहित है ॥ अथर्वण १२।१।८] जिसको अपना स्वरुप जानकर ध्यान करे ॥ ११ ॥

यत्रा॑दि॒त्याश्च॑ रु॒द्राश्च॒ वस॑वश्च स॒मा॑हि॑ताः ॥ भू॒तं॑च॒ भव्यं॑च॒ सर्वे॑ लो॒काः प्रति॑ष्ठिताः ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(यत्र) जिसमें (आदित्याः) बारा आदित्य (च) और (रुद्राः) ग्यारारुद्र (च) और (वसवः) आठवसु (समाहिताः) एक भावसे अवस्थित हैं (च) और (भूतं) भूतकाल (च) और वर्तमान (च) और (भव्यं) भविष्यकाल (यत्र) जिसमें (सर्वे) सब (लोका) लोक (प्रतिष्ठिताः) स्थित हैं ॥ अथ० १०।२२ ॥

व्याख्याः—जिस आत्मामें बारासूर्य ग्यारा रुद्र आठवसु एकतासे स्थित हैं और होगया और होगा तथा वर्तमान कालके सहित सबलोक जिसमें अवस्थित हैं सोही आत्मा है ॥ १२ ॥

ये पुरु॑षे॒ ब्रह्म॑ वि॒दुस्ते वि॑दुः पर॒मे॑ष्ठिन॑म् ॥ यो वेद॑ पर॒मे॑ष्ठि॒नं यश्च॒ वेद॑ प्र॒जाप॑तिम् ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जे उपासक (पुरुषे) अपने देहमें (ब्रह्म) रुद्रको (विदुः) जानते हैं (ते) वे (परमेष्ठिनं) उत्तम सूर्यमण्डलवर्ती सविताको (विदुः) जानते हैं (यः) जो कोई मनुष्य (परमेष्ठीनं) भर्गको (वेद) जानता है (यः) सो (च) ही (प्रजापति) ब्रह्माको (वेद) जानता है ॥ अथ० १० । ७ । १७ ॥

व्याख्याः—जे उपासक अपने शरीरमें रुद्रको जानते हैं ते उपासक उत्तम मण्डलवर्ती रुद्रको जानते हैं ॥ जो कोईभी उपासक उत्तम भर्ग विराट्को स्वात्मरुपसे अनुभव करता है सोही ब्रह्माका साक्षात्कार करता है [**ब्रह्मदेवा वास्तोष्पतिं** ॥ देवताओंने यज्ञके स्वामी (ब्रह्म) रुद्रको प्रसंनकिया ऋग्० १० । ६१ । ७] **धाता विधाता परमोत संदृक् प्रजापतिःपरमेष्ठी विराजा॥** धाता उत्तम पोषक विधाता सृष्टिकर्त्ता-त्रिकालज्ञ प्रजाओंका पालक और उत्तम ब्रह्मलोकमें स्थित है सोही परमेष्ठी ब्रह्मा विराट् देहके सहित है ॥ ब्रह्म नाम रुद्रका और रुद्रके पुत्रका नाम ब्रह्मा है ॥ तैत्तरीय सं० ५ । ७ । ४ । ४] **आपो वा इदमग्रे सलिल मासीत्स एतां प्रजापतिः प्रथमां चितिमपश्यत्** ॥ इस स्थूल विराट् देहके पहिले व्यापक सूक्ष्मदेहथी उसब्रह्माने सूत्रात्मामें इस विराट् देहको प्रथम आधाररूपसे देखा उस विराट् देहका पहिलाभूमी पग है इस भूमीकी उपाधिसे ब्रह्माकानाम विश्वकर्मा हुआ ॥ अन्तरिक्षसे प्रजापति हुआ ॥ द्यौसे परमेष्ठी हुआ ॥ सूर्य मण्डलका नाम उत्तम है और उसमण्डलके सहित चेतनका नाम परमेष्ठी है ॥ तै० सं० ५ । ७ । ५ । ३] जैसे अध्यात्मचक्षु पुरुष और अधिदैव सूर्य पुरुष एक है ॥ तैसेही व्यष्टि अधिदैव सूर्यका चेतन पुरुष परमेष्ठी और समष्टी ब्रह्मलोकका ब्रह्मा परमेष्ठी एकही है ॥१३॥

ब्रह्मश्रोत्रियमाप्नोति ब्रह्मेमं परमेष्ठिनम् ॥ ब्रह्मेम-मग्निं पूरुषो ब्रह्म संवत्सरंममे ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(पुरुषः) मनुष्य (ब्रह्म) वेदको पढकर (श्रोत्रियं) गुरु पदको (आप्नोति) प्राप्त करता है (ब्रह्म) वेदकेद्वारा (इमं) इस (परमेष्ठिनं) सत्यलोकवासी ब्रह्माको प्राप्त होता है (ब्रह्म) वेदकेद्वारा (इमं) इस (अग्निं) अग्निको पाता है (ब्रह्म) वेदसेही संवत्सर अभिमानी सविताको (ममे) प्राप्त होता है ॥ अथ० १० । २ । २१ ॥

व्याख्या:—द्विजाति वेद पढकर गुरु योग्यपदको प्राप्त करता है वेदसे इस चराचर विश्वके कर्त्ता ब्रह्मलोकवासी विधाताको प्राप्त होता है वेदके द्वारा इस अग्निके सहित अतिथिको पूजकर पितृदेव लोकोंको प्राप्त करता है वेदके द्वाराही वर्ष अभिमानी सूर्यको भेदन करके भर्गमें लय होता है या ब्रह्मलोकको जाता है [तेषा मासन्ना नामतिथिरात्मन् जुहोति ॥ उन भक्ष्य पदार्थोंकी संन्यासी आत्मामें आहूति देता है ॥ स्रुचाहस्तेन प्राणेयूपेस्रुक्कारेण वषट्कारेण ॥ हातरूप स्त्रुवासे मुखरूप स्तम्भमें पंचप्राणके नामके सहित स्वाहा शब्दसे आहुतिरूप ग्रासलेता है ॥ एते प्रियाश्चा प्रियाश्चर्त्विजः स्वर्गलोकं गमयन्ति यदतिथयः ॥ स्नेह अस्नेह युक्त इन प्रसिद्ध अतिथियोंको अतिथिसत्कारमय यज्ञ करने-वाले गृहस्थ जिस स्वर्गलोकमें संन्यासी गये उसी स्वर्गलोकमें संन्यासी अपने पुण्य फलदेकर सेवकोंको पहुँचाते हैं ॥ सय एवं विद्वानद्विषनश्नीयान्नद्विषतोऽन्नमश्नीयान्न मीमांसितस्य न मीमांसमानस्य ॥ जो विचारवान् संन्यासी न द्वेषकरनेवा-लेके अन्नको खावे द्वेष करनेवालेके अन्नको न खावे ॥ पूज्य

अपूज्यके विचारसे रहितका अन्न न खावे–उत्तम पुरुषोंके शुभ कर्मको गृहण करता हुआ अशुभ कर्मको देखनेवालेका भोजन नहीं करता है सोही विद्वान है ॥ **सर्वो वाएष जग्धपाप्मा यस्यान्न मश्नन्ति** ॥ जिसके अन्नको संन्यासी खाते हैं वही गृहस्थ पापका भस्म करके संम्पूर्ण पुण्यका भागी होता है ॥ **सर्वो वाएषोऽजग्ध पाप्मायस्यान्नं नाश्नंति** ॥ जिसके अन्नको संन्यासी नहीं खाते हैं वही पापको न जलायकर सब पापका स्वामी है ॥ **योऽतिथीनांस आहवनीयोयो वेश्मनिसगार्हपत्या यस्मिन् पचंति सदक्षिणाग्निः** ॥ जो अतिथियोंका सत्कार है सोही आहवनीय अग्नि है, जो अतिथियोंके चरण प्रक्षालन करके घरमें आसनपर वैठालना सोही इन्द्रकी प्रसंनतारुप गार्हिपत्य अग्नि है जिस घरमें अतिथिकेलिये भोजनपकाते हैं सोही भोजन पितरोंके तृप्त करनेवाला दक्षिणाग्नि है ॥ **प्रजायतेर्वा एष विक्रमामनुविक्रमतेय उपहरति** ॥ जो गृहस्थ संन्यासीके समीप भोजन परोसता है वही गृहस्थ ब्रह्माकी प्रसंनताको धारण करता है ॥ अर्थात् ब्रह्मा भगवान् प्रसन्न होते हैं ॥ अथ० ९ । ७ । ४–० १३] **इष्टंच वाएष पूर्वंच गृहाणामश्नातियः पूर्वोऽतिथेरश्नाति** ॥ जो गृहस्थ संन्यासीसे पहिले भोजन करता है यज्ञरूप आदिपुण्य कर्मोंके सहित सब पुण्यवाले लोकोंका वही गृहस्थ नाश करता है ॥ **एष वा अतिथि र्यंच्छ्रोत्रियस्त स्मात्पूर्वो नाश्नीयात्** ॥ यह गृहस्थ आश्रमीने जो वेदके जाननेवाला अतिथि संन्यासी है उसीसे पहिले भोजन कभी न करे ॥ **अशितावत्यतिथावश्नीयाद् यज्ञस्य सात्मत्वाय यज्ञस्या विच्छेदायत-दूव्रतं** ॥ अतिथिके भोजन करलेने पर फिर गृहस्थ भोजनकरे, यज्ञके उसस्वामी व्यापक अग्निवायु सूर्य ब्रह्मारुद्रके लिये नित्य

आहूतिदेवे और यज्ञका कभी त्याग नकरे सर्वदा यज्ञकेलिये उत्सुक रहै यही गृहस्थका व्रत है ॥ एत द्वाउस्वादीयो यदधिगवं क्षीरंवामांसंवातदेवनाश्नीयात् ॥ इस नियमवाला गृहस्थही अति स्वादिष्ट अधिक घृतवाले मालपूआ भोजनहरिण आदिका माँस उस यज्ञ अतिथिके अर्पणविनाकभी न खावे ॥ अर्थ० ९ । ८ । ११ । ७-८-९] नार्यमणं पुष्यतिनो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥ जो मनुष्य अग्निवायु सूर्यको हवनसे नहीं पोषण करता है और अपने सबपाप हरनेवाले मित्ररूप अतिथिको भोजनसे पोषण नहीं करता है केवल खानेवाला सो गृहस्थ केवल पापरूप भोजनका खानेवाला पापी हैं ॥ ऋग्० १० । ११७ । ६] त्र्यर्यमा ॥ अग्निवायु सूर्यये तीन तेज स्वरूपही अर्यमा है ॥ ऋग्० ५ । १९ । १] ये तीनो एकही देवकी महिमा हैं ॥ १४ ॥

यस्य भूमिः प्रमान्तरिक्ष मुतोदरम् ॥ दिवंयश्चक्रे मूर्धानं तस्मैं ज्येष्ठाय ब्रह्मणे नमः ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(यस्य) जिस विराट्का (भूमीः) पृथिवी (प्रमा) पगहै (उग) और (अन्तरिक्षं) आकाश (उदरं) पेट है (यः) जिसने (दिवं) द्योको (मूर्धानं) मस्तक (चक्रे) बनाया (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) आदिपुरुष (ब्रह्मणे) ब्रह्माकेलिये (नमः) नमस्कार है ॥ अथ० १० । ७ । ३२ ॥

व्याख्याः—जिस विराट्का चरणभूमी और उदर अन्तरिक्ष है जिस विधाताने विराट्का मस्तक स्वर्गको रचा उस आदिपुरुष ब्रह्माके प्रतिमेरा नमस्कार है ॥ १५ ॥

यस्य॒ सूर्य॒श्चक्षु॒श्चन्द्रमा॑श्च॒ पुन॑र्णवः ॥ अ॒ग्निं य॒श्चक्र आ॒स्यं॑ ? तस्मै॑ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे॒ नमः॑ ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(यस्य) जिस विराट्का (सूर्यं) सूर्य (चक्षुः) नेत्र है (च) और (पुनः नवः) वारंवार कृष्ण पक्षमें मरकर शुक्लमें जन्म लेनेवाला (चन्द्रमाः) चन्द्रमाभी नेत्र है (यः) जिसने (अग्निं) अग्निको (आस्यं) मुख (चक्रे) बनाया (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) सबके पितामह (ब्रह्मणे) ब्रह्माको (नमः) मेरा प्रणाम हो ॥ अथ० १० । ७ । ३३ ॥

व्याख्याः—जिस विराट्का सूर्य दक्षिण नेत्र और वारंवार कृष्णपक्षमें मरकर शुक्लपक्षमें जन्मलेनेवाला चंन्द्रमा वामनेत्र है ॥ जिस परमेष्ठीने विराट्का मुख अग्निको बनाया उस सबके पितामह स्वयं भूको मेरा प्रणाम हो ॥ १६ ॥

यस्य॒ वातः॑ प्राणापा॒नौ चक्षु॑रङ्गि॒रसो॒ऽभ॑वन् ॥ दिशो॒ यश्च॒क्रे प्र॒ज्ञानी॒स्तस्मै॑ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे॒ नमः॑ ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(यस्य) जिसके (प्राणः अपानः) प्राण अपान (वातः) वायु है (अंगिरसः) नक्षत्र (चक्षुः) प्रकाश (अभवन्) हुए (दिशः) दशदिशाओंको (यः) जिसने (प्रज्ञानीः) जाननेकेलिये चिह्न (चक्रे) बनाया (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) सबदेवोंमें बडे (ब्रह्मणे) विधाताके प्राप्तिके लिये (नमः) चिन्तवन् के सहित प्रणाम करता हूँ ॥ अथ० १० । ७ । ३४ ॥

व्याख्याः—जिस विराट् देहका वायु प्राण अपान है. और नक्षत्र गण प्रकाश हुए. जिस विधाताने दश दिशाओंको जाननेके

लिये चिह्न बनाया सबदेवोंसे बडे उसधाताकी प्राप्तिकेलिये मैं ध्यानके सहित नमस्कार करता हूँ ॥ १७ ॥

यः श्र॒मात् तप॑सो जा॒तो लो॒कान्त्सर्वा॑न्त्समा॒नशे ॥
सोम॒ं यश्च॒क्रे केव॑ल॒ं तस्मै॑ ज्ये॒ष्ठाय॒ ब्रह्म॑णे नमः ॥१८॥

अन्वयार्थः—(यः) जो महेश्वर (तपसः) सृष्टि संकल्पकी (श्रमात्) क्रियाशक्तिसे ब्रह्मा नामको धारण करके (जातः) प्रसिद्ध हुआ (सर्वान्) समस्त (लोकान्) लोकोंको धारण करता हुआ (समानशे) व्यापक है (यः) जिसने (सोमं) महर्लोकवासी सोमदेवताको (चक्रे) रचा (तस्मै) उस (ज्येष्ठाय) महेश्वर स्वरूप (ब्रह्मणे) ब्रह्माकेलिये (नमः) नमस्कार हो ॥

व्याख्याः—जो मायिक रुद्र है सोही अपनी संकल्पकी क्रियासे ब्रह्मा नामको धारण करके प्रसिद्ध हुआ सो ब्रह्मा सम्पूर्ण लोकोंक धारण करके व्यापक है ॥ जिस ब्रह्माने महर्लोकवासी सोमको रचा उस महेश्वरस्वरूप ब्रह्माकेलिये नमस्कार हो ॥ एकही रुद्र पदार्थोंके भेदसे अनेक नामरूपवाल. प्रतीत होता है यही रुद्रकी माया है ॥ १८ ॥

भवाशर्वौ म॒न्वे वांतस्य॑ वि॒त्तं ययो॑र्वामि॒दं प्र॒दिशि॒ यद्वि॒रोच॑ते ॥ याव॒स्येशा॑थेद्विपदो॒ यो चतु॑ष्पद॒स्तौ नौमु॒ञ्चतुम॑हंसः ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(भवाशर्वौ) हे भवशर्व (ययोर्वां) जिनतुम दोनोंका प्रभाव (मन्वे) मैं जानता हूँ (प्रदिशि) आज्ञामें (इदं) यह सब विश्व (यत्) जो (विरोचते)

प्रकाशित है (तस्य) उस जगत्‌का धन (अस्य) इस (द्विपदः) दोपगवाले मनुष्यके (वां) तुमदोनों (यौ) जो (इशाथे) स्वामी हो (यौ) जो तुम दोनों (चतुष्पदः) चारपगवाले पाणिमात्रके स्वामी हो (तौ) वे तुमदोनों (नः) हमको (अंहसः) पापसे (मुञ्चतं) छुडावो ॥ अथ० ४ । २८ । १ ॥

व्याख्याः—हे जगत्‌की उत्पत्ति पालन संहार करनेवाले ब्रह्मा रुद्र जिन तुम दोनोंकी महिमा मैं जानता हूँ, तुम दोनोंकी आज्ञामें जो यह सब चराचर प्रकाशित हो रहा है उस जगत्‌का धन इस दो चरणवाले प्राणिमात्रके जो तुम दोनों स्वामी हो और जो तुम दोनो चार पगवाले प्राणिमात्रके अधिपति हो सो ब्रह्मा रुद्र तुम दोनोंदेव हमको सब पापसे मुक्त करो ॥ रूद्रके दो रूप एक ब्रह्मा और दूसरा संहार मूर्ति महेश हैं ॥ ब्रह्मा जगत्‌को रचकर पालन कर्त्ता है इसलिये ही भव है ॥ और कालाग्नि भगवान् प्रलयमें संहार करता है सोही शर्व है ॥ [ब्रह्मा देवानां प्रथमः सम्बभूव विश्वस्यकर्त्ता भुवनस्यगोप्ता ॥ सब देवताओंके पहिले प्रगट होनेवाला ब्रह्मा सब जगत्‌की उत्पत्ति और पालन करनेवाला है ॥ मुण्डकउ० १ । १ । १] यह भव मूर्त्ति प्रलयमें संहार, रूपसे शर्व है [प्रजापति र्वैकः ॥ सहैज्जगार ॥ प्रसिद्ध ब्रह्मा कः नामवाला है सो ही प्रजापति इस जगतको प्रलयमें खा जाता है ॥ जैमिनीय ब्रा० ३ । १ । २ । ११] देव एकः कः सजगार भुवनस्य गोपाः ॥ सो एक (कः) ब्रह्मादेवता जगत्‌का रक्षक प्रलयमें जगत्‌को निगल जाता है ॥ छां० उ ४ । ३ । ६] ब्रह्मवै ब्रह्मा ॥ रुद्रही ब्रह्मा है ॥ काठक सं० ११ । ४] प्रजापति र्वै ब्रह्मा ॥ प्रजापतिही ब्रह्मा है ॥ काठक सं० १४ । ७] वेदोंमें अनेक नामोंसे एक रुद्रकाही प्रतिपादन है ॥१९॥

यु॒योर॑भ्य॒ध्व उ॒त यद्दू॒रे चि॒द्यौ वि॑दि॒तावि॑षु॒भृता॒म सि॑ष्ठौ ॥ याव॒स्येशा॑थे द्वि॒पदो॒ यौ चतु॑ष्पद॒स्तौ नो॑ मुञ्चत॒-मंह॑सः ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(ययोः) जिनदोनोंके वशमें (यत् चित्) जो कुछभी (दूरे) दूरमें (उत) और (अभ्यध्वे) समीपमें है (यौ) जे दोनों (विदितौ) जाननेवाले (इषुऽभृतां) बाणको धनुषपर चढानेवाले (असिष्ठौ) फेंकनेवाले (यौ) जेदोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दोपगवालेके (ईशाथे) स्वामी हो (यौ) जे तुम दोनों (चतुः पदः) चारपगवालेके स्वामी हो (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमको (अंहसः) पापसे (मुञ्चतं) पृथक्करो ॥ अथ० ४। २८। २ ॥

व्याख्याः—जिन भव शर्व नामवाले तुमदोनों देवोंके वशमें जो कुछभी दूर और समीप में है जे तुम दोनों जाननेवाले बाणको धनुषपर चढाकर फेंकनेवाले जे दोनों तुम इस दो पगवाले के स्वामी हो और जे तुम दोनों चार पगवालेके स्वामी हो वेतुम दोनों देवता हमको दुःखरूप पापसे बचावो ॥ २० ॥

स॒ह॒स्रा॒क्षौ वृ॑त्र॒हणा॑ हु॒वेहं दू॒रे गव्यू॑ती स्तु॒वन्ने॑म्यु॒ग्रौ ॥ याव॒स्येशा॑थे द्वि॒पदो॒ यौ चतु॑ष्पद॒स्तौ नो॑ मुञ्चत॒मंह॑सः ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(सहस्राक्षौ) वेदोनों सर्वत्र अन्तर्य्यामी रूपसे व्यापक अनन्त नेत्रवाले (वृत्रहना) पापको नाश करने-वाले (दूरेगव्युती) गौओंके चरनेकी भूमीसे दूरस्थित (उग्रौ)

उत्तम दोनों देवताओंको (स्तुवन्) स्तुति करता हुआ (अहं) मैं (हुवे) बुलाता हूँ । (नेमी) मर्य्यादावाले (यौ) जे दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दो पगवालेके (ईशाथे) स्वामी हो, (यौ) जे दोनों (चतुः पदः) चार पगवाले के स्वामी हो (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमको (अंहसः) पापसे (मुञ्चतं) बचावें ॥ अथ० ४ । २८ । ३ ॥

व्याख्याः—वे भव शर्व नामवाले दोनों देवता, अन्तर्य्यामी रूपसे सर्वव्यापक, असंख्य नेत्रवाले, पापको नाशकरने वाले, गौओंके चरने वाली भूमीसे दूरपरस्थित उत्तमदेवोंको स्तुति करता हुआ मैं आवाहन करता हूँ, मर्य्यादावाले जे दोनों तुम इस दो पग वाले के अध्यक्ष हो और जे तुम दोनों चार पगवाले के अधिपति हो, वे तुम दोनों हमको पापसे भिन्न करके सुखी करो [पाप्मा वै नमुचेः शिरः ॥ पापही नमुचीका शिर है ॥ मैत्रायणी सं० ४ । ४ । ४] पाप्मा वै तमः ॥ पापही अन्धकार है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३१ । १] पाप्मा वै वृत्रः ॥ पापही वृत्र है ॥ शतपथ ब्रा० ११ । १ । ५ । ७] आपो वै वृत्रः ॥ व्यापक अन्धकारी वृत्र है ॥ आपो वै रात्रिः ॥ व्यापक अन्धकारी रात्री है ॥ मैत्रायणी सं० ४ । ५ । १] तमो वै कृष्णं ॥ अन्धकार ही कालावर्णवाला मृत्यु है ॥ मै० सं० २ । ५ । ६] मृत्युस्तमः कृष्णं ॥ अन्धकाररूप मृत्यु ही कृष्ण है ॥ अर्थात्— अन्धकारका रूप काला है ॥ तैत्तरीय सं० ५ । ७ । ५ १] जारः... राममस्थात् ॥ रामं—अन्धकारको हटाकर (जारः) शत्रुको नाश करनेवाला अग्नि स्थित होता है ॥ ऋग्० १० । ३ । ३ ॥ साम संहिता उत्तरार्चिक १५ । ४ । ३] मृत्यु तम—कृष्ण—वृत्र—नमुची— राम—पाप्मा—दाम—इत्यादिक नाम अन्धकारके हैं ॥ २१ ॥

यावारेभाथे बहु साकमग्रे प्रचेदस्राष्ट्रमाभिभांज- नेषु ॥ यावस्येशाथे द्विपदो यौ चतुष्पदस्तौ नो मुञ्चतमं हसः ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(यौ) हे जे तुम दोनों देव प्रलयके आदि में (बहु) बहुत प्राणियोंका (अभिभां) संहार करनेवाले हो, (च) और प्रलयपूर्व सृष्टिके (जनेषु) प्राणियोंमें कर्मसंस्कार थे उन कर्मसमुच्चयकी अपरिपक्कदशाका नामही प्रलय है, तथा परिपक्क अवस्थाका नाम सृष्टि है (अग्रे) प्रलयका अन्त और विश्व रचनाके कुछ पहिले (आरेभाथे) महेश्वर ब्रह्मा नामको धारण करनेवाले तुम दोनों हो, (इत्) फिर (साकं) बहुत प्राणियोंके समुहको (प्रास्राष्टूं) रचनेवाले हो, (यौ) जे तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दो पग वालेके (ईशाथे) स्वामी हो (यौ) जे तुम दोनों (चतुःपदः) चार पगवालेके स्वामी हो (तौ) सो तुम दोनों (नः) हमको (अंहसः) पापसे (मुञ्चतं) बचावो ॥ अथ० ४ । २८ । ४ ॥

व्याख्याः—हे भव, शर्व, जे तुम दोनों देव प्रलयके आदिमें बहुत प्राणियोंका संहार करते हो और प्रलयपूर्व सृष्टिके प्राणियोंमें कर्मसंस्कार भोग रहित थे उन कर्मसमुदायकी अपरिपक्क दशाका नाम ही प्रलय है, तथा परिपक्क अवस्थाका नाम सृष्टि है, प्रलयका अन्त और जगत् रचनाके कुछ पहिले महेश्वर ब्रह्मा नामको धारण करनेवाले तुम हो, फिर बहुत प्राणियोंके समुहको उत्पन्न करनेवाले हो, जे तुम दोनों इस दो पगवाले प्राणिसमुहके स्वामी हो और जे तुम दोनों चारपगवाले प्राणिमात्रके स्वामी हो सो तुम दोनों हमको पापसे बचावो ॥ २२ ॥

यर्योर्व॒धान्नापप॒द्यते कश्च॒नान्तर्दे॒वेषू॒त मानु॑षेषु ॥
याव॒स्येशा॑थे द्वि॒पदो॒ यौ चतु॑ष्पद॒स्तौ नो॑ मुञ्चत॒मं
हसः ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(ययोः) जिन तुम दोनोंके (वधात्) आयुधसे (देवेषु) देवताओंमें (उत) और (मानुषेषु) मनुष्योंके (अन्तः) मध्यमें (कश्चनः) कोईभी (न) नहीं (अपपद्यते) बचसकता है (यौ) जे तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दो पगवालेके (ईशाथे) स्वामी हो (यौ) जे तुम दोनों (चतुःपदः) चार पगवाले के स्वामी हो (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमको (अंहसः) पापसे (मुञ्चतं) बचावो ॥ अथ० ४ । २८ । ५ ॥

व्याख्याः—जिन तुम दोनोंके शस्त्रसे सब देवताओंमें और मनुष्यों के बीचमें कोई भी नहीं बचता है, जे तुम दोनों इस दो चरणवालेके स्वामी हो और जे तुम दोनों चार पगवालेके स्वामी हो, वे तुम हमको पापसे बचावो ॥ २३ ॥

यः कृ॒त्याकृन्मू॒लकृद्या॑तु॒धानो॒नि तस्मि॑न् धत्तं॒
वज्र॑मु॒ग्रौ ॥ या व॒स्येशा॑थे द्वि॒पदो॒ यौ चतु॑ष्पद॒स्तौनो॑
मुञ्चत॒मंह॑सः ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो शत्रु (कृत्याकृत्) क्रियारहित पिशाचिनीके द्वारा नाश करनेवाला है (यातुधानः) जो राक्षस (मूलकृत्) वंशको नाश करनेवाला है (तस्मिन्) उनदोनों शत्रुओंपर (उग्रौ) हे भव, शर्व, तुम दोनों (वज्रं)

बाणको (निधतं) फेंको। (यौ) जे तुम दोनों (अस्य) इस (द्विपदः) दो पगवालेके (ईशाथे) स्वामी हो, (यौ) जे तुम दोनों (चतुःपदः) चारपगवालेके स्वामी हो (तौ) वे तुम दोनों (नः) हमारी (अंहसः) पापसे (मुञ्चतं) रक्षा-करो ॥ अथ० ४ । २८ । ६ ॥

व्याख्याः—जो हमारा शत्रु मनुष्य भूत प्रेतके द्वारा नाश करनेवाला है और जो शत्रु राक्षस हमारे वंशको नष्ट करनेवाला है, उन दोनों शत्रुओं पर हे भव, शर्व, तुम दोनों बाण फेंको, जे तुम दोनों इस दो पगवालेके और चार पगवालेके स्वामी हो सो तुम हमारी उपद्रव आदि पापसे रक्षा करो [वज्रो वै शरः ॥ वज्र ही बाण है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३६ । १] भूत प्रेत राक्षस आदिके प्रवेशको रुद्र ही नष्ट करता है ॥ २४ ॥

अधि॑नो ब्रूतं पृत॑नासूग्रौ॒ सं॒वज्रे॑ण सृजतं यः कि॑मी॒-दी ॥ स्तौमि॒ भवाश॒र्वौ ना॑थि॒तो जो॑हवी॒मि तौ नो॑ मुञ्चत॒मंह॑सः ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(उग्रौ) हे महाबलवान् तुम दोनों (नः) हमारेलिये (अधिब्रूतं) विशेष सुखमय ज्ञानको कहो। (पृतनासु) युद्धोंमें (वज्रेण) आयुधसे (संसृजतं) शत्रुओंको संयुक्त करो। (यः) जो (किमीदी) यह क्या हो रहा है इस प्रकारके वचन कहनेवाले हिंसक हैं, उनकोभी मारो। (भवाशर्वौ) भवशर्व तुमदोनोंको (नाथितः) याचना करनेवाला (स्तौमि) मैं स्तुति करता हुआ (जोहवीमि) वारंवार आवाहन करता हूँ

(तौ) सो तुम दोनों (नः) हमको (अंहसः) पापके बन्धनसे (मुञ्चतं) निर्लिप्त करो ॥ अथ० ४ । २८ । ७ ॥

व्याख्याः—हे महावलवान् तुम दोनों हमारेलिये विशेष सुखदायी उपदेश करो, और युद्धोंमें वज्रसे शत्रुओंको मारकर एकत्रित करो, और जो यह क्या है इस प्रकारसे ठगनेवाले शत्रुओंको मारो, भव शर्व नामवाले तुम दोनोंको याचना करनेवाला मैं उपासक स्तुति करता हुआ वारंवार बुलाता हूँ, सो तुम दोनों हमको सब पापमय बन्धनोंसे निर्मल करो ॥ २५ ॥

अधि ब्रूहि मारभथाः सृजेमं तवैव सन्त्सर्वहाया इहास्तु ॥ भवाशर्वौ मृडतं शर्म यच्छतमपसिध्य दुरितं धत्तमायुः ॥ २६ ॥

अन्वयार्थः—(अधिब्रूहि) हे प्राण अभिमानी देव तुम हमारे लिये सुखमय विशेष वचन कहो, देहके प्राणको (मा आरंभथाः) मत खेंचो, (इमं) इसको (सृज) छोडो, (तव एवसन्) आपकाही है। (इह) इस भूलोकमें (सर्वहायाः) सर्व सामर्थ्यवाला (अस्तु) होवे (भवाशर्वौ) हे भवशर्व तुम दोनों इस यजमान पर (मृडतं) दयाकरो, (शर्म) सुख (यच्छतम्) देओ, (दुरितं) पापरूप व्याधिको (अपसिध्य) नाश करके (आयुः) दीर्घ जीवनको (धत्तं) स्थापन करो ॥ अथ० ८ । २ । ७ ॥

व्याख्याः—एक ही रुद्र उत्पन्न पालन करनेसे भव पशुपति है, और संहार करनेसे शर्व है ॥ जैसे किसानके नाम बीज बोने वाला-रखवाला-काटनेवाला आदि हैं ॥ बोनेवाले और काटने-

वाले के बीचमें रक्षा करनेवाला नाम है ॥ तैसे ही रुद्रका भव और शर्व नामके वीचमें पशुपति नाम है ॥ जिस रुद्रको सम्बोधनमें एक वचन कहा है उसीको द्विवचनमें भव शर्व कहा है ॥ प्राणशक्तिके आधार रुद्र, तुम हमारेलिये सुखमय विशेष वचन कहो, इस रोगीके प्राणको मत खेंचो, इस प्राणको छोडो यह उपासक आपकाही है, इस भूमीमे सर्व रोग रहित सामर्थ्यवाला होवे। हे रुद्र तुम भवशर्व नाम वाले देवता इस यजमान पर दया करो तथा सुख देओ-और पापरूप व्याधिको नाश करके दीर्घ जीवनको स्थापन करो ॥ [प्राणा वै वसवः ॥ प्राणाहीदं सर्वंवस्वाददते ॥ प्राण ही अष्ट वसु हैं, प्राण ही इस सब जगत्को वास कराते हैं ॥ प्राणा वै रुद्राः ॥ प्राणाहीदं सर्वं रोदयंति ॥ प्राण ही ग्यारा रुद्र हैं ॥ प्राणही इस सम्पूर्ण शरीरोंको शोक कराते हैं ॥ प्राणा वा आदित्याः ॥ प्राणाहीदंसर्वं माददते ॥ प्राण ही वारा आदित्य हैं ॥ प्राणही इस सब जगत्को ग्रहण करते हैं ॥ जैमिनीय ब्रा० ४ । १ । १ । ३-६-९] इन तीनों उपाधियोंसे प्राणके भिन्न २ नाम हैं। उन प्राणकी उपाधिसे एक रुद्रके भी इकतीस नाम है ॥ प्राणो वै गोपाः ॥ प्राणही सबका रक्षक है ॥ प्राणो वै ब्रह्म ॥ प्राणही रुद्र है ॥ जै० बा० ३ । ६-७ । ९-१ । २-१] ब्रह्म वास्तोष्पतिं ॥ यज्ञके स्वामी रुद्रको ॥ ऋग्० १० । ६१ । ७] प्राणावावरुद्रा पतेहीदं सर्वं रोदयन्ति ॥ प्राणही रुद्र है क्यों कि ये ही सबको रुदन कराते हैं ॥ छा० उ० ३ । १६ । ३] कतमे रुद्रा इति दशमे पुरुषे प्राणा आत्मैकादशः ॥ ते यदाऽस्माच्छरीरान्मर्त्यादुत्क्रामन्त्यथरोदयन्ति तद्यद्रोदयन्ति तस्माद्रुद्रा इति ॥ रुद्र कितने ऐसा पूछने पर-उत्तर पाँच प्राण और पाँच

उपप्राण ये दश प्राण (पुरुषे) देहमें और प्राणयुक्त ग्यारवाँ जीवरूप रुद्र है। वे प्राण इस मरणधर्मी देहसे जब निकलते हैं तब समीपवर्ती कुटुम्बियोंको रुदन कराते हैं, जिस समय देहका पात होता है उस समय रुदन कराते हैं उस कारणसे ही रुद्र हैं ॥ बृ० उ० ३।९।४] प्रत्येक् प्राणियोंके भेदसे ग्यारा २ रुद्र हैं। उन अध्यात्म रुद्रोंका अधिदैव स्वरूप ग्यारारुद्र अन्तरिक्ष में हैं ॥ और असंख्य त्रिलोक व्यापी अधिदैव रुद्रोंका एक प्राणशक्ति अधिष्ठान महेश्वर ही समष्टिस्वरूप है ॥ २६ ॥

भवाशर्वावस्यतां पापकृते कृत्याकृते दुष्कृते विद्युतं देव हेतिम् ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(भवाशर्वौ) हे भव शर्व तुम दोनों (पापकृते) पाप :करनेवाली (कृत्याकृते) अकार्य करनेवाली (दुष्कृते) दुष्ट कर्म करनेवाली कृत्याके नाश करनेके लिये (देवहेतिं) देवताओंसे रचा हुआ (विद्युतं) चमकते हुए शस्त्रको (अस्यतां) छोडो ॥ अथ० १०।१।२३ ॥

व्याख्याः—हे भव शर्व, तुम दोनों देव हिंसारूप पाप करनेवाली दुष्ट कर्मयुक्त अकार्य करनेवाली शत्रुने भेजी हुई कृत्याके नाश करनेकेलिये देवताओंसे निर्मित तेजोमय बाणको फेंको ॥२७॥

भवाशर्वाविदं ब्रूमो रुद्रं पशुपतिश्चयः ॥ इषूर्या एषां संविद्मतानः सन्तु सदाशिवाः ॥ २८ ॥

अन्वयार्थः—(भवाशर्वौ) भवशर्व दोनों के उद्देशसे (इदं) इस प्रीतिमय वचनको (ब्रूमः) हम बोलते हैं (च)

और (रुद्रं) रुद्रको रक्षाके लिये आवाहन करते हैं। (एषां) इन तीनों देवताओंके (याः) जिन (इषूः) बाणोंको (संविद्म) हम भली प्रकार जानते हैं। (यः) जो (पशुपतिः) सब प्राणियोंका पालन करनेवाला है सोही रुद्र तीन रूपवाला है। (ताः) वे तीन देवता (नः) हमारेलिये (सदा) सर्वकाल (शिवाः) सम्पूर्ण सुख करनेवाले (सन्तु) होवें ॥ अथ० ११।८।९॥

व्याख्याः—जगतके उत्पन्न संहार करनेवाले भव शर्व दोनोंके उद्देशसे, और पालन करनेवाले रुद्रको रक्षाके लिये इस श्रद्धायुक्त वचनको बोलते हुए आवाहन करते हैं। इन तीनों देवताओंके जिन-बाणोंको हम भली प्रकार जानते हैं जो समस्त प्राणियोंका पालन करनेवाला स्वामी है सोही रुद्रभव पशुपति शर्व इन तीन स्वरूपवाला है ॥ वे तीनों देवता हमारे लिये सर्वकाल संम्पूर्ण सुख करनेवाले होवें ॥ जो दुःखीयोंके दुःखको देखकर दया युक्त पिघल गया सोही रुद्र है ॥ एकही रुद्र जगत्की उत्पत्ति पालन संहाररूप कार्यके करनेसे भव पशुपति शर्व नामवाला है ॥ २८ ॥

एनामवंशामाह देवानां निहितं निधिम् ॥ उभौ तस्मै भवाशर्वौ परिक्रम्येषुमस्यतः ॥ २९ ॥

अन्वयार्थः—(देवानां) देवताओंको (निधिं) आत्मविद्यारूप धन (निहितं) अवस्थित हैं। (यः) जो ब्राह्य विषयोंको सुख माननेवाला मूर्ख मनुष्य (एनां) इस गुप्तविद्याको (अवशां) निरसरूप परवश (आह) कहता हुआ उसका उपहास करता है (तस्मै) उस अद्वैत विद्याकी निन्दाकरनेवालेके नाशलिये (भवाशर्वौ) भव शर्व (उभौ) दोनों (परिक्रम्य) सर्वत्रसे

घेर कर (इषु) बाणको (अस्यतः) फेंकते हैं ॥ अथ० १२।५।१७॥

व्याख्याः—देवताओंकी परमगुप्त अध्यात्मविद्यारूपधन वेदोंमें स्थित है। बाह्य विषयभोगोंसे रहित एक अखण्ड आनन्द धनको-परवश निरस कहकर जो विषयी लम्पट मूर्ख मनुष्य इस विद्याकी निन्दा करता है, उस अज्ञानीके नाशकेलिये शर्व भव दोनों देवता सर्वत्रसे घेर कर बाणको फेंकते हैं॥ वारंवार नीचयोनियों में घेर कर उसके कूकर्मरूप बाणसे फल देकर भुक्तमान कराना ही मारना है ॥ २९ ॥

इति श्री अथर्वण वेदीयरुद्र प्रथम सूक्तम् ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत्परमहंसपरिब्राजकाचार्य स्वामी शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्याख्या समाप्त ॥१॥

॥अथ अथर्वण वेदीय द्वितीय सूक्तम्॥

भवाशर्वौ मृडतं माभियातं भूतपती पशुपती नमो वाम् ॥ प्रतिहितामायतां माविस्राष्टं मानो हिंसिष्टं द्विपदोमा चतुष्पदः ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(भवाशर्वौ) हे भव शर्व (भूतपती) प्राणियों के स्वामी (पशुपती) प्राणियोंके पालक (मृडतं) सुखी करो। (माभियातं) क्रोध पूर्वक हमपर चढाई मत करो। (प्रतिहितां) मारनेके लिये फेंकी हुई (आयतां) विस्तारवाली शक्ति को (माविस्राष्टं) उपासकों पर मत छोडो। (नः) हमारे (द्विपदः) दो पगवालेकी (चतुष्पदः) चार पगवालेकी (हिंसिष्टं) हिंसा (मा) मतकरो (वां) तुम दोनोंको (नमः) मैं प्रणाम करता हूँ ॥

व्याख्याः—हे भव शर्व, तुम दोनों हमको सुखी करो, हे देव दैत्य पितर मनुष्यादिके स्वामी तुम दोनों क्रोध पूर्वक हमारे नाशके

लिये धावा मत करो, हे जगत्पालक तुम दोनोंने मारनेके लिये महामारी आदि रोगोंको फैलाया हुआ है उस शक्तिको हमपर मत छोडो, हमारे दो पगवाले शिष्य पुत्र माता आदिको और चार पग वाले बकरी गो आदिको मत मारो, तुम दोनोंको मैं नमस्कार करता हूँ ॥ १ ॥

शुनें क्रोष्ट्रेमा शरींराणि कर्तंमलिक्लवेभ्यो गृध्रेभ्यो ये चं कृष्णा अंविष्यवंः ॥ मक्षिकास्ते पशुपते वयांसि ते विघसे मा विंदन्त ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(शुने) कुत्तेके लिये (क्रोष्ट्रे) श्याल जम्बुकके लिये (अलिक्लवेभ्यः) अपने बलसे भय देनेवाले भेडीया–वृक–व्याघ्र आदिके लिये (गृध्रेभ्यः) गिद्ध आदि पक्षीयोंके लिये (अविष्यवः) कच्चे मांस भक्षण करनेवाले (ये) जे (कृष्णाः) कौवे–काक पक्षीयोंके लिये (शरीराणि) हमारे शरीरोंको भक्ष रूपसे (माकर्त) मत करो (पशुपते) हे प्रजा पालक देव (ते) आपकी दयासे (मक्षिकाः) मक्खियें (च) और (वयांसि) पक्षि जातिमात्र (ते) आपकी कृपासे (विघसे) भोजन पर (माविदन्त) न बैठने पावे ॥ अथ० ।

व्याख्याः—कुत्ता–श्याल–वृक–भेडीया–व्याघ्र आदि हिंसक प्राणि अपने बलसे भय उत्पन्न करनेवाले कच्चे मांस आहारी–गिद्ध–कौवे–काक–पक्षी जे हैं उनकेलिये हमारे शरीरोंको भक्षण रूपसे मत करो, हे चराचरके पालक रुद्र आपकी दयासे मक्खियाँ, और पक्षीयोंकी जातिमात्र आपकी कृपासे हमारे भोजनपर बैठकर अपवित्रता न करने पावें ॥ २ ॥

क्रन्दा॑य ते प्राणाय॒ याश्च॑ते भव रोप॑यः ॥ नम॑स्ते रुद्र कृण्मः सहस्राक्षाया॑मर्त्य ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(भव) हे विश्वोत्पादक (क्रन्दाय) शब्द करनेवाले (प्राणाय) वायुके लिये (ते) आपके लिये नमस्कार है (च) और (रुद्र) हे रुद्र (याः) जे (रोपयः) मोहित करनेवाळेले शरीर है उन शरीरोंके सहित (ते) आपके प्रति प्रणाम है, तथा (अमर्त्य) हे मरण धर्मसे रहित (सहस्राक्षाय) अधिदैव अध्यात्म क्षेत्रोंमें क्षेत्रज्ञरूपसे व्यापक अन्तर्यामी (ते) आपके लिये (नमः कृण्मः) नमस्कार करता हूँ ॥

व्याख्याः—हे सबकी उत्पत्ति करनेवाले देव, देह त्याग करते समय शब्दकरनेवाले प्राणवायुरूप आपकेलिये मेरा प्रणाम है, हे सब दुःखोंके मूलको नाश करनेवाले रुद्र और जे मोहित करनेवाले असंख्य देह भेदसे प्राणरूप शरीर हैं उनके सहित आपको प्रणाम हैं, हे जन्ममरणधर्मरहित अविनाशी, अधिदैव अध्यात्मरूप क्षेत्रोंमें—क्षेत्रज्ञ स्वरूपसे व्यापक अन्तर्य्यामी आपकेलिये मैं नमस्कार करता हूँ ॥ ३ ॥

पुरस्ता॑त् ते॒ नम॑ः कृण्म उत्त॒राद॑ध॒राद्रु॒त ॥ अ॒भी॒-व॒र्गात् दि॒वस्पर्य॒न्तरि॑क्षाय ते॒ नमः ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(पुरस्तात्) पूर्व दिशामें स्थित हुए (ते) आप रुद्रके प्रति (नमः) नमस्कार (कृण्मः) मैं करता हूँ (उत्तरात्) उत्तर दिशा में तथा (अधरात्) दक्षिण दिशामें स्थित आपकेलिये प्रणाम करता हूँ (उत) और पश्चिम व्यापी

आपके लिये प्रणाम करता हूँ (अभिवर्गाद्) मोक्ष स्वरूप महेश्वर अपनी मायाके द्वारा ब्रह्मारूपको धारण करके (दिवः) द्यौः के मध्यमें सूर्यरूपसे स्थित हुए आपकेलिये प्रणाम करता हूँ (अन्तरिक्षाय) अन्तरिक्षमें वायुरूपसे वास करनेवाले आपके लिये प्रणाम करता हूँ (परि) अन्तवाली भूमीमें अग्निरूपसे वसनेवाले (ते) आप रुद्रके लिये नमस्कार करता हूँ ॥

व्याख्याः—पूर्व दक्षिण पश्चिम उत्तर आदि उपदिशाओंमें स्थित आप रुद्रके प्रति मैं नमस्कार करता हूँ और मोक्ष स्वरूप महेश्वर अपनी मायाके द्वारा, ब्रह्मारूपसे प्रगट हुए, सोही ब्रह्मा सूर्य रूपसे स्वर्गमें स्थित हुए, उन सूर्य रूपसे स्थित हुए, ब्रह्माके पुत्र भर्गस्वरूप आपके लिये प्रणाम करता हूँ ॥ अन्तरिक्षमें वायुरूपसे स्थिर और अन्तवाली भूमीमें अग्निरूपसे स्थित आप रुद्रके निमित्त प्रणाम करता हूँ [सविता पश्चात् ॥ ऋग्० १० । ८७ । २१] ब्रह्मैवेदममृतं पुरस्ताद्ब्रह्म ॥ मु० उ० २ । २ । ११] ब्रह्म वास्तोष्पतिं ॥ ऋग्० १० । ६१ । ७] ऋतं वै सत्यं ॥ रुद्रही ब्रह्मा है ॥ मैत्रायणी सं० १ । १० । ११] ब्रह्म वै ब्रह्मा ॥ रुद्रही ब्रह्मा है ॥ मै० सं० २ । २ । २] देवानां ब्रह्मा निरुक्तं ॥ रुद्र देवोंके मध्यमें निराकार है ॥ काठक सं० ९ । १६] अग्निर्वा वेदं सर्वं ॥ व्यापक रुद्रही यह सब चराचर है ॥ काठक० ८ । १०] आसां प्रजानामधिपति रुद्रोऽग्निः ॥ भव शर्व ही इन प्रजाओंके स्वामी हैं ॥ काठक सं० ११ । ५] जो निराकार रुद्र है सोही मायाके द्वारा साकार प्रतीत होता है ॥ उपासक साकार और ज्ञानी जन निराकार ही मानते हैं ॥ ४ ॥

मुखाय ते पशुपते यानि चक्षूंषि ते भव ॥ त्वचे रूपाय संदृशे प्रतीचीनाय ते नमः ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(पशुपते) हे प्राणियोंके पालक रुद्र (ते) आपके (मुखाय) मुखको, (भव) हे संसारके उत्पादक (ते) आपके (मुखाय) मुखको, (भव) हे संसारके उत्पादक (ते) आपके (यानि) जिन विद्युत् चन्द्रमा सूर्यरूप (चक्षूंषि) तीनों नेत्रोंको, (त्वचे) स्पर्श आदि ज्ञानेन्द्रिय समुहको (रूपाय) पाणी आदि कर्मेन्द्रिय समुहको (संदृशे) प्रत्यक्ष मायामय देह धारण करके उपासकोंको दर्शन देनेवाले शरीरको (प्रतीचीनाय) उपासकोंकी भावनाके अनुसार अनन्त मायिक स्वरूपोंको धारण करनेवाले (ते) आपके अद्भुत स्वरूपको (नमः) प्रणाम करता हूँ ॥

व्याख्याः—हे सब प्राणि मात्रके रक्षक रुद्र आपके विराट् स्वरूपात्मक अग्नि मुखके सहित स्पर्शआदि ज्ञानेन्द्रिय अधिदैव अध्यात्म समुहको तथा हाथ आदि कर्मेन्द्रिय अधिदैव अध्यात्म समुहको नमस्कार करता हूँ ॥ हे सब चराचरके उत्पन्न करनेवाले रुद्र आपके बिजली चन्द्रमा सूर्यरूप तीनों नेत्रोंको प्रणाम करता हूँ, उपासकोंकी भावनाके अनुसार असंख्य मायिक स्वरूपोंको धारण करके उपासकोंको प्रत्यक्ष दर्शन देनेवाले आपके अद्भुत स्वरूपको मैं प्रणाम करता हूँ [नमस्कारोहि देवानां ॥ स्वधाकारोहि पितृणां ॥ देवताओंकी प्रसन्नताके लिये नमस्कार है ॥ और पितरोंकी प्रसंनताकेलिये स्वधाकारही उत्तम है ॥ तैत्तरीयस सं० ६ । ३ १ २ । ५] मायायुक्त साकार और माया रहित निराकार रुद्र है ॥ ५ ॥

अङ्गेभ्यस्त उदराय जिह्वायां आस्याय ते ॥ दद्भ्यो गन्धाय ते नमः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(ते) आपके सम्बंधि (अङ्गेभ्यः) हाथ पग आदि अवयवोंको (उदराय) पेटको (जिह्वायै) जिह्वाको नमस्कार हो। (ते) आपके (आस्याय) मुखको प्रणाम हो। (ते) आपके (दद्भ्यः) दाँतोंको (गन्धाय) नासिकाको (नमः) नमस्कार हो ॥

व्याख्याः—पांचमे मंत्रमें विराट् देहका वर्णन हुआ है ॥ और इस मंत्रमें उपासकोंके लिये दर्शन देनेवाले प्रत्यक्ष दिव्य देहधारी रुद्रके स्वरूपका वर्णन है ॥ हे रुद्र आपके नाक कान जिह्वा पेट नेत्र हाथ पग आदि प्रत्येक् अंगोको मेरा वारंवार प्रणाम होवे ॥ ६ ॥

अस्त्रानीलं शिखण्डे नसहस्राक्षेण वाजिना ॥ रुद्रेणार्धकघातिना तेन मा समरामहि ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(अस्त्रा) बाणको फेंकनेवाले (वाजिना) वेगसे चलनेवाले (नीलशिखण्डेन) मयूर पँखधारी (सहस्राक्षेण) अनन्त नेत्रवाले (अर्धकघातिना) शत्रुकी आधे भागकी सेनाको नाश करनेवाले (तेन) उस (रुद्रेण) रुद्रके साथ (मा समरामहि) द्वेषरूप युद्ध हम कभी न करें ॥

व्याख्याः—अस्त्रके चलानेवाले अति वेगसे आनेवाले मयूर पंखधारी शत्रुकी आधे भागकी सेनाको मारनेवाले असंख्य स्वरूपोंको धारण करनेसे अनन्त नेत्रवाले उस रुद्रके साथ किसीभी प्रकारका

द्वेषरूप युद्ध हम मनुष्य कभी न करें ॥ रुद्रके आते ही शत्रुकी आधी सेना भस्म हो जाती है ॥ यदि शत्रु रुद्रकी शरणमें गया तो उस आधी सेनाके सहित आप बच जाता है ॥ ७ ॥

सनो॑ भ॒व प॑रि॒तृण॑क्तु वि॒श्वत॒ आप॑ इवा॒ग्निः परि॑वृ-ण॑क्तुनो भ॒वः ॥ मानो॒भि मा॑स्त॒ नमो॑ अस्त्वस्मै ॥८॥

अन्वयार्थः—(सः) सो (भवः) रुद्र (नः) हमको (विश्वतः) सर्वत्र उपद्रवसे (परितृणक्तु) बचावे। (इव) जिस प्रकार (आपः) जल (अग्निः) अग्नि परस्पर एक दूसरेको रोकते हैं, उसी प्रकार (भवः) रुद्र (नः) हमको (परिवृणक्तु) सर्वत्र उपद्रवसे बचावे। (न) हमको (मा अभिमाँस्त) किसी भी उद्देशसे न मारे (तस्मै) उस रुद्रकेलिये मेरा (नमः) नमस्कार (अस्तु) होवे ॥

व्याख्याः—सो रुद्र हमको सर्वत्र उपद्रवसे बचावे, जिस प्रकार अग्नि जल परस्पर एक दूसरेको रोकते हैं, उसी प्रकार रुद्र हमको सर्वत्र उपद्रवसे बचावे, हमको किसी उद्देशसे न मारे। उस देवके लिये मेरा प्रणाम होवे ॥ ८ ॥

च॒तुर्नमो॑ अ॒ष्टकृत्वो॑ भवा॒य दश॒कृत्वः॑ पशुप॒ते नम॑स्ते ॥ तवे॒मे पञ्च॑ प॒शवो॒ विभ॑क्ता गावो॒ अश्वाः॒ पुरु॑षा अजा॒वयः॑ ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(चतुः) चारवार शर्वको (अष्टकृत्वः) आठवार (भवाय) भवको (नमः) प्रणाम है (दशकृत्वः) दशवार (पशुपते) हे रुद्र (ते) आपको (नमः) नमस्कार है।

(तव) आपके (विभक्ताः) विभक्त किये हुए (गावः) गौयें (अश्वाः) घोड़ें (पुरुषाः) मनुष्य (अजअवयः) वकरी भेड (इमे) ये (पञ्च) पाँच जातिवाले (पशवः) पशु हैं ॥

व्याख्याः—शर्वको चार वार प्रणाम है, भवको आठ वार प्रणाम है। हे पशुपते, आपको दश वार नमस्कार है ॥ आपके विचारसे ही गौयें घोड़े–मनुष्य–वकरी भेड–ये पाँच जातिवाले पशु विभाग किये गये। उत्पन्न करनेवाला भव है इन पाँच जाति-रूप पशुओंका पालन करनेवाला पशुपति है। और संहार करनेवाला शर्व है। कैलासके मैदानमें वनगौयें वनघोड़ें और तिब्वतकी प्रजाके पास गौ घोड़ें वकरी भेड हैं ॥ यही कैलास आर्योंकी आदि जन्म भूमी है ॥ ९ ॥

तव॒ चत॑स्रः प्र॒दिश॒स्तव॒ द्यौस्तव॑ पृथि॒वी तवे॒दमु॑ग्रो॒र्व॑१न्तरि॑क्षम् ॥ तवे॒दं सर्व॑मात्म॒न्वद्यत्प्रा॒णत्पृ॑थि॒वी-मनु॑ ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(उग्र) हे उत्तम देव, (चतस्रः) चारों (प्रदिशः) पूर्व आदि प्रधान दिशायें (तव) आपके वशमें हैं। (द्यौः) स्वर्ग (तव) आपके आधीनमें है। (उरु) विस्तारवाला (इदं) यह (अन्तरिक्षं) आकाश (तव) आपके वशवर्ती है। (पृथिवी) भूमी (तव) आपकी है। (आत्मन्वत्) चेतनके सहित (यत्) जो (इदं) यह (सर्वं) सब (प्राणत्) श्वास आदि क्रिया करनेवाला प्राणिमात्र (पृथिवी) भूमीको (अनु) आश्रय करके स्थित है सो भी (तव) आपके वशमें है ॥

व्याख्याः—हे उत्तम देव, पूर्व आदि चारों प्रधान दिशायें आपके वशवर्ती हैं, स्वर्ग आपके वश में, विस्तारवाला यह आकाश आपके वशमें, भूमी आपके वशमें है। चेतनके सहित जो यह सम्पूर्ण श्वासप्रश्वास आदि चेष्टा करनेवाला प्राणिमात्र भूमीको आश्रय करके स्थित है सो भी आपके आधीन में है॥ व्यष्टि चेतन समष्टि चेतनके वशमें है ॥ १० ॥

उरुः कोशो वसुधानस्तवायं यस्मिन्निमा विश्वा भुवनान्यन्तः ॥ स नो मृड पशुपते नमस्ते परः क्रोष्टारो अभिभाः श्वानः परो यन्त्वघरुदो विकेश्यः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(पशुपते) हे रुद्र, (उरुः) विस्तारवाले (वसुधानः) प्राणियोंके पाप पुण्योंका आधार है (यस्मिन्) जिसमें उस त्रिलोकात्मक अण्डकोशके (अन्तः) मध्यमें (इमा) ये (विश्वा) सम्पूर्ण (भुवनानि) प्राणिमात्र स्थित हैं। (अयं) यह (कोशः) ब्रह्माण्ड (तव) आपके वशमें है (सः) सो तुम (नः) हमको (मृड) सुखी करो। (ते) आपकेलिये (नमः) नमस्कार होवे। आपकी कृपासे (अभिभाः) सन्मुख प्रगट होनेवाले (क्रोष्टारः) जम्बुक चिल्लानेवाले (श्वानः) कुत्ते (परः) हमसे दूर चले जावें। (अघरुद्रः) जिस रुदनसे अमंगल होवे उस रुदन करनेवाली (विकेश्यः) बिखरे हुए केशोंवाली भूत पिशाचिनीयें (परः) हमसे दूर (यन्तु) चली जावें ॥

व्याख्याः—हे पशुपते, जो विस्तारवाला प्राणियोंके पाप पुण्य रूप भोगनेका आधार है, उस त्रिलोकात्मक सौर जगत्के अण्डके मध्यमें ये सब प्राणिमात्र स्थित हैं। यह ब्रह्माण्डमय

खजाना आपके अधीनमें है, सो तुम हमको सुखीकरो, आपको हमारा प्रणाम होवे। आपकी शुभ दृष्टि मात्रसे ही, गुफाओंसे प्रगट होकर सामने आनेवाले और चिल्लाने वाले श्याल-गीदड–जम्बुक, तथा भुँकनेवाले कुत्ते हमारे समीपसे दूर चले जावें ॥ और जिस रोनेसे अनिष्ट होवे उस रुदनके करनेवालीं बिखरे हुए बालोंवालीं भूत पिशाचनीयें भी हमारे समीपसे दूर चली जावें ॥ ११ ॥

धनुर्बिभर्षि हरितं हिरण्ययं सहस्रघ्निं शतवधं शिखण्डिन् ॥ रुद्रस्येषुश्चरति देवहेतिस्तस्यै नमो यतमस्यां दिशीऽ३ तः ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र, तुम (धनुः) धनुषको प्रलयके समय (बिभर्षि) धारण करते हो। (हरितं) हरे वर्णयुक्त (हिरण्ययं) प्रकाशमान् (सहस्रघ्नि) असंख्य प्राणियोंका संहार करने वाले (शिखण्डिन्) मयूर पिच्छोंसे भूषित (शतवधं) सैकडोंका वध करनवाले धनुषको (नमः) प्रणाम है। (रुद्रस्य) रुद्रका (देवहेतिः) देव सम्बन्धि मारनेवाला (इषुः) बाण (चरति) सर्वत्र विचरता है (तस्यै) उस शक्तिके प्रति नमस्कार है। (इतः) इस हमारे स्थानसे (यतमस्यां) जिस मूजवान् पर्वतके पर रहता है उसी (दिशि) दिशामें स्थित हुए बाणको नमस्कार है ॥

व्याख्याः—हे रुद्र, आप प्रलयके समय धनुषको धारण करते हो। सो धनुष कैसा है? हरे वर्णवाला, प्रकाशमान्, असंख्य प्राणियोंका मारने वाला, अनन्त ब्रह्माण्डोंका संहार करनेवाला, सूर्यमण्डलरूप

मयूरकी किरणात्मक पिच्छोंसे शोभायमान् इस धनुपको प्रणाम है—रुद्रका देव संवन्धि दैत्योंको मारनेवाला वाण सर्वत्र अप्रतिहत्त गतिसे विचरता है, इस हमारे स्थानसे जिस मूँजवान् पर्वतके पर है उसी दिशामें स्थित हुए उस वाणके प्रति मेरा वारंवार प्रणाम है ॥ १२ ॥

यो३ऽभियातो निलयते त्वां रुद्र निचिकीर्षति ॥
पश्चादनुप्रयुङ्क्षे तं विद्धस्य पदनीरिव ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) रुद्र, (यः) जो पुरुष (अभियातः) हारा हुआ सामने से (निलयते) छिपकरके (त्वां) तुमको (निचिकीर्षति) हराना चाहता है (इव) जैसे (विद्धस्य) वाण से घायल हुए मृगके पलायन करने पर (पदनीः) पगके चिह्नोंसे पता लगाकर खोजनेवाला मारता है तैसेही (पश्चात्) छिपनेके अनन्तर (तं) उस शत्रुको (अनुप्रयुङ्क्षे) पता लगाय कर मारनेका प्रयोग करो ॥

व्याख्याः—जैसे वाणसे घायल हए मृगके पलायन करने पर व्याध पगके चिन्होंसे पता लगाय कर मृगको मार डालता है तैसेही हे देव, मैं आपका उपासक हूँ और आप मेरे प्रतिपालक हो इसलिए जो शत्रु पुरुष कृत्या आदिसे मेरेको दुःख देना चाहता है, सोही शत्रु कृत्याके बलसे आपको भी हरानेकी इच्छा करता है। जव शत्रुकी कृत्या आपकी दयासे हारकर छिप जाती है तव छिपनेके अनन्तर उस प्रयोग करनेवाले शत्रुको पता लगायकर मारडालो ॥ मैं उपासक आपके मंत्रोंका शत्रु पर प्रयोग करता हूँ, उन मंत्रोंके देवता तुम हो इस हेतुसे तुम शत्रुके मारने वाले हो ॥ १३ ॥

भवारुद्रौ सयुजा संविदानावुभावुग्रौ चरतो वीर्याऽय ॥ ताभ्यां नमो यतमस्यां दिशीऽतः ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(भवारुद्रौ) हे भवरुद्र, तुम दोनों (सयुजा) परस्पर मिले हुए मित्र हो। (संविदानौ) भली प्रकार जानने-वाले एक सम्मतिवाले हो। (उभौ) दोनों (उग्रौ) स्वतंत्रता पूर्वक बलवाले तुम (वीर्याय) श्रद्धालु उपासक के सब सुखरूप बलको वृद्धि करनेके लिये (चरतः) विचरते हो। (यतमस्यां) और जो मूँजवान पर्वत और कैलास शिखर पर (इतः) इस हमारे स्थानसे (दिशि) उत्तर दिशामें स्थित हैं (ताभ्यां) उन-दोनोंको (नमः) प्रणाम करता हूँ ॥

व्याख्याः—हे भव शर्व, तुम दोनों परस्पर अभेदरूप मित्र हो, जगत्की उत्पत्ति स्थिति लयको क्रमपूर्वक जाननेवाले एक मत रखने वाले हो, स्वतंत्र स्वभाव वाले तुम दोनों अति श्रद्धालु उपासकके लिये सब सुखकी वृद्धि करते हुए विचरते हो। इस हमारे स्थानसे मूँजवान् सोमगरि हेमकूट हिन्दुकुश और कैलास तथा गौरीशंकर पर्वत पर उत्तर दिशामें विराजमान उन दोनों देवोंको मैं प्रणाम करता हूँ ॥ १४ ॥

नमस्तेस्त्वायते नमो अस्तु परायते ॥ नमस्ते रुद्रतिष्ठत आसीनायोतते नमः ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र, (आयते) आते हुए (ते) आपको (नमः) प्रणाम (अस्तु) हो, (परायते) लौट कर जाते हुए आपको (नमः) नमस्कार (अस्तु) हो, (तिष्ठते)

खडे हुए (ते) आपको (नमः) नमस्कार हो, (उत) और (आसीनाय) बैठे हुए (ते) आपको (नमः) नमस्कार हो ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आते हुए आपको मेरा प्रणाम हो, लौट कर जाते हुए आपको प्रणाम हो, खडे हुए आपको प्रणाम हो और बैठे हुए आपको प्रणाम हो ॥ १५ ॥

नमः सायं नमः प्रातर्नमो रात्र्या नमो दिवा ॥
भवाय च शर्वाय चोभाभ्यामकरं नमः ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र, आपको सायंकालमें (नमः) नमस्कार हो, (प्रातः) प्रातकालमें (नमः) नमस्कार हो, (रात्र्या) रात्रीमें (नमः) नमस्कार हो, (दिवा) दिनमें (नमः) नमस्कार हो, (भवाय) भव (च) और (शर्वाय) शर्व (च) आपके इन (उभाभ्यां) दोनों शर्वभव स्वरूपोंको (नमः) नमस्कार (अकरं) मैं करता हूँ ।

व्याख्याः—हे रुद्र, आपको प्रातःसायं कालमें, दिनरात में बारंवार प्रणाम करता हूँ ॥ और आपके दो रूप घोर अघोर हैं उन दोनोंको भी प्रणाम करता हूँ [घातुकोऽस्य रुद्रः पशून् भवति ॥ अघातुको रुद्रः पशून् भवति ॥ इस नास्तिक के प्रजा आदि पशुओंको मारने वाला रुद्र है ॥ इस उपासक के प्रजा आदि पशुओंको रक्षा करने वाला रुद्र है ॥ कपिष्ठल कठ- सं० ७ । २] मारनेवाला शर्व और रक्षा करनेवाला भव है एकही रुद्रके कार्यसे अनेक नाम हैं ॥ १६ ॥

सहस्राक्षमतिपश्यं पुरस्ताद् रुद्रमस्यन्तं बहुधा विपश्चितम् ॥ मोपाराम जिह्वयेयमानम् ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(**सहस्राक्षं**) अनन्त नेत्रवाला, (**अति पश्यं**) गुप्त प्रगटमय पदार्थोंको देखने वाला (**पुरस्तात्**) पूर्व दिशामें (**बहुधा**) बहुत प्रकारसे (**अस्यन्तं**) किरणरूप शर जाल फेंकने वाला, (**विपश्चितं**) सूक्ष्मदर्शी (**जिह्वया**) तेजके अग्र भागसे (**ईयमानं**) व्यापक हुए (**रुद्रं**) सूर्यमण्डल देहके स्वामी रुद्रको (**मा उपाराम**) विरोधि हम न बनावें ॥

व्याख्याः—अनन्त पदार्थोंका प्रकाशक होनेसे सूर्य देह असंख्य नेत्रवाला है, गुप्त प्रगटमय वस्तुओंको अपने तेजरूप नेत्रों से देखता है, सोही अति देखनेवाला है, उदय होते समय पूर्व दिशामें रश्मि रूप वाणजाल को बहुत प्रकारसे फेंकता है, सूक्ष्मदर्शी अपने मण्डलके अग्र भागमय तेजसे व्यापक हुए, उस मण्डल व्यापी रुद्रको हम मनुष्य विरोधि न बनावें ॥ अर्थात् वैदिक उपासना को त्यागकर अवैदिक उपासनाको धारण करके हम विरोध न करें ॥ १७ ॥

श्यावाश्वं कृष्णमसितं मृणन्तं भीमं रथं केशिनः पादयन्तम् ॥ पूर्वे प्रतीमो नमो अस्त्वस्मै ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(**कृष्णं**) अन्धकारके (**असितं**) बन्धन जालसे रहित, (**श्यावाश्वं**) सात वर्णकी किरणोंसे व्यापक, (**मृणन्तं**) अन्धकारके नाश करने वाले (**केशिनः**) सूर्यके (**रथं**) मण्डलको (**पादयन्तं**) प्रेरणा करते हुए (**भीमं**) रुद्रको (**पूर्वे**) प्रसंन करनेवालोंसे पहिले (**प्रतीमः**) हम स्तुति करने वाले हैं। (**अस्मै**) इस प्रत्यक्ष मण्डलवर्ती रुद्रके प्रति (**नमः**) हमारा नमस्कार होवे ॥

व्याख्याः—सात रंगवाली किरणोंसे व्यापक, अन्धकारके आवरण रूप बन्धनसे रहित, अन्धकारको नाश करनेवाले सूर्यके मण्डलरूप रथको अन्तर्य्यामी रूपसे प्रेरणा करते हुए रुद्रको प्रसन्न करनेवाले उपासकोंसे पहिले प्रातः कालमें उठकर हम उपासक इस प्रत्यक्ष मण्डल वर्ती देवके लिये अर्घ्य प्रदानके सहित हमारा प्रणाम होवे [कृष्णं नियानं ॥ अन्धकार आकाशही घोंसला है ॥ ऋग्० १ । १६ । ४ । ४७] कृष्णंः श्वेतः ॥ काला और श्वेत वर्ण ॥ ऋग्० १० । २० । ९] कृष्णा रूपाण्यर्जुना ॥ कृष्ण नाम कालेका और अर्जुन नाम श्वेत वर्णका है ॥ ऋग्० १० । २१ । ३] अर्जुनो हवै नामेन्द्रः ॥ अर्जुन ही नाम सूर्यका है ॥ शतपथ ब्रा० ५ । ४ । ३ । ७] देवाः शुक्ला अभवन् ॥ कृष्णा असुराः ॥ दिवा देवान सृजत ॥ नक्तम सुरान् ॥ ब्रह्माने प्रकाशसे देवताओं को रचा और रात्री-रूप अन्धकारसे दैत्योंको रचा ॥ शुक्ल प्रकाश ही देवताओंका और अन्धकार ही दैत्योंका बल है ॥ मैत्रायणी सं० १ । ९ । ३] आपो वै वृत्रः ॥ गिरिर्वै वृत्रः ॥ आपो दिवा कृष्णा. आपोऽहर्नक्तं ॥ व्यापक अंन्धकार ही वृत्र है. मेघही वृत्रासुर है ॥ व्यापक प्रकाश दिन है ॥ व्यापक अंन्धकार ही रात्री है ॥ मै० सं० ४ ५ । १] तमो वै कृष्णं ॥ अन्धकार ही कृष्ण है ॥ मै० सं० २ । ५ । ६] कृष्णायाः पुत्रो अर्जुन ॥ रात्रीका पुत्र दिन है ॥ अथर्व० १३ । ३ । २६] [रामे कृष्णे ॥ हे भृङ्गराज काले नामकी औषधे काले भांगरेका नाम राम है और उसीं काली औषधिको कृष्ण कहा है ॥ अथर्वेण १ । २३ । १] सूर्यरूप अर्जुन—कृष्ण रूप अन्धकार में रहता है ॥ अर्जुनरूप सूर्यमण्डलका स्वामी चेतन रुद्र सर्वदा अंधका-

रसे रहित स्वयं प्रकाशी है ॥ इस वैदिक घटनाको लेकर किसी व्यक्तिका नाम होवे तो उस व्यक्तिगत नामसे वैदिक घटना का कुछ भी सम्बन्ध नहीं है ॥ १८ ॥

मानो॑ऽभिस्रा॑ मर्त्यं॑ देवहे॑तिं मानः॑ क्रुधः॑ पशुपते नम॑स्ते ॥ अ॒न्य त्रास्मद्दि॒व्यां शाखां॒ विधूनु ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र (देवहेतिं) देव संबन्धि बाणको (नः) हमारे (मर्त्यं) मरण धर्मवाले मनुष्यको (अभि) लक्ष्य करके (मास्रा) मत छोडो, (पशुपते) हे पालन करने वाले देव (नः) हमपरं (माक्रुधः) मत कोप करो, (ते) आपके प्रति (नमः) नमस्कार है । (अस्मत्) हमसे (अन्यत्र) दूसरे स्थान में (दिव्यां) आकाशमें (शाखां) फैली हुई शक्तिको (विधूनु) त्याग करो ॥

व्याख्या:—हे देव, आपकी दिव्य शक्तिको हमारे मरण-धर्मी मनुष्य आदि प्राणिको लक्ष्य करके मत छोडो, हे विश्वपालक रुद्र हमपर दैवी कोप मत करो, आपके लिये प्रणाम है । हमारे देशसे भिन्नकिसी दूसरे स्थानमें, आकाशमें फैली हुई शक्तिको विसर्जन करो ॥ १९ ॥

मानो॑ हिंसी॒रधिनो ब्रू॒ही परि॑णो वृङ्ग्धि॒मा क्रुधः॑ ॥ मात्वया॒ सम॑रा महि ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र, (नः) हमको (माहिंसीः) मत मारो । (नः) हमारे लिये अधि विशेष उपदेश (ब्रूहि) करो

(नः) हमको आपके (परि) व्यापक शक्तिरूप बाणसे (वृङ्ग्धि) बचाय कर पृथक् करो। (क्रुधः) क्रोध हमपर (मा) मत करो। (त्वया) आपके साथ (समरामहि) किसी प्रकार हम कुव्यवहार (मा) न करें ॥

व्याख्या:—हे रुद्र हमको दैवी शस्त्रसे मत मारो, हमारे लिये विशेष ज्ञानका उपदेश करो। हमको आपके व्यापक बाणसे बचायकर पृथक् करो, हमपर क्रोध मतकरो, आपके साथ हमकुव्यवहार रूप युद्ध कभी न करें ॥ २० ॥

मा नो॑ गोषु॒ पुरु॑षेषु॒ मा गृ॑धो नो अ॒जावि॑षु ॥ अ॒न्यत्रो॑ग्र॒ वि व॑र्तय॒ पिया॑रूणां प्र॒जां ज॑हि ॥ २१ ॥

अन्वयार्थः—(उग्र) हे उत्तम देव, (नः) हमारी (गोषु) गौओंमें, (आजाविषु) बकरी भेडोंमें (मा गृधः) मारने की इच्छा मत करो। (नः) हमारे (पुरुषेषु) गुरु पिता माता स्त्री शिष्य पुत्र आदिमें (मा) मारने की इच्छा मत करो। (अन्यत्र) हमारे स्थानसे भिन्न (पियरूणां) शत्रुओंकी (प्रजां) प्रजाको (विवर्तय) लौट कर (जहि) मारो ॥

व्याख्या:—हे रुद्र देव, तुम हमारे गुरु माता पिता स्त्री शिष्य पुत्र आदिके मध्यमें से नाश करनेकी इच्छा मत करो, और गौ घोडे बकरी भेंडोंके बीचमेंसे किसीकी हिंसा मत करो ॥ हमारे स्थानसे भिन्न शत्रुओंकी प्रजाको फिर कर मारो। (पियारुं) शत्रुको ॥ ऋग्० १। १९१। ६] पुरुषं महादेवो हन्ति ॥ सूर्य मण्डलवर्ती महादेव मनुष्यको मारता है ॥ मैत्रायणी सं० ३। ९। ४] रुद्राय नृघ्ने ॥ नृणां पापकृतां हंत्रे रुद्राय देवाय ॥ पाप करनेवाले मनुष्योंका नाश करनेवाले रुद्र देवके प्रति प्रसंशनीय

वचन कहो ॥ सायण भाष्य ऋग्० ४ । ३ । ६] रुद्राय सुमखाय ॥ उत्तम यज्ञस्वरूप रुद्रके प्रति कहो ॥ ऋग्० ४ । ३ । ७] देवाश्च महादेवाः ॥ रश्मयश्च देवागरगिरः ॥ अन्य अप्रकाशमान् नक्षत्रोंके मध्यमें, स्वयंप्रकाशमान् महाकिरण हैं वे सब सूर्यकिरणरूप देवता (गर) जलको (गिरः) पचाती हैं ॥ इन किरण-समुह सूर्यमण्डलका जो चेतन स्वामी है सो ही महादेव है ॥ नैनं गरो हिनस्ति य एवं वेद ॥ इस रुद्रको (गरः) विषरूप जल किसी प्रकारकी बाधा नहीं करता है । जो मनुष्य इस प्रकार सूर्यमण्डलस्थ रुद्रको जानता है सो उपासक दुःख नहीं पाता है ॥ तैत्तरीयाण्यक १ । ९ । ३–४] जो रुद्र सूर्यमण्डलवासी है सोही उपासकों के दर्शनके लिये कैलासवासी है ॥ अन्तरिक्षका नाम समुद्र है ॥ उस समुद्र के जलको सूर्य मेघरूप कण्ठ में धारण करके चराचर जगत्की क्षुधा प्यास आदि ज्वाला को शान्त करता हुआ मेघ मण्डलरूप कण्ठके बहुत ऊपर सुषुम्न किरणमय जटाके नीचे चन्द्रमाको धारण करता है ॥ यही अधिदैव स्वरूप रुद्र है ॥ २१ ॥

यस्यं तुक्मा कासिंका हेतिरेकुमश्वस्येव वृषणः क्रन्द एतिं ॥ अभिपूर्वं निर्णयंते नमों अस्त्वस्मै॥२२॥

अन्वयार्थः—(तक्मा) दुःखसे जीवन करनेवाली, (कासिका) ज्वर आदि पीडाके रूप में शब्द करनेवाली (यस्य) जिस रुद्रकी (हेतिः) मारनेवाली शक्ति (एकं) एकको (एति) प्राप्त होती है, (इव) जैसे (वृषणः) बलवान् (अश्वस्य) घोडे का (क्रन्दः) हिनहिनाट शब्द (अभिपूर्वं)

यथाक्रमसे एक २ शब्दको (निर्णयते) वर्णन करता है, (अस्मै) उस ज्वराभिमानी देवको (नमो अस्तु) प्रणाम होवे ॥

व्याख्या:—जैसे बलवान् अश्वका हिनहिनाट शब्द यथाक्रमसे एक २ शब्दको वर्णन करता है, उसी प्रकार जिस रुद्रकी मारनेवाली शक्ति दुःखसे जीवन करनेवाले एक रोगीके शरीर में प्रवेश करके ज्वर खाँसी आदि पीडाको करनेवाली है। इस रोगके देवता रुद्रके लिये मेरा प्रणाम होवे ॥ जो सुख दुःख आदिमें व्यापक है सोही सर्वव्यापी रुद्र है ॥ जिसमें संहार शक्ति है उसीमें उत्पन्न और पालन करनेकी शक्ति है ॥ २२ ॥

यो॒ऽ॑न्तरि॑क्षे॒ तिष्ठ॑ति॒ विष्ट॑भि॒तो यज्व॑नः प्रमृ॒णन् दे॑वपी॒यून् ॥ तस्मै॒ नमो॑ द॒शभि॒: शक्व॑रीभिः ॥ २३ ॥

अन्वयार्थ:—(यः) जो रुद्र (अन्तरिक्षे) आकाशमें (विष्टभितः) हलनचलनरहित विविध रूपसे (तिष्टति) स्थित है। (अयज्वनः) अग्निहोत्र न करनेवाले (देवपीयून्) देवताओंके शत्रु राक्षसोंको (प्रमृणन्) अत्यन्त मारता हुआ स्थित है, (तस्मै) उस रुद्रके लिये (दशभिः) दश (शक्करीभिः) अङ्गुलीयुक्त दोनों हातोंसे (नमः) मैं प्रणाम करता हूँ ॥

व्याख्या:—जो आकाशमें हलनचलन रहित विविध रंगवाले किरणरूप जटाधारी सूर्य स्थित है, सो आदित्यमण्डलवर्ती रुद्र यज्ञ करनेवाले देवताओंके शत्रु दास–रूप राक्षसोंको मारता हुआ वैदिक उपासकोंकी रक्षा करता है उस रुद्रके प्रति दश अङ्गुलीयुक्त दोनों हातोंसे मैं प्रणाम करता हूँ ॥ वैदिक कालमें अग्निहोत्रको जे नहिं करते थे वे ही मनुष्य अनार्य्य और दास नामसे प्रसिद्ध

थे ॥ अग्निमुखमें आहूति देनेसे देवता तृप्त होते हैं ॥ अग्नि-होत्रके विना देवोंकी तृप्ति नहीं होती है इस हेतुसे ही अग्निहोत्र रहित सब मनुष्य राक्षस हैं ॥ आजकाल वैदिक उपासनाके त्यागनेसे ही हम सब पराधीन दुःख भोग रहे हैं और हमको किसी वैदिक देवताका दर्शन भी नहीं होता उसका कारण अवैदिक उपासना ही है ॥ २३ ॥

तुभ्यमारण्याः पशवो मृगा वने हिता हंसाः सुपर्णाः शकुना वयांसि ॥ तव यक्षं पशुपते अप्स्व १ न्तस्तुभ्यं क्षरन्ति दिव्या आपो वृधे ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(अरण्याः) वनमें रहनेवाले (मृगाः) व्याघ्र हरिण आदि (पशवः) पशु मात्र (हंसाः) हंस सारस आदिक (सुपर्णाः) वाज मयूर आदि सुन्दर पक्षी (शकुनाः) चिडीया आदिक (वयसि) उडनेवाले सब ही (वने) वनमें (हिताः) स्थित हैं उनसे भिन्न ग्रामवासी पशुओंकी (वृध) वृद्धि करने वाले (तुभ्यं) आपके लिये प्रणाम है (पशुपते) हे सबके प्रतिपालक रुद्र (तव) आपका (यक्ष) पूज्य स्वरूप (अप्सु) किरण मण्डल के (अन्तः) मध्यमें हैं (दिव्याः) आकाशीय (आपः) जल (क्षरंति) वर्षते हैं (तुभ्यं) आपके लिये प्रणाम हैं ॥

व्याख्याः—वनमें वसने वाले सिंह व्याघ्र हरिण आदि पशु मात्र और जलके पास रहने वाले हंस बकसा रस आदि—वाज शुक मयूर आदि सुन्दर पक्षी गण—देव चिडी—खंजरीट आदि चिडीयें—उडने वाले छोटे बडे सबही वनमें वसने वाले हैं उनसे भिन्न

ग्राममें वसने वाले पशुओंकी वृद्धि करनेवाले आपके लिये नमस्कार है, हे सब चराचरके पालन करनेवाले देव जो आपका पूजनीय स्वरूप किरण समुहरूप मण्डलके वीचमें स्थित हैं उसकी प्रेरणासे आकाशीय जल वर्षते हैं [रेतो वै हिरण्यं ॥ जल ही तेजोमय मण्डल है ॥ अमृतं वै हिरण्यं ॥ जलही मण्डल है ॥ तेजो हिरण्यं ॥ तेज राशी मण्डल है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३७ । ६] आपो रश्मयः व्यापक किरण हैं ॥ तैत्तरीय ब्रा० ३ । २ । ५ । १] सलिलः सलिगः सगरः ॥ ये तीन नाम सूर्य मण्डलके हैं ॥ कपिष्ठल कठ सं० ८ । २] महद्य क्षंभुवनस्य मध्ये तपसि ॥ महा पूज्यरूपसे हे रुद्र तुम ब्रह्माण्डके मध्यमें तपते हो ॥ अथर्वण १० । ७ । ३८] रुद्रकी अष्ट मूर्तियोंमें मुख्य मूर्त्ति है ॥ २४ ॥

शिंशु मारा अजगराः पुरीकया जषामत्स्या रजसायेभ्यो अस्यसि ॥ नते दूरंन परिष्ठास्ति ते भवसद्यः सर्वान् परि पश्यसि भूमिं पूर्वस्माद्धंस्युत्तरस्मिन्समुद्रे ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(शिंशुमाराः) झूश मगर (अजगराः) सर्पमात्र, (जषाः) सूईके समान मुखवाली मच्छी यें (पुरीकयाः) कच्छप कूलीर केंवडा आदि (मत्स्याः) मच्छी मात्र (रजसाः) जलवाले (येभ्यः) जिन प्राणियोंसे भरे हुए (पूर्वस्मात्) पूर्ववर्ती समुद्रसे (उत्तरस्मिन्) उत्तरवर्ती (समुद्रे) समुद्रमें (सद्यः) क्षणभरमें (हंसि) जाते हो (भव) हे रुद्र तुम (परि) सर्वत्र व्यापक हुए (सर्वान्) सबको (पश्यसि)

देखते हो (ते) आपके लिये (दूरं) दूर कुछ (न) नहीं (अस्ति) है (परिष्ठा) सर्वत्र स्थिति हुए (भूमि) ब्रह्माण्डको प्रगट करके धारण करना और (अस्यसि) प्रलयमें नाश करते हो (ते) आपके लिये कुछ भी आश्चर्य (न) नहीं है ॥

व्याख्या:—अजगर सर्प मात्र सूईके समान मुख वाले जल जन्तु कच्छ ५ केंकडा मगर शूश मच्छी मात्र जलवासी प्राणि है जिनसे समुद्र भरा है, उस पूर्व दक्षिण पश्चिमवर्ती समुद्रसे उत्तर समुद्रमें हे रुद्र तुम क्षण भरमें जाते हो सर्वत्र व्यापक हुए सम्पूर्ण प्राणियोंको देखते हो आपके लिये दूर कुछ नहीं है सर्वत्र स्थित हुए—ब्रह्माण्डको उत्पन्न करके धारण करना और प्रलय में संहार करते हो आपके लिये कुछ भी आश्चर्य नहीं है ॥ २५ ॥

मानो॑ रुद्र त॒क्मना॒ मा वि॒षेण॒मानः॒ संस्रा॒ दि॒व्ये नाग्निना॑ ॥ अ॒न्यत्रा॒स्मद् वि॒द्युतं॑ पातयै॒ताम् ॥ २६ ॥

अन्वयार्थ:—(रुद्र) हे रुद्र (तक्मना) दुःखमय जीवन करनेवाले ज्वरसे (नः) हमको (मासंस्रा) संयुक्त मत करो (विषण) विष मिश्रित वायुसे (नः) हमको (मा) दुःखी मत करो (दिव्येन) सूर्यकी (अग्निना) व्यापक तापसे (मा) हमको मत सताओ (अस्मत्) हमसे (अन्यत्र) भिन्न स्थानमें (एतां) इस (विद्युतं) बिजलीको (पातय) गिराओ ॥

व्याख्या:—हे रुद्र दुःखमय जीवन करनेवाले ज्वरसे हमको संयुक्त करके पीडित मत करो—विष मिश्रित हिमालयकी वायुसे हमको दुःखी मत करो, सूर्यकी प्रचण्ड तापसे हमको मत सताओ, हमारे स्थानसे भिन्न स्थानमें बिजलीको गिराओ ॥ २६ ॥

भवो दिवो भव ईशे पृथिव्या भव आपं प्रउर्वं१ न्तरिक्षम् ॥ तस्मै नमो यत मस्यां दिशी इतः ॥२७॥

अन्वयार्थः—(भवः) रुद्र (दिवः) स्वर्गका (ईशे) स्वामी है (उरु) विशाल (अन्तरिक्षं) आकाशका (भवः) रुद्र स्वामी है (पृथिव्या) भूमीका (भव) रुद्र स्वामी है (आपप्रे) अपने प्रकाशसे सबको पूर्ण करता है (यतमस्यां) जिस किसी (दिशि) दिशामें स्थित है (इतः) इस हमारेसे (तस्मै) उस रुद्रके लिये (नमः) नमस्कार है ॥

व्याख्याः—द्यौ का विस्तारवाले अन्तरिक्षका भूमिका रुद्र स्वामी है सोही रुद्र अपने सूर्य देहसे सर्वत्र परिपूर्ण व्यापक है जिस कीसी दिशामें विशेषरूपसे स्थित है इस हमारे स्थानसे उस रुद्रके प्रति नमस्कार है ॥ २७ ॥

भवं राजन् यजमानाय मृड पशूनांहि पशुपतिं बभूथं ॥ यः श्रद्दधाति सन्ति देवाइति चतुष्पदे द्विपदेऽस्य मृड ॥ २८ ॥

अन्वयार्थः—(राजन्) हे दिव्य ज्योति स्वरूप रुद्र तुम (हि) जिस कारण (पशूनां) दो पग चार पग वाले प्राणिमात्र के (पशु पतिः) रक्षा करने वाले (बभूथ) हुए हो रुद्रके (देवाः) आठ देवस्वरूप (सन्ति) हैं (इति) इस प्रकार (यः) जो आस्तिक मनुष्य (श्रद्धधाति) विश्वास रखता है (अस्य) इस श्रद्धालु यजन कर्त्ता के (द्विपदे) दो पगवाले स्त्री पुत्र आदिके लिये (चतुष्पदे) चार पगवाले गौ अश्व बकरी

आदिके लिये (भव) हे सबके उत्पादक देव (मृड) सुख करो ॥ और मरण के पश्चात् (यजमानाय) उपासकके लिये (मृड) मोक्षमय सुख करो ॥

व्याख्या:—हे स्वयं प्रकाशस्वरूप रुद्र तुम जिस कारण दो पगवाले और चार पगवाले प्राणिमात्रके पालन करनेवाले स्वामी हुएहो इस रुद्रके आठ देवस्वरूप हैं, इस प्रकार जो आस्तिक मनुष्य विश्वास रखता है, उस उपासकके दो पगवाले स्त्री पुत्रआदिके लिये और चार पगवाले गौ घोडा बकरी भेडके लिये—हे सबको उत्पन्न करने वाले रुद्र सुखी करो, तथा उपासक के लिये मरणके अनन्तर सायुज्य मुक्ति रूप सुख करो [रुद्रः १ शर्वः २ पशुपतिः ३ उग्रः ४ भवः ५। महादेवः ६ अशनिः ७ ईशान ८ ये आठ मूर्त्तियोंके नाम हैं॥ शतपथ ब्रा० ६। १। ३। १०। १७] यद्भव आपः ॥ जो भव नाम रुद्र है सो आकाशका स्वामी है ॥ १ ॥ यच्छ र्वोऽग्निः ॥ जो शर्व नामरुद्र है सो अग्नितत्वका स्वामी है ॥२॥ यत्पशुपति र्वायुः ॥ जो पशुपति नाम रुद्र है सो ही वायुका स्वामी है ॥३॥ यदुग्रो देव ओषधयो वनस्पतयः ॥ जो उग्रदेव नामवाला है सो ही वनस्पति औषधिरूप भूमीका स्वामी है ॥ ४ ॥ यन्महा-देव आदित्यः ॥ जो महादेव नाम है सोही सूर्यका स्वामी है ॥ ५ ॥ यद्रुद्रश्चन्द्रमाः ॥ जो रुद्र नाम है सोही चन्द्रमा स्वामी है ॥ ६ ॥ यदीशानोऽन्नं ॥ जो ईशान है सोही जलका पति है ॥ ७ ॥ यदशनिरिन्द्रः ॥ जो नाम अशनि है सोही इन्द्र है ॥ ८ । कोषीतकि ब्रास ६ । २००० ९] अन्नं ॥ जलका नाम अन्न है ॥ निरुक्त २ । २४ । २] आकाशं ॥ आप ॥ पृथिवी ॥ स्वयम्भू ॥ पुष्करं समुद्रः ॥ ये अन्तरिक्ष के नाम

हैं निरुक्त २।१०।३] भूमी जल अग्नि वायु आकाश येपाँच भूतही महा विराट् रुद्रके पाँच स्वरूपही पाँच मुख हैं ॥ विद्युत्-चन्द्रमा-सूर्य-येतीनों प्रकाश स्वरूपसे रुद्रके तीन नेत्र हैं ॥ दश दिशाही दश हाथ हैं ॥ प्रत्येक् त्रिलोकोंके भेदसे सूर्य विद्युत् चन्द्रमा असंख्य होनेसेही रुद्र अनन्त नेत्रवाला है ॥ असंख्य तारागणरूपही रुद्रकी मुण्डमाला है ॥ आकाशगंगाही रुद्रके शिरमें विराजमान है ॥ इस अष्टमूर्तिस्वरूप रुद्रके अन्तर्गत अपरिमित ब्रह्माण्ड उत्पति स्थिति लयरूपसे शोभा पा रहे है । इस अष्टमूर्तिकीही मन्दिरमें लिंगरूपसे प्रतीक उपासना है ॥ महा ब्रह्माण्डके प्रतीक रूप चिन्हको भोगधरके हम खावें तो घोर नरकमें गिरते है ॥ और मरे हुए बडे प्रसिद्ध पुरुषोंकी मूर्त्तियोंको भोग धरकर चरणोदकके सहित भोगकी प्रसादी खावें तो महापापसे छूट कर सीधा स्वर्गमें जाते हैं ॥ यही हमारी बुद्धिकी परीक्षा है ॥ अष्टमूर्तिके अन्तर्गत सब पदार्थ महालिंगकी प्रसादी है ॥ प्रतीत लिंगकी प्रसादीके भक्षण करनेसे हमको महा घोर नरक मिलता है तो—महा विराट् लिंगकी प्रसादी हम नित्य खाते हैं ॥ उसके खानेसे हमारी क्या गति होगी उसको मैं वर्णन करनेमें असमर्थ हूँ, इस महा अन्धकारसे वचनेके लिये, हमको वैदिक मार्ग रूप सूर्यकी शरण जाना ही उत्तम है ॥ २८ ॥

मानो महान्तं मुतमानो अर्भकं मानो वहन्तमुत मानो वक्ष्यतः ॥ मानो हिंसीः पितरं मातरं च स्वां तन्वऽरुद्र मारीरिषो नः ॥ २९ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (नः) हमारे (महान्तं) बडे पुरुषको (मा हिंसीः) मत मारो (उत) और (नः) हमारे (अर्भकं) बालकको (मा) मत मारो (नः) हमारे (वहन्तं) बोझ उठानेवाले युवानको (मा) मतमारो (उत) और (नः) हमारे (वक्ष्यतः) भविष्यमें वंश चलानेवाली संतानको (मा) मतमारो (नः) हमारे (पितरं) पिताको (च) और (मातरं) माताको (मा) मत मारो (नः) हमारे (स्वा) अपने (तन्वं) शरीरको (मा) मत (रिरिषः) मारो ॥

व्याख्याः—हमारे वृद्ध गुरुजनको हे रुद्र तुम मतमारो और हमारे बालकोंको मतमारो हमारे कुटुम्बके पालन करनेवाले युवान समुहको मत मारो और हमारे भविष्यके वंश चलानेवाले सन्तानको मत मारो हमारे पिता और माताको मत मारो हमारे स्वयं प्रिय देहके चक्षु आदि अङ्गहैं उन अवयवोंको नाश मत करो ॥ जैसे रुद्र अपने अध्यात्म इन्द्रियोंका स्वामी है ॥ तैसेही इन्द्रियोंके अधिदैवरूप अग्नि आदिका स्वामी है ॥ २९ ॥

रुद्रस्यैलवकारेभ्योऽसंसूक्तगिलेभ्यः ॥ इदं महास्येभ्यः श्वभ्यो अकरं नमः ॥ ३० ॥

अन्वयार्थः—(ऐलवकारेभ्यः) रुद्रकी प्रेरणासे प्रेरित हुए प्रथम (असंसूक्त गिलेभ्यः) शत्रुओंपर चढाई करते समय मारो काटो इत्यादि अशुभ शब्द बोलनेवाले (महास्येभ्यः) गुफाके समान महामुखवाले (श्वभ्यः) स्वर्गीय दिव्य गणोंकेलिये (इदं) यह (नमः) नमस्कार (अकरं) मैं करता हूँ ।

व्याख्याः—रुद्रके प्रथम गणरुद्रकी आज्ञासे प्रेरित हुए-शत्रुओं पर चढाई करते समय मारो काटो इत्यादि अमंगलमय वाणीके बोलने वाले गुफाके समान बडे २ मुखवाले मनुष्य देहसे रहित दिव्य स्वर्गीय देहधारी रुद्रगणोंके लिये यह नमस्कार मैं करता हूँ ॥ ३० ॥

नमस्ते घोषिणीभ्यो नमस्ते केशिनीभ्यः ॥ नमो नमस्कृताभ्यो नमः संभुञ्जतीभ्यः ॥ नमस्ते देव सेनाभ्यः स्वस्तिनो अभयं चनः ॥ ३१ ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र (ते) आपकी (घोषणीभ्यः) महाशब्द करनेवाली सेनाको (नमः) प्रणाम है (ते) आपकी (केशिनीभ्य) अनेक प्रकारके वालोवाली सेनाको (नमः) नमस्कार है (नमः) नमस्कार है (नमः कृताभ्यः) सत्कार पाई हुईको (नमः) नमस्कार है (शंभुञ्जतीभ्यः) भोजनके सहित आनन्द करती हुईको (नमः) नमस्कार है (ते) आपकी (सेनाभ्यः) सेनाओंके प्रति (नमः) नमस्कार है (देव) हे रुद्र तुम (नः) हमको (अभयं) सब उपद्रवसे रहित करो (च) और अन्तकालमें (नः) हमको (स्वस्ति) सायुज्य मुक्ति देओ ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपकी महा गर्जना करनेवाली सेनाके लिये नमस्कार है खुले हुए केशवाली आपकी सेनाको प्रणाम है, हमारे द्वारा सत्कारको प्राप्त हुई नन्दी भृङ्गी वीरभद्र आदि गण सेनाके लिये नमस्कार है आनन्दके सहित भोजन करती हुई सेनाको

प्रणाम है, आपकी त्रिलोकव्यापी सब सेनाओंको नमस्कार है, हे रुद्र तुम हमको सम्पूर्ण आपदाओंसे रहित करके निर्भय करो–और देह पातके अनन्तर हमको सायुज्य मुक्ति देओ ॥ ३१ ॥

यह द्वितीय सूक्त अथर्वणके ग्यारमाँ काण्डमें दूसरा सूक्त इकत्तीस मंत्रका है ॥

इति श्री अथर्वण वेदीयरुद्र द्वितीय सूक्तम् ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य स्वामी शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्याख्या समाप्त ॥२॥

॥अथ अथर्वण वेदीय तृतीय सूक्तम्॥

मित्रश्च वरुणश्चेन्द्रो रुद्रश्च चेततु ॥ देवासो विश्वधाय सस्ते माञ्जन्तु वर्चसा ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(मित्रः) मित्र (च) और (वरुणः) वरुण (च) और (इन्द्रः) इन्द्र (च) और (रुद्रः) रुद्र (विश्वधायसः) जगत्के धारण पोषण करनेवाले (देवासः) देवता (चेततु) अनुग्रह करें (ते) ते सब देवता (मा) मेरेको (वर्चसा) तेजसे (अञ्जन्तु) प्रकाशित करें ॥ अथर्वण ३ । २२ । २ ॥

व्याख्याः—मित्र–वरुण–इन्द–रुद्र ये सब देवता जगत्को धारण पोषण करनेवाले मेरे पर अनुग्रह करें–और वे सब देवता मेरेको कान्तियुक्त तेजसे प्रसिद्ध करें [मित्रा वरुणा अहो रात्रे ॥ दिनरात रूप मित्र वरुण है ॥ काठक सं० १३ । ८] द्यावा पृथिवी वा अश्विनौ ॥ द्यौ भूमीही अश्विनीकुमार

हैं ॥ काठक सं० १३ । ५] अयं वै लोको मित्रोऽसौ वरुणः ॥ श० ब्रा० ॥ मा० सं० २९ । ६] भूमी मित्र है और वरुण स्वर्ग है [प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी ॥ प्राण अपान ही इन्द्र अग्नि हैं ॥ काठक सं० ७ । ५] अग्नीषोमौ देवते प्राणापानौ ॥ अग्नि सूर्य ही दोनों देव प्राण अपान हैं ॥ मै० सं० १ । ५ । ६] प्राणापानो वा इन्द्राग्नी ॥ सूर्य अग्निही प्राण अपान है ॥ मै० स० १ । ५ । ६] इन्द्राग्नी सर्वा देवताः ॥ सूर्य और अग्निही सर्व देवस्वरूप हैं ॥ काठक सं० ३४ । १] मित्रभूमी और वरुण द्यौ है ॥ इन्द्र अग्नि और रुद्रही सूर्य है ॥ १ ॥

अस्मै मणिवर्म बध्नन्तु देवा इन्द्रो विष्णुः सविता रुद्रो अग्निः ॥ प्रजापतिः परमेष्ठी विराट् वैश्वानर ऋषयश्चसर्वे ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(अस्मै) इस उपासकको रक्षाके लिये (मणिं) अभेद्य (वर्म) कवचको (सर्वे) सब (देवाः) देवता (बन्धन्तु) बाँधें ॥ वे देवकौन हैं (अग्निः) अग्नि (इन्द्रः) इन्द्र (विष्णुः) विष्णु (सविता) सूर्य (विराट्) विराट् देह (विश्वानरः) अभिमानी देव (प्रजापतिः) सूत्रात्मा देह (परमेष्ठी) ब्रह्मा (ऋषयः) भृगु अङ्गिरा आदिऋषि (च) और (रुद्रः) महेश्वर ॥ अथर्वण० ८ । ५ । १० ॥

व्याख्याः—जे सब देवता-इस उपासककी रक्षाके लिये अभेद्य कवचको बाँधे वे सव कौन हैं अग्नि देवता वायु देवता-विद्युत देवता-सूर्य भृगु अङ्गिरा आदिमुनि गण—विराट देहका स्वामी

वैश्वानर-सूत्रात्मा देहका स्वामी ब्रह्मा-और मायाजालका अध्यक्ष महेश्वर आदि ये सब रक्षक हैं ॥ २ ॥

मित्रश्च वरुणश्चांसौ त्वष्टाचार्यं मा चदोषणी महादेवो बाहू ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(अंसौ) वैलके दोनों कन्धे (मित्रः) मित्र (च) और (वरुणः) वरुण है (त्वष्टा) विश्वकर्मा (च) और (अर्यमा) अर्य्यमा (दोषणी) चर्म है (च) और (महादेवः) महादेव (बाहू) दोनों आगेके दो पगरूप हाथ है ॥ अथर्वण० ९ । २२ । ७ ॥

व्याख्याः—अध्यात्म वैल और अधिदेव ब्रह्माण्डका वर्णन है ॥ जैसे वैलके दोनों कन्धे चर्म-पग हैं ॥ तैसे ही ब्रह्माण्डका मित्र अधोभाग और वरुण ऊर्ध्वभाग है ॥ अन्धकार रूप चर्म-त्वष्टा और प्रकाश रूप चर्म अर्य्यमा है, और रुद्रके घोर अघोर रूपही हात हैं घोर हातसे पापीयोंको दण्ड देता है, और अघोर मय हातसे उपासकोंकी रक्षा करता है ॥ सोही महादेव दो हात वाला है ॥ ३ ॥

योनः स्वोयो अरणः सजात उत निष्ट्यो यो अस्माँ अभिदासति ॥ रुद्रः शरव्यायै तान्ममामित्रान्वि विध्यतु ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(नः) हमारी (स्वः) जातिवाला (यः) जो वैरी (अभिदासति) खेत घरको हरण करता है (यः) जो शत्रु (अरणः) बोलने योग्य नहीं है (उत) और

(सजातः) सजाति होने परभी जाति हीन (यः) जो (अस्मान्) हमको दुःखदेता है (निष्टयः) मर्य्यादा रहित (मम) मेरे (एतान्) इन (अमित्रान्) शत्रुओंको (रुद्रः) घोररूपधारी रुद्र (शरव्यया) वाणसे (विविध्यतु) मारडाले अथर्वण० १ । १९ । ३ ॥

व्याख्याः—हमारी जाति वाला जो शत्रु खेत घर आदिको हरण करके हमको दुःखी करता है, जो वैरी भाषण करने योग्य नहीं हैं, और जातिवाला होने परभी जाति हीन जो मर्य्यादा रहित है मेरे इन सब प्रकारके शत्रुओंको घोर स्वरूपी रुद्र अपने अमोघ वाणसे मारडाले ॥ ४ ॥

भूत पतिर्निरजत्विन्द्रश्चेतः सदान्वाः ॥ गृहस्य बुध्न आसीनास्ता इन्द्रो वज्रेणाधितिष्ठतु ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(भूतपतिः) प्राणियोंके पालन करने वाला (इन्द्रः) रुद्र (सदान्वाः) सदा रोने वाली फेत्कारीयोंको (इतः) हमारे इस स्थानसे (निरजतु) निकाल देवे (च) और (इन्द्रः) ऐश्वर्य्यशाली रुद्र (गृहस्य) घरके (बुध्ने) मूलमें (आसीनाः) वैठी हुई (ताः) उनभूतनीयोंको (वज्रेण) वाणसे (अधितिष्ठतु) अपने वशमें राखे ॥ अथर्वण० २ । १४ । ४ ॥

व्याख्याः—प्राणि मात्रका पालन करने वाला रुद्र—नित्य रोनेवालीं स्यालकी जाति रूपफियाउलीयोंको हमारे इस स्थानसे निकाल देवे—और ऐश्वर्य्य सम्पन्न रुद्र हमारे घरके मूलमैं वैठी हुई पिशाचनियोंको वाणसे अपने वशमें राखे ॥ ५ ॥

रुद्रावो ग्रीवा अशरै त्पिशाचाः पृष्टीर्वो पिशृणातु यातुधानाः ॥ वीरुद्वो विश्वतो वीर्या यमेन समजीगमत् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(पिशाचाः) हे भूतो (वः) तुम्हारे (ग्रीवाः) गलोंको (रुद्रः) प्रलयकर्त्ता रुद्र (अशरैत्) काटे (यातुधानाः) हे यातुधाननो (वः) तुम्हारे (पृष्टीः) कमरोंको (अपि) भी (शृणातु) काटडाले (विश्वतःवीर्या) बलरूपसे व्यापक (विरुद्) औषधि (वः) तुम भूतमात्रोंको निकाले और तुम यातुधानोंको (यमेन) यमकेद्वारा (समजी गमत्) संयुक्त करे ॥ अथर्वण० ६ । ३२ । २ ॥

व्याख्याः—हे भूत प्रेतो तुम्हारे गलोंको संहार कर्त्ता रुद्र काटे-हे अश्वके मँासभक्षी यातुधानो तुम्हारे कटीभागोंको रुद्र काटडाले-और हे प्रेत मात्र तुमको सामर्थ्यवाली औषधि रुद्रकी कृपासे निकाल दे हेराक्षसो तुमको रुद्र यमके आधीन में करे ॥ ६ ॥

नमो रुद्राय नमो अस्तु तक्मने नमो राज्ञे वरुणाय त्विषीमते ॥ नमो दिवे नमः पृथिव्यै नम ओषधीभ्यः ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(पृथिव्यै) भूमी के लिये (नमः) प्रणाम हो (त्विषिमते) तेजस्वी (राज्ञे) स्वामी (वरुणाय) वरुणके प्रति (नमः) प्रणाम (अस्तु) हो (दिवे) स्वर्ग के निमित्त (नमः) प्रणाम हो (रुद्राय) रुद्रके लिये (नमः)

प्रणाम हो (औषधीभ्यः) औषधियों के अर्थ (नमः) नमस्कार हो (तक्मने) ज्वर देवताके प्रति (नमः) नमस्कार हो ॥ अथर्वण० ६ । २१ । २ ॥

व्याख्याः—द्यौ लोकवासी रुद्ररूपी सूर्य के प्रति नमस्कार हो, भूलोकवासी प्रदीप्त अन्धकार वारक स्वामी अग्निके लिये नमस्कार हो और उन दोनों लोकोंको भी वारंवार प्रणाम हो, ज्वरके स्वामी रुद्रको प्रणाम हो वनस्पति औषधियोंके स्वामी रुद्रको प्रणाम हो ॥ रुद्रकी मुख्य सत्तामें सब नामरूप कल्पित हैं रुद्र से भिन्न कोई सत्ता नहीं है इस हेतुसे ही सम्पूर्ण जगत् रुद्र रूप है ॥ ७ ॥

रुद्रस्य मूत्रमस्यमृतस्य नाभिः ॥ विषाणका नाम वा असि पितॄणां मूलादुत्थिता वातीकृत नाशनी ॥८॥

अन्वयार्थः—(रुद्रस्य) रुद्रका (मूत्रं) वीर्य (अमृतस्य) बहुत काल जीवनका (नाभिः) स्थापक (असि) है (वै) प्रसिद्ध (नाम) पारद (असि) है (विषाणका) विशेष रोग नाश करने वाली (पितृणां) पितृ देवताओं के (मूलात्) उपादान कारणसे (उत्थिता) उत्पन्न हुई (वाती) अस्राव रोगका शोषण करके (कृतनाशनी) विधिवत् की हुई चिकित्सासे नाश करती है ॥ अथर्वण० ६ । ४४ । ३ ॥

व्याख्याः—रुद्रका वीर्य चिरकाल आयुका स्थापक है, प्रसिद्ध जिस वीर्यका नाम पारा है इस पारेकी भस्म करे, पितृयोंकी तृप्तिका मूलकारक भृङ्गराजनामकी औषधिसे मारकर भस्मको तैयार करे यह दोषरहित भस्म विविध रोगोंका नाश करनेवाली-धातुस्राव आदि व्याधिका शोषण करके विधिवत् अनुपानयुक्त चिकित्सासे

नाश करती है [भस्मना ॥ स्वयंकारण ही कार्य रूपसे भासे सो ही भस्म है ॥ ऋग्० ५ । २१ । ४] भस्मना ॥ प्रकाशसे ॥ ऋग्० १० । ११५ । २] रुद्रके वीर्यको हमलोग दवाके संग खाते हुए अग्नि होत्रकी भस्मको धारण करनेमें पाप मानते हैं ॥ अग्निका–कार्य ही भस्म है ॥ त्रिपुण्ड्रकी प्रथम रेखा–भूलोक ऋग्वेद–अकार गार्हपत्य अग्नि है ॥ द्वितीया रेखा, अन्तरिक्ष यजु–उकार–दक्षिण अग्नि है ॥ तीसरीरेखा स्वर्ग–साम–मकार–आहवनीय अग्नि है ॥ चतुर्थ रेखा-अपलोक–अथर्वण विन्दु–सभ्य अग्नि है ॥ त्रिपुण्ड्रकीद्वितीया रेखा में जो गोलविन्दु है सोही अपलोकवासी चन्द्रमा है ॥ अग्नि १ वायु २ सूर्य ३ चन्द्रमा ४ ॥ ये चारो ही देवता त्रिपुण्ड्रधर्मका स्मारक चिन्ह है ॥ ८ ॥

इदमिद्वा उंभेषजमिदं रुद्रस्यं भेषजम् ॥ येनेषुमेकं तेजनां शतशंल्यामप ब्रवंत् ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(इदं) यह (वै) निश्चय (इत्) ही रोगकी नाशक (भेषजं) औषधि (इदं) यह (रुद्रस्य) रुद्रकी (भेषजं) औषधि है (एक तेजनां) एक एक वाँशका दण्ड (शतशल्यां) सैकडों गाँठ युक्त (इषुं) छोडकर त्रिपुर काध्वन्स किया (ऊँ) और (येन) जिसके द्वारा शत्रुओंका नाश करता है उसको हटाकर वोले ॥ अथर्वण० ६ । ५७ । १ ॥

व्याख्याः—यह अवश्य ही रोग नाशक औषधि है और यह औषधि रुद्रकी है एक लम्बे सैकडों गाँठ वाले वाणको छोडकर त्रिपुरका नाश किया और जिसके द्वारा शत्रुओंका नाश करता है उस बाणको त्यागकर रुद्र हमसे बोले ॥ अर्थात् घोर रूपको त्याग

करके अघोर स्वरूपको धारण करके हमारे रोगीको दीर्घ आयुमय आशिर्वादि देवे ॥ ९ ॥

जलापेणाभिषिञ्चत जालाषेणोपसिञ्चत ॥ जला-षमुग्रं भेषजं तेननो मृडजीवसे ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र तुम जिस औषधिको (जलाषेण) सुख रूपसे (अभि) सर्वत्र (सिञ्चत) वर्षाते हो (नः) हमारी प्रजाके (जीवसे) दीर्घ जीवनकेलिये (तेन) उस (जलाषेण) सुखसे (उपसिंचत) विशेष सिंचन करो—और (उग्रं) उत्तम (जलाषं) सुखरूप (भेषजं) औषधिको हमारे हृदयमें स्थापन करके (मृड) दया करो ॥ अथर्वण० ६ । ५७ । २ ॥

व्याख्या:—हे रुद्र तुम जिस औषधिको सुख रूपसे सर्वत्र वर्षाते हो हमारी प्रजाके दीर्घ आयुकेलिये उस सुखसे विशेष सिंचन करो और उत्तम सुख आत्मज्ञानरूप औषधिको हमारे हृदयमें स्थापन करके दया करो ॥ जिस कृपासे हम आपके स्वरूपका साक्षात्कार करें ॥ १० ॥

शंचनो मयश्चनो माचनः किंचनाममत् ॥ क्षमारपो विश्वंनो अस्तु भेषजं सर्वंनो अस्तु भेषजम् ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र (नः) हमारे रोगका (शं) शमन करने वाला सुख होवे (च) और (नः) हमको (मयः) सुख होवे (च) और (नः) हमारे सम्वन्धि (किंचन) जो कोई भी है सो सवही (आममत्) रोग ग्रस्त (मा) नहोवे

(च) और (रपः) रोग मात्रकी (क्षमा) शांति होवे (विश्वं) सब चराचर जगत् (नः) हमारे लिये (भेषजं) सुखरूप (अस्तु) होवे (नः) हमारे (सर्वं) समस्त देशवासी जन समुहको (भेषजं) सुख (अस्तु) होवे ॥ अथर्वण० ६ । ५७ । ३ ॥

व्याख्याः—हे रुद्र भगवान् आपकी दयासे—हमारे रोगका नाश होवे—और हमको लौकिक सुख होवे—और हमारे सम्बन्धि जो कोइ प्राणिमात्र है सो सबही रोग ग्रस्त न होवे—और पाप मात्रकी शान्ति होवे सब चराचर जगत् हमारे लिये सुख रूप होवे तथा हमारे देशवासी समस्त जन समाजको सुख होवे ॥११॥

विश्व रूपां सुभगामच्छा वदामि जीवलाम् ॥ सानौ रुद्रस्यास्तां हेतिं दूरं नयतु गोभ्यः ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—विश्वरूपां नाना रूपवाली (सुभगां) उत्तमभागके निरूपण करने वाली (जीवलां) जीवनको देने वाली सहदेवी औषधिके देवताको (अच्छ) सन्मुख करके (वदामि) फल पानेकेलिये प्रार्थना करता हूँ (सा) सो औषधि देवता (रुद्रस्या) रोगके देवताकी (अस्तां) फेंकी हुई (हेतिं) जलयुक्त व्याधिको (नः) हमारे (गोभ्यः) गौ आदि प्राणियोंके वाससे (दूरं) दूरस्थानमें (नयतु) ले जावे ॥ अथर्वण० ६ । ५९ । ३ ॥

व्याख्याः—नाना स्वरूपवाली सुन्दर भागके वर्णन करने वाली—जीवन देने वाली सहदेवी नामकी औषधी के देवताको सन्मुख करके अभिलाषित फल प्राप्त करनेकी इच्छासे प्रार्थना करता हूँ

यह औषधि देवता रोगके देवताकी फेंकी हुई जलमिश्रत व्याधिरूप शक्तिको–हमारे मनुष्य पशु आदि प्रजाके समीपसे दूर स्थानमें लेजायकर डाले ॥ औषधिके चेतनकी प्रार्थना है ॥ १२ ॥

यां ते॑ रु॒द्र इषु॒ मास्य॒दङ्गे॑भ्यो हृद॑याय च ॥ इ॒दं ताम॒द्य त्वद्व॒यं विषू॑चीं॒ वि वृ॑हामसि ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—हे रोगि (ते) तेरे (अङ्गेभ्यः) हस्त पादादिक अवयवोंको (च) और (हृदयाय) हृदयको (रुद्रः) रोग देवता (यां) जिस (इषुं) बाणको (आस्यत्) फेंकता है (अद्य) अब (इदं) इसको दूर करने के लिये (तां) उस (विषुचीं) शक्तिको (वयं) हम (त्वत्) तेरेसे (विवृहामसि) दूर करते हैं ॥ अथर्वण० ६ । ९० । १ ॥

व्याख्याः—हे रोगि तेरे हात पग आदि अंगों को और हृदयको दुःख करने वाली व्याधि है, जिस रोगरूपी बाणको रुद्र फेंकता है, अब इसको दूर करने के लिये–उस नाना गतिवाली व्याधिको हम तेरेसे दूर करते हैं ॥ १३ ॥

यास्ते॑ श॒तं ध॒मन॒योऽङ्गा॒न्यनु॒ विष्ठि॑ताः ॥ तासां॑ ते॒ सर्वा॑सां व॒यं निर्वि॒षाणि॑ ह्वयामसि ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—हे रोगि (ते) तेरे (अङ्गानि) अङ्गोंमें (शतं) सैकडों (धमनयः) नाडी (याः) जे (विष्ठिताः) विविध स्थित हैं (अनु) उनमें रोग हैं (ते) तेरे (तासां) उन (सर्वासां) सब नाडीयोंका (निर्विषाणि) विषरहित

औषधियोंको (वयं) हम (ह्वयामसि) सम्पादन करते हैं ॥ अथर्वण० ६ । ९० । २ ॥

व्याख्या:—हे शूलरोगि तेरे अङ्गोमें जे असंख्य नाडीयें नाना रूपसे स्थित हैं उन नाडीयोंमें रोग भरे हैं ॥ उन सब नाडीयोंको रोग रहित करने के लिये औषधियोंको हम सम्पादन करते हैं ॥ १४ ॥

नम॑स्ते रुद्रास्य॑ते नमः॒ प्रति॑हिताये ॥ नमो॑ विसृज्य॑मा॑नायै नमो॒ निप॑तितायै ॥ १५ ॥

अन्वयार्थ:—(रुद्र) हे रुद्र (अस्य ते) वाणको फेंकनेके लिये (ते)आपको (नमः) प्रणाम होवे (प्रतिहितायै) धनुषपर चढे हुए वाणरूप शक्तिके लिये (नमः) प्रणाम होवे (विसृज्यमानायै) धनुषसे छोडते समय वाणको (नमः) प्रणाम होवे (निपतितायै) निशानेसे गिरे हुए वाणको (नमः) नमस्कार होवे ॥ अथर्वण० ६ । ९० । ३ ॥

व्याख्या:—हे रुद्र वाणको फेंकनेके लिये तैयार हुए आपको प्रणाम है, धनुष्य पर वाणको चढाते समय नमस्कार है, धनुषसे छोडते समय वाणको प्रणाम है, लक्ष्यभेदकर गिरे हुए वाणको नमस्कार है ॥ १५ ॥

वा॒युरे॑नाः स॒माक॑रत् त्वष्टा॒ पोषा॑य ध्रियताम् ॥ इन्द्र॑ आभ्यो॒ अधि॑ब्रवद्रु॒द्रो भू॒म्ने चि॑कित्सतु ॥ १६ ॥

अन्वयार्थ:—(एनाः) इन गौओंको (वायुः) वायु (समाकरत्) एक संग करे (त्वष्टा) त्वष्टा (पोषाय)

वृद्धि के लिये (ध्रियतां) गौओंको धारण करे (इन्द्रः) इन्द्र (आभ्यः) इन गौओंके लिये (अधिब्रवत्) विशेष प्रबन्ध करनेवाला भाषण करे (रुद्रः) रुद्र (भूम्ने) बहुत रोग नाश करनेकेलिये (चिकित्सतु) उपाय करे ॥ अथर्वणा० ६ । १४१ । १ ॥

व्याख्याः—वायु देवता इन गौओंको एक साथ समुद्र करे, विश्वकर्मा गौओंको वृद्धिके लिये धारण करे-इन गौओं के लिये विशेष सुखका प्रबन्ध करनेवाला इन्द्र भाषण करे, गौओं के समस्त रोगों के नाशके लिये रुद्र उपचार करे ॥ १६ ॥

रुद्र जलाषभेषजनीलशिखण्डकर्मकृत् ॥ प्राशं प्रतिं प्राशो जह्यरसान्कृण्वोषधे ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (जलाषभेषज) सुख स्वरूप औषधिमय तुम हो (नीलशिखण्ड) हे नित्य तरुण एक अखण्ड रस (कर्मकृत्) जगत् की उत्पतिस्थिति लयरूप कर्म करने वाले तुम हो (प्राशं) प्रश्न कर्त्ताके (प्रतिप्राशः) प्रतिकूल वादियोंको (जहि) मारो (ओषधे) हे फाँग नामकी औषधे (अरसान्) प्रतिवादियोंकी वाणीको निरस (कृणु) करो ॥ अथर्वण० २ । २७ । ६ ॥

व्याख्याः—हे रुद्र नित्य तरुण एक अखण्ड रस परिपूर्ण तुम जगत्की उत्पत्ति स्थिति लय तिरोधान अनुग्रह करनेवाले हो, हे सुखस्वरूप सर्वऔषधिमय तुम हो ॥ हे फाँग नामकी औषधि के देवता रुद्र तुम-मैं प्रश्न कर्ता के प्रतिकूल वादियोंकी वाणीको निरसरूप स्तम्भन करो जिससे बोलने में असमर्थ होवें ॥ और उन शत्रुओंको मारो ॥ १७ ॥

यईशे पशुपतिः पशूनां चतुष्पदामुतयो द्विपदाम् ॥
निक्रीतःसयज्ञियंभागमेतुरायस्पोषायजमानं सचन्ताम्॥१८॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (पशुपतिः) रुद्र (द्विपदां) दो पगवाले प्राणियोंका (उन) और (यः) जो (चतुःपदां) चार पगवाले प्राणिमात्र (पशूनां) पशुओंका (ईशे) स्वामी है (सः) सो रुद्र (निक्रीतः) स्वाधीन करके (यज्ञिय) यज्ञके योग्य (भागं) भागको (एतु) प्राप्त करे (रायः) प्रजापशु धन आदिकी (पोषा) वृद्धि से (यजमानं) यजमान को (सचन्तां) सेवन करे ॥ अथर्वण० २ । ३४ । १ ॥

व्याख्याः—जो रुद्र दो पगवाले मनुष्यादि पशुओंका स्वामी है और जो चार पगवाले गौ आदि पशुओंका नियंता है, सो रुद्र अपने आधीनमें पशुमात्रको वशकरके यज्ञके योग्य भाग प्राप्त करे, तथा प्रजापशु धन आदिकी वृद्धि के द्वारा उपासकको सिंचन रूपसे सेवन करे [पशवो वै रायः ॥ प्रजा रूप पशु ही धन है ॥ काठक सं० २६ । ६] चक्षुआदि इन्द्रियोंसे ग्राह्य विषयोंको ही विशेष देखते हुए जानते है ते ही पशु हैं ॥ १८ ॥

ये गोपतिं पराणीयाथाहुर्मादद्रा इति ॥ रुद्रस्यास्तां ते हेतिं पर्यिन्त्यचि—त्या ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(परानीय) परांमुख (अचित्या) अज्ञान युक्त (गोपतिं) सूर्यको अर्घ्यपाद्यआदि (मा) मत (ददाः) देओ (इति) इस प्रकार (ये) जे (आहुः)

कहते हैं (अथ) मरण के अनन्तर (ते) वे नास्तिक (रुद्रस्य) रुद्रके (अस्तां) फेंके हुए (हेतिं) घोर बाणको (परियन्ति) सर्वत्रसे अनुभव करते हैं ॥ अथर्वण० १२ । ४ । ५२ ॥

व्याख्या:—विषय वासनासे पराङ्मुख अज्ञानयुक्त सूर्यको अर्घ्यपाद्य आदि जप हवनके अर्पण करनेसे क्या होता है मत देओ इस प्रकार जे कहते हैं, मरण के अनन्तर वे सब नास्तिक रुद्रके त्यागे हुए घोर बाणकी नानारूप वेदनाको सर्वत्रसे अनुभव करते हैं ॥ १९ ॥

हेतिः शफानुत्खिदन्ती महा देवो १२/३ पेक्षमाणा ॥२०॥

अन्वयार्थः—(महादेवः) रुद्रकी (अपेक्षमाणा) इच्छा रूप (हेतिः) शक्ति (शफात्) पापीयों के मूलोंको (उत्खिदन्ती) उखाडती हुई शोभापाती है ॥ अथ० १२ । ७ । ८ ॥

व्याख्या:—महादेवकी इच्छारूप शक्ति पापीयों के वंशरूप मूलोंको उखाडती हुई शोभा पाती है ॥ २० ॥

मृत्यु हिंङ्कृण्वत्यु १ ग्रोदे॒वः पुच्छं पर्यस्यन्ती ॥२१॥

अन्वयार्थः—(मृत्युः) कालरूप (उग्रः) भयंकर (देवः) रुद्रसे (परि) व्यापक शक्ति (अस्यन्ती) फेंकी हुई (पुच्छं) शत्रुके पीछले मूलको (हिङ्कृणवती) नष्ट करती हुई उपासककी वृद्धि करती है॥ अथ० १२ । ७ । १० ॥

व्याख्या:—महाकालरूप भयंकर रुद्रसे व्यापक शक्ति फेंकी हुई पापी के पिछले वंश चलाने वाले मूलको नाश करती हुई उपासककी वृद्धि करती है ॥ २१ ॥

तस्मै प्राच्यादिशो अन्तर्देशाद्भवमिष्वासमनुष्ठातारम कुर्वन् ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(प्राच्याः) पूर्व (दिशिः) दिशाके (अन्तर्देशात्) मध्य भागसे (अनुष्ठातारं) धनुषको धारण करने वाला (इषुआसं) बाण फेंकने वाले (भवं) भव को प्रणाम (अकुर्वन्) करता हुआ (तस्मै) उस बाणकोभी प्रणाम करता है ॥

व्याख्याः—पूर्व दिशाके मध्यके देशसे धनुष धारण करने वाला वाण फेंकनेवाले भवको प्रणाम करता हुआ-उस वाणकोभी प्रणाम करता है ॥ २२ ॥

भवएनमिष्वासः प्राच्यादिशो अन्तर्देशादनुष्ठातानु तिष्ठति नैनं शर्वो न भवोनेशानः ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(प्राच्याः) पूर्व (दिशिः) दिशाके (अन्तर्देशात्) मध्यदेशसे (अनुष्ठाता) धनुषको धारण करनेवाला (इषुआसः) वाण फेंकनेवाला भव नमस्कार करने वाले यजमानकी (अनु) रक्षा करनेकेलिये पीछे (तिष्ठति) खडा होता है (एनं) इस उपासकके सम्बन्धि मात्रको (भवः) भव (न) नहीं कष्ट देता है (शर्वः) शर्व (न) नहीं मारता है (इशानः) ईशान भी (न) नहीं सताता है ॥

व्याख्या—पूर्व दिशाके मध्य देशसे धनुषको धारण करने वाला बाण चलानेवाला भव देवता-नमस्कार करने वाले उपासक

की रक्षाके लिये पीछे खडा होता है, इस उपासक के सम्बन्धि शत्रको भव-शर्व-ईशान नहीं मारते हैं ॥ २३ ॥

नास्यं पशून्न समानान् हिंनस्ति यएवं वेदं ॥२४॥

अन्वयार्थः—(अस्य) इस उपासकके (पशून्) पशुओं को (न) भी (न) नहीं मारता है (न) नहीं कष्ट देता है (समानान्) रुद्रके सामने वरावरी करने वाले शत्रुओंको (हिनस्ति) मारता है (यः) जो मनुष्य (एवं) इस प्रकार (वेद) जानता है, सो उपासक सर्वदा सुख पाता है ॥

व्याख्या:—इस उपासक के प्रजा पशुआदि सेवकोंको भी नहीं मारता है, रुद्र के साथ द्वेषरूप वरावरी करने वाले शत्रुओंको मारता है, जो मनुष्य इस प्रकार जानता सो उपासक सदा सुखी होता है ॥ २४ ॥

नीचले मंत्रोंका अर्थभीं इस प्रकार है ॥

तस्मै दक्षिणा यादिशो अन्तर्देशाच्छर्वमिष्वा सम-नुष्ठातारमकुर्वन् ॥ २५ ॥

शर्वएंन मिष्वासो दक्षिणायादिशो अन्तर्देशादनुष्ठा-तानुतिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ २६ ॥

तस्मै प्रतिच्यां दिशो अन्तर्देशात्पशुपतिं मिष्वास मनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ २७ ॥

पशुपतिरे नमिष्वासः प्रतीच्यादिशो अन्तर्देशा-देनु ॥ २८ ॥

तस्मा उदीच्यादिशो अन्तर्देशादुग्रंदेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ २९ ॥

उग्रएनं देव इष्वास उदीच्यादिशो अन्तर्देशादनु० ॥ ३० ॥

तस्मै ध्रुवायां दिशो अन्तर्देशाद्रुद्रमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ३१ ॥

रुद्र एनमिष्वासो ध्रुवाया दिशो अन्तर्देशादनु० ॥ ३२ ॥

तस्मा ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशान्महादेवमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ३३ ॥

महादेव एनमिष्वास ऊर्ध्वाया दिशो अन्तर्देशादनु० ॥ ३४ ॥

तस्मै सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्य ईशानमिष्वासमनुष्ठातारमकुर्वन् ॥ ३५ ॥

ईशान एनमिष्वासः सर्वेभ्यो अन्तर्देशेभ्योऽनुष्ठातानुतिष्ठति नैनं शर्वो न भवो नेशानः ॥ ३६ ॥

नास्य पशून्न समानान् हिनस्ति यएवं वेद ॥

अथर्वण० १५ । ५ । १०००१५ ॥ भवनामसे रुद्र सृष्टि रचता है ॥ पशुपति नामसे पालन करता है ॥ शर्व नामसे संहार करता है ॥ उग्र नामसे कैलासवासी है ॥ रुद्र नामसे अनेक स्वरूप धारी है ॥ महादेव नामसे सूर्य मण्डलका पुरुष है ॥ ईशान नामसे समस्त पदार्थोंका स्वामी है ॥ देव नामसे विद्युत् पुरुष है [ध्रुवा दिशाॕ विष्णु पत्न्यधोरास्येशाना ॥ व्यापक अघोर रुद्रसे रक्षित अधो दिशा इस विश्वकी स्वामी हैं ॥ मं० सं० ३ । १६ । ४] ये आठ नाम एक अद्वितीय रुद्रकेही हैं ॥ इन नामों के भी असंख्य नाम—इन्द्र—विष्णु—मित्र—वरुण—अश्विनीकुमार—यम—वायु—धाता—विधाता—अर्यमा—बृहस्पति—अग्नि—चन्द्रमा—शुक्र सोम प्राण आदि बहुत नाम हैं ॥ ३७ ॥

रश्मिभिर्नभ आभृतं महेन्द्र एत्यावृतः ॥ सधाता सविधर्ता सवायु र्नभ उच्छ्रितम् ॥ सोऽर्यमा सवरुणः सरुद्रः स महादेवः ॥ सो अग्निः सउ सूर्यः सउएव महायमः ॥ ३८ ॥

अन्वयार्थः—(नमः) अनन्ताकाश व्यापी (महेन्द्रः) महेश्वर अपनी माया के (रश्मिभिः) व्यापक दश भेदोंसे (आवृतः) ढका हुआ (आभृतं) असंख्य स्वरूपोंको सम्पादन (एति) करता है (सः) सोही (धाता) विश्वनिर्माता (सः) सोही (विधर्ता) जगत् रक्षक (सः) सो (वायुः) सूत्रात्मा (नभः) ब्रह्मांण्डके (उच्छ्रितं) ऊँचे सत्यलोकमें स्थित है (सः) सो (अर्यमा) अर्यमा (सः) सो (वरुणः) वरुण

(सः) वह (रुद्रः) ईशान (सः) सो (महादेवः) सबसे बडादेव महादेव है (सः) वह (अग्निः) अग्नि देवता (ॐ) और (सः एव) एव सोही (महायमः) महावायु है (सः ॐ) सोही (सूर्यः) सूर्य है ॥ अथर्वण० १३।५।२०००६॥

व्याख्याः—जो रुद्र अनन्ताकाश व्यापी है सोही महेश्वर अन्तर्यामी रूपसे मायाके दश भेदोंके द्वारा आच्छादित हुआ अपरिमित रूपोंको धारण करता है, सो ही अन्तर्यामी जगत्की उत्पति पालन करनेसे धाता और विधाता है सोही ब्रह्माण्डके ऊँचे भागरूप सत्यलोकमें ब्रह्मा है सोही दिनरातका मित्रवरुणरूप देवता है, सो ही त्रिपुरध्वन्सी रुद्र है सोही सबका प्रपितामह महादेव है, सोही अग्नि देवता है सोही महा आकाशचारी वायु देवता है, और सोही सूर्य देवता है [त्रयः प्राणाः प्राणो व्यानोऽपानः ॥ कार्य क्रिया कारण रूप तीन प्राण हैं यही प्राण अपान व्यान हैं ॥ काठक सं० ३१।६] दशहि प्राणाः ॥ दश ही प्राण हैं ॥ काठक सं० २७।५] स दशधात्मनं व्यधत्त ॥ उस देवने अपनी मायादेहको दशप्रकारसे विभक्त किया ॥ काठक सं० ९।१] आत्मावायुः ॥ व्यापक सूत्रात्मा देहधारी ब्रह्मा है ॥ तैत्तरीयारण्यक सं० ५।७।९] प्राणो वै यमः ॥ वायुही यम है ॥ तै० आरण्यक० ५।७।१२। प्राणो वै वायुः ॥ प्राणही वायु है ॥ काठक सं० २७।५] मरुतो रश्मयः ॥ प्राणही रश्मि हैं ॥ तै० आर० ५।४।८] आपो वै मरुतः ॥ प्राण शक्तिरूप मायाही मरुत हैं ॥ शांखायन ब्रा० ८।९] प्राणानामेकादश आत्मा ॥ दश प्राणोंकी चेतन आत्मा अग्यारवाँ है ॥ मैत्रायणी संहिता ३।९।८] त्रिविध माया दशरूप है उस मायाका स्वामी एकादश रूप महेश्वर है ॥३८॥

य एतं देवमेकवृतं वेद ॥ न द्वितीयो न तृतीयश्च तुर्थो नाप्युच्यते ॥ न पञ्चमो न षष्ठः सप्तमो नाप्युच्यते ॥ नाष्टमो न नवमो दशमो नाप्युच्यते ॥ ३९ ॥

अन्वयार्थः—(एकवृतं) अपनी मायासे ढके हुए अद्वितीय स्वरूप (एतं) इस (देवं) स्वयं प्रकाशी रुद्रको (यः) जो (वेद) जानता है (द्वितायः) दूसरा (न) नहीं (तृतीयः) तीसरा (न) नहीं (चतुर्थः) चौथा (अपि) भी नहीं (उच्यते) कहा जाता है (पञ्चमः) पाँचमाँ (न) नहीं (पष्ठः) छठा (न) नहीं (सप्तमः) सातमाँ (अपि) भी नहीं (उच्यते) कहा जाता है (अष्टमः) आठमाँ (न) नहीं (नवमः) नवमाँ (न) नहीं (दशमः) दशमाँ (अपि) भी नहीं (उच्यते) कहाजाता है ॥ अथर्वण० १३ । ५ । २०००५ ॥

व्याख्या:—अपनी मायासे आच्छादित हुए अद्वितीय स्वरूप इस स्वयं प्रकाशी रुद्रको जो मुमुक्षु अपने स्वरूपसे अनुभव करता है, उस अभेद दर्शी में दूसरा माया कारण नहीं–तीसरा सूत्रात्मा देह नहीं, चोथा स्थूल विराट् नहीं, पाँचमाँ पच भूतका विभाग नहीं है, षड् भी विकार नहीं, सातलोक भी नहीं, आठपुरी आठ धातु नहीं· नवग्रह–नवछिद्रभी नहीं–नव प्राण दशमी नाभी नहीं कही जाती है [प्राणा वै देवाः ॥ दश भेदवाली प्राण शक्तिही सब देव आदि चराचर है ॥ मैत्रायणी सं० ३ । २ । १] नव वै पुरुषे प्राणा नाभिर्दशमी ॥ देहमें नव छिद्र ही नव प्राण हैं और दशमी नाभी स्थान है ॥ कपिष्ठल कठ० सं० ३१ । १३]

समष्टि व्यष्टि आदि सब प्रकारके भेद प्राणशक्तिके हैं और प्राण-शक्ति चेतनमें छायाके समान कल्पित है, इसलिये ही ज्ञानीकी दृष्टिमें एक चेतनसे भिन्न सब इन्द्रजाल है ॥ ३९ ॥

सरुद्रो वसुवनिर्वसुदेये नमोवाकेवषद्कारोनु संहितः ॥ ४० ॥

अन्वयार्थः—(वषट्कारः) जो व्यापक हवि ग्रहण कर्ता (वसुवनिः) धनदाता (नमोवाके) नमस्कारके सहित (वसुदेये) हवि द्रव्यको अर्पण करनेवाले उपासकके लिये (सो) सो (रुद्रः) रुद्र (अनु) अनुकूल (संहितः) उत्तम सुख स्थापन करता है ॥ अथर्वण० १३ । ६ । ५ ॥

व्याख्याः—जो रुद्र स्वाहा शब्दसे व्यापक हविको ग्रहण करता है, धनदाता सो रुद्र—नमस्कारके सहित हवि द्रव्यको अर्पण करनेवाले उपासकके लिये अनुकूल उत्तमसुखस्थापन करता है ॥ ४० ॥

तस्येमे सर्वे यातव: उपप्रशिषमासत्ते ॥ ४१ ॥

अन्वयार्थः—(तस्य) उस रुद्रकी (प्रशिषं) अज्ञाको (इमे) ये (सर्वे) सब (यातवः) गति शील देवता (उपासते) पालन करते हैं । अथ० १३ । ६ । ६ ॥

व्याख्याः—उस महेश्वरकी आज्ञाको ये सब स्वासप्रस्वास रूप क्रिया करनेवाले देवता पालन करते हैं ॥ ४१ ॥

तस्यामू सर्वान क्षत्रावशे चन्द्र मसासह ॥ ४२ ॥

अन्वयार्थः—(तस्य) उस रुद्रके (वशे) वशमें (अमू) वे (सर्वा) सब (नक्षत्रा) तारागण (चन्द्रमसा) चन्द्रमाके (सह) सहित हैं॥ अथर्वण० १३ । ६ । ७॥

व्याख्या:—उस रुद्रके आधीनमें वे सब गति शील नक्षत्र समुह चन्द्रमाके सहित हैं ॥ ४२ ॥

अपश्चाद्दग्धान्नस्य भूयासम् ॥ अन्नादायान्नपतये रुद्राय नमो अग्नये ॥ सभ्यः सभां मे पाहि ये च सभ्याः सभासदः ॥ ४३ ॥

अन्वयार्थः—(अदग्ध अन्नस्य) हवन किये हुए अन्नके (अपः) व्यापक शेष भागको (भूयासं) हम भोगने वाले बहुत होवें (अन्न अदाय) अन्नके भोगनेवाले (अन्नपतये) अन्नके स्वामी (अग्नये) व्यापक (रुद्राय) रुद्रके लिये (नमः) नमस्कार है (सभ्यः) सभा योग्य तुम (मे) मेरी (पाहि) रक्षा करो (च) और (सभां) शिष्य पुत्र आदिके समुहको रक्षा करो (च) और (ये) जे (सभ्याः) सभा योग्य (सभासदः) सभासद हैं उनकी रक्षा करो ॥ अथर्वण० १९ । ५६ । ५॥

व्याख्या:—हवन किये हुए पवित्र अन्नके व्यापक शेष भाग को हम भोगनेवाले बहुत होवें—हविके भोगने वाले अन्नके स्वामी व्यापक रुद्र के लिये प्रणामहै ॥ सभा योग्य तुम रुद्र देव मेरी रक्षा करो और मेरे शिष्य पुत्र आदि समुहको पालन करो—तथा वैदिक धर्म सभाके योग्य जे सभासद हैं उनकी भी रक्षा करो ॥ ४३ ॥

अर्यमणं यजामहे सुबन्धुं पतिवेदनम् ॥ उर्वारुकमिव बन्धनात्प्रेतो मुञ्चामि नामुतः ॥ ४४ ॥

अन्वयार्थः—(पतिवेदनं) रक्षक देवको प्राप्त करने योग (सुबन्धुं) उत्तम कारण (अर्यमणं) श्रेष्ठ रुद्रको (यजामहे) हम नमस्कारों के सहित हविसे पूजते हैं (उर्वारुकं इव) जैसे काँकडी अपनी वेलसे छूट जाती है ॥ तैसे ही (इतः) इस मृत्यु (बन्धनात्) बन्धनसे (प्रमुञ्चामि) अत्यन्त मुक्त होता हूँ (अमुतः) उस मृत्युसे रुद्रकी दयाविना कभी (न) नहीं छूटता ॥ अथर्वण० १४ । १ । १७ ॥

व्याख्याः—मायाकाभी अधिष्ठानरूप उत्तम कारण–श्रेष्ठ स्वयंप्रकाश सबके पालक प्राप्त करने योग्य रुद्रको नमस्कारों के सहित हविसे हम पूजते हैं ॥ उस रुद्रके सेवनसे क्या प्रयोजन सिद्ध होता है ॥ जैसे परिपक्व काँकडी अपने उत्पत्ति स्थानसे भिन्न हो जाती है, तैसे ही इस संसार के वारंवार जन्म मरण आदि महा दुःखरूप मायाके वन्धनसे सर्वदा के लिये मैं मुक्त होता हूँ, रुद्रकी दया विना मैं कभी उस मायाजालमय वन्धनसे नहीं छूटता ॥ इस हेतुसेही एक अद्वितीयरुद्र सेवनीय है ।

[सत्यं ब्रवीमि वधइत्स तस्य ॥ नार्यमणं पुष्यति नो सखायं केवलाघो भवति केवलादी ॥

मंत्र द्रष्टा अङ्गिरा ऋषिने कहा है ॥ मैं सत्य कहता हूँ जो द्विजाति मात्र अन्नरूप हवि (अर्यमणं) उत्तम तेजस्वी रुद्रको और पापके नाश करने वाले संन्यासीको पोषण नहीं करता है रुद्रके अर्पण किये विना अपने कुटुम्बके सहित खाता है, वह केवल पापी है, उस पापीका उद्धार कभी नहीं होता ॥ ऋग्० १० । ११७ । ६] अग्नि होत्रही रुद्रका भोजन है और अतिथिको भोजन देनाही पोषण करना है ॥ जिस कालमें बाह्यरूप अहिंसावादीयोंने यज्ञ वँध

करवायदीये—उसके पश्चात् लिंगस्वरूप रुद्रको भोग लगाकर ही अग्नि होत्रके फलको माना ॥ परम वैदिक अग्नि होत्रका प्रतीक रूप परिपक्व अन्न ही रुद्रका भोग है ॥ आजकाल वैदिक प्रतीक लिंग उपासनाकी महानिन्दा करते हैं, उसके नैवेद्य भक्षण करने वालेको कुत्ता चाण्डाल कहते हैं ॥ इस वैदिक लिंग और लिंग के भोगको पाखण्ड बताकर—तथा अपने अवैदिक पाखण्ड धर्मको वैदिक बताकर प्रजाको अवैदिक बनायदिया ॥ ४४ ॥

ब्रह्म होता ब्रह्म यज्ञा ब्रह्मणा स्वरवोमिताः ॥
अध्वर्यु र्ब्रह्मणो जातो ब्रह्मणो न्तर्हितं हविः ॥ ४५ ॥

अन्वयार्थः—(ब्रह्मणा) रुद्रके द्वारा (ब्रह्म) अग्नि (होता) होता (जातः) प्रगट हुआ (ब्रह्म) वेद उत्पन्न हुआ (यज्ञाः) सूर्य मण्डल यज्ञ वेदि प्रगट् हुई (अध्वर्युः) अन्तरिक्षवासी वायु प्रगट हुआ (ब्रह्मणः) रुद्रसे (स्वरवः) सातस्वर (मिताः) साम गायनके रूपमें प्रगट हुए (ब्रह्मणः) रुद्रके (अन्तः) मध्यमें (हविः) समस्त ब्रह्माण्ड रूप हवि (हितं) स्थित है ॥ अथर्वण० १९ । ४२ । १ ॥

व्याख्याः—रुद्रके मायिक स्वरूपसे हवन कर्ता अग्नि प्रगट हुआ असंख्य यज्ञोंका स्वरूप सूर्यवेदि प्रगट् हुई वेद मंत्र प्रगट हुए रुद्रसे आकाश चारी वायु उत्पन्न हुआ—सात स्वरके रूपमें साम गायनकी ऋचा प्रगट हुई—रुद्रके मध्यमें सब चराचर जगत् रूप हवि स्थित है [ब्रह्म परं युज्यतां ब्रह्म पूर्वं ब्रह्मान्ततो मध्यतो ब्रह्म सर्वतः ॥ रुद्र आगे—रुद्र पीछे, रुद्र बीचमें रुद्र आदि अन्तसे रहित सर्वत्र व्यापक है उसकी उपासना किया जाये ॥

अथर्वण० १४ । १ । ६४] आत्मा वै हविः ॥ अधिष्ठान महेश्वरकी व्यापक कार्य कारण रूप माया हवि है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ७ । १] ब्रह्मवास्तोष्पतिं ॥ ब्रह्माण्डरूप यज्ञके स्वामी रुद्रको जानो ॥ ऋग्० १० । ६१ । ७] कन्यागमन–अन्न–अग्नि–जल–कर्म–स्तुति–मंत्र–वेद-प्रजव–चन्द्रमा–विस्तार मित्र–बडा–व्यापक–यज्ञ–देह–जीव सूर्य–वायु–रुद्र–वाण–सोम–बहुत माया–होता ब्रह्मा–सबसे उत्तम इत्यादिक शब्द ब्रह्म वाचक हैं ॥ जो ऋग्वेदके दशमाँ मण्डल इक् सूठ सूक्त सातमाँ मंत्र में ब्रह्मनाम रुद्रका है, सोही रुद्र इस मंत्र में है ॥ ४५ ॥

सोऽवर्धत समहानभवत्स महादेवोऽभवत् ॥ ४६ ॥

अन्वयार्थः—(सः) सो रुद्र (वर्धत) मायाके द्वारा ब्रह्मा आदिके स्वरूपमें वृद्धि पाता है (सः) सो ही (महान्) महाविराट् (अभवत्) हुआ (सः) सो ही सबके मध्य (महादेवः) उत्तम देव (अभवत्) हुआ ॥ अथर्वण० १५ । २ । ४ ॥

व्याख्याः—जो रुद्र निराकार है सोही मायासे ब्रह्मा आदिके स्वरूपमें वृद्धि पाता है ॥ जैसे सायंकालके कुछ पहिले मनुष्यकी छाया देहसे बहुत बडी दिखाइ देती है ॥ तैसे रुद्रकी प्राण शक्ति छाया है उस मायाके द्वारा बहुत स्वरूप धारी प्रतीत होता है ॥ सो रुद्र महा विराट् हुआ–सोही सब देवोंके बीचमें महादेव हुआ ॥ ४६ ॥

सदेवानामीशां पर्यैत्स ईशानो भवत् ॥ ४७ ॥

अन्वयार्थः—(सः) उसने (देवानां) देवताओं के ऊपर (ईशां) प्रभुताको (परि) सर्वत्र से (ऐत्) पाया (सः) सोही प्रभुतावाला (ईशानः) ईशान नाम वाला (अभवत्) हुआ ॥ अथर्वण २५ । १ । ५ ॥

व्याख्याः—उस रुद्रने सब देवताओंके अभिमानको यक्ष रूपसे नाश करके उमारूप धारण कर देवताओंको अपने स्वरूपका उपदेश दिया—जिस उपदेशरूप महिमासे एक अखण्ड रस अद्वैतात्मक प्रसिद्धिको सब देवताओंके मुखसे सर्वत्र पाई—रुद्रसे बडा और कोई नहीं है, सो प्रख्यातिवाला ईशाननामवाला हुआ ॥ ४७ ॥

यो अ॒ग्नौ रु॒द्रो यो अ॒प्स्व॑१॒न्तर्य ओष॑धी वी॒रुध॑ आवि॒वेश॑ ॥ य इ॒मा विश्वा॒ भुव॑नानि चाकॢ॒पे तस्मै॑ रु॒द्राय॒ नमो॑ अस्त्व॒ग्नये॑ ॥ ४८ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो रुद्र (अग्नौ) अग्निमें (यः) जो (रुद्रः) रुद्र (अप्सु) किरणोंके समुह रूप सूर्य मण्डलके (अन्तः) मध्यमें (यः) जो रुद्र (औषधीः) वनस्पतियोंमें (वीरुधः) अन्नादि घासमें (आविवेश) चेतन रूपसे प्रविष्ट हुआ (इमा) इन (विश्वा) समस्त (भुवनानि) प्राणियोंको उत्पन्न पालन संहार करनेमें (यः) जो रुद्र (चाकॢपे) समर्थ है (तस्मै) उस (अग्नये) व्यापक (रुद्राय) रुद्रके निमित्त (नमः) प्रणाम (अस्तु) होवे ॥ अथर्वण० ७ ।९२॥१॥

व्याख्याः—जो रुद्र अग्निमें अन्तर्यामी रूपसे—व्यापक रश्मि समुहके सूर्य मण्डलके मध्यमें भर्गरूपसे और अन्तरिक्ष व्यापी

वायुमें–चन्द्रमामें–जो रुद्र प्राणिमात्रके मध्यमें जीवरूपसे विराजमान हुआ है सोही रुद्र वनस्पतियोंमें और लता–गुल्म–अन्नादिक–घास में अवस्थित है, जो रुद्र इन समस्त भुवनों के सहित चराचर की उत्पत्ति पालन–संहार–तिरोभाव–अनुग्रह आदि करनमें समर्थ है, उस सर्व रुद्रके प्रति हमारा वारंवार प्रणाम है ॥ ४८ ॥

ॐ भद्रंनो अपिवातयमनौ दक्षमुत क्रतुम् ॥

ॐ ॥ शान्तिः ॥ शान्तिः ॥ शान्तिः ॥

इति श्री अथर्वण वेदीयरुद्र तृतीय सूक्तम् ॥

गुर्जर देशान्त र्गतराजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य स्वामी

शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्याख्या समाप्त ॥३॥

विक्रम सं. १९९० पोषमास कृष्ण पक्ष द्वादशी गुरुवार ॥

॥ अथ यजुर्वेदीय रुद्र ॥

यास्कं निरुक्तकर्तारं शंकराचार्य्यं शिवात्मकं ॥ सर्व वेद भाष्यकारं सायणं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥

रुद्र ब्रह्मा आदिक आचार्योंको मैं प्रणाम करता हूँ । यजुर्वेदकी छः संहिता मेरे समीप हैं, उनके नाम–तैत्तरीय सहिता १ काठक संहिता २ मैत्रायणी संहिता ३ कपिष्ठल कठसंहिता ४ काण्व संहिता ५ माध्यन्दिनी संहिता ६ पहिलीं चार कृष्ण यजुर्वेदीय हैं । इन छः संहिताओंके मध्यमें से रुद्रमंत्रोंको शृङ्खलाबद्ध कर उन मंत्रोंपर, गौरी व्याख्या करता हूँ ॥

ॐ द्रष्ट्रे नम उपद्रष्ट्रे नमोऽनु द्रष्ट्रे नमः ख्यात्रे नम उपख्यात्रे नमोऽनुख्यात्रे नमश्शृण्वते नम उपशृण्वते नमः

सते नमोऽसते नमो जाताय नमो जनिष्यमाणाय नमो भूताय नम भविष्यते नमश्चक्षुषे नमश्श्रोत्राय नमो मनसे नमोवाचे नमो ब्रह्मणे नमश्शान्ताय नमस्तपसे नमः ॥

ॐ शान्तिः ॥ शान्तिः ॥ शान्तिः ॥

काठक सं० २६ । १२ ॥

॥ अथ यजुर्वेदीय प्रथम सूक्तम् ॥

ॐ नम॑स्ते रुद्र म॒न्यव॑ उ॒तोत॒ इष॑वे॒ नमः॑ ॥ नम॑स्ते अस्तु॒ धन्व॑ने बा॒हुभ्या॑मु॒तते॒ नमः॑ ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(**रुद्र**) हे रुद्र (**ते**) आपके (**मन्यवे**) कोपात्मक यज्ञस्वरूपको (**नमः**) प्रणाम है (**उतो**) और (**ते**) आपके (**इषवे**) बाणको (**नमः**) प्रणाम है (**ते**) आपके (**धन्वने**) धनुषको (**नमः**) प्रणाम (**अस्तु**) हो (**उत**) और (**ते**) आपके (**बाहुभ्यां**) दोनों हातोंको (**नमः**) प्रणाम हो ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके यज्ञ करने वाले स्वरूपको प्रणाम है और आपके बाणको प्रणाम है, और आपके धनुषको प्रणाम है तथा आपके दोनों हातोंको प्रणाम है। [**मन्युना** ॥ मन्यु नाम तेजका है। तेजकी संहार शक्ति ही क्रोध है ॥ अथर्वण ७। ७४ । ४] **मन्यवे** ॥ मन्यु नाम यज्ञ और जोडनेका है ॥ ऋग्०

६ । १६ । ४३ ॥ माध्यन्दिनी सं० १३ । ३६] मन्यवः ॥ मन्युही स्तोत्र स्तुति हैं ॥ ऋग्० ४ । ३१ । ६ ॥ मन्युं ॥ स्तोत्र और कर्मका नाम मन्यु हैं ॥ ऋग्० ७ । ६१ । १] मन्युः ॥ ज्ञानकी मनन करने वाली उत्तम बुद्धिका नाम मन्यु है ॥ ऋग्० १ । ६४ । ८] मन्यु ॥ मंत्रका नाम मन्यु है ॥ ऋग्० ५ । ७ । १०] मन्युः ॥ सबके शुभाशुभ कर्मको मनन रूपसे जानने वाला ही मन्यु हैं ॥ अथर्वण ११ । १० । १] स्वयम्भूर्भामः ॥ मैं एक हूं वहुत होऊँ यही जगत्का मूल कारण संकल्पयुक्त चेतनही स्वयम्भू है और संकल्पकी जड क्रियाशक्ति मायाकी अभिव्यक्तिही अव्याकृतरूप क्रोध है ॥ अथर्वण ४ । ३२ । ४] घोरा ऋषयः ॥ घोर रूप ही प्राण हैं ॥ अथर्वण० १ । ३५ । ४] घोरा वै मरुतः ॥ घोर ही मरुत हैं ॥ शांखायन ब्रा० ५ । २] प्राणा वा ऋषयः ॥ कारण, सूक्ष्म स्थूलरूपसे प्राणशक्ति ही जगत् के रूपमें गमन करने वाली है ॥ ऐ० ब्रा० ८ । ३] प्राणा वै मरुतः ॥ प्राण शक्ति ही मरुत हैं ॥ ऐ० ब्रा० १२ । ६] प्राणा वा आपः ॥ प्राणही व्यापक माया कारण है ॥ तै० ब्रा० ३ । २ । ५ । १] प्राणा वै ब्रह्म ॥ प्राणशक्ति ही व्यापक कारण है ॥ तै० ब्रा० ३ । २ । ९ । ८] अन्नं वै मरुतः ॥ अव्यक्तही मरुत हैं ॥ तै० ब्रा० १ । ७ । ३ । ६] अन्नं वा आपः ॥ अव्याकृत ही व्यापक कारण है ॥ तै० सं० ५ । ६ । १ । २] आत्मा पशुः ॥ माया ही पशु है ॥ कपिष्ठल सं० ४१ । ६] पशवो वै बृहतीः ॥ मायाही पशु हैं ॥ मै० सं० २ । ३ । ७] पशवो वै मरुतः ॥ प्राणशक्तिरूपमायाही मरुत है ॥ मै० सं० ४ । ६ । ८] पशवो वै सलिलं ॥ पशु ही प्राणशक्ति है ॥ काठक सं० ३२ । ६] ब्रह्म योनिः ॥ मायाही कारण है ॥ मै० सं० २ । १३ । २]

पशवो वै शक्तिः ॥ पशु ही मायाशक्ति है ॥ वज्रो वै पशवः ॥ वज्रही पशु हैं ॥ मै० सं० ४ । ४ । १] वज्रो वै रथः ॥ रुद्रकी देवी मायाही वज्ररूप रथ है ॥ काठक सं० ३६ । १२] चक्रं वै वज्रं ॥ मायाही सृष्टि प्रलयरूप चक्र है ॥ मै० सं० ३ । ४ ।] वज्रो वै षोडशः ॥ ओजो वै षोडशः ॥ वज्रही सोला कला हैं, सोला कलाही वलशक्ति है ॥ कपिष्ठल० सं० ३१ । १७] वज्रो वै धनुः ॥ वल ही धनुष है ॥ मै० सं० ४ । ४ । ३] वज्रो वै शरः ॥ प्राणशक्ति ही बाण है ॥ कपिष्ठल० सं० ३६ । १] वज्रो वा आपः ॥ बलरूप मायाशक्ति व्यापक कारण है ॥ शतपथ ब्रा० १ । ५ । ४ । २०] इदं क्षत्रं सलिलं वातमुग्रं ॥ यहव्यापक बल प्राणशक्ति रूप सबका कारण है ॥ काठक सं० २२ । १४] वज्रो वै यज्ञः ॥ प्राणशक्ति ही यज्ञ है ॥ तै० सं० १ । ६ । ११ । ५] आपो वै यज्ञः ॥ माया ही यज्ञ है ॥ तै० सं० १ । ७ । ५ । ३] शवः ॥ शवनाम बलका है ॥ मा० सं० ३३ । ८३] यज्ञो वै विष्णुः ॥ व्यापक प्राणशक्ति यज्ञ है ॥ तै० सं० २ । ५ । ७ । ३] प्राणो वै हरिः ॥ प्राणशक्ति ही हरि है ॥ कौषीतकि ब्रा० १७ । १] प्राणो वै वायुः ॥ प्राणशक्ति ही वायु है ॥ कौषी० ब्रा० ३० । ५] प्राणा वै महिषः ॥ प्राणही बलशक्तिरूप माया है ॥ शतपथ ब्रा० ५ । ७ । ४ । ५] उस बलशक्तिरूप देहके दो स्वरूप मृत्यु और अमृत है [मृत्युर्वा अग्निः ॥ अमृतं हिरण्यं ॥ अग्नि संहार शक्ति और अमृत रक्षण शक्ति है ॥ अमृत माता तथा अग्नि पिता है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३१ । १] प्राणो हविः ॥ सोमशक्ति ही अग्निका भोग्य है ॥ कपि० सं० ८ । ११] प्राणो वै प्रथमा ॥ प्राणशक्ति ही प्रथम है ॥ कपि० सं० ३५ । २]

स्त्री रूप सोम और पुरुष अग्नि है [मिथुनं वा अग्निश्च सोमश्च सोमो रेतोधा अग्निः प्रजनपिता ॥ युगल जोडी अग्नि सोम है, सोमरूप माता गर्भ धारण करती है और अग्नि पिता वीर्यका उत्पन्न कर्त्ता है ॥ कपि० सं० ७ । ८] सोमो वै देवानां रेतोधाः ॥ सोमही देवताओंकी उत्पत्तिरूप वीर्यधारण करता है ॥ काठक सं० ३२ । ४] एकही रुद्र अपनी माया देहकी कार्य क्रिया उपाधिसे घोर अघोर है ॥ उन दोनों देहोंकी तारतम्यतासे देव आदि प्राणि है [भूमा वै बर्हिः ॥ मैं एक हूँ वहुत होऊँ भूमा ही प्रजा है ॥ शतपथ ब्रा० १ । ४ । ४ । ४] प्रजा वै बर्हिः ॥ प्रजा ही वर्ही है ॥ काठक सं० २५ । ५] मन्युरिन्द्रो मन्यु रेवासदेवो मन्युर्होता वरुणो जातवेदाः ॥ मन्युर्विशईडते मानुषीर्याः पाहिनो मन्यो तपसा सजोषाः ॥ हे मन्यु देव तुम हमारी रक्षा करो सो आप कैसे हो–सृष्टि संकल्पके द्वारा प्रिती पूर्वक ब्रह्माको रचनेवाले हो । तुम ही इन्द्र रूप हो तुम अग्नि हो तुम वरुण हो तुम सर्वज्ञ मित्र हो तुम देव दैत्य मनुष्यादि प्रजास्वरूप हो, जे मनुप्रजापतिकी प्रजा हैं वे सब प्रजायें आपकी प्रार्थना करती है ॥ अथर्वण० ४ । ३२ । २] मन्यु ही महेश्वर नाम वाला है–मन्युकी माया देह ही धनुष बाण–मृत्यु कार्य–अमृत क्रिया है इन मृत्यु अमृतमय धनुषबाणकी उपाधिसे घोर अघोर नामको रुद्र धारण करता है । रुद्रने प्रथम ब्रह्माको प्रगट किया–फिर स्वयं ब्रह्मासे रुद्र प्रगट हुआ [शतशीर्षा रुद्रोऽसृज्यत ॥ ब्रह्माकी भ्रकुटीसे अनन्तशिर प्राण–नेत्रवाला रुद्र प्रगट हुआ–सो रुद्र अपने समान असंख्य रुद्रोंको रचता भया ॥ शतपथ ब्रा० ९ । १ । १ । ६] प्रजापतिः प्रजा असृजत ॥ सोऽग्निमेवाग्रेऽसृजत ॥ जिस ब्रह्माने प्रजा रची उसीने सबके

पहिले व्यापक रुद्रको प्रगट किया॥ अग्ने सहस्राक्ष शतमूर्धञ्छत तेजः शतं ते प्राणाः सहस्रंव्यानाः॥ हे व्यापक रुद्र आप अनन्त नेत्र अनन्त मस्तक अनन्त अग्नि वायु सूर्य हो अनन्त रुद्र प्राण नामसे द्यौवासी हो अनन्तरुद्र व्यान नामसे अन्तरिक्षवासी हो असंख्य रुद्र अपान नामसे भूमीवासी हो। गार्हपत्यके भेद अपान हैं, अन्वहार्य्यके भेद व्यान हैं, आहवनीयके भेद प्राण है॥ कपिष्ठल कठ सं० ५। ४–२] आदित्यो मूर्ध्नोऽसृज्यत्॥ ब्रह्मानो अपने मस्तकसे सूर्यरूप रुद्रको उत्पन्नकिया॥ ताण्डय०। ६।५।१] यास्ते शिवास्तन्वो जातवेदो या अन्तरिक्षे दिवियाः पृथिव्यां॥ हे सबके अन्तर्यामी रुद्र आपके जे असंख्य मंगलस्वरूप रुद्र स्वर्गमें अन्तरिक्षमें भूमीमें हैं। वे उपासकोंका कल्याण करते हैं और पापीयोंको दण्ड देनेके लिये जे शान्त हैं वेही अशान्त बन जाते हैं॥ काठक सं० ७। १३] त्रेधागुदं करोति॥ रुद्र अपनी प्राणशक्तिके तीन भाग करता है॥ यही प्राण व्यान अपान है॥ प्राणा वै गुदः॥ प्राणशक्तिका नाम गुद है॥ मै० सं० ३।१०।३–४] अग्नीषोमौ देवते प्राणपानौ॥ इन्द्रश्चविष्णुश्च॥ अग्नि सोम नामवाले दो देवता प्राण घोर अपान अघोर इन्द्र घोर और विष्णु अघोर है [प्राणोदानौ वै द्यावा पृथिवी॥ स्वर्ग भूमी प्राण उदान है॥ शत० ब्रा० १४।२।२।३६] सर्वो वै पुरुषः॥ सर्व देहधारी ही रुद्र है॥ ऋतं वै सत्यं॥ रुद्र ही कार्यक्रिया देहधारी घोर अघोर है॥ प्राणापानौ वा इन्द्राग्नी। प्राण इन्द्ररूप घोर और अपानरूप अघोर अग्नि है॥ यही अग्नि सोम विष्णु नाम वाला है॥ मै० सं० १।१०।८–११–१०] जिस समय ब्रह्मासे रुद्र प्रगट हुए उस रुद्रको देखकर कल्पके

आदिमें देवता भयभीत हुए—उनकी भय दूर करनेके लिये शतरुद्रिय सूक्तको देवोंके प्रति ब्रह्माने दिया ॥ शतपथ ब्रा० ९ । १ । १ । १] प्रजापति वैं रुद्रंयज्ञान्निरभजत् ॥ दक्ष प्रजापतिने यज्ञभागसे रुद्रको अलग करदिया ॥ रुद्रने दक्षके पक्षपातीयोंको मारा ॥ गोपथ ब्रा० उत्तर भाग १ । २] देवा वै यज्ञात् ॥ रुद्रमन्त रायन् । दक्षके पक्षवाले देवोंने यज्ञ भागसे रुद्रको पृथक् किया ॥ तै० सं० ६ । ५ । ६ । २] रुद्र ँ वै देवा यज्ञादन्तराय ँ स्तानायतयाभि पर्य्या वर्तत ॥ तस्माद्धा अबिभयुस्ते देवाः प्रजापति मेवोपाधावन्तस प्रजापति रेतंशतरुद्रियमपश्यत्तेनैनमशमयत्तद्यपत्र ँ वेदवेदाहवा एनं प्रजापतिर्नैनमेष देवोहिनस्ति ॥ जबदक्षने यज्ञ भागसे रुद्रको पृथक् किया । तब देवताभी रुद्रको छोडकर दक्ष यज्ञमें आये, उन आत्मश्लाघी देवताओंको रुद्रने अपनी गणसेनाके सहित आकर सर्वत्रसे घेर लिया उस रुद्रकी भयसे भयभीत हुए वे सब देवता ब्रह्मा के समीप गये देवताओंकी भयको दूर करनेके लिये ब्रह्माने अपने हृदयमें शतरुद्रिय सूक्तको देखा उस सूक्तके द्वारा इस कोपायमान रुद्रको शान्त किया, फिर ब्रह्माने कहा देवताओ जो कोईभी इस रुद्रको सबका पूज्यस्वरूप जानता है सोही जाननेवाला है, यह रुद्र, इस शतरुद्रिय पाठी उपासकके सम्बन्धिको नही मारता है ॥ मै० सं० ३ । ३ । ४] शतरुद्रियं जुहोति तेनैवैनं शमयति ॥ शतरुद्रियसे हवन करता है, उस हवनके द्वारा ही इस रुद्रको प्रसन्न करता है ॥ काठक सं० २१ । ६] अर्कपर्णेन जुहोत्यर्को वा अग्निः ॥ तेजस्वी व्यापकके द्वारा हवन करता है अर्क ही अग्नि है ॥ काठक सं० २१ । ६] त्रयो वा इमेलोकाएभ्यो वा एतं लोकेभ्यो रुद्र ँ शमयति ॥

रुद्र ँ शमयत्यङ्गिरसो वै स्वर्यन्तः ॥ प्रसिद्ध ये तीन लोक हैं इनतीनों लोकोंकी प्राप्तिके लिये इस सर्व व्यापी रुद्रको प्रसन्न करे। रुद्रको प्रसन्न करके ही अङ्गिरा स्वर्गमें गये ॥ मै० सं० ३। ३। ४] स्वाहा रुद्राय रुद्र हूतये स्वाहा ॥ आहूति स्वरूप सोम व्यापी रुद्रके प्रति (स्वाहा) आहुति देओ आहुति भोक्ता अग्नि स्वरूप व्यापी रुद्रके लिये आहुति देओ ॥ मा० सं० ३८। १६] शतरुद्रियाणामग्निष्वात्तानां ॥ शतरुद्रिय मंत्रोंसे भोजन करनेके पहिले अग्निके द्वारा परिपक्व अन्नको हवन करे ॥ मा० सं० २१। ३] घृतं वै देवानां मधु ॥ घृत ही देवताओंका तृप्त करनेवाला मधु है कपिष्ठलकठ सं० ४१। १] यज्ञस्यमायया सर्वानव यजामहे ॥ मायारूप अज्ञानसे सबको (अव) बचाने के लिये (यज्ञस्य) रुद्रका यजन करते हैं ॥ काठक सं० ३८। १४] यज्ञो वा ब्रह्म ॥ यज्ञस्वरूपही रुद्र है ॥ मै० सं० १। ५। ९] पशवो वै घृतं ॥ पशुओंसे उत्पन्न हुआ घृत ही पशु रूप है ॥ मै० सं० ३। ७। ९] यवतिल घृत आदि द्रव्यसे आहूति देकर रुद्रको संतृष्ट करे ॥ १ ॥

यातइषुः शिवतमा शिवं बभूवते धनुः ॥ शिवाशरव्या यातव तयानो रुद्र मृडय ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (ते) आपका (या) जो (इषुः) बाण (शिवतमा) शान्त (बभूव) हुआ (ते) आपका (धनुः) धनुष (शिवं) सुखरूप हुआ (तव) आपकी (या) जो (शरव्या) संहार करनेवाली शक्ति (शिवा) शान्त है (तया) उसशक्तिसे (नः) हमको (मृडय) सुखी करो ॥

व्याख्या:—हे रुद्र आपका जो वाण हवि नमस्कारके द्वारा अतिशांत हुआ, आपका धनुषभी सुखरूप हुआ, तथा आपकी त्रिलोक व्यापी शक्ति जो संहार करनेवाली शान्त है उस शक्तिके द्वारा हमको सुखी करो ॥ २ ॥

यातें रुद्र शिवातनू रघोराऽपापकाशिनी ॥ तयानस्त नुवा शन्त मयागिरि शन्ताभिचाकशीहि ॥ ३ ॥

अन्वयार्थ:—(रुद्र) हे रुद्र (ते) आपका (या) जो (तनूः) शरीर (शिवा) सुखरूप (अघोरा) सौम्य (अपापकाशिनी) पापीयोंके नाश करने वालीं मायासे रहित ज्ञानके प्रकाश करने वाली है (तया) उस (शन्तमया) अति सुखमय (तनुवा) आत्मासे (नः) हमको (गिरिशन्त) हे कैलासमें शयन करनेवाले देव (अभिचाकशीहि) सर्वत्रसे देखो ॥

व्याख्या:—हे रुद्र आपका जो देह सुख रूप सौम्य पापमय मायासे रहित ज्ञानके प्रकाश करनेवाली शक्ति है, उस अतिसुख स्वरूप आत्मासे हमको हेकैलासवासी देव, सर्वत्रसे देखो [द्वौ वै पाशो घोरोऽन्यः शिवोऽन्ययोयज्ञियः सघोरो योऽयज्ञियः सशिवः ॥ प्रसिद्ध दोपाश हैं एक घोर दूसरा अघोर, जो संहाररूप प्रलयके करनेबाला है सोही घोर है और जो असंहारमय यज्ञका करनेवाला है, सोही शिव है ॥ बन्धन अविद्या और अबन्धन विद्या है ॥ मै० सं० ३ । ९ । ६] सईश्वरोऽशान्तः ॥ सो घोर रुद्र अशान्त है ॥ मै० सं० ३ । ९ । ४] द्वौ वै वज्रो घोरोऽन्यः शिवोऽन्योयः शुष्कः स घोरो य आर्द्रः सशिवः ॥ दो वज्रही हैं एक घोर और दूसरा अघोर

जो भूमीको तीव्र तापसे सुखाता है सोही घोर है और जो जल वर्षासे भूमीको तृप्त करता है सो ही शिव है ॥ मै० सं० ३ । ९ । ६ ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४१ । ८ ॥ काठक सं० २६ । ७] वज्रो वै यज्ञः ॥ वज्रही यज्ञ है ॥ तैत्तरीय सं० १ । ६ । ७ । ४] आपो वै यज्ञः ॥ व्यापक सूर्य ही यज्ञ है ॥ तै० सं० १ । ७ । ५ । ३] यज्ञो वै विष्णुः ॥ यज्ञ ही सूर्य है ॥ यज्ञो वै प्रजापतिः ॥ यज्ञ ही सूर्य है ॥ तै० २ । ५ । ७ । ३] इयं वै प्रजापतिः ॥ यह भूमी ही प्रजापति है ॥ तै० सं० ५ । १ । २ । ५] इयं वै विराट् ॥ यही प्रसिद्ध भूमी विविध रूपसे विराजमान है ॥ तै० सं० ६ । ३ । १ । ४ ॥ अथर्वण० १४ । २ । ७४] प्रजापति वैं गार्हपत्यः ॥ गार्हपत्य अग्निही प्रजापति है ॥ शांखायन ब्रा० २७ । ४] प्रजापतिः सर्वा देवताः ॥ गार्हपत्य ही सब देवतारूप है ॥ तै० सं० ७ । ५ । ६ । ३] आपो वै प्रजापतिः ॥ व्यापक किरणवाला सूर्य ही प्रजापति है ॥ मै० सं० ३ । ९ । ६] आपो वै सर्वा देवताः ॥ सूर्य मण्डलही सब देवता स्वरूप है ॥ तै० सं० ५ । ७ । ३] असौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः ॥ यही सूर्य इन्द्र है यही प्रजापति है ॥ तै० सं० ५ । ७ । १ । ३] अयंलोको विराट् सइममग्निंज्योतिर्धारयत् ॥ असौ वै लोकः स्वराट् सोऽमुमादित्यं ज्योतिर्धारयत् ॥ यह भूमी-लोक विराट् है सोलोक इस अग्नि ज्योतिको धारण करता है ॥ वह द्युलोक ही स्वराट् है सो द्यौ उस सूर्य ज्योतिको धारण करता है ॥ शतपथ ब्रा० ७ । ४ । २ । २३] अग्निःसर्वा देवता विष्णुर्यज्ञोदेवताश्चैवयज्ञंचारभते अग्नि अवमो देवतानां विष्णुः परमः ॥ अग्निके द्वारा सब देवताओंकी तृप्ति होती है

इससे ही अग्नि सर्व देवरूप है। और सूर्यके उदय सेही यज्ञका आरम्भ होता है, इससे ही सूर्य यज्ञका प्रकाशक रूप देवता है। गार्हपत्य अग्नि हवनके द्रव्यको भक्षण करके देवताओंका पालन करता है, और सूर्य उत्तरायणरूप दिनसे देवताओं पालन करता है ॥ तैं० सं० ५। ५। १। ४] अग्निर्वसुः ॥ विष्णुर्वसुः ॥ गार्हपत्य अग्नि वसु है, आहवनीय अग्नि वसु है ॥ तैं० सं० ५। ७। ३। २] रुद्रो वा एष यदग्निस्तस्यैते तनु वौ घोराऽन्या शिवाऽन्या ॥ यच्छतरुद्रीयं जुहोति यै वास्य घोरातनूस्तां तेन शमयति ॥ यद्वसोर्धारां जुहोति यैवास्य शिवातनूस्तां तेन प्रीणाति ॥ जो अग्नि रूप रुद्र है यही रुद्र एक है, उस रुद्रके ये दो शरीर हैं, एक गार्हपत्यरूप घोर है और दूसरा आहवनीय रूप शिव है। इस रुद्रका प्रसिद्ध जो घोर देह है उस घोरको प्रसन्न करने के लिये जिस शतरुद्रियसे यजमान हवन करता है उस शतरुद्रिय के द्वारा शान्त होता है। इस रुद्रका जो अघोर देह है उस देहको उस वसोर्धारासे तृप्त करता है। अग्ना विष्णू ॥ गार्हपत्य भूलोकअग्नि है और आहवनीय द्युलोक अग्नि सूर्य है। गार्हपत्य अग्नि घोर और आहवनीय अग्नि अघोर है॥ तैं० सं० ५। ७। ३। ३–२] इन्द्रा विष्णू ॥ अग्नि सूर्य ॥ मै० सं० ४। १२। ४] अग्ना विष्णू ॥ अग्नि सूर्य ॥ मै० सं० ४। १०। १] एकत्रेधा विहितो जातवेदः ॥ हे सबके शुभाशुभके जाननेवाले रुद्र तुम एक हो और गार्हपत्य दक्षिणाग्नि आहवनीय स्वरूपसे तीन प्रकारसे स्थित हो ॥ अथर्वण० १८। ४। ११] यास्ते शिवा-स्तन्वो जातवेदो या अन्तरिक्षेदिवि याः पृथिव्यां ॥ ताभिः संभूयस गणः स जोषाहिरण्ययोनिर्वह हव्य

मग्ने ॥ हे जातवेद आपके सुखकारी जो देह द्यौमें जो अन्तरिक्षमें जो भूमीमें हैं उन सुखरूप शरीरोंसे प्रगट हुए हो, हे अग्ने तुम उमा आदि सपरिवारके सहित हविको सेवन करो, आप सूर्यमण्डलके स्वरूपको धारण करते हो ॥ अग्नेः प्रिया तनूः पशुषुपवमाना ॥ अग्निका सौम्य पवमान (पशुषु) भूमीके गार्हपत्य रूपमें है ॥ अग्नेः प्रियातनूरप्सुपावकाः ॥ व्यापक देवका शान्त देह (अप्सु) अन्तरिक्षके मध्यमें पावक नाम है ॥ अग्ने प्रियातनूः सूर्येशुक्रा ॥ रुद्रका सुख-स्वरूप निर्मल नामवाला सूर्यमण्डलमें है कपिष्ठल कठ सं० । ६ । २ । यास्ते शिवास्तन्वः कामभद्रा याभिः सत्यं भवति ॥ हे रुद्र आपके जे कल्याण शरीर कामनाओंको पूर्ण करनेवाले हैं, जिन शरीरोंके धारण करनेसेही प्रत्यक्ष होता है ॥ अथर्वण० ९ । २ । २५] इयमोदनो पचनोऽन्तरिक्षं गार्हपत्यो द्यौराहवनीयः ॥ यहभूमी अग्नि भोजन रूप हवि परिपक्क करनेवाला, अन्तरिक्षमें गार्हपत्य, द्यौमें आहवनीय है ॥ कपिष्ठल सं० ७ । २] प्राणो वै पवमानः ॥ सर्व देह व्यापी प्राण ही पवमान है ॥ कपि० सं० ७ । ३] आपो वै पावकाः ॥ अद्भयः प्रजाः प्रजायन्ते ॥ सर्व शरीर व्यापी वीर्य पावक है, वीर्यसे ही प्रजा उत्पन्न होती हैं ॥ कपि० सं० ७ । ३] असौ वा आदित्यः शुक्रः ॥ यह सूर्य ही शुक्र है ॥ कपि० ४६ । २] अनाभो शर्व धूर्त नमस्ते अस्तु रुद्र मृड ॥ एता वै रुद्रस्य तन्वः क्रूराएतानि नामानि ॥ अकारणही भू अग्निका कोप होना अनाभ नाम है। वायुसे विद्युत् द्वारा संहार होना ही शर्व नाम है॥ सूर्यकी प्रचण्ड तापसे प्राणियोंका संहार होना ही धूर्त नाम है। हे रुद्र आपको प्रणाम हो, हमको सुखीकर, ये शरीर ही रुद्रके भयंकर नाम हैं इन नामोंको शान्त करे ॥

मैत्रायणी सं० १।८।५] नपाप्मना व्यावर्तते घातुकोऽस्यरुद्रः पशून् भवति॥ विपाप्मना वर्ततेऽघातुको रुद्रः पशून् भवति॥ जो मनुष्य विविध पाप करनेसे हटता नहीं है उसकी प्रजाको रुद्र नाश करनेवाला होता है। और जो मनुष्य नाना पापसे निवृत्त होता है उसकी प्रजाको रुद्र नाश करनेवाला नहीं है॥ कपिष्ठल कठ सं० ७।२] ईश्वरो हिंसितः॥ रुद्र पापीयोंको मारनेवाला है॥ तै० सं० ५।२।८।७] सईश्वरोऽशान्तः॥ वह रुद्र पापीयोंके लिये क्रूर है॥ मै० सं० ३।९।४॥ कपिष्ठल कठ सं० ४०।४] रुद्रईश्वरः॥ रुद्र ही ईश्वर है॥ कपि० सं० ३५।५] अघातुकस्तत्र रुद्रः॥ जहाँ उपासक है तहाँ रुद्र रक्षा करनेवाला है॥ कपि० सं० ४२।६] शान्तोऽघातुकः पशुपतिः॥ हिंसारहित प्राणियोंका पालक शान्त रुद्र है॥ काठक सं० ३२।५] अग्नीषोमौ॥ घोर अघोर रूप अग्निसूर्य है॥ कपिष्ठल० सं० ३७।८] इन्द्राग्नी पुष्टि वर्धना॥ सूर्य अग्निरूप अघोर घोर ऐश्वर्य्यकी वृद्धि करने वाले हैं॥ काठक सं० ३८।१०] अग्नि रक्षा रूपसे अघोर और नाश रूपसे घोर है। सूर्य रक्षक होनेसे अघोर और संहार करनेसे घोर है। वायु रक्षक रूपसे अघोर और नाश करनेसे घोर है॥ सूर्य बाण। वायु बाणका भाला। अग्नि बाणका तीक्ष्ण मुख है॥ यही वज्र, धनुष है [अग्नये सूर्याय प्रजापतये ॥ अग्नि सूर्य वायुके लिये प्रथम आहूति दीजाती है॥ कपिष्ठल० सं० ४।५] अयं वै वायु विश्वकर्मा॥ यह वायुही विश्वकर्मा है॥ शतपथ ब्रा० ८।१।१।७] शतरुद्रियस्य रूपं अग्ना विष्णू॥ शत रुद्रियका स्वरूप घोर अघोर है॥ तै० ब्रा० ३।११।९।९] स एषगिरिश्चक्षुः श्रोत्रं मनोवाक् प्राणस्तं ब्रह्म-

गिरिरित्याचक्षते ॥ चक्षु कान मन वाणी प्राण वे पाँच समुहका नाम पर्वत है इस पर्वतमें सो यह रुद्र वासकरता है। उस वास करने वालेको ब्रह्मगिरि ऐसा कहते हैं। पंच मुख स्वरूप पर्वत व्यापी ही रुद्र है ॥ ऐतरेयारण्यक २।१।८] आकाश, वायु, अग्नि, जल, भूमी जे पाँच मुखरूप पर्वत है। तथा प्रत्येक त्रिलोक रूप एक मुख है। महः जनः तपः सत्यये चार मुख हैं। इन पाँच मुखरूप देहके मध्यमें जो चेतन है सो ही पंचमुखी रुद्र है। जो महा कैलास व्यापी रुद्र है सोही भूलोक कैलासवासी है, यही रुद्र समस्त प्राणियोंके हृदयरूप पर्वत गुहा वासी है। जो मनुष्य रुद्रका ध्यान करता है, उसको रुद्र सब सुख देता है [गिरि वैं रुद्रस्ययोनिः ॥ कार्य, क्रिया, करणात्मक समष्टि व्यष्टि पर्वत ही चेतन रुद्रका वास (योनिः) स्थान है। निर्विशेषका सविशेष स्वरूपमें स्फुरित होना ही वास करना है ॥ काठक सं० ३६।१४] रुद्रकी निर्विशेष सत्ताकी अवस्थान्तर ही प्राणशक्ति, माया आदि नामवाली है, इस मायारूप देह, रथके दो हात, दो चक्र हैं उनके नाम घोर अघोर १ हरिहर २ मृत्यु अमृत ३ स्वधा प्रयति ४ दिति अदिति ५ विराट् सूत्रात्मा ६ भूमी द्यौ, इन्द्र विष्णु ८ अग्नि सोम ८ सोम रुद्र १० इन्द्र पूषा ११ भग पूषा १२ वरुण मित्र १३ धाता विधाता १४ अश्विनी कुमार १५ सूर्य चन्द्रमा १६ रातदिन १७ भोग्य भोक्ता १८ दुःख सुख १९ प्राण अपान २० दक्ष क्रतु २१ अज्ञान ज्ञान २२ प्रलय सृष्टि २३ शर्व भव २४ बाण धनुष २५ क्षर अक्षर २६ शुक्र गुरु २७ मृग व्याध आर्द्रा नक्षत्र २८ स्त्री पुरुष २९ जीव ब्रह्मा ३० ब्रह्मा महेश्वर ३१ [वज्रो वै रथः ॥ प्राणशक्ति ही रथ है। इस मायारूप रथका संचालक महेश्वर है ॥ काठक सं०

३६ । १२] तमं हरतीति हरिः ॥ अन्धकारको उदय रूपसे हरण करे सो ही सूर्यमण्डल हरि है । सुषुप्ति तमको नाशकरे और इन्द्रियोंके रूपसे जाग्रतमें प्रगट होवे सोही प्राणरूप हरि है। । प्रलयकी निर्विशेष अवस्थासे, सृष्टि सविशेष अवस्थामें आवे सो ही प्राणशक्ति हरि है । यही प्राणशक्ति प्रलयरूपसे घोर और सृष्टि रूपसे अघोर है । मरण घोर जन्म अघोर है [हरः ॥ हरतीति हरः ॥ सर्व दुःखको हरण करता है यही हर है ॥ अथर्वण० २ । २९ । २] सईश्वरः शिवो भव ॥ सो रुद्र मंगल स्वरूप हो ॥ तै० सं० ५ । १ । ५ । ६ ।] घोर अघोर परस्पर ओत प्रोत हो रहे हैं। यह सब चराचर जगत् अग्नि सोमात्मक है। जैसे एक गुरुके दो शिष्य पग दावते हुए परस्पर कहने लगे, यह दक्षिण पग मेरा और वाम पग तेरा है ॥ अपने २ भागमें आये हुए चरणोंकी सेवा दोनों शिष्य करते थे, एक दिन एक शिष्य किसी ग्रामको गया, और एक जो शिष्य गुरुके पास था सो ही अपने भागवाले चरण दवाने लगा गुरुने करवट लिया तो दक्षिण पग वाम चरणके ऊपर रखदिया । वाम पगदावनेवाले शिष्यको बडा क्रोध हुआ, उसने गुरुके दाहिने पगको दण्डासे मार कर घायल कर दिया, फिर तो गाली देता हुआ बोला मेरे भागवाले पगपर दूसरेके भागवाला पग क्यों चढ़ गया । फिर गुरु हल्दी आदिका पट्टा बाँधकर शय्या पर लेट गये । तीसरे दिन गया हुआ शिष्य आया और गुरुको दण्डवत् प्रणाम करके बोला, हे गुरो तुमको क्या रोग हुआ है जिससे तुम दुःखी हो, रामदास गुरुने कहा हे गोमतीदास तेरे छोटे गुरु भाई सरयू दासने मेरे जमने पगको तोड दिया है, इस हेतुसे मैं दुःखी हूँ । गुरुके वचनको सुनते ही गोमती दासने गुरुके वाम चरणको भी दण्डासे

नष्ट कर दिया ॥ फिर बोला हे सरयूदास तूने मेरे भागके पगको घायल कर दिया तो, मैंने भी तेरे भागके पगको तोड़ दिया । अवतो हम दोनों वरावर हुए । तैसेही एक अद्वैत स्वरूप रुद्रके घोर अघोर दो रूप हैं । हरि सूर्य है और हर सूर्य मण्डलका चेतन पुरुष है । सूर्य मण्डलकी प्रतिमा शालिग्राम शिला है और चेतन ज्योति रूप भर्गकी प्रतीक लिंग उपासना है । यज्ञकुण्ड विष्णु और कुण्डस्थित अग्नि रुद्र है । विष्णु भूमी और रुद्र अग्नि है । अन्तरिक्ष घोररूप विष्णु और अघोर रूप वायु रुद्र है । अघोर रूप द्यौ विष्णु और घोररूप सूर्य रुद्र है । वेदके गुह्य रहस्यसे रहित आजकलके वहुत मनुष्य कपोल कल्पित ग्रन्थोंको आधार मानकर, रुद्रके घोर अघोर स्वरूप हरिहरकी निन्दा करते हुए पापी वन रहे हैं । और भोली भाली प्रजाओंको भी नास्तिक वना रहे हैं [शिवेनमा चक्षुषापश्यत आपः ॥ व्यापक सूर्यमण्डलस्थ पुरुष पालनकी दृष्टिसे मेरेको देखे ॥ अथर्वण० १ । ३३ । ४] उपासकके लिये प्रत्येक् देवता अपने घोर रूपको छिपा देता और अघोररूपसे दर्शन देता है । तथा शत्रुके सामने प्रत्येक् देवता अपने सौम्य रूपको छिपाकर असौम्य रूपसे युद्ध करता है । क्षमा दया प्रसन्नता अघोरका कार्य है, और क्रोध, कपट, छल, युद्ध करना आदि घोरके कार्य हैं । सब देवता घोर और अघोर स्वरूप हैं, इसलिये ही समस्त देव, दैत्य, राक्षस, पितर, मनुष्यादि प्राणि मात्र रुद्रके घोर अघोर रूपके अन्तरगत हैं ॥ ३ ॥

यामिषुं गिरिशन्त हस्ते बिभर्ष्यस्तवे ॥ शिवांगिरित्र तां कुरुमाहिं ँसीः पुरुषं जगत् ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(गिरिशन्त) हे गिरिशन्त (अस्तवे) शत्रुपर फेंकनेके लिये (यां) जिस (इषुं) वाणका (हस्ते) हातमें (बिभर्षि) धारण करते हो (गिरित्र) हे वेदके उद्धारक रुद्र तुम उपासकोंके लोए (तां) उस वाणका (शिवां) शान्त (कुरु) करो (पुरुषं) मनुष्य मात्रकी (जगत्) फिरनेवाले पशुमात्रकी (हिंसीः) हिंसा (मा) मतकरो ॥

व्याख्याः—कैलासमें, सूर्यमें वसनेवाले हेदेव शत्रु पर फेंकनेके लिये जिस वाणको हातमें धारण करते हो, हे वेद प्रतिपालक रुद्र तुम उपासकोंके लिये उस शक्तिको शान्त करो तथा हमारे मनुष्य मात्रकी और वनमें चरनेवाले गौ आदिकी हिंसा मतकरो ॥ गिरि शब्द, सूर्य, मेघ, ब्रह्मलोक, पंचप्राण, वेदका वाचक है [शिव अशिवः ॥ कल्याण अकल्याण रूप रुद्र है ॥ ऋग् ५ । १२ । ५] शिवः ॥ शिव नाम शान्तका है ॥ अथर्वण० २ । ६ । ३] घोरा ऋषयः ॥ प्राणही घोर हैं ॥ अथर्वण० २ । ३५ । ४] प्राणा वै सप्त ऋषयः ॥ प्राण ही सात ऋषि हैं ॥ मै० सं० १ । ५ । ११] अध्यात्मरूप दो कान, दो चक्षु, दो नाक, एक मुख । ये सात बहिर्मुखसे घोर हैं और अन्तर्मुखसे अघोर है [घोरा वै मरुतः ॥ प्राण ही घोर हैं ॥ शांखायन ब्रा० ५ । २] घोरा अङ्गिरसः ॥ प्राण ही घोर हैं ॥ शांखायन ब्रा० ३० । ६] अंगिराभिः ॥ अंगनात् व्यापनात् रुद्रा वा अंगिरसः ॥ अध्यात्म अधिदैव रूपसे व्यापक प्राण ही अङ्गिरा हैं ॥ अथर्वण० २ । १२ । ४] प्राणा वै रुद्राः ॥ प्राणही ग्यारा रुद्र हैं ॥ प्राणा वा आदित्याः ॥ प्राणही वारा आदित्य हैं ॥ जैमिनीय ब्रा० ४ । २ । १ । ६–९] अधिदैव पक्षमें सप्त ऋषिरूप साततारे, वारा मासके वारासूर्य, तथा

ग्यारा रुद्र हैं ये सबही क्रोध रूपसे असौम्य और प्रसन्नता रूपसे सौम्य हैं ॥ ४ ॥

शि॒वेन॑ वच॑सा त्वा॒गिरि॒ शाच्छा॑ वदामसि ॥ यथा॑नः सर्व॒मिज्जग॑ दय॒क्ष्म ँ सु॒मना॒ अस॑त् ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(गिरिश) हे पूज्य सूर्य मण्डलमें शयन करनेवाले रुद्र (अच्छा) स्वच्छ निर्मल (त्वा) आपको (शिवेन) प्रणव युक्त (वचसा) मंत्रसे (वदामसि) प्रार्थना करते हैं (यथा) जिस प्रकार (नः) हमारे (सर्वंइत्) सबही (जगत्) गमन करने वाले प्राणिमात्र (अयक्ष्मं) रोग रहित (सुमनाः) प्रसन्न मनवाले होवें उस प्रकारही सुख (असत्) होवे ॥

व्याख्याः—सबके पूज्य सूर्य मण्डलमें विराजमान हे रुद्र निर्मल आपको प्रणवके सहित ऋचासे प्रार्थना करते हैं, हमारे शिष्य पुत्र पशु आदि जिस प्रकार रोग रहित प्रसन्न मुखवाले होवें— उस प्रकारही आपकी दयासे सुख होवे [गिरिष्ठाः ॥ जिस मण्डल रूप पर्वतसे उदयके समय किरणरूप नदीयें प्रगट हो रही हैं, उस सब जगत्के आनन्द करानेवाले सूर्यमण्डलात्मक कैलासमें विराजमान रुद्र है ॥ ऋग्० १० । १८० । २] समुद्र आसां-सदनं ॥ अस्तके समय इन किरणरूप नदीयोंका स्थान सूर्यमण्डल रूप समुद्र है । समुद्र शब्देन आदित्य उच्यते ॥ समुद्र शब्दसे सूर्य कहा है ॥ सायण भाष्य अथर्वण० २ । २ । ३] सबग्रहोमें श्रेष्ठ सूर्य, सब इन्द्रियोंमें नेत्र, सब पर्वतोमे कैलास है ॥ अधिदैव सूर्य, अध्यात्म नेत्र, अधिभौतिक कैलास, इन तीनों स्थानोंमें रुद्रके विशेष स्वरूपसे प्राप्ति है ॥ और सामान्य रूपसे सर्वत्र व्यापक है ॥ ५ ॥

अध्यवोचदधिवक्ता प्रथमो दैव्यो भिषक् ॥ अहीँ
५ श्चसर्वाञ्जम्भयन्सर्वाश्चयातुधान्यः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(अधि) उत्तम वेदके रहस्यको हमको (अवोचत्) कहो (दैव्यः) देवताओंके हितकारी (प्रथमः) सबके पहिले (अधिवक्ता:) वेदके वक्ता (भिषक्) सर्व रोग नाशक वैद्यरुद्र है, वह देव (सर्वान्) सब (अहीन्) सर्प वृश्चिक व्याघ्र आदि हिंसक प्राणियोंको (जम्भयन्) मारता हुआ (च) और (सर्वाः) सब (यातुधान्यः) यातुधानोंको (च) भी नाश करे ॥

व्याख्या:—सबके पहिले वेदका वक्ता, अन्तर्मुख इन्द्रियरूप देवोंका हितकारी, सर्व रोगनाशक वैद्यराज रुद्र, हमारे लिये वेदोंके गुप्त रहस्य प्रणवका उपदेश करे, सोही रुद्र, सर्प, वीछु व्याघ्रआदि हिंसक सब प्राणियोंको नाश करता हुआ, और सब यातुधानोंको भी मारे [अधिब्रूहि देव सविता ॥ सविता देव हमको विशेष ज्ञान कहे ॥ ऋग्० १ । ३५ । ११] दैव्यं ॥ देवताओंका हितकारी ॥ मा० सं० १२ । १११] अश्व्येन पशुना यातुधानः ॥ घोडेकी जातिमात्र खच्चर गधाके मांसको खाने वाले राक्षस ही यातुधान है ॥ ऋग्० १० । ८७ । १६] त्वभिषक् भेषजस्यासि कर्ता अग्ने ॥ हे रुद्र तुम औषधिके कर्ता वैद्य हो ॥ अथर्वण० ५ । २९ । १] रुद्रका स्मरण मात्रसे दुःख दूर होता है ॥ ६ ॥

असौ यस्ताम्रो अरुण उतबभ्रुः सुमंगलः ॥ ये चेमा
५ रुद्रा अभितो दिक्षु ॥ श्रिताः सहस्रशोऽवैषा ५ हे
डईमहे ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (असौ) यह (ताम्रः) रक्तवर्ण (उत) और (बभ्रुः) श्वेत वर्ण (अरुणः) लाल (सुमंगलः) सुन्दर मंगल रूप (च) और (ये) जे (सहस्रशः) असंख्य (रुद्राः) किरण व्यापी रुद्र (इमां) इस भूमीकी (दिक्षु) पूर्व आदि दिशाओंमें (अभितः) सर्वत्रसे व्यापक हुए (श्रिताः) स्थित हैं (एषां) उन रुद्रोंके (हेडः) क्रोधको स्तुतिसे (अवईमहे) हम दूर करते हैं ॥

व्याख्याः—जो यह प्रत्यक्ष सूर्य उदयकालमें रक्तवर्ण वाला, मध्याह्नकालमें श्वेतवर्ण वाला, अस्त कालमें लाल वर्णवाला है सोही सूर्य उदय अस्तसे प्राणियोंके लिये सुन्दर सुख करता हैं और सूर्यकी रश्मियें जे असंख्य इस भूमीकी सब दिशाओंमें सर्वत्रसे व्यापक हुई हैं, असंख्य किरण भेदसे सूर्य मण्डलका एक रुद्रही अनन्त रुद्र स्वरूपोंसे अवस्थित है, उन किरण व्यापी रुद्रोंका हम मल मूत्र थूक आदिसे अपमान करते हैं, उससे क्रोधित हुए रुद्रोंके कोपको सायं प्रातःकालमें शतरुद्रियस्तोत्रके जपसे हम दूर करते हैं, अर्थात् शतरुद्रियके पठनसे वे रुद्र हम उपासकोंपर प्रसन्न होते हैं [उग्राय बभ्रवे ॥ श्वेत स्वरूपवाले रुद्रके लिये नमस्कार है ए अथर्वण० ७ । ११३ । १] सवरुणः सायमग्निर्भवति समित्रो भवति प्रातरुद्यन् ॥ ससविता भूत्वान्तरिक्षेण याति सइन्द्रो भूत्वातपति मध्यतो दिवं ॥ सो रुद्र स्वरूपी सूर्य, वरुण नामसे सायंकालमें अग्निरूप होता है सो मित्र नामसे प्रातःकालमें उदय होता है । सोही आकाशके द्वारा सविता नामको धारण करके चलता है, सोही इन्द्र होकर मध्याह्नकालसे द्यौमें तपता है ।| अथर्वण० १३ । ३ । १३] उसमण्डल व्यापी रुद्रके अनेक नामरूप विभूति हैं ॥ ७ ॥

असौ योऽवसर्पंति नीलग्रीवो विलोहितः ॥ उतैनं गोपा अदृशन्न दृशन्नु दहार्यः ॥ उतैनं विश्वा भूतानि सदृष्टो मृडयातिनः ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (असौ) यह (अवसर्पंति) उदयास्त रूपसे गमन करता है (नीलग्रीवः) जलको निगलने वाला (विलोहितः) विशेष लालवर्ण वाला है (एनं) इस इस सूर्यको (गोपाः) गौयें चरानेवाले गोपाल गण (अदृशन्) देखते हैं (उत) और (उदहार्यः) जलभरनेवालीं स्त्रीयेंभी देखती हैं (उत) और (इनं) इसको (विश्वा) समस्त (भूतानि) प्राणि मात्र (अदृशन्) देखते हैं (दृष्टः) दृष्टि गोचर होतेही (सः) वहसविता (नः) हमको (मृडयाति) सुखी करे ॥

व्याख्याः—जो यह सूर्य उदय अस्त रूपसे गमन करता है (नीलं) जलको (ग्रीवः) किरण समुहसे निगलने वाला विशेष लाल वर्णवाला है, इस सूर्यको गौ आदि पशु चरानेवाले गोवाल ओर जल भरनेवालीं स्त्रीयें भी देखती हैं, और सम्पूर्ण प्राणि मात्र देखते हैं। इसके ब्रह्मलोकवर्ती महा कैलासवासी स्वरूपको मुक्तपुरुष देखते हैं, तथा अपने हृदयवासीको ध्यानं करनेवाले ही जानते हैं, और भूलोकवर्ती कैलासवासी रुद्रको वैदिक उपासना करनेवाले उपासक दिव्य स्वरूपमें दर्शन करते हैं, प्रत्यक्ष उदय रूपसे दृष्टि गोचर होने वाला वह सविता हमको सुखी करे। आज भी वैदिक द्विजातिगण संध्या करके गायत्री मंत्रसे अर्घ्य प्रदान करते हैं और वैदिक वस्त्रसे ढके हुए अवैदिककर्म करनेवाले मनुष्य

कृत मंत्रोंको जप करते हुए, वैदिक गायत्रीमंत्र तथा सूर्यको तामस बताते हैं ॥ ८ ॥

नमो अस्तु नीलग्रीवाय सहस्राक्षाय मीढुषे ॥ अथो ये अस्य सत्वानोऽहं तेभ्योऽकरं नमः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(नील ग्रीवाय) सूर्य मण्डलमय घरमें वसने वाले (सहस्राक्षाय) असंख्य किरण रूप नेत्रवाले (मीढुषे) जल बर्षाने वाले रुद्रके लिये (नमः) प्रणाम (अस्तु) हो (अथो) और (अस्य) इसके (ये) जे (सत्त्वानः) भृङ्गी आदि प्रथथ गण हैं (तेभ्यः) उन प्रथम गणों के लिये (अहं) मैं (नमः) प्रणाम (अकर) करता हूँ ॥

व्याख्याः—सूर्य मण्डल देहात्मक घरको धारण करके उस गृहमें वसने वाले अपरिमित रश्मिरूप नेत्रवाले जलकी वर्षा करने वाले रुद्रके लिये मेरा प्रणाम हो और इस रुद्रके जे भृङ्गी आदि प्रथम गण हैं उन गणोंके प्रति मैं नमस्कार करता हूँ [गर्तः । नीळं । कृत्तिः । योनिः । छर्दिः । छाया । शर्म ॥ ये सब नाम घरके हैं ॥ निरुक्त ३ । १३ । ४] स्थूल सूर्य मण्डल कृत्ति है मण्डलरूप वस्त्रको धारण करनेवाला रुद्र ही कृत्तिवास है ॥ ९ ॥

प्रमुञ्च धन्वनस्त्व मुभयोरार्त्न्योर्ज्याम् ॥ याश्चते हस्त इषवः पराता भगवो वप ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(भगवः) हे समस्त ऐश्वर्य्य सम्पन्न देव (धन्वनः) धनुषकी (उभयोः) दोनो (आर्त्नियोः) कोटि-योंकी (ज्यां) प्रत्यंचाको (त्वं) तुम (प्रमुञ्च) त्याग करो

(च) और (याः) जे (ते) आपके (हस्ते) हातमें (इषवः) बाण हैं (ताः) उन बाणोंको हमारे स्थानसे (परावप) दुर करो ॥

व्याख्याः—हे सर्व प्रभुता सम्पन्न रुद्र तुम संवत्सरात्मक धनुषकी आदि तथा अन्तकी दोनों कोटीमय अनावृष्टि अतिवृष्टिकी भावनाको त्याग करो और जे आपके वशमें अनेक उपद्रव रूप बाण हैं, उनको भी हमारे देशसे भिन्न दूर स्थानमें त्याग करो ॥१०॥

अवतत्य धनुस्त्वꣳ सहस्राक्षशतेषुधे ॥ निशीर्य शल्यानां मुखा शिवो नः सुमना भव ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(सहस्राक्ष) हे अनन्त नेत्रवाले (शतइषुधे) सैकडों भाथों वाले (त्वं) तुम (धनुः) धनुषको (अवतत्य) प्रत्यंचा रहित कर (शल्यानां) बाणोंके (मुखाः) मुखोंको (निशीर्य) कुण्ठित करके (नः) हमारी प्रजा जिस प्रकार (सुमनाः) उत्तम मनवाली होवें उसी प्रकारसे (शिवः) सुख (भव) होवे ॥

व्याख्याः—हे अपरिमित नेत्रवाले देव, असंख्य बाण रखनेके भाथों वाले तुम धनुषको प्रत्यंचारहित और बाणोंके मुखोंको निकाल कर हमादी प्रजा जिस प्रकार उत्तम मनवालीं होवें उसी प्रकार तुम सुख करो ॥ ११ ॥

विज्यं धनुः कपर्दिनो विशल्यो बाणवाꣳ उत ॥ अनेशन्नस्येषव आभुरस्य निषङ्गधिः ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(कपर्दिनः) रुद्रका (धनुः) धनुष (विज्यं) प्रत्यंचा रहित होवे (उत) और (बाणवान्) भाथा (विशल्यः)

तीक्ष्ण वाणोंसे रहित होवे (अस्य) इस रुद्रके (याः) जे (इषवः) वाण हैं वे (अनेशन्) अदृश्य होवें (अस्य) इस रुद्रका (निषङ्गथिः) खड्ग रखनेका म्यान (आभुः) खाली होवे ॥

व्याख्याः—भूमी चरण आकाश उदर द्यौ मस्तक सूर्यकी किरण जटाकेश हैं विराट् स्वरूप रुद्रका वर्षा ऋतुमें प्रचंड वायु धनुष मर्य्यादा युक्त होवे और भेगरूप भाथा तीव्र विन्दु वर्षामय वाणोंसे रहित होवे इस रुद्रके जे रोगरूप वाण वर्षा के अन्तमें प्रगट होते हैं वे रोग शरद ऋतुके हवनसे नाश होवें तथा इस रुद्रके विद्युत् मय तलवार रखनेका मेघ कोश है सोमेघ कोश है सोमेघ शरद ऋतुमें जल रहित होवे ॥ १२ ॥

यातें हेतिर्मीढुष्टम हस्ते बभूव॑ते धनुः ॥ तयास्मान् विश्वतस्त्वमयक्ष्मया परिब्भुज ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(मीढुष्टम) हे वलके सिंचन करने वाले रुद्र (ते) आपके (हस्ते) हातमें (या) जो (हेतिः) वाण और (ते) आपके हातमें (धनुः) धनुष (बभूव) है (तया) उस (अयक्ष्मया) उपद्रव रहित वाण धनुषके द्वारा (त्वं) तुम (अस्मान्) हमको (विश्वतः) सर्वत्रसे (परिब्भुज) रक्षा करो ॥

व्याख्याः—हे सर्व सामर्थ्य सिंचक रुद्र आपके हातमें जो वाण और दूसरे हाथमें धनुष है उस शान्त वाण धनुषके द्वारा हमको चारो तर्फसे तुम परिपालन करो ॥ १३ ॥

नम॑स्ते अस्त्वा युधायाना॑ तताय धृष्णवे॑ ॥ उभाभ्यामुतते नमो॑ बाहुभ्यां तवधन्व॑ने ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र (ते) आपके (अनाततताय) धनुषपर न चढे हुए (धृष्णवे) शत्रुओंको मर्द्दन करनेवाले (आयुधाय) बाणको (नमः) प्रणाम (अस्तु) होवे (उत) और (ते) आपके (उभाभ्यां) घोर अघोर दोनों (बाहुभ्यां) हातोंको प्रणाम होवे (तव) आपके (धन्वने) धनुषको (नमः) मेरा प्रणाम होवे ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके धनुषपर न चढे हुए शत्रुओंको मर्द्न करनेवाले बाणको प्रणाम होवे और घोर कार्य अघोर क्रियामय जगत्‌के उपादान स्वरूप हैं आपके उन दोनों द्यावाभूमीमय हातोंको प्रणाम होवे तथा अन्तरिक्ष रूप धनुषको भी मेरा प्रणाम होवे। जिनकार्य क्रिया मृत्यु अमृत मय हातोंसे पंच भूतोंको धारण करता है सोही महेश्वर है, भूमी नाम कार्यकी समष्टि शक्ति है, द्यौ नाम क्रिया करणकी समष्टि शक्ति है । येदोनों शक्ति प्राणशक्ति देहकी वाह्य और अभ्यन्तर अवस्था हैं । यह प्राणशक्ति माया है इस माया देहका देही महेश्वर है इसलिये ही घोर अघोर महेश्वरके हात हैं। घोर अघोरमय द्यावा भूमीकी मध्य अवस्थाका नाम अन्तरिक्ष है [धन्वान्तरिक्षं ॥ धनुष नाम अन्तरिक्षका है ॥ निरुक्त ५ । ५ । ३] धन्वातिरोचते ॥ अन्तरिक्ष अपने प्रभावसे अति प्रकाशित है ॥ ऋग्० १० । १८७ । २] धन्वः । अन्तरिक्षं ॥ धनुष नाम आकाशका नाम है ॥ निरुक्त २ । १० । १] धनुर्धन्वतेर्गति कर्मणः ॥ वधकर्मणोवा ॥ धनुषके बलसे बाण जाता है, चलनेमें और वधकर्मके करने में धनुष है ॥ निरुक्त ९ । १७ । २] अन्तरिक्षसेही नाना दुःखरूप बाण प्राणियोंका संहार करते हैं और अन्तरिक्षसे ही प्रकाश वर्षा आदि आरोग्यप्रद सुख भी प्राणियोंको मिलते हैं ॥ १४ ॥

परि॑ते धन्व॑नो हे॒तिर॒ स्मान् वृ॑णक्तु वि॒श्वत॑ः ॥ अथो॒ य इ॑षु॒धिस्तवा॒ऽऽरे अ॒स्मन्निधे॑हि॒ तम् ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र (ते) आपके (धन्वनः) अन्तरिक्षके वासी ग्रह मण्डल संबधि दैवी कोप रूप (हेतिः) वाण (अस्मान्) हमको (विश्वतः) सर्वत्रसे (परिवृणक्तु) परित्याग करे (अथो) और (यः) जो (तव) आपका (इषुधिः) रोग रूप वाणोंका घर रूप भाथा है (तं) उसको (अस्मत्) हमारे देशसे (आरे) दूर (निधेहि) स्थापन करो ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके अन्तरिक्षमय धनुषमें स्थित ग्रहगण हैं उनका सम्बन्धि दैवकोप रूप वाण हमको सर्वत्रसे बचावे, और जो आपके रोग रूप वाणोंके रहनेका स्थानकु समयका मेघ है, उस मेघ मण्डलको भी हमारे देशसे दूर स्थापन करो ॥ १५ ॥ तैत्तरीय संहिता ४ । ५ । १ ॥ १...१५ ॥

नमो॒ हिर॑ण्य बाहवे सेना॒न्ये॑ दि॒शां च पत॑ये॒ नम॑ः ॥ १ ॥

सोनेके हातवाले सेनाके नायक दिशाओंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है [सविता हिरण्यहस्तः ॥ अमृतात्मक अघोर देह रूप हातवाला सविता है ॥ अथर्वण ७ । १२० । २] हिरण्य पाणि मूतये सवितारं ॥ रक्षाके लिये तेजोमय हातवाले सविताको हम बुलाते है ॥ ऋग्० १ । २२ । ५] अष्टौव्यख्यत्क कुभः पृथिव्या स्त्री धन्वयोजना सप्तसिन्धून् ॥ हिरण्याक्षः ॥ आठ दिशा प्रकाशक (त्रीधन्व) अन्तरिक्ष

उपलक्षित तीनों पृथिवी आदि लोकोंको युक्त करनेवाला सविता है ॥ हिरण्य पाणि सविता:...अपामीवां बधतेवेति सूर्यमभि कृष्णेनरजसाद्या मृणोति ॥ सविता सुवर्ण हात-वाला रोगादिको नाश करता है, सूर्यको सर्वत्रसे प्रकाशित करता है (कृष्णेन) अन्धकारको नाश करके (रजसा) तेजसे द्यौको व्याप्त करता है ॥ हिरण्य हस्तो असुरः ॥ अघोर हातवाला रुद्र है ।। ऋग्० १ । ३५ । ८–९–१०] तीनलोक रूप त्रिशूल, सात बहिनरूप गंगा, रोग नाशक, सूर्य प्रेरक प्राण अपानरूप घोर अघोर दोहातवाला, सवितारूप असुर रुद्र ही है। आठ दिशाओंमें आठ दिग्पाल इन्द्र आदि देव ही सेना है उन देवोंके सहित दिशाओंका स्वामी रुद्र है [हिरण्य बाहुः ॥ वज्री ॥ अपनी अज्ञारूप वज्रसे सबको वश करनेवाला, अमृतशक्ति देहधारी रुद्र है ॥ ऋग्० ७ । ३४ । ४] अमृतं वै हिरण्यं ॥ तेजो वै हिरण्यं । इयं वै रजताऽसौ हिरण्यं ॥ अमृतही हिरण्य है । प्रकाशही तेज है । (रजता) प्रकाश रहित यह भूमी हैं । यह सूर्य प्रकाशयुक्त है ॥ काठक सं० ११ । ४] अमृतशक्तिकी बाह्य अवस्था हो मृत्युशक्ति है, मृत्युरूप आधारका नाम घोर देह, हात, स्वरूप नामवाला है, स्थूल जड मात्र कार्यका मूल स्वरूप मृत्यु है, इस आधारके विना अभ्यन्तर अमृत आधेयका विकाश नहीं होता है, इसलिये ही घोर अघोर परस्पर मिले हुए असंख्य विभूतियोंके रूपमें ओतप्रोत हो रहे हैं । अघोर घोरके आश्रयसे अग्नि वायु सूर्य चन्द्रमा आदिके आकारमें प्रगट हो रहा है, तथा घोर अघोरके आश्रयसेही जल भूमी आदि पदार्थोंके रूपमें विकास पारहा है ॥ घोर अमृतमें लय होता और अमृत भी निर्विशेष रूपसे अनन्त शक्तिरूप रुद्रमें बिराजता है । यही प्रलय है, उस

प्रलयके बाद निर्विशेष अवस्था ही अघोर अवस्थामें आनेके लिये सन्मुख होती है उसकी घोर शक्ति भी अघोर शक्तिको सर्वत्रसे आच्छादित करती है, उस ढाँकन रूप भोजनको भक्षण करती हुई अभ्यन्तर अघोर सूत्रात्माके स्वरूपमें विकाश करने लग जाती है। उस अघोर आधेयको आच्छादन करती हुई घोर शक्ति भी विराट्के आकारमें आनेकेलिये विकाश करने लग जाती है। यही जगत्की उत्पत्ति है। स्थूल विराट्का, विभाग भूमी, अन्तरिक्ष, द्यौ है तथा सूत्रात्माका विभाग—अग्नि, वायु, सूर्य है। घोरकी स्थूल देह भूमी, सूक्ष्म अन्तरिक्ष, सूक्ष्मतर द्यौ है। अघोरकी स्थूल देह सूर्य, सूक्ष्मवायु, सूक्ष्मतर अग्नि है। अग्नि घोर, वायु घोर अघोर, सूर्य अघोर है। सूर्य घोर, सोम अघोर, विद्युत् घोर अघोर, ब्रह्मा अघोर है। माया घोर मायिक अघोर है। प्रलय घोर सृष्टि अघोर, घोर अघोर रहित रुद्र है। विकारी माया प्राणशक्ति घोर, प्रलयकी बीज सत्ता घोर अघोर उमा अघोर है। अग्नि वायु इन्द्र विष्णु यम वरुण आदिमें काम क्रोध, लोभ, छल, कपट युद्ध आदि कार्य देखनेमें सुननेमें आता है, सो सबही घोरका कार्य है, तथा दया शान्ति कपट छल रहित वरदान ज्ञान, प्रसन्नता आदि कार्य ही अघोरकी क्रिया है। सब प्राणि मात्र घोर अघोरके स्वरूप है। देह घोर प्राण अघोर इन्द्रियें घोर अघोर हैं। प्राण घोर व्यान घोर अघोर अपान अघोर है। जाग्रत् घोर, स्वप्न घोर अघोर, सुषुप्ति अघोर है। भूमी घोर, जल अघोर, अग्नि घोरा घोर है वायु घोर आकाश अघोर है। घोरका पूर्ण विकाश भूमी मध्यम जल, कनिष्ठ चन्द्रमा है। अघोरका पूर्ण विकाश सूर्य, मध्यम वायु, कनिष्ठ अग्नि है। निराकार रुद्रका विशेष स्वरूप सूर्यमें सविता नामसे है। अघोरके क्रियांशकों घोरके कार्यांशने ढाँक रखा

है वेही नदी पर्वत वृक्ष आदि पदार्थ हैं तथा कार्यांशको क्रियांशने जहाँ ढांक रखा है तहाँ मनुष्यादि प्राणी हैं, चेतन सामान्य रूपसे सर्वत्र व्यापक होने परभी क्रियाके विकाशकी तारतम्यतासेही देव दैत्य राक्षस गन्धर्व पितर मनुष्य पशुपक्षी कीट पतङ्ग आदिमें विशेष चेतन रूपसे प्रकाशित हो रहा है [हिरण्य रूपः सः ॥ हिरण्यवर्णः ॥ हिरण्ययात्परियोनेः ॥ प्रकाश स्वरूप तेजस्वी दिव्य अमृत देहधारी वह रुद्र सूर्य मण्डल योनिसे घिरा हुआ है, अर्थात् अमृतात्मक अघोर शक्तिके पूर्ण विकाशके मध्यमें अलिंगी विशेषलिंग रूपसे स्थित है ॥ ऋग्० २ । ३४ । १०] हिरण्य वर्णो अजरः सुवीरोजरा मृत्युः प्रजया संविशस्व ॥ जरा मृत्यु देहरूप विराट् और अमृत देह मय सूत्रात्मा, इन दोनों देहोमें पुत्रके स्वरूपसे प्रविष्ट हुआ, ब्रह्मा तथा प्रजापति नामसे विराजमान हुआ । सो कैसा है । जन्म मरण आदि जरारहित जगत्की उत्पत्ति स्थितिलय तिरोधान अनुग्रह आदि सुन्दर कर्म करनेवाला रुद्र है ॥ अथर्वण १९ । २४ । ८] मृत्यर्वा अग्निः ॥ अग्नि वैं विराट् ॥ घोर ही विराट् है ॥ कपिष्ठल कठ सं० २९ । ७] अग्निश्च सूर्यश्च समानेयोनौ ॥ अग्नि और सूर्य ये दोनों एक स्वरूप वाले हैं । एक प्राणशक्ति ही कार्य क्रियाके रूपसे विभक्त हुई सोही घोर अघोर है ॥ १ ॥

नमो॑ वृ॒क्षेभ्यो॒ हरि॑केशेभ्यः पशू॒नां पत॑ये॒ नम॒ ॥२॥

अनन्त त्रिलोकोंके सहित, असंख्य किरणवाले सूर्योंको नमस्कार है, प्रत्येक त्रिलोक व्यापी इन सूर्य पशुओंके स्वामीको प्रणाम है । आत्मा वै पशुः ॥ घोर अघोर व्यापक स्वरूपही पशु है ॥ शांखायन ब्रा० १२ । ७] द्यौः बृहती: ॥ प्राणशक्ति

ही व्यापक है ॥ ऋग्० १ । ५७ । ५] पशवो वै बृहतीः ॥ घोर अघोर घोर तर रूप ही महा प्राणशक्ति है ॥ मै० सं० ४ । ६ । ९] अग्निः पशुरासीत् ॥ वायुः पशुरासीत् ॥ सूर्यः पशुरासीत् ॥ अग्नि पशु है वायु पशु है सूर्य पशु है । प्राण सूर्य अपान अग्नि व्यानवायु है अम्बा-इडा भूमो देवी । अम्बिका-सरस्वती अन्तरिक्ष देवी । अम्बालिका-भारती द्यौ देवी है ॥ माध्यन्दिनी सं० २३ । १७-१८] येत्रिवृत घोर अघोर घोर तर हैं [पशवो वा आदित्यः ॥ सूर्य ही पशु है ॥ काठक सं० २८ । ६] आत्मा वा आहवनीयः ॥ पशवा वै पुरीषं ॥ आत्माही सूर्य रूप आहवनीय है । जलका पालन करनेवाला सूर्यमण्डल ही पशु है ॥ काठक सं० २१ । ४] गार्हपत्यं वै पशवः ॥ गार्हपत्य अग्नि ही पशु है ॥ कपिष्ठल० सं० ३७ । ७] पशवो वा अग्निः ॥ पशु ही अग्नि है ॥ तैत्तरीय ब्रा० १ । १ । ६ । १] तेजो वै वायुः ॥ तेज ही वायु है ॥ तै० ब्रा० ३ । २ । १० । १२] पशवा वै तेजः ॥ पशु ही वायु है ॥ मै० सं० १ । ८ । ३] पशवा वै प्रयाजाः पशवोऽनुयाजाः ॥ आत्मा वै प्रयाजाः ॥ आत्मा वा अनुयाजाः ॥ पशु ही प्रयाज देवता हैं, पशु ही अनुयाज देवता हैं । अघोर स्वरूप ही प्रयाज देवता हैं, घोर स्वरूप ही अनुयाज देवता हैं ॥ यह ब्राह्मण श्रुति है [प्रयाजानुयाजाञ्जुहुयात्प्राणा वै प्रयाजा अपाना अनुयाजाः ॥ अघोरके स्वरूप प्रयाज है और घोरके स्वरूप अनुयाज हैं, प्राण ही प्रयाज और अपान ही अनुयाज हैं । इन दोनों प्रकारके देवताओंके प्रति हवन करे । प्रयाजोंको स्वाहा शब्द कह कर वेदीके मध्यमें आहूति देवे तथा अनुयाजोंको वेदिके वहार स्वीष्टकृत शब्दकर काष्ट पात्रमें आहूति के शेष

भागको छोडे यही बहारका यज्ञ है ॥ काठक सं० १२ । २] एकादश प्रयाजा एकादशानुयाजा एकादशो पयाजास्त त्रयस्त्रिं शद्देवास्ताः ॥ ग्यारा प्रयाज ग्यार अनुयाज ग्यार उपयाज हैं जो यजमान उस यज्ञमें तेतीस देवताओंके लिये आहूति देता है वे सब यजमानके उपर प्रसंन होते हुए मन इच्छित फल देते हैं ॥ मै० सं० ३ । १० । ४] प्राणोऽपानो व्यानोऽथो त्रयों वा इमेलोकाः ॥ येतीन प्राण अपान व्यान ही अग्निवायु सूर्य हैं, और तीन लोक हैं ॥ मै० सं० ४ । ५ । ५] प्राणा वै प्रयाजाः ॥ अघोरकी विभूतियें ही प्रयाज हैं । त्रयस्त्रिंशद्वै देवताः सोमपास्त्रयस्त्रिंशदसोमपा अष्टौ वसव एकादशरुद्रा द्वादशादित्या वषट्कारश्च प्रजापतिश्चते सोमपाः प्रयाजाः ॥ अनुयाजा उपयाजास्तेऽसोमपास्तस्मात्तेबहिर्यज्ञं क्रियंते ॥ तेतीस देवता सोम पीने वाले हैं । और तेतीस सोम रहित स्तुतिसे प्रसन्न होनेवाले देवता हैं । आठवसु, ग्यारा रुद्र, वारा आदित्य, यज्ञकी आहूतियोंको भक्षण करनेवाला, गार्हपत्य देवता और सूर्य है । ये सब सोम पीनेवाले प्रयाज हैं । जे अनुयाज ही उपयाज हैं ये सबही सोम पानसे रहित है उसलिये ही वे सबही यज्ञके वाहर स्तुति कीये जाते हैं ॥ काठक सं० २६ । ९] दोनों प्रकारके देवता पशु हैं इन देवताओंकी सब चराचर विश्व विभूति है । सब पशुओंका नियंता रुद्र है हरिकेशः सूर्यं रश्मिः ॥ हरिकेश ही सूर्यकी किरण हैं ॥ मै० सं० २ । ८ । ९] यह सब महिमा रुद्रकी है ॥ २ ॥

नमः सस्पिञ्जराय त्विषीमते पथीनां पतये नमः ॥३॥

कृश लाल पीला तेजस्वी अग्नि विद्युत् पथिकोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ ३ ॥

नमो॑ वभ्लुशाय॑ विव्या॒धिनेऽन्ना॑नां॒ पत॑ये॒ नम॒ः ॥४॥

पापीयोंके नाशकरनेवाले धर्मरूप अन्नआदि पदार्थोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ ४ ॥

नमो हरि केशायोपवीतिने पुष्टानां पतये नमः ॥५॥

नमो॑ भ॒वस्य॑ हे॒त्यै जग॑तां॒ पत॑ये॒ नम॒ः ॥ ६ ॥

संसारके दुःखको नाश करने वाले समस्त ब्रह्माण्डोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ ६ ॥

नमो॑ रु॒द्राया॑ऽऽतता॒विने॒ क्षेत्रा॑णां॒ पत॑ये॒ नम॒ः ॥ ७ ॥

सृष्टि के विस्तार करनेवाले ब्रह्माके स्वरूपमें प्रगट होनेवाले अव्याकृत, सूत्रात्मविराट्मय समष्टि क्षेत्रोंके स्वामी रुद्रको प्रणाम हैं ॥ ७ ॥

नमः॑ सू॒तायाहन्त्याय॒वना॑नां॒ पत॑ये॒ नम॒ः ॥ ८ ॥

समष्टि व्यष्टि ब्रह्माण्डपिण्डसमुहोंके उत्पन्न पालन संहार करनेवाले महेश्वरको प्रणाम है ॥ ८ ॥

नमो॑ रोहि॑ताय स्थ॒पत॑ये॒ वृ॒क्षाणां॒ पत॑ये॒ नमः ॥९॥

सूर्य रूप घरमें स्थित, नाशवाले शरीरोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ ९ ॥

नमो॑ म॒न्त्रिणे॑ वाणि॒जाय॒कक्षा॑णां॒ पत॑ये॒ नम॒ः ॥१०॥

सृष्टि विचारको करके यथाक्रम विभाग करनेवाले नक्षत्रोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ १० ॥

नमो भुवन्तये वारिवस्कृतायौषधीनां पतये नमः ॥ ११ ॥

प्राणियोंका विस्तार करनेवाले धनके देनेवाले वृक्ष लता गुल्म आदि औषधियोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ ११ ॥

नम उच्चैर्घोषाया ऽऽ क्रन्दयते पत्तीनां पतये नमः ॥ १२ ॥

गगनभेदी शब्दकरनेवाले वैरीयोंको रुदन कराने वाले पैदल सेनाओके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ १२ ॥

नमः कृत्स्न वीताय धावते सत्वानां पतये नमः ॥ १३ ॥

सब अपनी सेनासे घिरे हुए उपासकोंकी रक्षाके लिये दौड़ने वाले दिव्य देहधारी गणोंके स्वामीको मेरा वारंवार प्रणाम है ॥ १३ ॥

नमः सहमानायनि व्याधिन आव्याधिनीनां पतये नमः ॥ १४ ॥

शत्रुओंको जीतनेवाले, निरंतर बाणोंसे छेदनेवाले, सर्वत्रसे प्रहार करनेवाली सेनाओंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ १४ ॥

नमः ककुभाय निषङ्गिणेस्तेनानां पतये नमः ॥ १५ ॥

पुरुषो वै ककुभः ॥ पुरुषरूप ईश प्राणही ककुभ है ॥ ता० ब्रा० १६।११।७॥ तलवार वाले महाबली गुप्तचरोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ १५ ॥

नमो॑ निषङ्गिण॑ इषुधिमते॒ तस्क॑राणां पत॑ये॒ नमः॒॥१६॥

म्यान युक्त तलवार बाण स्थित भाथाको पीठपर बाँधनेवाले प्रगट चोरोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ १६ ॥

नमो॑ वञ्च॑ते परिवञ्च॑ते स्तायूनां पत॑ये॒ नमः॒ ॥१७॥

ठग, विश्वासघाती, स्वामीका विश्वासपात्र बनकर धन आदि हरण करनेवालोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ १७ ॥

नमो॑ निचेरवे॑परिचरायार॑ण्यानां पत॑ये॒ नमः॒ ॥१८॥

चोरीकी इच्छासे सर्वत्र बिचरने वाले वनवासीयोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ १८ ॥

नमः॑ सृका॒विभ्यो॒ जिघाँसद्भ्यो मुष्णतां पत॑ये॒ नमः॒ ॥ १९ ॥

वज्रधारी मारनेवाले खेतके अन्नकी चोरी करने वालोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ १९ ॥

नमो॑ऽसिमद्भ्यो॒ नक्तं॒ चर॑द्भ्यः प्रकृन्तानां पत॑ये॒ नमः॒ ॥ २० ॥

तलवार धारी रात्रीमें विचरनेवाले दिनमें मारकर चोरी करने वालोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ २० ॥

नमं उष्णीषिणे गिरिचुराय कुलुञ्चानां पतये नमः ॥ २१ ॥

पगड़ीवाले ग्रामवासी पर्वतवासी, दुर्बलोंको लूटनेवालोंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ २१ ॥

कपिष्ठल कठ संहितायां सप्त विंशति तमोऽध्यायः ॥
अनुवाकः ॥ २ ॥ समाप्त ॥

जैसे बुद्बुदा तरङ्गरूपवाले चंचल जलोंका स्वामी समुद्र है। जिस प्रकार कल्पित सर्पका आधार रज्जु है, उसी प्रकार कार्य कारण सत्तात्मक विशेष विभूतियें निर्विशेष सत्तास्वरूप रुद्रमें आश्रित रूपसे कल्पित हैं। यथानिर्मल आकाशमें नीलता भासकल्पित है, तथा निराकार शुद्ध चेतनके एक देशमें चराचर विश्व कल्पित है, जब तक यथार्थ स्वरूपका ज्ञान नहीं होता, तवतक विशेष अवस्था रूप भास ही सत्य प्रतीत होता है, उस अधिष्ठित मायासे अधिष्ठान ढका हुआ है, जैसे सूर्यका एकदेश रूप सामान्य जल ही वर्षाके कुछ पहिले मेघ रूपसे भासता है, वह मेघ सूर्यका आच्छादक बनजाता है, जलकी विशेष अवस्था मेघ मिथ्या है और सामान्य जल ही निर्विशेष अवस्था है॥ जल और जलकी मधुरता अभिन्न है, तैसे ही सूर्य और सूर्यकी सामान्य जलसत्ता अभिन्न है, वास्तवमें तो जलकी दोनों अवस्थाओंसे रहित सूर्य स्वयं प्रकाशी है [अभ्रं वा अपां भस्म ॥ जलोंकी मेघभासरूप भस्म है शतपथ ब्रा० ५ । ५ । २ । ४८] यह भासरूप मेघ असंख्य जल

विन्दुओंके आकारमें परिणित होता हुआ खड्डे, तलाव, नदी नाले कूप, घट स्थित, आदि नामोंको धारण करता है, उन घट शराव आदिमें स्थित जलकी उपाधीसे असंख्य सूर्यविम्बके प्रति विम्व भासते हैं, जलके निर्मल मलीनताके सहित चंचलता आदि उपाधिके संयोगसे, निर्मल प्रतिविम्बभी, मलीन चंचल स्वच्छ प्रतीत होता है। तैसेही रुद्रकी अनन्त शक्तिकी एक निर्विशेष प्रलयस्थ बीज सत्ता—सृष्टिके कुछ पहिले विशेष मायारूपसे भासती है, भासरूप भस्मको रुद्र महेश्वर रूपसे धारण करता है। इस अधिष्ठित रूप भस्मको धारण करनेसे ही चेतन अधिष्ठानका नाम भस्मधारी हुआ है। उस मायाभस्मकी असंख्य अध्यात्म अधिदैव शरीर विभूति हैं, इन अग्नि सूर्य आदि अधिदैव, वृक्ष आदि अधि भौतिक, मनुष्यादि अध्यात्म शरीरोंमें अहंकर्ता भोक्ता रूपसे अध्यास है, सोही रुद्रका चिदाभास स्वरूप है शरीरोंके सब प्रकारके अध्यासोसे रहित चिदाभासही रुद्र है, ज्ञानी शरीरोंमें शुद्ध तथा अज्ञानी देहोंमें मलीन भासता है। वास्तवमें तो परिणाम रहित नित्य शुद्ध ज्ञानस्वरूप मायाके सब प्रकारके आवरणोंसे रहित है। उपासक अग्नि होत्रकी भस्म धारण करते, हुए ज्ञानी ज्ञानरूप भस्म लगाते हैं, और जगत् कार्यके सहित मायाकारणको प्रलयरूप श्मशानमें निर्विशेष बीज सत्ताके रूपसे भस्म करके उस बीजसत्ता रूप भस्मको अपने अनन्ताकाश ज्ञानस्वरूपमें एक ज्ञानाकार रूपसे रमाता हुआ महाप्रलय श्मशानमें विराजता है। जब रुद्र चराचर व्यापी है तो क्या चोर और सज्जन विभूति नहीं हैं अवश्यही हैं [न साधुना कर्मणा भूयान्नो एवासाधुना कनीयान्॥ एषह्येवैनं साधु कर्मकारयतितंयमेभ्योलोकेभ्यउन्निनीषते एषउएवैनमसाधुकर्मकारयतितंयम धोनिनीषते ॥

प्राण स्वरूप रुद्र, उत्तम अधम कर्मसे श्रेष्ट अश्रेष्ठ नहीं होता है, यह रुद्र जिस मनुष्यको इस भूलोकसे स्वर्गमें भेजना हो चाहता है उसकोही उत्तम कर्म कराता है, और जिसको नरकमें गिराना चाहता है उसको नीच कर्म कराता है, जैसे समष्टि तरंग और व्यष्टि बुद्बुदाजलके ही स्वरुप हैं। तैसेही व्यवहार दशामें एक रुद्र ही कार्य उपाधिक व्यष्टि चेतन और कारण उपाधिक समष्टि अन्तर्य्यामी है, प्रत्येक घरोंके प्रत्येक मनुष्य अभिमानी है उन घर समुह रुप ग्रामोंका स्वामी एक राजा है। राजा प्रत्येक ग्राममें धर्म अधर्म के विषयमें आज्ञा सुनाता हैं मेरी दोनों प्रकारकी आज्ञामें वर्ताव करनेवाली प्रजाको सन्मान पूर्वक कूप—तलाव अन्न आदिको देता हुआ रक्षा करता है। चोर आदि प्रजाको वन्दी ग्रहमें वन्ध करके तिरस्कार करता हुआ सामान्य रीतिसे अन्नवस्त्र देकर रक्षा करता है। तैसे ही ब्रह्माने वेदका प्रचार करके धर्म अधर्मकी व्यवस्था प्रजामें स्थापन करी। धर्मीयोंको स्वर्ग ओर पापीयोंको नरक है। जिस प्राणिकी स्वर्ग में जानेकी इच्छा होती है उस प्राणिमें धर्मका विकाश होता है जड धर्मके फलको अन्तर्य्यामी धर्मीके सन्मुख कर देता है, लोहचुम्बक पाषाणके समान अन्तर्यामीकी प्रेरणासे सामने आये हुए धर्मफल, कर्ताका भोग्यरुप सुख वन जाता है। उसी प्रकार पापीका भोग्यरुप दुःख बन जाता है। प्राणिकर्म करनेमें स्वतंत्र ओर फल भोगनेमें परतंत्र है यदि कर्मफल दाता नहीं होता तो, भोग्यके विना भोक्ता भोक्ताके विना भोग्य निष्फल होता, क्योंकि भोक्ता अज्ञानी ओर भोग्य जड है॥ इस व्यष्टि प्रजाको सुखदुःखमय फल देनेवाला समष्टि राजा है। न किसीको पाप पुण्य कराता है ओर न किसीके पाप पुण्य को लेता है, वहतो प्राणियोंके शुभाशुभ कर्म

कायथार्थ न्याय करता है, कर्ताके कर्मफलको कर्ताको ही भुगाता है। इस लिये ही अन्तर्यामीको कर्ता कहा है। जब भोग्यको भोक्ता भोगता है तब भोक्ता भविष्यके लिये कर्म करनेमें प्रवृत्त होता है [एष लोकपालः ॥ एष लोकाधिपतिः एष सर्वेशः ॥ यह रुद्र सबलोक पालक, सर्वलोकोंका स्वामी है यही असंख्य लोकवर्ती सब ईश्वरोका भी महेश्वर है ॥ कौषीतकि ब्राह्मणारण्यक ३ । ८] जैसे राजाके कर्मचारी अपने २ कार्यक्रमके स्वामी हैं उन कर्मचारीयों के सहित कार्य सम्पत्तिका एक राजा ही स्वामी है। तैसेही असख्य ब्राह्मण्डोंके सहित लोकपालोंका स्वामो एक रुद्र ही है ॥ २ ॥

नम इषुकृद्भ्यो धनुष्कृद्भ्यश्चवो नमः ॥ १ ॥

बाण धनुष बनाने वालोंको प्रणाम है और आप स्वामीको प्रणाम है ॥ १ ॥

नमो इषुमद्भ्यो धन्वायिभ्यश्चवो नमः ॥ २ ॥

बाण धनुषधारीयोंको प्रणाम और उनके अन्तर्य्यामी तुम रुद्रको प्रणाम है ॥ २ ॥

नम आतन्वानेभ्यः प्रतिदधानेभ्यश्चवो नमः ॥ ३ ॥

धनुष पर प्रत्यंचाको चढ़ानेवाले, धनुषपर बाणको अनुसन्धान करनेवालोंको प्रणाम है, और उनके आप प्रतिपालकको प्रणाम है ॥ ३ ॥

नम आयच्छद्भ्यो विसृजद्भ्यश्चवो नमः ॥ ४ ॥

प्रत्यंचाको ताननेवाले बाणको छोडने वालोंको प्रणाम है और उन विभूतियोंके आप विभूतिमान्‌को प्रणाम है ॥ ४ ॥

नमोऽस्यद्‌भ्यो विध्यद्‌भ्यश्चवो नमः ॥ ५ ॥

निसान पर बाणको छोडकर मारनेवालोंको प्रणाम है और आप स्वामीको प्रणाम है ॥ ५ ॥

नमःस्वपद्‌भ्यो जाग्रद्‌भ्यश्चवो नमः ॥ ६ ॥

स्वप्न जाग्रत् अवस्थावालोंको प्रणाम है और आप स्वामीको प्रणाम है ॥ ६ ॥

नमः शयानेभ्य आसीनेभ्यश्चवो नमः ॥ ७ ॥

सोनेवालोंको बैठने वालोंको प्रणाम है ॥ ७ ॥

नम स्तिष्ठद्‌भ्योधावद्‌भ्यश्चवो नमः ॥ ८ ॥

खड़ी हुई दौडती हुई विभूतियोंको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ ८ ॥

नमः सभाभ्यः सभापतिभ्यश्चवो नमः ॥ ९ ॥

समाजके सहित जन समूहके स्वामीयोंको प्रणाम है और तुम रुद्रको प्रणाम है ॥ ९ ॥

नमोऽश्वेभ्योऽश्वपतिभ्यश्चवो नमः ॥ १० ॥

घोडोंके सहित अश्वपालकोंको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ १० ॥

नम आव्याधिनीभ्यो विविध्यन्तीभ्यश्चवो नमः ॥ ११ ॥

सर्वत्रसे शत्रुओंको घेर कर मारती हुई विशेष करके छेदने-वालीं स्त्रीसेनाओंको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ ११ ॥

नम उगणाभ्यस्तृ ँहतीभ्यश्चवो नमः ॥ १२ ॥

सात मातृका ब्राह्मी आदियोंके सहित युद्धमें शत्रुओंको मारनेवालीं दुर्गाआदिको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ १२ ॥

नमो गणेभ्यो गणपतिभ्य श्चवो नमः ॥ १३ ॥

गण सेनाओंके सहित नन्दीस्कन्द आदि सेनास्वामीयोंको प्रणाम है और आप रुद्रको प्रणाम है ॥ १३ ॥

नमो व्रातेभ्यो व्रातपतिभ्यश्चवो नमः ॥ १४ ॥

जातियोंके सहित जाति समूहके अधिपतियोंको प्रणाम है और उन सबके स्वामी आपको प्रणाम है ॥ १४ ॥

नमः कृच्छ्रेभ्यः कृच्छ्रपतिभ्यश्चवो नमः ॥ १५ ॥

दुःखियोंके सहित दुःखियोंके पालकोंको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ १५ ॥

नमो विरूपेभ्यो विश्वरूपेभ्यश्चवो नमः ॥ १६ ॥

कुरूपोंके सहित सर्व स्वरूपोंको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ १६ ॥

नमः सेनाभ्यः सेनानीभ्यश्चवो नमः ॥ १७ ॥

सेनाओंके सहित सेनापतियोंको प्रणाम है और आप रुद्रको प्रणाम है ॥ १७ ॥

नमो रथिभ्यो वरूथिभ्यश्चवो नमः ॥ १८ ॥

रथवालोंके सहित कवचधारी रथ रहित वीरोंको प्रणाम है और आप अन्तर्यामीको प्रणाम है ॥ १८ ॥

नमः क्षत्तृभ्यः संग्रहीतृभ्य श्चवो नमः ॥ १९ ॥

रथ हाँकनेवालोंके सहित रथके पीछे बाण संग्रह करनेवालोंको प्रणाम है और तुमको प्रणाम है ॥ १९ ॥

नमो बृहद्भ्योऽर्भकेभ्यश्चवो नमः ॥ २० ॥

वडे छोटोंको प्रणाम है और उन महिमाओंके आप महिमाओंके आप महिमावान्‌को प्रणाम है [अणोरणीयान्महतोमहीयान्॥ कार्य कारणसेभी अनन्त स्वरूप अतिमहान् ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १० । १] रुद्र कारणोंकाभी महाकारण है ॥ २० ॥

नमोयुवभ्या आशीनेभ्यश्चवो नमः ॥ २१ ॥

तरुण नरोंके सहित काम क्रोधकी स्थान युवतीयोंको प्रणाम है और आप सर्व व्यापकको प्रणाम है ॥ २१ ॥

मैत्रायणी संहिता मध्यमकाण्डे नवमः प्रपाठकः ॥अनुवाकः ४ ॥
जल तरङ्गवत् नाना स्वरूपोंसे विशेष चेतन प्रतीत होता है सोही अलिंगी निराकार चेतनका विशेष लिंग हैं। इस विशेष लिंगरूप महिमाके द्वाराही निर्विकारी रुद्र जाना जाता है । पहिले लिंगात्मक

चराचर विभूतियोंको प्रणाम है उसके अनन्तर अलिंग स्वरूप रुद्रको मेरा वारंवार प्रणाम है ॥ ३ ॥

नमो ब्राह्मणेभ्यो राजन्येभ्यश्चवो नमः ॥ १ ॥

ब्राह्मण जातिके सहित क्षत्रिय जातिको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ १ ॥

नमः सूतेभ्यो विश्येभ्यश्चवो नमः ॥ २ ॥

ब्राह्मणी माता क्षत्रिय पितासे उत्पन्न होनेवाली प्राचीन राजाओंके वंश आदि पुराणी कथाओंको वाँचनेवाली भाट जातिके सहित वैश्य जातिको प्रणाम है और उन जातियोंके पूज्य आप रुद्रको प्रणाम है [ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय ॥ ब्राह्मण क्षत्री वैश्य शूद्र येचार वर्ण हैं ॥ अथर्वण १९ । ३२ । ८] तीन उपनयन संस्कारवालीं जाति हैं और उपनयन रहित चतुर्थ शूद्र है ॥ २ ॥

नमस्तक्षभ्यो रथकारेभ्यश्चवो नमः ॥ ३ ॥

तर्खाण, वढ़ै, सुतार, रथकार, शिलावट जातिको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ ३ ॥

नमः कुलालेभ्यः कर्मारेभ्यश्चवो नमः ॥ ४ ॥

कुम्भकार जाति लोहार सुनार आदि जातिको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ ४ ॥

नमो निषादेभ्यः पुञ्जिष्टेभ्यश्चवो नमः ॥ ५ ॥

कहार, धीवर, माछी, धोवी, नट, चमार, पक्षीसमूहको खानेवाली डोम भङ्गी जातिको प्रणाम है और आपको प्रणाम है ॥ ५ ॥

नमः श्वनीभ्यो मृगयुभ्यश्चवो नमः ॥ ६ ॥

कुत्तोंके सहित शिकार खेलनेवाले वनमे भ्रमण करनेवाले व्याधोंको प्रणाम है ॥ ६ ॥

नमः श्वभ्यः श्वपतिभ्यश्चवो नमः ॥ ७ ॥

कुत्तोंके सहित कुत्तोंके रक्षकोंका प्रणाम है और आप अन्तर्यामीको प्रणाण है ॥ जैसे तरङ्ग बुद्‌बुदाओंका सत्य स्वरूप जल है तथा जलका कल्पितरूप तरंग हैं । तरंगोंका आधार समुद्र है समुद्रका आधार तरंग नहीं हैं । तैसेही हे रुद्र आप मेरे सत्य स्वरूप हो और मैं जबतक देह अभिमानी हूँ तब तक आपका शुद्ध स्वरूप नहीं हूँ ॥ आपके अभेद स्वरूपमय जाग्रत् होते ही, देहाध्यास स्वप्नजाल विलीन हो जाता है [तदपश्यत्तद भवत्तदासीत् ॥ उस अपने वास्तविक स्वरूपको सोही होता है, जीव नाम उपाधिके पहिले सोही निरुपाधिक रुद्रही था ॥ माध्यन्दिनी सं० ३२ । १२] रुद्रसे कल्पित विशेष स्वरूप जीव भिन्न कोई वस्तु नहीं है ॥ किन्तु विशेष अवस्थासे निर्विशेष अवस्था अवश्य भिन्न है । इसलिये व्यवहार सत्ताको पृथक् प्रणाम और परमार्थ सत्तावान्‌को भिन्न प्रणाम है। जगत् व्यवहार दृष्टिसे सत्य और परमार्थ दृष्टिसे असत्य है । जैसे घट शराव आदि नामरूपको पृथक् वर्णन करने पर भी अन्तमें सबका लय मृत्तिकाही है । तैसेही अपरिमित विभूतियोंके नाम

रूपका वर्णन करती हुई ऋचाभी अन्तमें रुद्रको ही सबका सत्य स्वरूप वर्णन करती हुई मौन होती हैं ॥ ७ ॥

नमो भवाय चशर्वायच ॥ ८ ॥

जगत् उत्पत्ति करनेवाले भवको और संहार करनेवाले शर्वको भी नमस्कार है ॥ ८ ॥

नमो रुद्राय च पशुपतये च ॥ ९ ॥

पालन करनेवाले पशुपतिको और स्वयंप्रकाशी अखण्ड घन अनादि अद्वितीय स्वरूप चतुर्थ रुद्रकेलिये नमस्कार है [श्वेतो भवति ब्रह्मणो रूपं ॥ शुद्ध निर्मल रुद्रका स्वरूप है ॥ मै० सं० २ । ५ । १]

नमो व्युप्तकेशायच कपर्दिने च ॥ १० ॥

जटारहित मुण्डित केशवाले संन्यासीको और जटाधारी ब्रह्मचारी वानप्रस्थ स्वरूपी रुद्रको भी प्रणाम है [शिखा अनुप्रवपन्ते पाप्मान मेवतदपघ्नते लघीया ं स्सः स्वर्गलोकमपामेति ॥ तीन आश्रम शिखा सूत्रधारी हैं उनके अनन्तर संन्यास आश्रममें आनेकेलिये ब्रह्मचारी, गृहस्थ, वानप्रस्थ, शिखा-मुण्डन कराते हैं, जो संन्यास लेता है सोही अपने अज्ञानादि महा पापको नाश करता है उस जन्म मरणके देनेवाले पापसे रहित निष्पापरूप लघु होकर ब्रह्मलोकको प्राप्त करता है ॥ साम वेदीय ताण्ड्य महाब्राह्मण अध्याय ४ । खण्ड १० । मंत्र २५] उपवीतं भूमावप्सुवाथि सृजेत् ॥ यज्ञोपवीतको जलवा भूमीमें त्याग करे॥ शिखां यज्ञोपवीतं ॥ शिखा जनेऊ ।

ॐ भूः संन्यस्तं मया ॐ भुवः संन्यस्तं मया ॐ स्वः संन्यस्तं मयेति त्रिः कृत्वा ॥ इस मंत्रको तीनवार पठन करके सब कामनाको त्यागे ॥ सखा मागोपायौजः सखायोऽसिवार्त्रघ्नः शर्ममे भवयत्पापंतन्निवारय ॥ सर्व शक्ति सम्पन्न रुद्रका जो तेजस्वी अघोर स्वरूप मेरी रक्षाके लिये मित्र है और सो पापके नाश करनेवाला घोर स्वरूप मित्र है मेरा जो पाप है उसको नाश करे और सुखरूप होवे ॥ आरुणेप्युपनिषत् ॥ २-१-३] वास्तोष्पते ध्रुवा स्थूणा ँ सत्र ँ सोम्यानां ॥ द्रप्सः पुरां भेत्ता शाखनी नामिन्द्रो मुनीना ँ सखा ॥ हे समष्टि व्यष्टि ब्रह्माण्ड पिण्डमय घरके स्वामी रुद्र शरीरोंके मध्यमें सुखरूप प्राणोंका स्थिर संचार करनेवाले हो, तुम दयालु, दैत्योंके तीन नगरोंके नाश करनेवाले संन्यासीयोंके मित्र हो ॥ साम सं० ५ । ३ । ५ । ३] नकर्मणा न प्रजया धनेन त्यागेनैके अमृतत्वमानशुः ॥ परेण नाकंनिहितं गुहायां विभ्राजते यद्यतयो विशन्ति ॥ प्रजा धन कर्मसे मोक्ष नहीं पाती किन्तु मायाके समस्त जालको अधिष्ठान महेश्वरमें लयकर एक रुद्रमें मग्न होनेसे ही कैवल्य मोक्ष प्राप्त करते हैं, और क्रम मोक्ष सबलोकोंसे परे उत्तम ब्रह्मलोक स्वयं प्रकाशमय अव्याकृत गुहामें जो ब्रह्मास्थित है उस परम व्योमवासी परमेष्ठीमें संन्यासी गण अभेदरूपसे प्रवेश करते हैं । जैसे नदीयें समुद्रमें लय होती है । तैसेही व्यष्टि भेदको त्यागकर समष्टि स्वरूप हो जाते हैं ॥ वेदान्त विज्ञान सुनिश्चितार्थाः संन्यासयोगाद्यतयः शुद्धसत्वाः ॥ ते ब्रह्मलोकेतुपरान्तकाले परामृतात्परि मुच्यन्ति सर्वे ॥ चारो वेदोंमें जे. अध्यात्मस्वरूपके प्रतिपादन करनेवाले मंत्र हैं वेही वेदान्त नामवाले हैं, अहंमनुर-

भवं० ॥ अहंरुद्रेभिः ॥ ऋचोऽक्षरे परमे व्योमन्० ॥ ये पुरुषे ब्रह्म० ॥ अस्मच्छाखां० ॥ तस्माद्वै विद्वान् ॥ इत्यादि मंत्र अथर्वणमें हैं ॥ अहंपरस्तादहम० ॥ इशावास्यसे० हिरण्यमयेन ॥ इत्यादि मंत्र यजुमें हैं ॥ और तवलकार साम संहिताका नवमाँ अध्याय केनोपनिषद् है ॥ वेदान्तके ज्ञानको उत्तम विधिसे श्रवण मनन निदिध्यासन करनेवाले मायाके भेदभावको भली प्रकार त्यागकर अभेद भाव युक्त निर्मल अन्तःकरणवाले संन्यासी, समष्टि उत्तम स्वरूप ब्रह्माकी कृपासे ब्रह्मलोकमें विराजते हैं, जब ब्रह्माका सौ वर्ष वीतजाता है, तव ब्रह्माका अन्त समय होता है उस उत्तम समयमें वे सब ब्रह्मलोकवासी ब्रह्मामें लीन हो जाते हैं ॥ तैत्तरीयारण्यक १० । १० । १] न्यासइत्याहुर्मनीषिणो ब्रह्माणं ॥ इस प्रकार निश्चय करके (न्यास) मोक्षका हेतु ब्रह्माकोही ऋषियोंने कहा है ॥ तै० आरण्यक १० । ६३] रुद्रका व्यक्तस्वरूप ब्रह्मा है, समष्टि स्वरूप देव मनुष्य आदि सब प्राणि है, जिस कारणसे कार्य प्रगट होता है उसीमें लय होता है ॥ समष्टि उपाधिक ब्रह्माके सब व्यष्टि उपाधिक प्राणि हैं ब्रह्मलोकवासी पूर्ण सुखके भोक्ता और ब्रह्मलोकसे रहित न्यूनताधिक अल्पसुखके भोक्ता है ॥ भली प्रकार कैवल्य याक्रममोक्षरूप ब्रह्मलोकके लिये यत्न करते हैं वेही संन्यासी हैं [ब्रह्म वै ब्रह्मा ॥ रुद्र ही ब्रह्मा है ॥ मै० सं० २ । २ । २] ॥ १० ॥

नमो नीलग्रीवायचाशितिकंठायच ॥ ११ ॥

मायाके स्वामी महेश्वरको और माया रहित शुद्ध स्वरूपको भी प्रणाम है ॥ ११ ॥

नमः सहस्राक्षाय चशतधन्वनेच ॥ १२ ॥

अनन्त नेत्रवालेको और असंख्य धनुषवालेको भी प्रणाम है ॥ १२ ॥

नमो गिरिशाय चशिपिविष्टाय च ॥ १३ ॥

कैलासवासीको और सूर्यमण्डल योनिके मध्य व्यापक भर्गको भी प्रणाम है [विष्णवे शिपिविष्टाय ॥ सूर्य शिपिविष्ट है ॥ मै० सं० २ । २ । १३] विष्णुः शिपिविष्टः ॥ सूर्यही शिपिविष्ट है ॥ तै० सं० ३ । ४ । १ । ४] पशवो वै शिपिविष्टं ॥ पशुही सूर्य मण्डल योनि है ॥ मै० सं० १ । ६ । ३] पशवो वा आदित्यः ॥ सूर्य ही पशु है ॥ काठक सं० २८ । ६] यज्ञो वै विष्णुः पशवः शिपिः ॥ यज्ञ ही विष्णु है पशुही शिपि है ॥ तै० सं० ३ । ४ । १ । ४] गार्हपत्यही यज्ञ रूप विष्णु है सूर्य ही पशुरूप शिपि है ॥ आदित्यो वै यज्ञः ॥ सूर्यही यज्ञ है ॥ मै०। सं० ३ । ७ । ८] पशु वैं यज्ञः ॥ व्यापकरूप सूर्य ही यज्ञ है ॥ काठक सं० ३० । ९] गूह्येन्द्रिय रूपसे व्यापक । सूर्यमण्डल है ॥ १३ ॥

नमो मीढुष्टराय चैषुमते च ॥ १४ ॥

वर्षा वालेको और बाणवालेको भी प्रणाम है ॥ १४ ॥

नमो ह्रस्वायच वामनायच ॥ १५ ॥

अल्प अङ्गोंवालेको और ठिंङ्गनेकोभी प्रणाम है ॥ १५ ॥

काठक संहितायां सप्तदश स्थानकं ॥ अनुवाकः १४ ॥ समाप्त ॥ ५ ॥

नमः स्रुत्याय च पथ्याय च ॥ १ ॥

पग दण्डी मार्गको और राजमार्गको भी प्रणाम है ॥ १ ॥

नमः काट्याय च नीप्याय च ॥ २ ॥

पर्वतके ऊपर चढनेवाले विकट मार्गको और नीचले मार्गको भी प्रणाम है ॥ २ ॥

नमः कुल्याय च सरस्याय च ॥ ३ ॥

नहरको और तलावको भी प्रणाम है ॥ ३ ॥

नमो नादेयाय च वैशन्ताय च ॥ ४ ॥

नदीके जलको और अल्पजलवाले सरोवरको प्रणाम है ॥४॥

नमः कूप्याय चावट्याय च ॥ ५ ॥

कूपको और खड्डेको भी प्रणाम है ॥ ५ ॥

नम ईध्रियाय चातप्याय च ॥ ६ ॥

निर्मल प्रकाशको और गर्मीको भी प्रणाम है ॥ ६ ॥

नमो मेघ्याय च विद्युत्याय च ॥ ७ ॥

मेघ गर्जनाको और बिजलीको भी प्रणाम है ॥ ७ ॥

नमो वर्ष्यायचावर्ष्याय च ॥ ८ ॥

वर्षाको और अवर्षाको भी प्रणाम है ॥ ८ ॥

नमो वात्यायच रेष्म्या यच ॥ ९ ॥

सुख रूप वायु प्रवाहको और नाशकारी वायु प्रवाहको भी प्रणाम है ॥ ९ ॥

नमो वास्तव्यायच वास्तुपाय च ॥ १० ॥

यज्ञ शालाको और यज्ञरक्षकको भी प्रणाम हैं ॥ १० ॥

नमः सोमायच रुद्राय च ॥ ११ ॥

सः वह रुद्र उमाके सहित है सोही सोम है ॥ रुत्–स्वयं प्रकाशी चेतन की ॥ द्र–ज्ञान स्वरूप उमा है ॥ सोही रुद्र है ॥ यही उमा रुद्र पूर्वोक्त सब महिमाओंमें ओतप्रोत हो रहा है ॥ इसलिये सब विभूतियोंको प्रणाम है सो प्रणाम रुद्रको ही है ॥११॥

नम स्ताम्रायचारुणाय च ॥ १२ ॥

उदयरूप वालेको और अस्त समयवाले सूर्यको भी प्रणाम है ॥ १२ ॥

नमः शङ्ग वेच पशुपतयेच ॥ १३ ॥

सुख करनेवाले पशुपतिको ही वारंवार प्रणाम है ॥ १३ ॥

नम उग्राय च भीमाय च ॥ १४ ॥

अघोरको और घोरको भी प्रणाम है ॥ १४ ॥

नमोऽग्रे वधाय च दूरे वधाय च ॥ १५ ॥

उपासककी रक्षाकेलिये शत्रुकी अग्र सेनामें प्रवेश करके वध करनेवाले रुद्रको और अदृश्यरूप दूरसेही शत्रुके मारनेवाले रुद्रको भी प्रणाम है ॥ १५ ॥

नमो हन्त्रे च हनीयसे च ॥ १६ ॥

अज्ञानी प्राणिमात्रको प्रलयमें संहार करनेवालेको और ज्ञानी-योंके अज्ञानरूप मृत्युको सदाकेलिये मारनेवाले रुद्रकोही वारंवार प्रणाम है ॥ १६ ॥

नमो वृक्षेभ्यो हरिकेशेभ्यः ॥ १७ ॥

महाविराट् वृक्षवासी अग्निवायु सूर्यआदि अधिदैव स्वरूपोंके सहित वाह्य विषयोंमें चेतनको हरण करनेवालीं जाग्रतमें प्रकाशित होनेवालीं चक्षुआदि इन्द्रियोंकेलिये नमस्कार है ॥ अर्थात् इनकाभी नियंता रुद्रही उस अन्तरात्माको प्रणाम है ॥ १७ ॥

नमस्ताराय ॥ १८ ॥

ओंकार स्वरूप रुद्रकेलिये प्रणाम है ॥ संसार सागरसे तारनेवाला तारक मंत्र है ॥ इस ॐ रूप नौकामें वैठालकर रुद्रकर्णधार उपासकोंको तारता है [(ब्रह्मोडुपेन प्रतरेत विद्वान् ॥ ओंकारमय नौकाके द्वारा विवेकी पुरुष तर जाय ॥ श्वेता० उ० २ । ८] धर्मावहं पापनुदं भगेशं ॥ धर्मरूप प्रणव नौकाको

चलानेवाले पापको नाश करने वाले ऐश्वर्य सम्पन्न रुद्रको जानकर ज्ञानी मुक्त होते हैं ॥ श्वेता० उ० ६ । ६] प्रणवो धनुः शरोह्यात्मा ब्रह्मतल्लक्ष्यमुच्यते ॥ ॐ धनुष है मनही वाण है उस मनका निशान रुद्र है ॥ प्रणवके विराट् सूत्रात्मा अव्याकृतको तुरीयमें लय करता हुआ मन स्वयंही लवण जलवत् विलीन हो जाता है यही लक्ष्यभेद है । जव मन लीन हो जाता है तव जीव शिव हो जाता है ॥ मु० उ० २ । २ । ४] रुद्ररूप ब्रह्मवाच्यका; ब्रह्मरूप ओंकार वाचक है ॥ ब्रह्म वास्तोष्पतिं ॥ प्रणव रूप घरका स्वामी रुद्र है ॥ ऋग० १० । ६१ । ७] ब्रह्म वै प्रणवः ॥ रुद्रही ॐ कार है तारक मंत्रको रुद्र कुरुक्षेत्रमें उपदेश करते थें ॥ उसीको आजकाशीमें उपदेश करते हैं [ब्रह्मणः कोशोऽसि ॥ रुद्रके प्राप्तिका स्थानरूपकोश ओंकार है ॥ तैत्तरीयारण्यक ७ । ४] जे मूल वेदसंहिता और ब्राह्मण—आरण्यक ग्रन्थोंसे अविरोधि उपनिषद् हैं वेही मान्य हैं ॥ १८ ॥

नमः शम्भवे च मयोभवे च ॥ १९ ॥

इस लोकके सुखको उत्पन्न करनेवालेको और स्वर्गके सुखको देने वालेकोभी प्रणाम है ॥ १९ ॥

नमः शङ्कराय च मयस्कराय च ॥ २० ॥

पितारूपसे सुख करने वालेको और गुरु रूपसे सुख करने वालेको भी प्रणाम है ॥ २० ॥

नमः शिवाय च शिवतराय च ॥ २१ ॥

नमो बृहते च वर्षीयसे च ॥ १६ ॥

लम्बेको और मोटेको भी प्रणाम है ॥ १६ ॥

नमो वृद्धाय च सवृद्धने च ॥ १७ ॥

वयो वृद्धको और उत्तम ज्ञानात्मक वृद्धको भी प्रणाम है ॥१७॥

नमोऽग्रीयाय प्रथमाय च ॥ १८ ॥

जगत् उत्पत्तिके पहिले प्रगट होनेवाले ब्रह्माको और ब्रह्माके पिता अनादि रुद्रको भी प्रणाम है ॥ १८ ॥

नम आशवे चाजिराय च ॥ १९ ॥

व्यापक मायिक सृष्टि संकल्पको और संकल्पकी क्रिया कारण रूपसे गमन करनेवाले को भी प्रणाम है ॥ १९ ॥

नमः शीभ्याय च शीघ्र्याय च ॥ २० ॥

जलको और जलके शीघ्र प्रवाहको भी प्रणाम है ॥ २० ॥

नम ऊर्म्याय च । वस्वन्याय च ॥ २१ ॥

जल तरङ्गको और शब्द रहित जलप्रवाहकोभी प्रणाम है ॥ २१ ॥

नमो द्वीप्याय च स्रोतस्याय च ॥ २२ ॥

टापूको और पर्वतवर्ती स्रोतकोभी प्रणाम है ॥ २२ ॥

मैत्रायणी संहिता मध्यम काण्डे नवमः प्रपाठकः ॥ अनुवाकः ५ ॥ समाप्त ॥ ४ ॥

नमो ज्येष्ठाय चकनिष्ठायच ॥ १ ॥

वडेको और छोटेको भी प्रणाम है ॥ १ ॥

नमः पूर्वजाय चापरजाय च ॥ २ ॥

पहिले उत्पन्न होनेवालेको और पीछे प्रगट होनेवालेको भी प्रणाम है ॥ २ ॥

नमो मध्यमाय चापगल्भाय च ॥ ३ ॥

युवाको और अतिबालकको भी प्रणाम है ॥ ३ ॥

नमोबुध्न्यायच जघन्याय च ॥ ४ ॥

मूलको और पीछले भागको भी प्रणाम है ॥ ४ ॥

नमः सोभ्याय च प्रतिसयर्या च ॥ ५ ॥

उसके कार्य क्रियारूप पाप पुण्यको और उनकी प्रतिक्रिया रूप विस्तृत समुहको भी प्रणाम है ॥ ५ ॥

नम आशुषेणाय चाशुरथाय च ॥ ६ ॥

शीघ्र गामी सेनाको और वेगशील रथको भी प्रणाम है ॥६॥

नमो बिल्मिनेच कवचिने च ॥ ७ ॥

शिरस्त्राणको और कवचको भी प्रणाम है ॥ ७ ॥

नमो वर्मिणेच वरूथिने च ॥ ८ ॥

अङ्गरखाको और हाथीकी अम्बारीको भी प्रणाम है ॥ ८ ॥

नमः शूराय चावभेदिने च ॥ ९ ॥

वीरको और शत्रुके मारनेवालेको भी प्रणाम है ॥ ९ ॥

नमः श्रुताय च श्रुतसेनाय च ॥ १० ॥

प्रसिद्ध सेनाके. स्वामीको और प्रख्यात सेनाको प्रणाम है॥१०॥

नमो याम्याय च क्षेम्याय च ॥ ११ ॥

यमकी यातना भोगने वालेको और स्वर्ग सुख भोगनेवालेको भी प्रणाम है ॥ ११ ॥

नम उर्वर्याय च खल्याय च ॥ १२ ॥

उपजाउ खेतीको और अन्न साफ करनेके स्थान खलहानको भी प्रणाम है ॥ १२ ॥

नमः श्लोक्याय चावसान्याय च ॥ १३ ॥

कर्म उपासनावाले मंत्र समुहको और अन्तिम ज्ञान समुहको भी प्रणाम है ॥ १३ ॥

नमः श्रवाय च प्रतिश्रवाय च ॥ १४ ॥

शब्द ध्वनिको और शब्द प्रतिध्वनिकोभी प्रणाम है ॥१४॥

नमो वन्याय च कक्ष्याय च ॥ १५ ॥

वनमें प्रगट होनेवाले वृक्ष समुहको और गुल्मलता आदिको भी प्रणाम है ॥ १५ ॥

नमो दुन्दुभ्याय चाहनन्याय च ॥ १६ ॥

नगाड़ेको और वजानेवालेको भी प्रणाम है ॥ १६ ॥

नमो धृष्णवे च प्रमृशाय च ॥ १७ ॥

धैर्य्यवान्‌को और विचार शीलकोभी प्रणाम है ॥ १७ ॥

नमो निषङ्गिणे चेषुधिमते च ॥ १८ ॥

तलवारधारीको और बाणके भाथाको धारण करनेवालेको भी प्रणाम है ॥ १८ ॥

नम स्तीक्ष्णेषवे चायुधिने च ॥ १९ ॥

तीक्ष्ण भालावालेको और मुद्गर धारीको भी प्रणाम है ॥१९॥

नमस्त्वायुधाय च सुधन्वने च ॥ २० ॥

त्रिशूलधारीको और सुन्दर धनुषधारीकोभी प्रणाम है ॥ २० ॥

करनेवाले रुद्रोंके प्रति (नमः) नमस्कार है (विचिन्वत्केभ्यः) प्राणियों केशुभाशुभ कर्मके विचारनेवाले रुद्रोंके लिये (नमः) प्रणाम है (आनिर्हतेभ्यः) सृष्टि उत्पत्तिके आदिमें सब तेजसे प्रकाशित हुए रुद्रोंको (नमः) प्रणाम है ॥

व्याख्याः—असंख्य त्रिलोक व्यापी रुद्रोंका मुख्य स्वरूप अपने २ सौर जगतोंकी सृष्टि पालन संहार करनेवाले अग्निवायु सूर्य देह व्यापी आप अद्वैत रुद्रको मेरा प्रणाम है. नाना पाप समुहको नाश करनेवाले रुद्रोंको प्रणाम है, प्राणिमात्रके शुभाशुभ कर्मको विचार कर फल देनेवाले रुद्रोंको प्रणाम है विश्व उत्पत्तिके आदिमें सर्वत्र व्यापक रुद्र उत्पन्न हुए रुद्रोंको प्रणाम है, अग्निके असंख्यरूप रुद्र भूमीवासी, वायुके अपरिमितरूप रुद्र अन्तरिक्ष-वासी, सूर्यके अनन्त स्वरूप रुद्र द्यौ वासी हैं ॥ इस प्रकारही असंख्यलोकवर्ती सूर्य वायु अग्निभी अनन्त हैं—उनके चेतनका नामभी रुद्र हैं ॥ और उनका समष्टि रूप ब्रह्मा है, तथा ब्रह्माका-सत्य स्वरूप महेश्वर है ॥ २० ॥

काण्व संहिता सप्त दशोऽध्यायः ॥

अनुवाकः ॥ ७ ॥ समाप्त ॥

द्रापे अन्धसस्पते दरिद्र नीललोहित ॥ आसाम्प्रजानामेषाम्पशूनाम्माभेर्मारोङ् मोचनः किञ्चनाममत् ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(द्रापे) हे पापियोंकी दुर्गति करनेवाले (अंधसः) सोमके पालक (दरिद्र)) हे अद्वितीय रुद्र सर्व

परिग्रह रहित (नीललोहित) हे नित्य तरुण रुद्र उमाके सहित (आसां) इन हमारी (प्रजानां) प्रजाओंको (एषां) इन (पशूनां) पशुओंको भी तुम (माभेः) भयमत करो (मोरोक्) भङ्ग मतकरो (च) और (नः) हमारी प्रजा मात्रको (किंचन) कुछ भी (आममत्) रोग (मो) मतकरो ॥

व्याख्याः—हे पापियोंकी दुर्गति करनेवाले सोमरक्षक हे अद्वितीय रुद्र मायाके सब भोगोंसे रहित होने पर भी तुम नित्य तरुण उमाके सहित हो, इन प्रजाओंको और पशुओंको भी तुम भयभीत मतकरो, तथा भङ्गभी मतकरो, और हमारी सब प्रजा मात्रको कूछभी रोग मतकरो ॥ १ ॥

इमा रुद्राय तवसे कपर्दिने क्षयद्वीराय प्रभरामहे मतीः ॥ यथा शमसद् द्विपदे चतुष्पदे विश्वंपुष्टङ्-ग्रामे अस्मिन्ननातुरम् ॥ २ ॥

व्याख्याः—सब पापके मूल नाशक रुद्र वीरोंके स्वामी जटाधारी अतिज्ञानी महा गुरुकेलिये, इनस्तुतियोंको हम सम्पादन करते हैं, जिस प्रकार दो पगवाले मनुष्यके लिये और चार पगवाले पशु मात्रके लिये सुख होवे, उसी प्रकार इस गाँवमें समस्त प्राणि मात्र रोगरहित हृष्ट पुष्ट होवें, यही रुद्रसे हमारी प्रार्थना है ॥२॥

याते रुद्र शिवा तनूश्शिवा विश्वाहा भेषजा ॥ शिव ऋतस्य भेषजीतयानो मृड जीवसे ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(विश्वाहा) सबदिन (भेषजा) सुख स्वरूप (शिवा) अघोर है सो अघोर कैसा है (ऋतस्य) रुद्रका (शिवा) शान्त (भेषजी) सुखमय स्वरूप है (रुद्र) हे रुद्र (या) जो (ते) आपका (शिवा) शान्त (तनूः) शरीर है (तया) उस देहसे (नः) हमारे (जीवसे) जीवनको (मृड) सुखी करो ॥

व्याख्याः—सर्वकाल मंगल स्वरूप शान्त सौम्य है वह कैसा है, रुद्रका कल्याणमय सुखस्वरूप है, हे रुद्र जो आपका शान्त देह है उस-देहसे हमारी जीवन अवस्थाको सुखी करो ॥३॥

परि॑णो हे॒ती रु॒द्रस्य॑ वृज्या॒ परि॑त्वे॒षस्य॑ दु॒र्मति॑र्म॒हीगा॑त् ॥ अवा॑स्थि॒रा म॒घव॑द्भ्यस्तनुष्व॒ मीढ्व॑स्तो॒काय॒ तन॑याय मृळ ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—ऋग्वेदीय पंचम सूक्त के १४ मंत्रमें है ॥

व्याख्याः—महादेवका प्रलयकारी आयुध हमको सर्वत्रसे परित्यागे तथा प्रकाशस्वरूप रुद्रकी बडी दुःखदायिनी संहार बुद्धि हमको परित्याग करके अन्यत्र जावे, हे परिणाम रहित एक रस नित्य तरुण अपनी मायासे जगत् रचनेवाले रुद्र, आपके रक्खे हुए विविध रूप सुखोंको आरोग्यादि धन चाहनेवालें उपासकोंके प्रति रक्षाके सहित बाँट देओ तथा पुत्र शिष्य आदिकेलिये और पौत्र प्रशिष्य आदिके निमित्त तुम दया करो ॥ ४ ॥

मीढु॑ष्टम॒ शिव॑तम शि॒वो नः॑ सु॒मना॑ भव ॥ प॒र॒मे वृ॒क्ष आयु॑धन्नि॒धाय॒ कृत्तिं॒ वसा॑न॒ आच॑र॒ पिना॑कं॒ बिभ्र॒दा ग॑हि ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(मीढ्ळुष्टम) हे सर्व कामनाओंकी वर्षा करनेवाले (शिवतम) अति उत्तम मोक्ष देनेवाले (नः) हमारे लिये (शिवः) शान्त (सुमनाः) सुन्दर प्रेमवाले (भव) होवो (परमे) सूर्य मण्डल किरण व्यापी उत्तम (वृक्षे) वृक्षमें (आयुध) त्रिशूल (निधाय) रखकर (कृत्तिवसानः) व्याघ्र चर्मको धारण करके (आचर) सर्वत्र विचरो (पिनाकं) पिनाकको (बिभ्रत्) धारण करिये (आगहि) हमारे पास आईये ॥

व्याख्याः—हे सम्पूर्ण मनोरथोंको पूर्ण करनेवाले अति मोक्ष-रूप उत्तम सुख करनेवाले रुद्र तुम हमारेलिये कल्याण स्वरूप सुन्दर प्रेमवाले होवो ब्रह्म लोकस्थ कैलास, या सूर्य मण्डल किरण व्यापी उत्तम वृक्षमें अथवा भूकैलासमें भयंकर पाशुपत आदिशस्त्रोंको स्थापन करो सिंहचर्म्मरूपी वस्त्रको धारण करके सर्वत्र यज्ञ-स्थानों में विचरो, और शान्तरूप धनुषको धारण करके हमारे पास आगमन करो ॥ ५ ॥

विकिरिद्र विलोहित नमस्ते अस्तु भगवः ॥ यास्ते सहस्रं ँ हेतयोन्यमस्मन्निवं परन्तु ताः ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(विकिरिद्र) हे विविध दारिद्र आदि पापोंको नाश करनेवाले (विलोहित) हे शुद्ध श्वेतस्वरूप (भगवः) हे भगवन् सर्वशक्ति सम्पन्न रुद्र (ते) आपको (नमः) प्रणाम (अस्तु) हो (याः) जे (ते) आपके (सहस्रं) असंख्य (हेतयः) आयुध हैं (ताः) उनको (अस्मत्) हमसे (अन्यं) भिन्न अन्यत्र (निवपन्तु) गिरावें ॥

सुख धाम रुद्रकेलिये प्रणाम है, और उपासकोंकी मोक्ष करने वाले आप अति मंगल स्वरूप रुद्रके लिये प्रणाम है ॥ शिव मद्वैतं चतुर्थं ॥ रुद्रके तुरीय अद्वैत स्वरूपका नाम शिव है ॥ माण्डुक्योपनिषद ॥ शिवः कल्याण रूपो निष्पापस्तस्मै नमः ॥ शिव तरोऽत्यन्तं शिवोभक्तानपिनिः पापान् करोति तस्मै नमः ॥ शिवकल्याण स्वरूप निष्पाप है उसके लिये प्रणाम है। अति सुख स्वरूप उपासकोंको पाप रहित करता है उस रुद्रकेलिये प्रणाम है ॥ सायणभाष्य काण्वसंहिता सप्त दशोऽध्याये षष्ठोऽनुवाकः ॥ समाप्त ॥ ६ ॥

नमः पार्यायचा वार्यायच ॥ १ ॥

सब लोकोंसे परे रहनेवाले रुद्रको प्रणाम है और इस ब्रह्माण्डके मध्यवर्ती रुद्रको भी प्रणाम है ॥ १ ॥

प्रतरणाय चोत्तरणाय ॥ २ ॥

पापसे तरनेका हेतु नित्य कर्मरूप रुद्रको और अज्ञानसे उत्तम ज्ञानके द्वारा पार लगानेवाले रुद्रको भी प्रणाम है ॥ २ ॥

नम स्तीर्थ्यायच कूल्याय च ॥ ३ ॥

सरस्वती कुरुक्षेत्र प्रभास कैलास मानसरोवर आदि तीर्थ व्यापी रुद्रको प्रणाम है और नदी पर्वत तटवर्ती रुद्रको भी प्रणाम है ॥ ३ ॥

नमः शष्प्याय च फेन्याय च ॥ ४ ॥

काँश कुश व्यापीको और नदी आदिके फेन व्यापिकोमी प्रणाम है ॥ ४ ॥

नमः॑ सिकृत्या॑य च प्रवाह्या॑य च ॥ ५ ॥

रेती व्यापीको और प्रवाह व्यापीको भी प्रणाम है ॥ ५ ॥

नमः॑ कि ँ शिलाय॑चक्षयुणाय॑ च ॥ ६ ॥

कँक्कर देश व्यापीको और जलके स्थिरस्थान व्यापीको भी प्रणाम है ॥ ६ ॥

नमः॑ कपुर्दिनै॑च पुलुस्तिनेच ॥ ७ ॥

जलके चक्रावर्त व्यापीको ओर जलके पूर व्यापिको भी प्रणाम है ॥ ७ ॥

नमः॑ इरिण्या॑ यच प्रपुथ्या॑य च ॥ ८ ॥

उपर भूमी व्यापीको और अनेक मार्गव्यापीको भी प्रणाम है ॥ ८ ॥

नमो॒ वृज्या॑यच॒ गोष्ठ्या॑य च॒ ॥ ९ ॥

गोचर भूमी व्यापीको और गोशाला व्यापीको भी प्रणाम है ॥ ९ ॥

नमः॒ स्तल्प्या॑यच गेह्यायच ॥ १० ॥

शयिव्या व्यापीको और घरव्यापीको भी प्रणाम है ॥ १० ॥

नमो॒ हृद्या॑यच निवे॒ष्या॑यच॒ ॥ ११ ॥

प्राणियोके हृदय व्यापीको और नीहार व्यापीको भी प्रणाम है ॥ ११ ॥

नम॒ः काट्या॑ यच गह्वरे॒ष्ठाय॑च ॥ १२ ॥

दुर्गमदेश व्यापीको और पर्वत गुहा व्यापीको भी प्रणाम है ॥ १२ ॥

नम॒ः शुष्क्या॑यच हरि॒त्यायच॒ ॥ १३ ॥

सूखे काष्ट व्यापिको और काष्ट व्यापीको भी प्रणाम है ॥ १३ ॥

नम॑ः पा ᳚ स॒व्या॑य चरज॒स्या॑य च ॥ १४ ॥

धूल व्यापीको और सूक्ष्म उडने वाली रजव्यापीको भी प्रणाम है ॥ १४ ॥

नमो॒ लोप्या॑यचो ल॒प्या॑यच॒ ॥ १५ ॥

भूमी लुप्त बीज व्यापीको और अङ्कुर व्यापीको भी प्रणाम है ॥ १५ ॥

नम॒ ऊर्व्या॑ यच॒ सू॒र्व्या॑यच ॥ १६ ॥

वडवानल व्यापीको और महाप्रलय व्यापीको भी प्रणाम है ॥ १६ ॥

नमः पुर्णायच पर्ण शदायच ॥ १७ ॥

पत्र व्यापीको और भूमी परस्थित पत्रव्यापीको भी प्रणाम है ॥ १७ ॥

नम उद्गुरमाणाचाभिघ्नतेच ॥ १८ ॥

उद्यमशील व्यापीको और दारिद्र-नाशक व्यापीको भी प्रणाम है ॥ १८ ॥

नम आखिदतेच प्रखीदतेच ॥ १९ ॥

प्रकीर्ण पापके अनुसार पापीको दण्ड देनेके लिये दण्ड व्यापीको और महापापीको दण्ड देनेकेलिये महादण्ड व्यापीको भी प्रणाम है ॥ १९ ॥

नमो वः किरिकेभ्यो देवाना ँ हृदयेभ्यो नमो विचिन्वत्केभ्यो नमो विक्षिणत्केभ्यो नम आनिर्हतेभ्यः ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(देवानां) असंख्यत्रिलोक व्यापी रुद्रोंका (हृदयेभ्यः) प्रधान स्वरूप (किरिकेभ्यः) जगत् सृष्टि पालन संहार करनेवाले अग्नि वायु सूर्य व्यापी (वः) आपरुद्रको (नमः) प्रणाम है (विक्षिणत्केभ्यः) विविध पापोंके नाश

व्याख्या:—हे दरिद्र आदि पापोंको नष्ट—करने वाले हे मायाके सब प्रकारके आवरणसे रहित शुद्ध तुरीयस्वरूप हे सर्वैश्वर्य्यसम्पन्न रुद्र जे आपके अपरिमित परशु, पिनाक आदिशस्त्र हैं, उनको हम उपासकोंसे दूर देशमें गिरावें ॥ ६ ॥

सहस्राणि सहस्रशो बाह्वोस्तवहेतयः ॥ तासामीशानो भगवः पराचीना मुखा कृधि ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(भगवः) हे भगवन् (तव) आपके (बाह्वोः) हातोंमें (सहस्राणि) अनेक प्रकारके (सहस्रशः) अनन्त (हेतयः) आयुध हैं (ईशानः) सब देवोंके स्वामी तुम (तासां) उनशस्त्रोंके (मुखा) दुःखप्रदस्वरूपको हमसे (पराचिना) दूर (कृधि) करो ॥

व्याख्या:—हे षडैश्वर्य्यसम्पन्न रुद्र आपके हातोंमें बहुत प्रकारके असंख्य आयुध हैं समस्त देव आदि प्राणिमात्रके स्वामी तुम उन आयुधोंके रोग आदि दुःखदायी मुखको हमसे पराङ्मुख करो ॥ ७ ॥

असंख्याता सहस्राणि ये रुद्रा अधि भूम्याम् ॥ तेषा ँ सहस्रयो जनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जे (असंख्याताः) असंख्य (सहस्राणि) हजारों (रुद्राः) रुद्र (भूम्यां) पृथिवीके (अधि) ऊपर स्थित हैं (तेषां) उनके (धन्वानि) धनुषोंको (सहस्रयोजने) हजारों योजनकी दूरीपर (अवतन्मसि) प्रत्यञ्चा रहित करो ॥

व्याख्या—हे रुद्र आपके जे अगणित हजारों रुद्र भूमीपर अवस्थित हैं उनके धनुषोंको हजारों योजनकी दूरी पर प्रत्यंचा रहित करो ॥ आपकी आज्ञामें सब जगत् है एक रुद्र ही अपनी शक्तिके द्वारा असंख्य स्वरूप है ॥ ८ ॥

अस्मिन्महत्यर्णवेऽन्तरिक्षे भवा अधि ॥ तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र आपके जे असंख्य (भवाः) रुद्रस्वरूप (अस्मिन्) इस (महति) बडे (अर्णवे) जलवाले (अन्तरिक्षे) अन्तरिक्षमें (अधि) स्थित हैं (तेषां) उनके (धन्वानि) धनुषोंको (सहस्रयोजने) हमसे हजारों योजनकी दूरीपर (अवतन्मसि) प्रत्यंचा रहित करडालो ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके जे अपरिमित स्वरूप रुद्र—इस महा दिव्य जलवाले आकाशमें स्थित हैं, उनके धनुषोंको हमसे हजारों योजनकी दूरीपर प्रत्यंचाहीन करडालो, अर्थात् इस मंत्रके जपते ही रुद्रकी आज्ञासे सब रुद्र धनुषकी दोरीको उतार देते हैं ॥९॥

नीलग्रीवाः शितिकण्ठा दिवᳬ रुद्रा उपाश्रिताः ॥ तेषाᳬ सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—हे रुद्र आपके जे अनन्त स्वरूप (नीलग्रीवाः) नील कण्ठवाले (शितिकण्ठाः) श्वेतकण्ठवाले (रुद्राः) रुद्र (दिवं) स्वर्गमें (उपाश्रिताः) विराजमान हैं (तेषां) उनके (धन्वानि) धनुषोंको हमसे (सहस्त्रयोजने) हजारों योजन पर (अवतन्मसि) प्रत्यंचा रहित करो ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके जे असंख्य स्वरूप नील कण्ठरूप जल पीनेवाले और जलपानरहित श्वेतकण्ठवाले रुद्र स्वर्गमें विराजमान हैं उनके धनुषोंको हमसे हजारों योजनकी दूरीपर प्रत्यंचा रहित करो ॥ इस मंत्र जपनेवाले हम उपासकोंकी प्रार्थनासे रुद्र प्रसंन्न होकर रुद्रोंको आज्ञा देकर धनुषोंकी डोरीको उतरवा देता है ॥ १० ॥

नील॑ग्रीवाश्शिति॒कण्ठाः श॒र्वा अ॒धः क्ष॑माचराः ॥
तेषा ँ सहस्रयो॒जनेऽव॒धन्वा॑ नितन्मसि ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(नीलग्रीवाः) नीलकण्ठ (शितिकण्ठाः) श्वेतकण्ठवाले (शर्वाः) शर्व नामवाले रुद्र (अधः) पातालमें (क्षमाचराः) विचरने वाले हैं ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके जे स्वरूप नीलकण्ठ श्वेत कण्ठ-वाले शर्व नाम युक्त रुद्र पातालमें भ्रमणशील हैं, उनके धनुषोंको हमसे हजारों योजन पर डोरी शून्य करो ॥ ११ ॥

ये वृ॒क्षेषु श॒ष्पिञ्ज॑रा॒ नील॑ग्रीवा॒ विलो॑हिताः ॥
तेषा ँ सहस्रयो॒जनेऽवधन्वा॑नितन्मसि ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(नीलग्रीवाः) नीलकण्ठ (विलोहिताः) विशेष लाल वर्णवाले (ये) जे (शष्पिञ्जराः) पीले वर्णवाले रुद्र (वृक्षेषु) वह पीपल आदि सब वृक्षोंके मध्यमें स्थित हैं ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके जे स्वरूप नीलग्रीवा नीलकण्ठ-युक्त पीलेवर्णवाले रुद्र वह पीपल आदि सब वृक्षोंमें स्थित हैं, उनके धनुषोंको हमसे हजारों योजनपर डोरी रहित करो ॥ १२ ॥

ये भूतानामधिपतयो विशिखासः कपर्दिनः ॥
तेषां ँ सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जे (भूतानां) प्राणियोंके (अधिपतयः) अधिपति (विशिखासः) शिखारहित (कपर्दिनः) जटावाले हैं ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके जे स्वरूप प्राणियोंके अधिनायक शिखा रहित हैं और जटाधारी रुद्र है उनके धनुषोंको हमसे हजारों योजनकी दूरी पर-प्रत्यंचा रहित करो ॥ १३ ॥

ये पथाम्पथि रक्षिण ऐलबृदा आयुर्युधः ॥ तेषां
ँ सहस्र योजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जे रुद्र (पथां) ब्रह्माण्डके सर्वत्र विचरनेवाले मार्गोंके स्वामी (पथिरक्षिणः) मार्गपालक (ऐलबृदाः) अन्न समुहसे प्राणियोंको पोषण करने वाले (आयुर्युधः) शस्त्रसे युद्ध करनेवाले रुद्र हैं ॥

व्याख्या—हे रुद्र आपके जे स्वरूप ब्रह्माण्डके चारो मार्गोंके स्वामी मार्ग रक्षक-प्राणि मात्रको अन्न समुहसे पोषण करनेवाले सर्वदा शस्त्रसे युद्ध करनेवाले रुद्र हैं उनके धनुषोंको हमसे हजारों योजनकी दूर पर डोरी रहित करो ॥ १४ ॥

ये तीर्थानि प्रचरन्ति सृकाहस्तानिषङ्गिणः ॥ तेषां
ँ सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जे रुद्र (सृकाहस्ताः) हातमें ढाल धारण करनेवाले (निषङ्गिणः) तलवार धारी (तीर्थानि) पवित्र स्थानरूप तीर्थोंमें (प्रचरन्ति) विचरते हैं ॥

व्याख्या:—हे रुद्र आपके जे स्वरूप ढाल तलवार हातोंमें धारण करनेवाले पवित्रमयतीर्थोंमें भ्रमण करनेवाले रुद्र हैं उनके धनुषोंको हमसे हजारों योजनकी दूरीपर डोरी रहित करो ॥१५॥

येऽन्नेषु विविध्यन्ति पात्रेषु पिबतो जनान् ॥ तेषां सहस्रयोजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जे रुद्र (अन्नेषु) भोजन करते समय अन्नके पदार्थोंमें रोग प्रगट करके (जनान्) प्राणियोंको (विविध्यन्ति) मारते हैं (पात्रेषु) पात्रोंमें जल दूध भरे हुओंकों (पिबतः) पीनेसे मारने वाले हैं ॥

व्याख्या:—हे रुद्र आपके जे स्वरूप रुद्र अन्नके पदार्थोंमें रोगरूप वाणको फेंककर भोजन करनेवालोंको विविध रोगरूप वाणोंसे मारते हैं, तथा पात्रोंमें जल दूध आदि भरे हुए पदर्थोंके पीनेसे प्राणियोंको मारते हैं. प्रत्येक् पदार्थोंमें चेतन है सो ही रुद्र है, सौम्य असौम्य दो भेद युक्त पदार्थ हैं. आरोग्य दायक-पदार्थके भेदसे रुद्रको अघोर कहा है तथा रोगकारक पदार्थके भेदसे रुद्रको घोर कहा है ॥ दुःखके असंख्य भेदसे घोरको भी असंख्य रुद्र कहा है, और सुखके अनन्त भेदसेही अघोरको अनन्त रुद्र कहा है ॥ इसलिये ही अन्न जलके भक्षणसे जे प्राणियोंको रोग होते हैं, उनरोगरूप बाणोंसे घोर रुद्र मारते हैं ॥ उनके धनु-षोंको हमसे हजारों योजनकी दूरीपर प्रत्यंचार रहित करो, अर्थात्

रोग रूप बाणको फेंकनेवाली मूलरोगकी उत्पत्ति स्थान प्रत्यंचाको नाश करो घोर जब शान्त हो जाता है तब घोर ही अघोर रूपसे सुख स्वरूप है ॥ चोर कुत्ता आदि जे विभूति कही हैं वे सब घोर स्वस्वरूपकी महिमा हैं, और जे देव, सुख आदि महिमा कही हैं ते सब अघोरकी विभूति हैं ॥ इससे वह सिद्धहुआ के चराचर–घोर अघोर स्वरूप एक रुद्रही है ॥ उसकी सत्तामें सब सत्ता कल्पित हैं ॥ १६ ॥

य एतावन्तश्च भूया ँ॒सश्च दिशो रुद्रा वितस्थिरे ॥
तेषा ँ॒ सहस्र योजनेऽवधन्वानि तन्मसि ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जे (रुद्राः) रुद्र (एतावन्तः) इतने (च) और (भूयांसः) इनसेभी अधिक (च) ही (दिशः) समस्त दिशाओंमें (वितस्थिरे) अवस्थित हैं ॥

व्याख्याः—हे रुद्र आपके जे स्वरूप रुद्र इस सूक्तमें हैं इतनेही दर्शन देते हैं और इनसेभी अधिक अपरिमित रुद्र हैं उनके दर्शन नही होते वे सर्व दिशाओंमें अवस्थित हैं, उनके धनुषोंको हमसे हजारों योजनकी दूरीपर प्रत्यंचा रहित करो [**चतुष्पथे वै रुद्राणांगृहं** ॥ एक मनुष्य गतिरूप मार्ग ओर, दूसरा पितृमार्ग यमलोक है, तीसरा इन्द्रकोक, चतुर्थ ब्रह्मलोक है, इनचारों मार्ग रूप रुद्रोंका घर है ॥ मै० सं० १ । १० । २०] **त्रिरन्तरिक्षं** ॥ **तिस्त्रोदिवः** ॥ **पृथिवीस्तिस्त्रः** ॥ भूमीके तीन भेद–उष्ण, वर्षा, शीत हैं ॥ अन्तरिक्षके तीन भेद–वायु, विद्युत वरुण लोक है ॥ द्यौके तीन भेद–इन्द्रलोक, प्रजापतिलोक,

ब्रह्मलोक है ॥ ऋ० ४ । ५३ । ५] इनतीनोंभेदोंमें रुद्रही व्यापक है ॥ १७ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येदिवियेषाँ व्वर्षमिषवः ॥ तेभ्यो दश प्राचीर्दश दक्षिणा दश प्रतीचीर्दशो दीचीर्दशोर्ध्वाः ॥ तेभ्यो नमो अस्तु तेनो मृळयन्तु तेनोऽवन्तु ॥ ते यन्द्विष्मोयश्चनो द्वेष्टितमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(ये) जे रुद्र (दिवि) द्यौमें हैं (येषां) जिनके (वर्ष) वर्षाही (इषवः) वाण हैं (तेभ्यः) उन (रुद्रेभ्यः) रुद्रोंकेलिये (नमः) प्रणाम (अस्तु) होवे (दश प्राचीः) दश अङ्गुली वाले दोनों हातोंसे पूर्व दिशामें (दश दक्षिणा) दोनों हातोंसे दक्षिण दिशामें (दश प्रतीचीः) दोनों हातोंसे पश्चिम दिशामें (दशोदीचीः) दोनों हातोंसे उत्तर दिशामें (दशोर्ध्वाः) दोनों हातोंसे ऊपरकी दिशामें (तेभ्यः) उन रुद्रोंसे प्रार्थना करता हूँ (तेभ्यः) उन रुद्रोंको (नमः) प्रणाम (अस्तु) होवे (ते) वे रुद्र (नः) हमारी (अवन्तु) रक्षा करें (ते) वे सब (नः) हमको (मळयन्तु) सुखी करें (ते) वे सब ((यं) जिससे (द्विष्मः) हमद्वेष करते हैं (च) और (यः) जो (नः) हमसे (द्वेष्टि) द्वेष करता है (तं) उसको (एषां) इन रुद्रोंके (जम्भे) डाढमें (दध्मः) हम स्थापन करते हैं ॥

व्याख्याः—जे रुद्र द्युलोकवासी हैं जिनके जल वर्षाही वाण हैं उनरुद्रोंको प्रणाम होवे, दश–अङ्गुली युक्त दोनों हातोंको

जोडकर पूर्व-दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, तथा ऊपरकी दिशामें उन रुद्रोंसे प्रार्थना करता हूँ तथा उनके प्रति प्रणाम होवे, वे रुद्र हमारी रक्षा करें, वेही हमको सुखी करें, वेही सब जिस शत्रुसे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है उस शत्रुको इन रुद्रोंकी डाढ़में हम स्थापन करते हैं ॥ १८ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो येऽन्तरिक्षे येषाँ व्वातइषवः ॥ तेभ्यो दशप्राचीर्दशदक्षिणा दशप्रतीचीर्दशोदीचीर्दशोर्ध्वाः ॥ तेभ्यो नमो अस्तु तेनो मृळयन्तु तेनोऽवन्तु ॥ ते यद्विष्मो यश्चनो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ १९ ॥

व्याख्या:—जे रुद्र अन्तरिक्षवासी हैं जिनरुद्रोंके वायुही बाण हैं उन रुद्रोंको प्रणाम होवे, दश अङ्गुलीयुक्त दोनों हातोंको जोडकर, पूर्व दक्षिण, पश्चिम, उत्तर दिशाओंके सहित ऊर्ध्व दिशामें स्थित उन रुद्रोंसे प्रार्थना करता हूँ तथा उनके लिये प्रणाम होवे वे हमारी रक्षा करें वे ही हमको सुखी करें, वेही सब जिससे हम द्वेष करते हैं और जो हमसे द्वेष करता है, उस शत्रुको इन रुद्रोंकी डाढमें हम स्थापन करते हैं ॥ १९ ॥

नमोऽस्तु रुद्रेभ्यो ये पृथिव्याँय्येषामन्नमिषवः ॥ तेभ्यो दशप्राचीर्दशदक्षिणा दशप्रती चीर्दशोदी चीर्दशोर्ध्वाः ॥ तेभ्यो नमो अस्तु तेनो मृळयन्तु तेनोऽवन्तु ॥ ते यन्द्विष्मो यश्चनो द्वेष्टि तमेषाञ्जम्भे दध्मः ॥ २० ॥

व्याख्याः—जे रुद्र पृथ्वि वासी हैं जिन रुद्रोंके अन्नही बाण हैं, उन रुद्रोंको प्रणाम होवे, दश अङ्गुली युक्त दोनों हातोंको जोडकर, पूर्व दक्षिण, पश्चिम, उत्तर, दिशाओंके सहित ऊपरकी दिशामें स्थित उन रुद्रोंसे प्रार्थना करता हूं तथा उनकेलिये प्रणाम होवे, वे हमारी रक्षा करे वेही हमको सुखी करे वेही सब जिससे हम द्वेष करते हैं, और जो शत्रु हमसे द्वेष करता है, उस शत्रुको इन रुद्रोंकी डाढ़में हम स्थापन करते हैं ॥ [**तिस्रो वैशख्यादिव्यापार्थिवा समुद्रिया** ॥ रुद्रके तीन बाण ही यथाक्रमसे द्यौमें (**समुद्रिया**) अन्तरिक्षमें, भूमीमें है ॥ मै० सं० ३ । ४ । ३] जल, वर्षा, वायु, अन्न आदिसे जो जगत्की उत्पत्ति पालन होता है वही रुद्रके अघोर रूपकी कृपा है तथा जो जल वायु अन्न आदिसे संहार होता है सोही रुद्रके घोर स्वरूपके बाण हैं, कार्य क्रिया करणकी उपाधिसेही एकरुद्रके ही अनेक रुद्र हैं ॥ २० ॥

काण्वसंहिता सप्तदशेऽध्यायेऽष्ट मोऽनुवाकः । समाप्त ॥

इति श्री यजुर्वेदीय रुद्र ॥ प्रथम सूक्त ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य स्वामी शंकरानन्दगिरि विरचित ॥ गौरी व्याख्या समाप्त ॥१०॥

॥ अथ यजुर्वेदीय द्वितीय सूक्तम् ॥

एक एव रुद्रो न द्वितीयाय तस्थे ॥ आखुस्ते रुद्र पशुस्तं जुषस्वैषते रुद्रभागः सहस्वस्राऽम्बि क्यातं जुषस्व भेषजंगवेऽश्वाय पुरुषाय भेषजमथो अस्मभ्यं भेषज ँ सुभेषजम् ॥ यथा ऽसति सुगं मेषाय मेष्यै ॥

अन्वयार्थः—(एकः) अद्वैत स्वरूप:(एव) ही (रुद्रः) रुद्र (तस्थे) अवस्थित है (द्वितीयाय) उससे भिन्न दूसरा कुछ भी (न) नहीं है (रुद्र) हे रुद्र (ते) आपके घोर रूपका (आखुः) मूषक (पशुः) पशु है (तं) उसका (जुषस्व) सेवन करो (रुद्र) हे रुद्र (ते) आपका (एषः) यह (भागः) भाग है (तं) उसको (स्वस्रा) बहिन (अम्बिकया) उमाके (सह) साथ (जुषस्व) सेवनकरो (गवेऽश्वाय) गौ घोडेके लिये (भेषजं) सुखकरो (पुरुषाय) भृत्यके

लिये (भेषजं) सुख करो (अस्मभ्यं) हम सबके लिये (भेषजं) इस लोकका सुख करो (अथो) और मरणके अनन्तर (सुभेषजं) परलोकमय उत्तम सुख करो (मेषाय) मेढाकेलिये (मेष्यै) भेडके लिये (यथा) जिस प्रकार (सुगंन) सुख (असति) होवे उस प्रकार करो ॥ तै० सं० १। ८। ६। १॥

व्याख्या:—एक अखण्ड अद्वैत स्वयं प्रकाशी रुद्र अपनी अर्धांगनाके सहित अवस्थित है उस रुद्रसे भिन्न चेतन और दूसरा न कोई हुआ नहोगा अपनी मायाके द्वारा सर्वत्र ओतप्रोत हो रहा है, हे रुद्र आपके जे घोर अघोर स्वरूप हैं उसमें से घोर स्वरूपका मूषक पशु है गौ आदिको न मारता हुआ उस मूषकको ही मारनेके लिये स्वीकार करो. ह ेन आपका यह भाग है तुम अपनी अर्धाङ्गना रूप बहिन उमाके सहित उस उन्दरको वाणसे लक्ष्य करके अंगिकार करो—तथा गौ घोडेको सुख करो—नोकरको सुखी करो हम सबको इस लोकके सुखसे सुखी करो—और मरणके पश्चात् परलोकका सुन्दर सुख करो बकरी भेडके लिये जिस प्रकार सुख होवे उस प्रकार करो ॥ १ ॥

त्र्यम्बकं यजामहे सुगन्धिरयि पोषणम् ॥ उर्वा
रुकमिव बन्धनान्मृत्यो र्मुक्षीयमामृतात् ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(रयि पोषणं) प्रजाके पालन करनेवाले (सुगन्धि) उत्तम व्यापक यशवाले (त्रिअम्बकं) मायाके त्रिविध स्वरूपको धारण करनेवाली उमाके स्वामी रुद्रको (यजामहे) पूजन करते हैं (उर्वा रुकंइव) जैसे पकी हुई कँाकडी वेलके बन्धनसे छूट जाती है. तैसे ही हे रुद्र आपके (मृत्योः) घोर

रूप मरणके (बन्धनात्) बन्धनसे (मुक्षीय) मुक्त करो (अमृतात्) अघोर रूप जीवनसे (मा) मत छुडावो कपिष्ठल कठ सं० ८ । १० ॥

व्याख्याः—प्रजा मात्रके पालन कर्त्ता—स्थूलकार्य—सूक्ष्म क्रिया—सूक्ष्मस्थूलकी अप्रगट अवस्थाही माया है इस त्रिविध मायाको धारण करनेवाली नित्य ज्ञान स्वरूप उमा है, उसका जो स्वामी है सो त्र्यम्बक है सो कैसा है, सर्वत्र व्यापक चेतन रूपसे उत्तम यशवाला है, उस रुद्रका हम यजन करते हैं. जैसे पकी काँकडी अपने बन्धनसे छूट जाती है. तैसे ही हे रुद्र आपके घोर रूप मरण बन्धनसे हमको छुडावो ओर आपके जीवनरूप अघोर अमृतसे हमको कभी मत छुडावो ॥ २ ॥

अव॑ रु॒द्रमदीमह्यव दे॒वं त्र्यम्बकम् ॥ यथा॑ नो॒ वस्य सस्कर॒द्यथा॑ न॒ऽश्रेयसुस्कर॒ यथा॑नो व्यवसाय॒-यात् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(त्र्यम्बकं) अम्बिकाके पति (देवं) व्यापक (रुद्रं) रुद्रको (अव) सबसे श्रेष्ठ जानकर (अवादीमहि) सेवन करते हैं (यथा) जिस प्रकार (नः) हमको (वस्यसः) उत्तम धनसे युक्त (करत्) करे (यथा) जिस प्रकार (नः) हमको (श्रेयसः) कल्याण मार्गसे युक्त (करत्) करे (यथा) जिस प्रकार (नः) हमको (व्यवसाययात्) सबकार्योमें निश्चय युक्त करे ॥ माध्यन्दिनीय सं० ३ । ५८ ॥

व्याख्याः—अम्बिकाका स्वामी व्यापक रुद्रको सबसे उत्तम जानकर हम रक्षाके लिये सेवन करते हैं वह रुद्र जिस प्रकार हमको उत्तम धनसे युक्त करे—जिस प्रकार हमको कल्याण मार्गसे युक्त करे, जिस प्रकार हमको सब कार्योंमें निश्चय युक्त करे. उसी प्रकार परेणा करे ॥

एतत्ते रुद्रा वसन्ते नपरो मूजवतोतीहि ॥ अवतत धन्वा पिनाका वसङ्कृत्तिं वासाऽअहिं ऽ सन्नऽशिवो तीहि ॥ ४ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (ते) आपका (एतत्) वह (अवसं) अन्न है अन्नके द्वारा (तेन) उस (अवतत धन्वा) दोरी रहित धनुष साथ (पिनाक अवसः) धनुषसे रक्षा करने वाले (मूजवतः) मूँजवान् पर्वतके (परः) परे (अतीति) गमनकरो (कृतिवासाः) सिंहचर्ममय वस्त्र धारण करने वाले (नः) हमारी (अहिंसन्) हिंसा न करते हुए (शिवः) हमारी पूजासे संतुष्ट होकर (अतीहि) सोमकी उत्पत्ति वाले पर्वतको उलंघन करके जाओ ॥ माध्यन्दिनी सं० ३ । ६१ ॥

व्याख्याः—घोर रूप रुद्रका वास सोमकी उत्पत्तिवाले मूँजवान्—हेमकूट—हिन्दुकुश पर्वत पर वास है हे घोर देहधारी रुद्र आपका यह हवि भाग है उसके द्वाराही डोरी रहित धनुषके साथ धनुषसे रक्षा करने वाले मूँजवान् पर्वतके परे प्रस्थान करो सिंह चर्ममय वस्त्रधारी हमको न मारते हुए—हमारी प्रार्थनासे प्रसन्न

होकर हेमकूटको उलंघंन करो ॥ अर्थात् हमारे सब रोगोंको संग लेजाकर हिन्दुकुश पर्वतके परे त्याग करो ॥ ४ ॥

रुद्रैषते भागस्तेना वसेन परो मूजवतोऽती हि ॥ पिनाकहस्तः कृत्तिवासा अवततधन्वा ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(रुद्र) हे रुद्र (ते) आपका (एष) यह (भागः) भाग है (तेन) उस (अवसेन) हविसे प्रसंन होकर (मूजवतः) मूँजवान्‌के (परः) परे (अतीहि) प्रस्थान करो (पिनाकहस्तः) हातमें शान्त धनुष धारी (कृतिवासाः) सिंहचर्म धारी (अवततधन्वा) प्रत्यंचा रहित धनुषके साथ गमन करो ॥ मै. सं० १ । १० । ४ ॥ हे रुद्र आपका यह हवि भाग है उस हवि भागसे प्रसंन होकर मूँज-वान् पर्वतके परे प्रस्थान करो—तुम सिंहचर्म धारी पिनाकपाणी प्रत्यंचा रहित धनुषके सहित गमन करो [**पिनाक हस्तः** ॥ हातमें धनुषको धारण करनेवाले रुद्र ॥ काठक सं० ९ । ७] **कृत्तिवासाः पिनाक हस्तः** ॥ **तेजोऽसितेजो मयिधेहि** ॥ सिंह चर्म्म वस्त्रधारी पिनाक पाणि तेज स्वरूप है मेरेमें तेजको स्थापन करे ॥ कपिष्ठल कठ सं० ८ । १०] घोरको मूँजवान्‌में जानेकी प्रार्थना है तथां अघोरसे प्रार्थना है वह मेरेमें तेज स्थापन करे ॥ [**इन्द्रो हिषोडश्यात्माने** ॥ इन्द्रही षोडश कला स्वरूप है ॥ काठक सं० १४ । १०] **इन्द्रो वै वज्रः** ॥ इन्द्रही वज्र है ॥ **बहुरूपो भवति** ॥ अनन्त स्वरूप धारण करता है ॥ मै० सं० २ । ५ । ११] **इन्द्रस्य बाहूस्थविरौ युवानावना धृष्यौ** ॥ ऐश्वर्यवान् रुद्रके दोनों हातरूप घोर अघोर नित्य

तरुण मायिक देहधारी किसीके वशमें न आने वाले हैं ॥ साम सं० उत्तरार्चिक २१ । ३ । ३] रुद्रका नामही इन्द्र है घोर रूप अग्निके दो सौ सूक्त तथा अघोररूप इन्द्रके अढाई सौ सूक्त ऋग्वेदमें हैं [सूर्यो वा इन्द्रः ॥ सूर्य ही इन्द्र है ॥ पशुर्वा अग्निः ॥ सबको देखनेवाला ही अग्नि है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ५–३] पशवो वा आदित्यः ॥ सबको प्रकाश करनेवाला ही सूर्य है ॥ रुद्रो वा अग्निः पशव आदित्यः ॥ रुद्रही अग्नि है तथा प्रकाश रूप किरण समुह सूर्य है ॥ कपिष्ठल० सं० ४४ । ६] इन घोर अघोर रूप अग्नि सूर्यके मध्यमें सब देवता मनुष्य भोग भोगते हैं ॥ ५ ॥

धा मच्छ दग्नि रिन्द्रो ब्रह्मादेवो बृहस्पतिं ÷ ॥
सचतसो विश्वेदेवा यज्ञम्प्रावन्तु नङ्शुभे ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(धामच्छत्) अपने २ लोकोंको अपने २ तेजसे आच्छादित करने वाले (अग्निः) अग्नि भूलोकको तेजसे पूर्ण करता है (इन्द्रः) सूर्यद्यौको पूर्ण करता है (बृहस्पतिः) अथर्वा प्रजापति तपलोकको अपने तेजसे व्याप्त करता है (ब्रह्मा) ब्रह्मा सत्यलोकको अपनी अपरिमित ऐश्वर्य्यसे पूर्ण करता है (देवः) रुद्र समस्त ब्रह्माण्ड व्यापी है (सचतसः) एक चेतन रुद्रके विभुति रूप स्वभाव वाले (विश्वे देवाः) सब देवता (नः) हमारे (यजं) यज्ञ ध्यान कर्त्ताको (शुभे) उत्तम स्वर्गमें (प्रावन्तु) स्थापन करें ॥ मा० सं० १८ । ७६ ॥

व्याख्याः—अपने २ लोकोंको अपने २ प्रभावसे वशमें कर रखा है अग्निने भूलोकको–सूर्यने द्यौको अथर्वाने महः जनः

तपलोकको—ब्रह्माने सत्यलोकको रूद्रने अपने तेजसे सब जगत् मात्रको व्याप्त कर रखा है—एक रुद्रकी हीये सब देवता विभूति स्वरूप महा तेज सम्पन्न हैं. वे सब देवता हमारे यज्ञ ध्यानकर्ताको उत्तम स्वर्गमें स्थापन करे ॥ ६ ॥

पञ्चस्वन्तऽ पुरुषऽ आविवेश तान्यन्त ः पुरुषऽ अर्पितानि ॥ एतत्वात्रप्रति मन्वानोऽअस्मिन मायया भवस्युत्तरोमत् ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(पुरुषः) रुद्र (पञ्चस्तु) पाँच शरीरोंके (अन्तः) मध्यमें (आविवेश) प्रवेश करके स्थित है (तानि) वे पाँच (पुरुषे) रुद्रके (अन्तः) मध्यमें (अर्पितानि) अवस्थित हैं (अत्र) इस प्रश्नमें (त्वा) तुमको (एतत्) यह उत्तर (प्रतिमन्वानः) प्रत्यक्ष जानकर समाधान करता (मायया) अद्भुत चातुर्य्य यक्ति युक्त (अस्मि) अनुभव करनेवाला मैं हूँ (मत्) मेरेसे (उत्तरः) उत्तर सुननेवाला तुं अधिक बुद्धिमान् (न) नही (भवसि) होगा ॥ मा० सं० २३ । ५२ ॥

व्याख्याः—रुद्र पाँच स्थानोंमें विराजमान है और रुद्रके मध्यमें वे पाँच स्थान विराजमान हैं इस प्रश्नमें तुमको यह उत्तर प्रत्यक्ष साक्षात्कार करके समाधान किया—अद्भुत चातुर्य्यमय मेधाके द्वारा अनुभव करने वाला मैं हूँ मेरेसे उत्तर सुननेवाला तू प्रश्न करता अधिक बुद्धिमान् नहीं हो सकता क्योंकि तु अनुभव हीन है—जब अनुभव करेगा तब मेरे समान होगा [पञ्चवो वै सलिलं ॥ पञ्चानां त्वासलिलानां ॥ पांच प्रकाशही सलिल

नामवाले हैं ॥ जो मैं तेरेको उत्तर देता हूँ सो तू सुन प्रलय और उत्पत्ति रूपसे गमन आगमन करनेवाले जे पंचभूत हैं वेही सलिल नाम युक्त हैं ॥ कार्यात्मक पञ्च भूतोंके जे क्रियात्मक पाँच स्थान हैं वेही चक्षु—सूर्य—चन्द्रमा—विद्युत् (आपः) ब्रह्मलोक पाँचमा, जना स्थान है ॥ काठक सं० ३२ । ६] **अदितिः पञ्चजना इति** ॥ प्राणशक्ति रुप माया पाँच प्रगट स्वरूप है ॥ **ये देवा असुरेभ्यः पूर्वं पञ्चजना आसन्** ॥ जिन अधिदैव अध्यात्म रुप देव दैत्योंसे पहिले पाँचजन प्रगट हुए ॥ **य एवासावादित्ये पुरुषः** ॥ इस सूर्यमें जो चेतन है सोही रुद्र पुरुष है ॥ **यश्चन्द्रमसि** ॥ जो रुद्र उमारूपसे चन्द्रमामें है ॥ **यो विद्युति** जो रुद्र विजलिमें पार्वति के सहित महेशरूपसे है ॥ **योऽप्सु** ॥ जो रुद्र सत्य लोकमें ब्रह्मा स्वरुपसे है ॥ **योऽयमक्षन्नन्तरेव एवते** ॥ जो रुद्र इस नेत्रके मध्यमें इन्द्ररूपसे विराजमान है यही चेतन पुरुष वे सवदेवता स्वरूप है ॥ **योऽयं चक्षुषि पुरुष एष इन्द्र एष प्रजापतिः** ॥ जो प्रत्येक् प्राणिमात्रके नेत्रमें यह चेतन पुरुष है यही इन्द्र यही ब्रह्मा है ॥ यही नेत्र पुरुष मन उपाधिसे जीव और चक्षु उपाधिसे साक्षि द्दष्टा पुरुष है ॥ इन्द्र नाम समष्टि व्यष्टि उपाधिक चेतनका है ॥ सामवेदीय जैमिनीय ब्रा० १ । १३ । २ । ७ ॥ १ । १४ । १ । १०] **असौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः** ॥ यह सूर्य मण्डलस्थ चेतनही यह इन्द्र यही पशुपति है है ॥ कपिष्ठल कठ सं ३४ । २] **अथाधिदैवतं चक्षुः श्रोत्रं मनो वाक् प्राणस्ता एताः पञ्च देवता इमं विष्टाः पुरुषं पञ्चो है वैता देवता अयं विष्टः पुरुषः सोऽत्राऽऽलोमभ्य आनखेभ्यः सर्वः साङ्गः आप्यते** ॥ अव मनुष्यादिके शरीरोंमें अधिदेव स्वरूपही अध्यात्मरूप से प्रविष्ट हैं—नेत्र—श्रोत्र मनवाणी—

प्राणये पाँच अध्यात्मरूप हैं–सूर्य–आकाश–चन्द्रमा–अग्नि–वायु ये पाँच अधिदैव हैं ॥ ये पाँच देवता इस मनुष्य देहमें प्रविष्ठ हुए–जिस प्रकार देवोंने शरीरमें प्रवेश किया उसी प्रकार इस पुरुषने भी पाँच अधिदैव अग्नि–सूर्य चन्द्रमा विद्युत् सूत्रात्मामें प्रवेश किया अध्यात्मरूप नेत्र आदि–अधिदैवोंमें और अधिदैव सूर्यादि अध्यात्म स्वरूप नेत्रादियोंमें परस्पर ओतप्रोत हो रहे हैं–रुद्र सूर्यादि अधिदैवोंमें पुरुषरूप व्यापक हो रहा है सोही इस मनुष्य देहमें केशोंसे लेकर नखों पर्य्यन्त सब अंगमें व्यापक रूपसे प्राप्त हुआ दीखता है ॥ ऐतरेयारण्यक १ । ३ । १६] मनसि वै सर्वे कामाश्रिता मनसाहि सर्वान्कामान्ध्यायति ॥ मनमेंही सम्पूर्ण कामना अवस्थित हैं मनके द्वारा चेतन पुरुष ही सब कामनाओंको चिन्तवन् करता है ॥ इस मनकी उपाधिसे ही चक्षुस्थित चेतन जीव है ॥ ऐ० आरण्यक १ । ३ । १०] पञ्चहिदशतो भवन्ति ॥ पाँच ही दश होते हैं ॥ ऐ० आरण्यक १ । ३ । १६] यह एक रुद्रकी महिमा है ॥ ७ ॥

यो भूतानामधिपतिर्यस्मिँल्लोका अधिश्रिताः ॥ यईशे महतो महा ँ स्तेन गृह्णामि त्वा महम्मयि गृह्णामि त्वामहम् ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो रुद्र (भूतानां) प्राणियोंका (अधिपति) श्रेष्ठ महाकारणरूप स्वामी (यस्मिन्) जिस महेश्वर अधिष्ठानमें (लोकाः) अनंत त्रिलोक (अधिश्रिताः) अवस्थित हैं (महतः) महान्से भी (महान्) महान् (यः)

जो रुद्र (ईशे) स्वामी है (तेन) उस अद्वैत अपरोक्षके द्वाराही (त्वां) तुम अधिकारी शिष्यको (अहं) मैं सर्व व्यापक स्वरूपका (गृह्नामि) उपदेश करता हूँ (मयि) अद्वैत स्वरूपको प्राप्त हुए मेरेमेंही (त्वा) तेरेको (अहं) मैं (गृह्नामि) स्वात्मरूपसे अङ्गिकार करता हुँ ॥ काण्व सं० ३।२।३।१॥

व्याख्या:—गुरु शिष्यको अपरोक्ष ज्ञानका उपदेश करता है–हे शिष्य मैं तेरेको अध्यात्म ज्ञानका अधिकारी जान कर उपदेश करता हूँ तू श्रवणके सहित मनन कर–जो रुद्र समस्त प्राणियोंका श्रेष्ठ महाकारण स्वरूप स्वामी है–जिस रुद्रमें असंख्य त्रिलोक अवस्थित हैं जो रुद्र अव्याकृत–सूत्रात्मा–महाविराट्से भी उत्तम है सोही स्वामी मेरा मूल स्वरूप है उस अद्वैत अपरोक्षके द्वाराही मैं सर्व व्यापक हूँ अद्वैत स्वरूपको प्राप्त हुए मेरेमें ही तेरेको स्वात्मरूपसे ग्रहण करता हूँ ॥ जो मैं हुं सोही तू है यही सत्य ज्ञान है ॥ ८ ॥

यो रुद्रो अग्नौयो अप्सुयं ओषधीषुयोवन-स्पतिषु ॥ यो रुद्रो विश्वा भुवना विवेश तस्मै रुद्राय नमो अस्तु देवाः ॥ ९ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो (रुद्रः) रुद्र (अग्नौ) व्यापक तेज मात्रमें (यः) जो (अप्सु) व्यापक मात्र जलोंमें (यः) जो (ओषधीषु) पुष्पवाली अन्नादि ओषधियोंमें (यः) जो (वनस्पतिषु) विना पुष्पवाले वृक्षोंमें (यः) जो (रुद्रः) रुद्र (विश्वा) समस्त (भुवना) प्राणिमात्रोंमें (आविवेश) प्रविष्ट हुआ है–जिसको (देवाः) देवता प्रणाम करते हैं (तस्मै)

उस (रुद्राय) रुद्रके लिये (नमः) प्रणाम (अस्तु) होवे काठक सं० ४० । ५ ॥

व्याख्या:—जो रुद्र अग्निमय क्रिया मात्रमें जो रुद्र व्यापक जलरुप कार्यमें—जो रुद्र पुष्पवाली ओषधियोंमें जो रुद्र पुष्प रहित वट आदि वृक्षोंमें जो रुद्र समस्त प्राणियोंके शरीरोंमें प्रवेश करके विराजमान है जिसको सव देवता—प्रणाम करते हैं उस स्वयं प्रकाशी चेतन घनके लिये मेरा नमस्कार हो ॥ ९ ॥

अहँ पुरस्तादहं मवस्ता दह ँ विश्वस्य भुवनस्य राजा ॥ अहँ ँ सूर्यमुभयतो ददर्श यदन्तरिक्षं तदुनः पिताभूत ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(अहं) मैं (परस्तात्) ऊपर हूँ (अहं) मैं (अवस्तात्) नीचे हूँ (अहं) मैं (विश्वस्य) सब (भुवनस्य) ब्रह्माण्डका (राजा) स्वामी हूँ (यत्) जो (अन्तरिक्षं) आकाशमें (तत्) सो (उ) ही (नः) हमारा (पिता) पालन करता (भूत्) हुआ (उभयतः) अध्यात्म अधिदैवरूपसे (अहं) मैं (सूर्यं) सूर्यस्थ रुद्रको (ददर्श) अभेद रूप देखता हूँ ॥ मै० सं० १ । ३ । २६ ॥

व्याख्या:—मंत्र दृष्टा ऋषि अपने स्वरूपको सर्व व्यापक आत्मरूपसे वर्णन करता है—जो आकाशके मध्यमें तपता है सोही हम सबका पालन करता पिता हुआ है—अध्यात्म और अधिदैव रूपसे अवस्थित हुए सूर्यमण्डलस्थ रुद्रको मैं अभेदरूपसे देखता हूँ—अध्यात्म उपाधिसे मैं भरद्वाज मुनि हुँ ओर अधिदैव स्वरूपसे मैं सूर्यस्थ भर्ग हुँ—मायाका अधिष्ठान रूपसे समस्त ब्रह्माण्डवर्ती

लोकोंका अधिपति हूँ. मैं ऊपर नीचेतिर्छा सर्वत्र व्यापक हूँ. मैं निराकार रुद्र हूँ [ब्रह्म वै वसुक्रः ॥ वसुक्र ऋषिही ब्रह्म है ॥ जो अपने निरुपाधिक स्वरूपको जान जाता है सोही परब्रह्म तुरीय स्वरूप रुद्र है ॥ ऐत्तरेयारण्यक १।२।२।] महर्षि वसुक्र अपने रुद्र स्वरूपको साक्षात्कार करके मुक्त हुआ ॥ १० ॥

तदे॒वा॒ग्निस्तदा॑दि॒त्य स्तद्वा॒युस्तदु॑ च॒न्द्रमाः॑ ॥ तदे॒व शु॒क्रन्त दू॒ब्रह्म॒ तदा॒पस्तत्प्र॒जाप॑तिः ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—(तत्एव) सोही निराकार रुद्र (ब्रह्म) मायिक महेश्वर (तत्) सोही (आपः) व्यापक प्राणशक्ति (तत्) सोही (प्रजापतिः) ब्रह्मा है (तत्) सोही (शुक्रं) बीज (तत्) सोही (अग्निः) अग्नि (तत्एव) सोही (वायुः) वायु (तत्) सोही (आदित्यः) सूर्य (तत्) सोही (उ) और (चन्द्रमाः) चन्द्रमा है ॥ काण्व सं० ४। ५।३।१॥

व्याख्याः—सो निराकार रुद्रही महेश्वर—प्राणशक्ति—जगत् कारण बीजरूप संकल्प है सोही ब्रह्मा है वही ब्रह्मारूप रुद्रही अग्नि वायु सूर्य चन्द्रमा आदि सब है—उसकी सत्तामें सबकी सत्ता हैं ॥ ११ ॥

सर्वे॑ नि॒मेषा॑ ज॒ज्ञिरे॑ वि॒द्युतः॒ पुरु॑षा॒दधि॑ ॥ नैन॑मू॒र्ध्वन्न ति॒र्यञ्च॒न्न मध्ये॒ परि॑जग्रभत् ॥ १२ ॥

अन्वयार्थ—(विद्युतः) विशेष प्रकाशमान (पुरुषात्) रुद्रसे (सर्वे) सब (निमेषाः) पलकसे लेकर मूहुर्त आदि

(जज्ञिरे) उत्पन्न हुए हैं (अधि) उत्तम कारण रूप (एनं) इन रुद्रको (ऊर्ध्वं) ऊँचेमें (न) नहीं (परिजग्रभत्) ग्रहण कर सकता है (तिर्यञ्चं) सर्वत्रसे (न) नहीं (मध्ये) मध्यमें भी (न) नहीं पकड सकता है ॥ काण्व सं० ४ । ५ । ३ । २ ॥

व्याख्या—विशेष एकरस परिपूर्ण स्वयं प्रकाशी रुद्रकी मायारूप प्राणशक्तिसे सब निमिष कला मूहुर्त दिन आदि प्रगट हुए है. उस विश्वकारण महेश्वरको अपरोक्ष ज्ञान हीन मनुष्य ऊपरके और नीचेके लोकोंमें चक्षु आदि इन्द्रियोंसे ग्रहण नहीं कर सकता है तिरछा सर्वत्रसे नहीं ग्रहण करसकता है—बीचमें भी दर्शन नहीं कर सकता है ॥ १२ ॥

न तस्य प्रतिमा अस्ति यस्य नाम महद्यशः॥१३॥

अन्वयार्थः—(तस्य) उसकी (प्रतिमा) उपमा (न) नहीं (अस्ति) है (यस्य) जिसका (नाम) प्रसिद्ध (महत्) बडा (यशः) महिमारूप ब्रह्मा है ॥ काण्व सं० ४ । ५ । ३ । ३॥

व्याख्या—उस रुद्रकी उपमादेने योग्य कोई वस्तु नहीं है वह सर्वदा एक रस अखण्ड चेतन घन सब प्रकारके व्यवधानोंसे रहित निर्मल शान्त निराकार है और माया उपाधिसे जिसका नाम ब्रह्मा है—यही समष्टि रूप ब्रह्मा—व्यष्टिरूप बडा यशवाला है ॥ जिस अधिष्ठानमें समष्टि व्यष्टि सत्ता कल्पित है तो उस विकारी सत्ताकी उपमा निर्विकारीमें कभी नहीं घट सकती है [न तस्य प्रतिमा अस्ति ॥ इति च ब्रह्मणोऽनुप मानत्वं दर्शयति ॥ यह श्रुतिभी ब्रह्मका उपमा रहित स्वरूप बताती है ॥ ब्रह्म सूत्र०

२ । ३ । ७ ॥ ४ । ३ । १४ । शंकरभाष्य] प्रतिमाका अर्थ उपमा है ॥ १३ ॥

एषोह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वोह जातस्स उगर्भे अन्तः ॥ सएव जातस्स जनिष्यमाणः प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सर्वतो मुखः ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(एषः) यह (ह) प्रसिद्ध (देवः) रुद्र (ह) ही (पूर्वः) चराचर विश्वकी उत्पत्तिके पहिले (गर्भे) अव्याकृतके (अन्तः) मध्यमें (जातः) उत्पन्न हुआ (सउ) सोही ब्रह्मा (सर्वाः) सब (प्रदिशः) दिशाओंमें व्यापक होकर (अनु) पीछे सूर्य स्वरूपसे (तिष्ठति) स्थित होता है (सः) सो ब्रह्मारुप सूर्य (एव) ही (जातः) शरीरोंमें जीवरूपसे प्रगट हुआ (सः) सोही (जनिष्यमाणः) भविष्य शरीरोंमें होगा (प्रत्यङ्) प्रत्येक (जनाः) वर्तमान शरीरोंके मध्यमें (विश्वतः) सर्वत्रसेव्यापक (मुखः) स्वरूपवाला है ॥ काण्व सं० ४ । ५ । ३ । ४ ॥

व्याख्याः—यह अनादि प्रसिद्ध रुद्र अपनी मायाके द्वाराही सब जगत्की उत्पत्तिके पहिले प्राणशक्तिके मध्यमें ब्रह्मारूपसे प्रगट हुआ–सोही ब्रह्मा सब प्रदिशाओंमें कार्यक्रियारूपसे व्यापक होकर पीछे सूर्यरूपको धारण करके स्थित हुआ सो ब्रह्मात्मक सूर्यस्थ पुरुषही शरीरोंमें जीव नामसे प्रगट हुआ सोही भविष्य शरीरोंमें प्रकाशित होगा और प्रत्येक् वर्तमान शरीरोंके मध्यमें शिरसे लेकर पग पर्य्यन्त व्यापक स्वरूपवाला है ॥ जैसे तीनों कालवाले घटोंमें सूर्य प्रति-

बिम्ब है ।। तैसेही तीन कालवाले शरीरोंमें सूर्यस्थ भर्गही जीव रूपसे हैं ॥ १४ ॥

यस्मान्न जातः परो अन्यो अस्ति य आविवेश भुवनानि विश्वा ॥ प्रजापतिः प्रजया सꣳरराणस्त्रीणि ज्योतींꣳषि सचते स षोळशी ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(यस्मात्) जिससे (परः) उत्तम (अन्यः) दूसरा (न) नहीं (अस्ति) है (यः) जो (विश्वा) सब (भुवनानि) लोकोंको रचनेके लिये अव्यक्तमें ब्रह्मारूपसे प्रविष्ठ हुआ सोही (प्रजापतिः) ब्रह्मा है (सः) वह ब्रह्मा (षोळशी) षोडशकलात्मक समष्टि स्वरूप है—ब्रह्मा अपनी सूक्ष्मदेहकी स्थूल देह रूप विराट् (प्रजया) प्रजाके द्वारा (सं) क्रमपूर्वक (रराणः) विचाररूप रमण करता हुआ (त्रीणि) अग्नि—वायु-सूर्यात्मकतीन (ज्योतींषि) प्रकाशोंके आकारोंको धारण करके (सचते) सेवन कारता है ॥ कण्व सं० १ । ८ । ११ । १ ॥

व्याख्या:—जिस रुद्रसे उत्तम और कोईभी नहीं है जो सब लोकोंके सहित प्राणियोंको रचनेके लिये प्राणशक्तिमें ब्रह्मारूपसे प्रविष्ट हुआ-सोही अव्याकृत गुहावासी ब्रह्मा है. वह ब्रह्मा षोडश कलामय समष्टि स्वरुप है. ब्रह्माने अपनी सूत्रात्मा देहसे प्रगट हुई विराट् देहमयी प्रजाके द्वारा भूमी अन्तरिक्ष द्यौकी कल्पना करके उन तीनों आधारोंमें क्रमपूर्वक विचार करता हुआ अग्निवायु सूर्य इन तीन ज्योतिरूप आधेयोंको रचकर स्वयं उनमें चेतन रुपसे विराजमन हुआ—मैं रुद्र स्वरुप ब्रह्मा तीनोंका स्वामी हूँ इस तादात्म्य रुपसे सेवन करता है ॥ १५ ॥

वेनस्तत्पश्यन्निहितं गुहा सद्यत्र विश्वम्भवत्येकनीळम् ॥ तस्मिन्निदं सं च वि चैति सर्वं स ओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु ॥ १६ ॥

अन्वयार्थः—(वेनः) चेतन आत्माही (गुहा) सूर्यमण्डल गुहामें (निहितं) स्थित है (सत्) नाश रहित (तत्) उसको (पश्यत्) देखता है (यत्र) जिस मण्डलमें (विश्वं) सबकार्य जगत् (एकनीळं) एक पादरुप स्थान (भवति) है (च) और (तस्मिन्) उसीमें (इदं) यह (सर्वे) सब जगत् (वि) सर्गकालमें उत्पन्न होता है (च) और (समेति) प्रलयमें लय होता है (सः) सो (विभूः) व्यापक (प्रजासु) पालन कालके समय प्रजाओंमें (ओतः) वस्त्रके सीधे तन्तुओंके समान चक्षुस्थित पुरुष है (च) और (प्रोतः) तिरछे तन्तुके समान मनः स्थित पुरुष है ॥ काण्व सं० ४ । ५ । ३ । ५ ॥

व्याख्याः—चेतन आत्मा अव्याकृत-सूर्य मण्डल-हृदयरुप गुहा में विशेष उपलब्धि रुपसे स्थित है. जो मनुष्य उसको अभेद रुपसे देखता है सोही देखता है. जिस गुहा व्यापी आत्मामें सब बाह्य कार्यात्मक जगत् एक पादरुप घोंसला स्थान है—यह एक पाद-मयनीडत्रिपाद कारण वृक्षमें लटकता है—बहिर्मुख जीवरुप पक्षी त्रिपादरुप वृक्षमें वास न करता हुआ—एक पाद कार्यमय घोंसलेमें आवागमन करता है. और उस त्रिपाद अमृतमें एक पाद यह सब चराचर जगत् सृष्टिके समय उत्पन्न होता और प्रलयके समय लय होता है. सो व्यापक चेतन पुरुष पालनके समय वस्त्रके सीधे ओर

आडे तन्तुओंके समान ओत प्रोत हो रहा है [आत्मा वै वेनः ॥ व्यापक आत्मा ही वेन है ॥ शांखायन ब्रा० ८ । ५] समष्टि अधिदेवही त्रिपाद और व्यष्टि अध्यात्म अधिभौतिक ही एक पाद है ॥ १६ ॥

प्रतद्वो चेदमृतन्नु विद्वान् गन्धर्वो धाम विभृतङ्गुहासत् ॥ त्रीणिपदानि निहिता गुहास्य यस्तानि वेद स पितुः पितासत् ॥ १७ ॥

अन्वयार्थः—(गन्धर्वः) वेदके अर्थको धारण करनेवाला (विद्वान्) विवेकी मनुष्य (नु) ही (तत्) उस (गुहासत्) गुहास्थित (अमृतं) अविनाशी (धाम) स्वरुपको (विभृतं) अभेद रुपसे धारण करता हुआ (प्रवोचेत्) वर्णन करे (अस्य) इस विद्वान्के (गुहा) हृदयमें (त्रीणि) तीन (पदानि) स्वरुप (निहिता) अवस्थित हैं (तानि) उन अग्निवायु सूर्यमें स्थित स्वरुपोंको (यः) जो (वेद) जानता है (सः) सो अपनी देहके उत्पन्न करनेवाले (पितुः) पिताका (पिता) पिता (असत्) होता है ॥ काण्व सं० ४ । ५ । ३ । ६ ॥

व्याख्या:—वेदके अर्थको धारण करनेवाला विचारशील मनुष्य ही उस अव्याकृत-सूर्यरुप गुहास्थित अविनाशी स्वरुपको अभेदरुपसे धारण करता हुआ शिष्योंमें वर्णन करे—इस अद्वैतवादीके हृदयमें तीन पादरुप अमृत स्थित है—वही अग्निवायु सूर्यमें स्थित है—उन तीनों देवताओंके स्वरुपोंको अपना स्वरुप जो कोई भी जानता है सो जाननेवाला अपनी देहके उत्पन्न कर्त्ता पिताका भी पिता होता

है. क्योंकि कार्य उपाधिक माता पिता आदिका पुत्र कारण उपाधिकसे पिता बन जाता है ॥ १७ ॥

सनो॑ बन्धु॒र्जनि॒तास वि॑धाता धामा॑नि वेद॒ भुव॑नानि॒ वेद॒ भुव॑नानि॒ विश्वा॑ ॥ यत्र॑ दे॒वा अ॒मृत॑ मान श॒ाना स्तृ॒तीये धाम॑न्न ध्यैर॑यन्त ॥ १८ ॥

अन्वयार्थः—(सः) सो (नः) हमारा (बन्धुः) पिता मह कारण है (जनिता) उत्पन्न कर्त्ता (सः) सोही (विधाता) विविध स्वरूपोंको धारण करनेवाला सोही (विश्वा) सब (भुवनानि) प्राणियोंको (धामानि) स्थानोंको (वेद) जानता है (यत्र) जिसमें (देवाः) देवता (अमृतं) अविनाशी सुखको (आनशानाः) प्राप्त करते हैं (तृतीये) तीसरे (धामन्) स्वर्गमें (अध्यै रयन्त) आनन्द करते हैं ॥ काण्व सं० ४। ५। ३। ७॥

व्याख्याः—सो समष्टि स्वरूप हमारा मूल कारण पिता मह है सोही नाना स्वरूपोंको धारण करता है सोही सब प्राणियोंको तथा लोकोंको जानता है—जिस अधिष्ठानमें सब देवता अक्षय सुखको प्राप्त करते हैं उस तीसरे धाममें अभेदरूपसे आनन्द करते हैं॥ भोग्य कार्य आधार तथा भोक्ता क्रिया आधेय है इन दोनोंका जो प्रेरक है सोही तीसरा धाम है ॥ [भोक्ता भोग्यं प्रेरिता रञ्चमत्वा सर्वं प्रोक्तं त्रिविधं ब्रह्म हे तत् ॥ प्राणशक्तिकी बाह्यअवस्था भोग्य ओर अभ्यन्तर भोक्ता है—जैसे पुरुष में प्रगट अप्रगट रूपसे छाया है ॥ तैसे ही रुद्र में सृष्टि प्रलय रूपसे प्राण शक्ति रूप माया है ॥ एक चेतन माया उपाधिसे मायिक—क्रिया उपाधिसे ब्रह्मा—कार्य उपाधिसे अथर्वा प्रजापति है यह समष्टि उपाधि

है तथा वही एक चेतन व्यष्टि कारण देहसे प्रज्ञ—सूक्ष्म क्रियासे तैजस—स्थूल कार्य देहसे विश्व है ॥ जो अधिष्ठान चेतन है सोही तादात्म्यिक संबन्धसे समष्टि ब्रह्मा ओर व्यष्टि जीव है भोक्ता शक्तिके अध्याससे चेतन भोक्ता प्रतीत होता और अध्यास रहित होनेसे अभोक्ता प्रतीत होता है. वास्तवमें तो वह भोक्ता अभोक्तापनेसे सर्वदा निर्लिप्त एक रस तुरीय स्वरूप है. भोग्य भोक्ता प्रेरकको व्यवहारमें पृथक्मान कर जो तीन प्रकारसे कहा हुआ है सो सवही परमार्थमें यह एक व्यापक अद्वैत रुद्र हैं ॥ श्वेता० उ० १ । १२] आत्मन एष प्राणो जायते ॥ यथैषा पुरुषे छाया ॥ जैसे मनुष्यमें यह छाया है—तैसे ही व्यापक रुद्रसे यह छाया रूप प्राण प्रगट होता है ॥ यही प्राण वेदमें प्रज्ञा—प्राण—स्वधा—छाया माया—नामसे है ॥ प्रश्नोपनिषद् ३ । ३] आत्मक्रीडः आत्मरतिः क्रियावानेष ब्रह्मविदां वरिष्ठः ॥ भोग्य भोक्ताके विकारी धर्मसे रहित अविकारी अद्वैत अपने स्वरूपमें आनन्द करता हुआ प्रीति करनेवाला वेदोक्त कर्म करनेवाला यह ज्ञानी वेद वेत्ताओंके मध्यमें उत्तम है ॥ मु० उ० ३ । १ । ४ ।] जैसे कोई पुरुष दूसरेको कहे तू सोजा तेरी निद्रासे मेरेको नीदका सुख मिलेगा किन्तु सुख नहीं मिलता है ॥ तैसेही अपने स्वरूपसे भिन्न आनन्द नहीं है—ज्ञानी अपनेमें ही आनन्द करता है यही तीसरा धाम है. सूर्यमें या ब्रह्मामें जव ज्ञानी लय होजाता है तव सूर्य ब्रह्मामय हो जाता है—सोही आनन्द हैं ॥ १८ ॥

परीत्यं भूतानि परीत्य लोकान्परीत्य सर्वाः प्रदिशो दिशश्च ॥ उपस्थाय प्रथमजामृतस्यात्मना-त्मानमभि सँविवेश ॥ १९ ॥

अन्वयार्थः—(भूतानि) सब प्राणियोंको (परीत्य) व्यापक रूप जानकर (लोकान्) सब लोकोंको (परीत्य) व्यापक जानकर (दिशः) पूर्वआदि दिशाओंको (च) ओर (प्रदिशः) अग्नि आदि उपदिशाओंको (परित्य) आत्मारूप जानकर (आत्मना) अपना व्यष्टि स्वरूपके साथ (ऋतस्य) रुद्रका पुत्र (प्रथमजां) संकल्प क्रियाके द्वारा पहिले उत्पन्न होने-वाले (आत्मानं) समष्टि व्यापक स्वरूप ब्रह्माको (उपस्थाय) सामीप्य आदि मुक्तिकी स्थितिकेलिये (अभि) निरंतर (संविवेश) ध्यान करे ॥ काण्व सं० ४ । ५ । ३ । ८ ॥

व्याख्याः—रुद्रका पुत्र संकल्प शक्तिके द्वारा सबके पहिले प्रगट होनेवाला ब्रह्मा है इस समष्टि व्यापक स्वरूप ब्रह्माको अपने व्यष्टि स्वरूपके साथ अभेदमय निरंतर चिन्तवन् करे—जो मैं व्यष्टि हुँ सोही मैं समष्टि हूँ—दशादशाओंके सहित सबलोकोंको ब्रह्मारूप जानकर, अपनेको ब्रह्मा जाने—सम्पूर्ण प्राणियोंको ब्रह्मारूप जानकर—अपनेको ब्रह्मा जाने मैं सब चराचरमें व्यापक हूँ और मेरेमें सब विश्व है. इस प्रकारसे ध्यान करनेवाला सामीप्य आदि मुक्तिकी स्थितिको पाता है तस्मात्पुरुषादूब्रह्मैव पूर्वम सृज्यत ॥ रुद्रनेही उस प्राणशक्तिमय देहसे पहिले ब्रह्माको रचा ॥ इति श्रुतिः] एकही आत्मा व्यापक है ॥ १९ ॥

परि॒द्यावा॑ पृथि॒वी स॒द्य इ॒त्वा परि॒लो॑कान्परि॒दिशः॒ परि॒स्वः॑ ॥ ऋ॒तस्य॒ तन्तुं॒ वि त॑तं॒ वि॒चृत्य॒ तद॑पश्य॒त्तद॑भव॒त्तदा॑सीत् ॥ २० ॥

अन्वयार्थः—(द्यावा पृथिवी) ब्रह्माण्डके ऊर्ध्व अधो कपालको (सद्यः) शीघ्र (परि) व्यापक (इत्वा) जानकर

(लोकान्) दोनों कपालवर्तीलोकोंको (परि) व्यापक जानकर (दिशः) दश दिशाओंको (परि) व्यापक जानकर (स्वः) सूर्यको (परि) व्यापक जानकर (ऋतस्य) रुद्रके (विततं) व्यष्टि समष्टि स्वरूपसे व्यापक हुए (तन्तुं) संतानको (विचृत्य) मायाकी समष्टि व्यष्टि उपाधिको त्याग कर निरुपाधिक सर्व व्यापक अद्वैत है इस प्रकार अनुभव करके (तत्) उस अद्वैतको स्वात्म रूपसे जो पुरुष (अपश्यत्) देखता है (तत्) वह अद्वैत ही (अभवत्) होता है (तत्) सोही (आसीत्) था ॥ काण्व सं० ४।५।३।९॥

व्याख्याः—रुद्रका ब्रह्मा पुत्र है वह समष्टि व्यष्टि स्वरूपसे विस्तारवाले ब्रह्माका सूत्रात्मा और विराट् देह है उस विराट्का मस्तक द्यौ तथा भूमी पग है. इस महा विराट्में असंख्य त्रिलोकोंके सहित दशदिशा हैं ॥ प्रत्येक् त्रिलोक व्यापी दिशाओंके मध्यमें प्रत्येक् सूर्य हैं. इन अधिदैव रूप अवयवोंके सहित महाविराट्को तथा सूत्रात्मा देहको उपासक अपनी व्यष्टि देहमें देखे तथा अपनेको समष्टि ब्रह्माण्डमें देखे अपनेको व्यापक जानकर समष्टि व्यष्टि मायाके भेदको त्याग कर निरुपाधिक अद्वैत है इस प्रकार अनुभव करके उस अद्वैत स्वरूपको जो पुरुष स्वात्मरूपसे देखता है वह पुरुष सोही होता है. इस उपाधिके संयोगसे पहिले भी शुद्ध रुद्र स्वरूप हीथा. उपाधिके संगसे जीव और उपाधि रहित शिव है ॥ २० ॥

ई॒शा वा॒स्यमि॒दं ँ सर्वं॒ यत्किञ्च॒ जग॑त्यां॒ जग॑त् ॥
तेन॑ त्य॒क्तेन॑ भुञ्जीथा॒ मा गृ॑धः॒ कस्य॑ स्वि॒द्धन॑म् ॥२१॥

अन्वयार्थः—(यत्) जो (किञ्च) कुछ (जगत्यां) ब्रह्माण्डमें (इदं) यह (सर्वं) सम्पूर्ण (जगत्) चराचर जगत् (ईशा) रुद्र देवताके द्वारा (वास्यं) व्यापक है (तेन) उस मायामय विश्वको (त्यक्तेन) कल्पित जानकर त्याग करके (कस्य) तीन ईषणाओंमेंसे किसी (स्वित्) भी अभिलाषारूप (धनं) धनकी भोगनेकी (गृधः) कामना (मा) न करे (भुञ्जीथाः) विद्यमान् प्रारब्ध देहके भोगोंको ही भोगता हुआ—वैदिक उपासना आदि कर्मको करे ॥ काण्व सं० ४ । १० । १ । १ ॥

व्याख्याः—जो कुछ ब्रह्माण्डमें यह संम्पूर्ण संसार रुद्र देवताके द्वारा ओतप्रोतरूपसे व्यापक है उसमायामय कार्य प्रपंचको स्वप्न जालके समान मिथ्या जानकर मनसे त्यागके लोकेषणा—वित्तेषणा—पुत्रेषणा इन तीनोंमें से किसी भी इच्छारूप धनकी कामना न करे—वर्तमान देहरुप प्रारब्धके भोगोंको भोगता हुआ वैदिक उपासना आदिक कर्मोंको निष्काम भावसे करे [सद्यो जातं प्रपद्यामि सद्यो जाताय वै नमः ॥ भवे भवे नातिभवे भजस्वमाम् ॥ भवोद्भवाय नमः ॥ सद्योजात नामके पश्चिम दिशावर्ती मुखको मैं प्राप्त होता हूँ सद्योजातको ही प्रणाम है हे सद्यो जात मेरेको वारंवार जन्ममें मतडालो—जन्मको नाश करनेके लिये तत्व ज्ञानको मेरेमें प्रेरणा करो संसारसे तारनेवाले भवको प्रणाम है ॥ वाम देवाय नमो ज्येष्ठाय नमो रुद्राय नमः कालाय नमः कल विकरणाय नमो बल विकरणाय नमो बल प्रमथाय नमः सर्व भूतदमनाय नमो मनोन्मनाय नमः ॥ उत्तर मुखरुप वामदेवको प्रणाम है प्रथम प्रगट होनेवाले हिरण्य गर्भको प्रणाम है माया देह धारी उत्तम अधिष्ठान महेश्वरको प्रणाम है, माया रहित रुद्रको प्रणाम है प्रलय व्यापी

कालरुप रुद्रको प्रणाम है अपने सुख स्वरुपमें रमणकरने या विविध जगत्को प्रगट करनेवाले कलविकरणको प्रणाम है. घमंडी देव दैत्योंके बलको दमन करनेवाले बल विकरणको प्रणाम है सर्व शक्ति सम्पन्नरुप बलवालेको प्रणाम है अपनी इच्छा मात्रसे जगत्की उत्पत्ति आदिके करनेवाले बल प्रमथनको प्रणाम है–समस्त प्राणियोंको कर्मानुसार शिक्षा देनेवालेको प्रणाम हैं–सर्वके जाननेवाले सर्वज्ञ अन्तर्य्यामी मनोन्मनस्व रूप रुद्रको वारंवार प्रणाम है ॥ **अघोरेभ्यो ऽथघोरेभ्यो घोर घोर तरेभ्यः ॥ सर्वेभ्यः सर्व शर्वेभ्यो नमस्ते अस्तु रुद्ररूपेभ्यः ॥** दक्षिण मुख अघोर रुप जे मंगल शान्त स्वरूप हैं जे भयंकर अशान्त स्वरूप हैं तथा जे महा प्रलय रूप संहार करनेवाले अति भयंकर हैं सर्व व्यापक शान्त अशान्त जे असंख्य रूद्र हैं–हे रुद्र आपके उन समस्त विश्व व्यापी रुद्र स्वरूपोंको मेरा वारंवार प्रणाम होवे ॥ **तत्पुरुषाय विद्म हे महा देवाय धीमहि ॥ तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥** पूर्व मुखरूप तत्पुरुषको वेद गुरुसे जानकर महेश्वरका ध्यान करता हूँ (तत्) सो (रुद्रः) रुद्र हमारी बुद्धिको अपने स्वरूपमें प्रेरणा करे ॥ **ईशानः सर्व विद्याना मीश्वरः सर्व भूतानां ब्रह्माधिपति र्ब्रह्मणोऽधिपति र्ब्रह्मा शिवोमे अस्तु सदाशिवोम् ॥** चारोंका मूल कारण पञ्चम मुख ईशान नामवाला है–सोही उर्ध्व मुख सब विद्याओंका स्वामी सम्पूर्ण देव दैत्य मनुष्यादि प्राणियोंका अध्यक्ष नियंता वेदका पालक–हिरण्य गर्भका पिता रुद्र है जो ब्रह्मा है सोही रुद्र सर्वदा सुख स्वरुप (ॐ) मैं हूँ ॥ अकार सद्योजात–उकार वामदेव, मकार–अघोर–अर्ध चन्द्राकार तत् पुरुष–बिन्दु ईशांन है. इनका वैदिक क्रम उ० विराट् ॥ अ० सूत्रात्मा ॥ म० अव्याकृत ॥ ॅ संकल्प किया ॥ ० महेश्वर है.

इन पाँचोंकी समष्टि अवस्थाका नामलिंग है ॥ इस महालिंगकी प्रतीक उपासना मन्दिरोंमें लिंग पूजा है. जो मयूर अण्डाकृति लिंग है सो महाप्रलयव्यापी निराकार रुद्र अपनी उमाके सहित है यही उमा निर्विकारी सत्ता रूपसे जलाधारी वेदि है—तथा जो मन्दिरोंमें पंचमुख लिंग है. सोही सृष्टि व्यापी प्रणवस्वरुप है ॥ ब्रह्माण्ड वृक्षका ऊर्ध्वमूलईशान महेश्वर अधिष्ठान विन्दु है उस मूल वीजीकी विकारी संकल्प क्रियारुप वीज अर्ध मात्रा माया है. इस माया वीजकी अभिव्यक्ति अव्याकृत मकार रूप फूला हुआ वीज है पुष्ट हुए वीजसे सूत्रात्मा अङ्कुर प्रगट हुआ यही सूत्रात्मा देह. उकार है. इस समष्टि सूक्ष्म देहसे महा विराट् वृक्ष प्रगट हुआ—यही अकार स्वरुप है जिस महा विराट् वृक्षके मध्यमें असंख्य त्रिलोक-रुप फल लगे हुए हैं उन फलोंमें उदम्वर फलोंके समान अस्मादा-दिक प्राणि भरें हैं—इस महा ब्रह्माण्डका संकेतरुप चिन्ह है—लिंग कैसी महा पवित्र पूजा आर्य प्रजा मन्दिरोंमें पूजती है तैतरीयाण्यक १० । ४३ । ४४–४५-४६–४७] **योवा अधिपतिं वेदाधिपतिर्भवति त्रयस्त्रि ंशोवस्तोमा नामधिपति पुरुषः पशूनां** ता. ब्रा० ६ । २ । ५–७] पुरुष अर्थ रुद्र है. **निधन पतये नमः** ॥ प्रलय करनेवालेको प्रणाम है ॥ **निधनपतान्तिकाय नमः** ॥ प्रत्येक् त्रिलोकोंके संहार करनेवाले प्रजापतियेंके स्वामीको प्रणाम है ॥ **ऊर्ध्वाय नमः** ॥ सबसे उत्तम नित्य अखण्ड अनादि रुद्रको प्रणाम है ॥ **ऊर्ध्वलिङ्गाय नमः** ॥ मायाके आधार मायिक महेश्वर लिंगको प्रणाम है ॥ **हिरण्याय नमः** ॥ अव्याकृत योनिको प्रणाम है ॥ **हिरण्यलिंगाय नमः** ॥ अव्यक्त स्थित अन्तर्यामी लिंगको प्रणाम है (**सुवर्णाय नमः**) उत्तम तेजोमय समष्टि सूक्ष्म देहको प्रणाम

है ॥ सुवर्ण लिङ्गाय नमः ॥ सूत्रात्मा देह व्यापी उत्तम ब्रह्मारूप लिंगको प्रणाम है ॥ दिव्याय नमः ॥ महा विराट्को प्रणाम है ॥ दिव्य लिंगाय नमः ॥ महा विराट् देह व्यापी अथर्वा प्रजापतिरूप लिंगको प्रणाम है ॥ भवाय नमः ॥ उत्पत्ति कर्त्ताको प्रणाम है ॥ भव लिंगाय नमः ॥ उत्पत्ति कर्त्ता रूप लिंगको प्रणाम है ॥ शर्वाय नमः ॥ संहार कर्ताको प्रणाम हैं ॥ शर्व लिंगाय नमः ॥ संहार रूप लिंगको प्रणाम है ॥ शिवाय नमः ॥ परम सुखरूप रुद्रको प्रणाम है ॥ शिवलिंगाय नमः ॥ सुख स्वरूप लिंगको प्रणाम है ॥ ज्वलाय नमः ॥ प्रकाश रूपको प्रणाम है ॥ ज्वललिंगाय नमः ॥ ज्योति स्वरूपलिंगको प्रणाम है ॥ आत्माय नमः ॥ जीवरूपसे व्यापकको प्रणाम है ॥ आत्मलिंगाय नमः ॥ जीवरूप लिंगको प्रणाम है ॥ परमाय नमः ॥ उत्तम शुद्ध तुरीय रुद्रको प्रणाम है ॥ परमलिंगाय नमः ॥ उत्तम मोक्ष स्वरूप लिंगको प्रणाम है ॥ इन मंत्रोंके द्वारा सब प्रकारके लिंग स्थापन करे उसलिंगके समीप जिस किसीको उपासक अपने हातमें जल ग्रहण करके आशिर्वाद देता है उस प्राणिको सुख होता है—प्रत्यक्ष सूर्य चन्द्रमाका जो उपादान कारण है सोही लिंग समस्त देवताओंका भी है ॥ तैत्तरीयारण्यक परिशिष्ट १० । १६] तपो योनिः ॥ ऋतँ योनिः सत्यँ योनिः ॥ब्रह्मयोनिः क्षत्रँ योनिः॥ पृथिवीयोनिरन्तारिक्षँ योनिः॥द्यौर्योनिः॥दिशोयोनिः॥ दश दिशारूप विराट्योनि है ॥ द्युलोक योनि है ॥ आकाशयोनि है ॥ भूमी योनि है (क्षत्रं) हिरण्य गर्भयोनि है (ब्रह्म) अव्याकृत योनि है (सत्यं) सूर्य योनि है (ऋतं) अग्नि योनि है सृष्टि संकल्पात्मक तपही योनि है ॥ मैत्रायणी सं० २ । १३ ।

२] योनि वैं प्रजापतिः ॥ प्रजापति ही योनि है ॥ मै० सं० २ । ५ । १ ।] विष्णुर्योनिं कल्पयतु ॥ गर्भ स्थानको विष्णु भावना करे ॥ ऋग्० १० । १८ । ४ । १] तस्ययोनिं परिपश्यन्ति धीराः ॥ उसकी योनिको ज्ञानी देखते हैं ॥ माध्यन्दिनी सं० ३१ । १९] योनि शब्दका अर्थ उपादान कारण है उसी प्रकार सृष्टि संकल्प वीर्य्यको क्रियाकी अभिव्यक्ति अव्याकृतमें स्थापन करनेवाला मायिक महेश्वर बीजीही लिंगस्वरूप है ॥ लघु—दीर्घ—कृश—स्थूल इन चार प्रकारके विशेषणोंसे रहित तथा सब प्रकारोंके व्यवधानेंासे शून्य मयूर अण्डके आकारका जो ज्योति स्वरूपलिंग है सोही महा प्रलयस्थ अनादि चेतन घन निराकार रुद्र है ॥ उस में चार मुखरुप संकल्प क्रिया, क्रियाकी अभिव्यक्ति कारण अव्याकृत अवस्था—अव्यक्तकी सूक्ष्म सूत्रात्मा—सूत्रात्माकी स्थूल विराट् अवस्था नहीं है—इस हेतुसे ही चार अवस्था रहित पञ्च मुख स्वरूप लिंगही निराकारकी उपासना है—और चार मुखरूप अवस्थाओंके सहित जो पाँचमा मुखरूप ईशान है सोही सृष्टि द्योतकमहेश्वर पंचमुखी लिंग है—लिंग पूजासे अनन्त ब्रह्माण्डवर्ती मुख हात पगवाले देवताओंकी पूजा हो जाती है ॥ मुख नाक हात पगवाली मूर्तिके पूजनसे सर्व व्यापक अखण्ड देवकी पूजाका फल नहीं मिलता है ॥ जैसे वृक्षके पत्रोंको जलदेनेसे वृक्षके मूलको नहीं मिलता तैसे ही समष्टि विराट् वृक्षकी देव दैत्य मनुष्य आदि व्यष्टि स्वरुप आकृतिमय पत्र हैं ॥ इसलिये ही लिंग पूजा उत्तम है ॥ प्रत्यक्ष लिंगको पाँच मुखवाला देखते हुए भी जगत् कारण लिंगको मूत्रेन्द्रिय कहकर उपहास करते हम अन्धोंको लज्जा नहीं है ॥ २१ ॥

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्नेवानुपश्यति ॥ सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते ॥ २२ ॥

अन्वयार्थः—(यः) जो अद्वैत ज्ञानी (सर्वाणि) सब (भूतानि) प्राणियोंको (आत्मन्) अपने स्वरुपमें (एव) ही (च) और (आत्मानं) अपने स्वरुपको (सर्व भूतेषु) सम्पूर्ण प्राणियोंमें (अनु) अभेद रुपसे (पश्यति) देखता है (ततः) उस अद्वैत भावनासे (तु) कभी (न) नहीं (विजुगुप्सते) जन्ममरणरुप निन्दाको प्राप्त होता है ॥ काण्व सं० ४ । १० । १ । ६ ॥

व्याख्याः—जो अद्वैत वादी सब प्राणियोंको अपने स्वरुपमें अभेद रुपसे देखता है और अपने कोही समस्त प्राणियोंके स्वरुपोमें देखता है अर्थात् मैं सर्व स्वरुप हूँ—उस अद्वैत अपरोक्ष अनुभवसे सो ज्ञानी कभी जन्म मरण रुप घृणाको प्राप्त नहीं होता है ॥२२॥

यस्मिन्त्सर्वाणि भूतान्यात्मैवाभूद्विजानतः ॥ तत्र को मोहः कश्शोक एकत्वमनु पश्यतः ॥ २३ ॥

अन्वयार्थः—(यस्मिन्) जिस ज्ञान अवस्था में (विजानतः) विज्ञानीका (सर्वाणि) संम्पूर्ण (भूतानि) प्राणिमात्र (आत्मा) स्वरुप (एव) ही (अभूत) हुआ (अनु पश्यतः) अपरोक्ष अनुभव कर्त्ताका (एकत्वं) अद्वैत भाव है (तत्र) तहाँ (कः) कौन (मोहः) जन्मरूप मोह है (कः) कौन (शोकः) मरण रूप शोक है ॥ काण्व० सं० ४ । १० । १ । ७ ॥

व्याख्या:—जिस समय विज्ञानीका सम्पूर्ण प्राणिमात्र आत्मा-स्वरूप हुआ—अपरोक्ष अनुभव करताका अद्वैत अवस्था है उस अवस्थामें कौन जन्मरूप हर्ष है और कौन मरणरूप शोक है. ज्ञानीमें जन्म आदिका अभाव हो जाता है ॥ २३ ॥

हि॒र॒ण्मये॑न॒ पात्रे॑ण स॒त्यस्या॒पि॑हितं॒ मुख॑म् ॥ तत्त्वं॑ पूष॒न्नपा॑वृणु स॒त्यध॑र्माय दृ॒ष्टये॑ ॥ २४ ॥

अन्वयार्थः—(पूषन्) हे सूर्य आपके (हिरण्मयेन) तेजोमय मण्डल (पात्रेण) ढक्कनसे (सत्यस्य) ब्रह्मलोकका (मुखं) द्वार (अपिहितं) ढकाहुआ है (सत्यधर्माय) सत्यस्वरूप ब्रह्माके (दृष्टये) दर्शनकेलिये (त्वं) तुम (तत्) उसद्वारको (अपावृणु) खोलदो ॥ काण्व सं० ४ । १० । १ । १५ ॥

व्याख्याः—हे सूर्य आपके मण्डलरूप पात्रसे ब्रह्मलोकका द्वार आच्छादित है. अव्यक्तके व्यक्त सत्यस्वरूप ब्रह्माके दर्शनके लिये तुम उस द्वारको खोलदो [विष्णु र्वै देवानां द्वारपः सपवा समाप्त द्वारं विवृणेति ॥ सूर्य ही देवताओंका द्वार रक्षक है सो ही इस द्वारको अपने विशेष तेजसे ढांकता है ॥ ऐतरेय ब्रा० ५ । ४] महर्लोकवासी सोम मण्डल ही ब्रह्मलोकका द्वार है इस द्वारको सूर्यने अपने तेजसे ढाँक रक्खा है [इदं व्रजं चविष्णुः सखवाँ अपोर्णुते ॥ सोमरूप मित्रके इस (व्रजं) स्थानको (विष्णुः) सूर्यने ढाँक रख्या है ॥ ऐ० ब्रा० ५ । ४] अपने चन्द्र मण्डलके बहुत ऊपर सूर्य मण्डल है. सूर्य मण्डलके बहुत ऊपर सोम मण्डल है. यही सोम मण्डल देवलोकोंके सहित ब्रह्म लोकका मार्ग है. सूर्यकी कृपासे ही उपा-

सक सोम मण्डलमय द्वारमें प्रवेश करता हूआ विद्युत्-प्रजापति लोकमें हो कर ब्रह्माका दर्शन करता है ॥ २४ ॥

पूषन्नेक ऋषे यम सूर्य प्रजापत्य व्यूह रश्मीन्त्समूह तेजोयत्ते रूपं कल्याणतमन्तत्ते पश्यामि ॥ योऽसाव सौ पुरुषस्सोऽहमस्मि ॥ २५ ॥

अन्वयार्थः—(पूषन्) हे सबके पालक (एकऋषे) हे एकवीर गमन करनेवाले (यम) हे जगत्के नियंता (सूर्य) हे सूर्य तुम (प्रजापत्य) ब्रह्माके पुत्र हो (रश्मीन्) किरणोंको (व्यूह) समेटलो (तेजः) तेजको (समूह) इकठ्ठा करो (ते) आपका (यत्) जो (कल्याणतमं) अतिमंगल (रूपं) स्वरूप है (तत्) उसको (ते) आपकी दयासे (पश्यामि) दर्शन करूँ (यः) जो (असौ) यह मण्डलवर्ती भर्ग है (असौ) यही (पुरुषः) ब्रह्मा है (सः) सो ब्रह्मा (अहं) मैं (अस्मि) हूँ ॥ काण्व सं० ४ । १० । १ । १६ ॥

व्याख्या:—हे विश्व पोषक एक वीर उदय अस्तरूपसे गमन करनेवाले जगत्के नियंता सूर्य तुम ब्रह्माके पुत्र हो किरण समुहके सहित तेजको समेट लो जो आपका अतिशान्त स्वरूप है उस अघोरको आपकी कृपासे साक्षात्कार करनेमें समर्थ होऊँ जो यह मण्डलवर्ती सविता है. यही भर्ग ब्रह्मा है सो ब्रह्मा मैं उपासक हूँ ॥ मायिक महेश्वर ही सूत्रात्मा देहमें ब्रह्मा—सूर्यमें भर्ग—प्राणियोंमें जीव है ॥ जो जीव है वही भर्ग वही ब्रह्मा—वही महेश्वर—वही निराकार निरंजन रुद्र है (असौ वा आदित्य इन्द्र एष प्रजापतिः ॥ यह सूर्य ही इन्द्र है यही ब्रह्मा है ॥ कपिष्ठल कठ सं. ३५ । २] एक ही आत्मा है ॥ २५ ॥

वायुर निलम् मृतमथे दम्भस्मान्तु ॐ शरीरम् ॥ ॐ
३ क्रतो स्मरंकृत ॐ स्मर क्रतो स्मर कृत ॐ स्मर ॥२६॥

अन्वयार्थः—(ॐ) ओंकार तारक मंत्रको (क्रतो) हे मन (स्मर) ध्यानकर (कृतं) कीये हुए कर्म उपासनाको (स्मर) स्मरण कर (क्रतो) हे मेरे मन अन्त समयको (स्मर) विचारकर (कृतं) किये हुए अभेद ज्ञानकी महिमाको (स्मर) स्मरण कर (इदं) यह प्रत्यक्ष स्थूल (शरीरं) देह (भस्मान्तं) भस्मरूपसे समाप्ति है (अथ) और (वायुः) देह व्यापी प्राण (अनिलं) स्थूल देहरूपस्थानरहित (अमृतं) अविनाशी है ॥ काण्व सं० ४ । १० । १ । १७ ॥

व्याख्याः—रुःकी विराट् हिरण्य गर्भ—अव्याकृत मय ॐ प्रतिमा है यही महा तारक मंत्र है हे मेरे मन तु देहपात के पहिले व्यष्टिको समष्टिका रूपान्तर जानकर—विराट्को सूत्रात्मा में हिरण्य गर्भको अव्यक्त रूप प्राण शक्तिमें लय करता हुआ ध्यान कर—अपने किये हुए वैदिक अग्नि होत्र उपासनाको स्मरण कर—तथा हे मेरे शुभा शुभात्मक मन तू चतुर्थ आश्रमके अध्यात्म ज्ञानकी अन्तिम अवस्थाको विचारकर क्रमसे विराट् आदि तीनोंको चतुर्थ महेश्वरमें लय कर इस प्रकार अभ्यास कीये हुए अभेद ज्ञानकी महिमाको स्मरण कर—यह स्थूल देहकी भस्मरूपसे समाप्ति है और सूक्ष्म देहरूप प्राण स्थूल देहके अभाव होनेसे भी अविनाशी है ॥ कार्यांशका नाश और क्रियांशका नाश नहीं है। [[ब्रह्म मयोऽमृत मयः संभूय देवता अप्येतिय एवं वेद ॥ प्रणव मय ज्ञानही मोक्ष हेतु है अग्निवायु सूर्य आदि सबदेवता एक होकर समष्टि

ब्रह्म है उस ब्रह्मको जो अपना रूप जानता है वही ज्ञानी है ॥ तद्योऽहंसोऽ सौयो ऽसौ सोऽहम् ॥ उस सर्वात्मक ब्रह्ममें जो मैं उपासक व्यष्टि देहवर्ती हूँ सोही सूर्य मण्डल मध्यवर्ती पुरुष है. तथा जो यह आदित्य मण्डलस्थ भर्ग है सोही मैं हूँ ॥ ऐतरेयारण्यक २ । ३ । १२] यह अभेद रूप अद्वैतकी महा घोषणा हैं ॥ २६ ॥

अग्ने नय सुपथा राये अस्मान्विश्वानि देव वयुनानि विद्वान् ॥ युयोध्यस्मज्जुहुराणमेनो भूयिष्ठान्ते नम उक्तिं विधेम ॥ २७ ॥

अन्वयार्थः—(अग्ने) हे रुद्र (राये) मोक्षरूप धनके लिये (सुपथा) उत्तम वैदिक मार्गसे (अस्मान्) हमको (नय) पहुँचाओ (जुहुराणं) असंख्य जन्म मरण आदि कुटिल (एनः) पापको (अस्मत्) हमसे (युयोधि) पृथक् करो (देव) हे रुद्र तुम (विश्वानि) समस्त (वयुनानि) ज्ञानोंको (विद्वान्) जानने वाले हो (ते) आपके प्रति (भूयिष्ठां) बहुत शतरुद्रिय (नम उक्तिं) नमस्कार वचनको (विधेम) पठन करते हैं ॥ काण्व सं० ४ । १० । १ । १८ ॥

व्याख्या:—हे सर्व व्यापक रुद्र मोक्ष रूप धनके लिये हमको उत्तम वैदिक मार्गके द्वारा प्राप्त करो तथा जन्म मरण आदि कुटिल पापको हमसे भिन्न करो हे रुद्र तुम समस्त चराचर पदार्थोंके ज्ञानको जानने वाले हो आपके प्रति शतरुद्रिय प्रार्थना है उस बहुतसी नमस्कार वचनको हम पठन करते हैं [[एको देवः सर्व भूतेषु गूढः सर्व व्यापी सर्व भूतान्तरात्मा ॥ कर्माध्यक्षः सर्व भूताधिवासः

साक्षी चेताः केवलो निर्गुणश्च ॥ एक रुद्रही समस्त जड पदार्थोंमें सामान्य रूपसे व्यापक है तथा विशेष रूपसे अदृश्य है चराचर व्यापी सम्पूर्ण शरीरोंके मध्यमें जीवरूपसे अन्तर आत्मा है कर्म मात्रका स्वामी समस्त प्रगट होनेवाले अग्नि वायु सूर्य विराट्—सूत्रात्मा अव्यक्तका आधार रूपसे निवास स्थान है (चेताः) समष्टि व्यष्टि उपाधियोंसे जे भिन्न २ चेतन प्रतीत होते हैं वे सब उपाधि रहित होनेसे (साक्षी) अधिष्ठान मात्र हैं वह अधिष्ठान माया उपाधिसे मायिक ओर माया रहित होनेसे केवल तुरीय शुद्ध निराकार है॥ श्वेता० उ० ६ । ११] एक रुद्र ही अपनी शक्तिसे ओत प्रोत हो रहा है ॥ २७ ॥

इति श्री यजुर्वेदीय रुद्र ॥ द्वितीय सूक्त ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य स्वामी

शंकरानन्दगिरि विरचिता गौरी व्याख्या समाप्त ॥११॥

॥ अथ सामवेदीय प्रथम सूक्तम् ॥

यास्कं निरुक्तकर्त्तारं शंकराचार्य्यं शिवात्मकम् ॥
सर्ब वेद भाष्यकारं सायणं प्रणमाम्यहम् ॥ १ ॥

रुद्र, ब्रह्मा, यास्काचार्य शंकराचार्य्य, सायणाचार्य्य आदिको मैं प्रणाम करके ॥ सामवेदके थोडेसे मंत्रोंका अर्थ करता हूँ ॥ आवोराजानं ॥ जराबोध इनदोनें मंत्रोंका अर्थ ऋग्वेदीय रुद्रमें किया है, साम संहितामें बहत्तर मंत्रोंको छोडकर सब मंत्र ऋग्वेदके हैं, वह बहत्तरभी ऋग्वेदकी लुप्त हुई संहिता केही हैं ॥ भद्रंकर्णेभिः शृणुयाम देवाभद्रं पश्येमा क्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरै रङ्गै स्तुष्टुवा ९ सस्त नूभिर्व्यशे महिदेवहितं यदायुः ॥ स्वस्तिन इन्द्रो वृद्धश्रवाः स्वस्तिनः पूषा विश्व वेदाः स्वस्तिनस्तार्क्ष्यो अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः ॥ शान्तिः ॥ शान्तिः ॥

नमस्ते अग्न ओजसे गृणन्ति देवकृष्टयः अमैर

मित्र मर्दय ॥ १ ॥

अन्वयार्थः—(अग्ने) हे रुद्र (ते) आपके (ओजसे) बलके लिये-(कृष्टयः) मनुष्य(नमः)नमस्कारात्मक (गृणन्ति) स्तुति करते हैं (देव) हे स्वयं प्रकाशी रुद्र तुम(अमैः) असंख्य घोर रूप रुद्रोंके बलोंसे (अमित्रं) शत्रु समुहको (मर्दय) मारो ॥ सामसं० प्रथमार्चिक १।१।१।१॥

व्याख्याः—हे सर्व व्यापक रुद्र आपके यज्ञ स्वरूप तेजके लिये मनुष्य नमस्कारात्मक स्तुति करते हैं, हे स्वयं प्रकाशी रुद्र तुम हमारे पाप समुह रूप शत्रुको अपने घोर स्वरूप रुद्रोंके द्वारा नष्ट करो ॥ यजुमें जो मन्यवे है सोही इस मंत्रमें ओजसे है ॥१॥

मूर्द्धा नंदि वो अरति पृथिव्या वैश्वा नर मृत

आजात मग्निम् ॥ कवि ँ सम्राजम तिथिं जनाना

मासन्नः पात्रं जनयन्त देवाः ॥ २ ॥

अन्वयार्थः—(दिवः) द्यौके (मूर्द्धानं) मस्तक (पृथिव्याः) भूमीके (अरतिं) ईश्वर (वैश्वानरं) समष्टि विराट् देहसे व्यष्टि शरीरोंके धारण करनेवाले (ऋतं) ब्रह्माके पिता रुद्र (कविं) सर्वज्ञ (आ) सर्वत्र (सम्राजं) सामान्य रूपसे विराजमान (अतिथिं) सन्यासीके समान सब देहोंमें पूज्य स्वरूप (देवाः) देवता दुःखी (आसन्) हुए तव देवोंने रुद्रकों (आजनयन्त)

प्रसन्न किया, उस (पात्रं) समस्त ब्रह्माण्डके धारण करने वाले आधारका (नः) हमारे हितके लिये हम ध्यान करते हैं ॥ साम० प्र० १।२।४।५॥

व्याख्या:—दैत्योंसे दुःखी हुए देवताओंने रुद्रको प्रसन्न किया, वह रुद्र कैसा है, द्यौ रूप प्राणशक्ति, प्रज्ञा, मायाका अधिष्ठान रूप शिर है माया कार्यक्रिया रूप भूमी है. मृत्युकार्य घोर देह तथा अमृतक्रिया अघोरका स्वामी है, अघोरांँश सूत्रात्मा देह धारी ब्रह्माका पिता रुद्र है, तथा घोरांँश विराट् देहसे व्यष्टि शरीरोंको धारण करके जीवरूपसे विशेष अवस्था वाला है, जैसे परमहंस विरक्तात्मक पूज्य अपने विशेष रूपको सामान्य रूपसे सर्वत्र देखता है, तैसे ही रुद्र विशेष महिमा स्वरूपसे होता हुआ भी सामान्य रूपसे सर्वत्र व्यापक है सम्पूर्ण जगत्को धारण करने वाले आधार सर्वज्ञ रुद्रका हमारे सुखके लिये हम ध्यान करते हैं ॥ येदो मंत्रोमें स्वर दिया है अवशेष मंत्रोंको स्वर रहित लिखता हूँ ॥ २ ॥

सोम ँ राजानं वरुण मग्निमन्वारभा महे आदित्यं विष्णु ँ सूर्यं ब्रह्माणंच बृहस्पतिम् ॥ ३ ॥

अन्वयार्थः—(सोमं) सोमदेवता (राजानं) स्वामीको (वरुणं) वरुणको (अग्निं) अग्निको (आदित्यं) द्यौकेपुत्र (विष्णुं) व्यापक (सूर्यं) सूर्य मण्डलको (बृहस्पतिं) बृहस्पतिको (च) ओर (ब्रह्माणं) ब्रह्माको (अन्वारभामहे) रक्षाके लिये आवाहन करते हैं ॥ साम० प्र० २।१।१।१ ॥३॥

व्याख्या:—महर्लोक वासी ईश्वर सोमदेवता वरुण देवता अग्नि देवता द्युलोकका पुत्र किरण समुह व्यापी सूर्य बृहस्पति तथा ब्रह्मा इन सब देवताओंको प्रजाकी रक्षाके लिये हम बुलाते हैं ॥३॥

उपह्वरे गिरीणा ँ सङ्ग मेच नदीनाम् ॥ धियो विप्रो अजायत ॥४॥

अन्वयार्थः—(गिरीणां) पर्वतोंके (उपह्वरे) प्रदेशमें (च) और (नदीनां) नदीयोंके (सङ्गमें) सङ्गमपर (धिया) प्रार्थनासे (विप्रः) ज्ञानी रुद्र (अजायत) प्रगट होता है ॥ सामसं० २ । २ । २ । ९ ॥

व्याख्या:—पर्वतोंके सघन वन गुहा आदि सुरम्य स्थानोंमें और नदीयोंके सङ्गम पर ध्यान योग गायत्रि पंचाक्षरी प्रणवशत रुद्रिय आदि प्रार्थनासे प्रसंन होकर उपासकोंको दर्शन देनेके लिये ज्ञान स्वरूप रुद्र प्रगट होता है ॥ ४ ॥

महित्रीणाम वरस्तुद्युक्षं मित्रस्यार्य्यम्णः दुराधर्षं वरुणस्य ॥ ५ ॥

अन्वयार्थः—(मित्रस्य) अग्निका (अर्यम्णः) वायुका (वरुणस्य) सूर्यका (त्रीणां) तीनोंका (द्युक्षं) प्रकाशक (दुराधर्षं) किसीसे न हारने वाला (महि) बड़ा यशवाला रुद्र हमारा (अवः) पालन करनेवाला (अस्तु) होवे ॥ साम सं० ३ । १ । २ । ८ ॥

व्याख्या:—अग्नि वायु सूर्य इन तीनोंका प्रकाशक स्वयं प्रकाशी किसीसे पराजय न पानेवाला विजयी महा यशवाला रुद्र हमारा पालन करने वाला होवे ॥ ५ ॥

नकि इन्द्र त्व दुत्तरं न ज्यायो अस्ति वृत्रहन् ॥ नक्येवं यथात्वम् ॥ ६ ॥

अन्वयार्थः—(इन्द्र) हे ऐश्वर्य्यवान् (वृत्रहन्) हे पाप नाशक (त्वत्) आपसे (उत्तरः) उत्तम तथा (ज्यायः) श्रेष्ठ (कि) भी (न) नहीं (अस्ति) है (यथा) जैसे (त्वं) तुम तारने वाले हो (एवं) उसी प्रकार और (कि) कोईभी (न) नहीं है ॥ सा० सं० ३ । १ । १ । १० ॥

व्याख्याः—सर्व शक्ति सम्पन्न हे पाप नाशक रुद्र आपसे उत्तम अधिक कोईभी नहीं है जिस प्रकार तुम तारनेवाले हो उसी प्रकार और कोईभी नहीं है [**रुद्रो वै देवानामोजिष्ठः** ॥ रुद्रही सब–देवताओंके मध्यमें बलिष्ठ है ॥ काठक सं० २४ । ४] **ओजो वै वीर्यं** ॥ ओजही बल है ॥ मै० सं० ३ । २ । ४] **वीर्यं वै प्राणः** ॥ **वीर्य मिन्द्रः** ॥ बलशक्तिही प्राण है ॥ प्राण ही इन्द्र है ॥ मै० सं० १ । ९ । ५] **ओज इन्द्राग्नी बलंचैवौजः** ॥ इन्द्र अग्नी ही ओज है वही ओज बल है ॥ **वीर्यं वै विश्वेदेवाः** ॥ बलशक्तिकी विभूतिही सबदेवता हैं ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४६ । २] **शवसस्पतिः** ॥ बलरूप प्राणशक्तिका स्वामी रुद्र है ॥ साम० सं० ३ । २ । २ । ६] **आत्मा वै पशुः** ॥ प्राणशक्तिही इन्द्रिय रूप पशुओंका प्रकाशक है ॥ शांखायन ब्रा० १२ । ८] **इन्द्रियं वै पशवः** ॥ अधिदैव सूर्य आदि इन्द्रिय और चक्षु आदि अध्यात्म इन्द्रियें देखना सूँघना आदि व्यापार करती हैं इसलिये ही पशु हैं ॥ मै० सं० २ । २ । ८] **वहनो वै पशवः** ॥ इन्द्रिय रूप पशु ही रुद्रका वाहन है ॥ काठक सं० ८ । ५] प्राणशक्ति देहकी कार्य विराट और क्रिया सूत्रात्मा देह है. येदोनो देह अग्नि सोमके नामसे प्रसिद्ध हैं ॥ अग्नि घोर और सोम अघोर इन्द्र प्राणरूप है ॥ [**प्राणोहि सोमः** ॥ प्राण ही सोम है ॥ **प्राजापत्यो वै सोमः** ॥ प्रजापतिका

पुत्रही सूर्य है ॥ कपिष्ठल० सं० ४८ । १४] आदित्यो वै सोमः ॥ सूर्य सोम है ॥ कपिष्ठल० सं० ४० । ५] सूत्रात्माका पूर्ण विकाश सूर्य है इस सूर्य पशु वाहन पर चेतन बैठा है ॥ यही रुद्रका वृषभ वाहन है [पशवो वै आदित्यः ॥ सूर्य ही पशु है ॥ मै० सं० ४ । ६ । ९] असौ वा आदित्य इन्द्रः ॥ यही सूर्य इन्द्र है ॥ काठक सं० ३६ । १०] जो रुद्र सूर्यका स्वामी है सोही व्यष्टि शरीर वर्ती ईन्द्रियोंका जीवरूपसे स्वामी है ॥ उस रुद्रसे उत्तम कोई नहीं है ॥ ६ ॥

महेचनत्वाद्रिवः पराशुल्काय दीयसे न सहस्राय-नायुताय वज्रिवो न शताय शतामघ ॥ ७ ॥

अन्वयार्थः—(अद्रिवः) हे अघोर रूप रुद्र (महे) महा (शूल्काय) मूल्य धनकी प्राप्तिके लिये (त्वा) तुमको (न) नहीं (परादीयसे) वेचता हूँ (च) और (वज्रिवः) हे घोर रुप धारी रुद्र तुमको (सहस्राय) हजार मुद्राके लिये (न) नहीं (अयुताय) दशहजारके लिये (न) नही वेचता हूँ (शतामघ) हे अनन्तशक्ति वाले रुद्र (शताय) असंख्य धनके मिलने परभी आप परम कृपालुका त्याग करना किसीभी कालमें (न) नहीं चाहता हूँ ॥ साम० सं० ४ । १ । १ । ९ ॥

व्याख्याः—हे अघोर देहधारी रुद्र, बडे मूल्यवान् धनकी प्राप्तिके लिये आपको नहीं वेचता हूँ, अर्थात् लोभमें फसकर त्याग नहीं करूँगा, ओर हे घोर देह धारी रुद्र तुमको हजार दश हजार लाख असंख्य धन मिलने पर भी नहीं छोडुँगा, हे अनन्त शक्ति वाले रुद्र आप परमदयालु हो फिर मैं कैसे त्याग

रूपसे वेचता हूँ, कभी नहीं छोडुँ गा [यः शुष्कः सघोरोय आर्द्रः सशिवः ॥ जो प्राणोंको देहसे शुष्क करता है सोही घोर और जो शरीरमें प्राणोंको जीवन रूपसे स्थापन करता है सोही आर्द्ररूप अघोर है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ४१ । ५] इन्द्र नाम प्राण शक्तिका है उसका स्वामी चेतन रुद्रभी इन्द्र है ॥ ७ ॥

अभित्वा शूरनो नुमोऽदुग्धाइ वधेनवः ॥ ईशान मस्य जगतः स्वर्दृशमीशानमिन्द्रत स्थुषः ॥ ८ ॥

अन्वयार्थः—(शूर) हे वीर रुद्र तुम (अस्य) इस (जगतः) जंगमके (तस्थुषः) स्थावरके (ईशानं) स्वामी (स्वः) सूर्यके (दृशं) दृष्टा (ईशानं) रुद्रको (अदुग्धाइव) जैसे विना दोहनकी हूई (धेनवः) गौयें वछडाओंके सामने आती हैं ॥ तैसेही (इन्द्र) हे रुद्र (त्वा) आपको (अभि) सन्मुख होकर (नो नुमः) स्तुति करते हैं ॥ सा० सं० ३ । १ । ५ । १ ॥

व्याख्या:—हे वीर रुद्र तुम इस चराचर ब्रह्माण्डके स्वामी हो तुम सूर्यमण्डलके साक्षी चेतनस्वामी हो, जैसे विनादुहि हुई गौयें रम्भाती हुई वछडाओंकी तर्फ दोड़ती हैं उसी प्रकार हे रुद्र आपको हमभी श्रद्धा पूर्वक प्रणाम करते हैं ॥ ८ ॥

त्वां विष्णु वृहन्क्षयो मित्रो गृणाति वरुणः ॥ त्वां शर्धो मदत्य नुमारुतम् ॥ ९ ॥

अन्वायार्थः—(वृहत्) महान श्रवण नक्षत्र रूप (क्षयः) घरवाला (विष्णुः) विष्णुदेवता (मित्रः) मित्र (वरुणः)

वरुणदेवता हे रुद्र (त्वां) तुमको प्रसंन करनेके लिये (गृणाति) स्तुति करता है और (मारुतं) मरुत् देवता सम्बन्धि (शर्धः) बल (त्वां) आपको (अनुमदति) हर्षित करता है॥ साम० सं० उत्तरार्चिक १७ । ३ । ३ ॥

व्याख्याः—हे रुद्र तुमको प्रसन्न करनेके लिये महा श्रवण नक्षत्ररुप घरका स्वामी विष्णु देवता स्तुति करता है तथा मित्र वरुण दोनों देवता स्तुति करते हैं और आपको मरुत् देवता सम्बन्धि बल प्रसंन करता है ॥ ९ ॥

पवित्रंते विततं ब्रह्मणस्पते प्रभुर्गात्राणि पर्य्येषि विश्वतः ॥ अतप्त तनूर्न तदामो अश्नुते शृता सइद्वहन्तः संतदाशत ॥ १० ॥

अन्वयार्थः—(ब्रह्मणस्पते) हे सोमलता अभिमानी देव (ते) तेरा (पवित्रं) उत्तम सोमलता अवयव चोवीश भेद-वाला (विततं) विस्तार पूर्वक मूँजवान् आदि पर्वतोंमें फैला हुआ है (प्रभुः) बलवान् तू (गात्राणि) पीनेवालेके सब अङ्गोंको रोग रहित करके सर्वत्र देहमें प्राप्त होता है (विश्वतः) शुद्ध देहमें सर्वत्रसे व्यापक होता (अतप्ततनूः) पयोव्रत आदि संस्कार रहित देह (आमः) कच्चा अशुद्ध (अश्नुते) शरी-रमें सोमरस व्याप्त होता है (न) नहीं (शृतासः) परिपक्व रूप शुद्ध होनेसे (इत्) ही (तत्) उस सोम रस को पीकर (वहन्तः) देहमें धारण करनेवाले ब्राह्मण (समाशत) उत्त-मताके साथ पचाते हैं ॥ सा० सं० १ । ५ । ९ । १२ ॥

व्याख्या:—हे सोमलता अभिमानी देवता आपका उत्तम-लता अवयव चोवीश भेद युक्त विस्तार पूर्वक मूँजवान् आदि पर्वतोंमें फैला हुआ है अतिशक्तिमान् सोमरस पीनेवालोंके समस्त अङ्गोमें व्याप्त होता हुआ सब रोगोंका नाश करता है. वह सोमरस शुद्ध देहमें सर्वत्रसे व्यापक होता है, पयोव्रत आदि संस्कार रहित देह, कच्चा अशुद्ध शरीरमें सोम रस व्याप्त नहीं होता है ब्रह्मचर्य्य आदि व्रतसे ही परिपक्वमय शुद्ध होनेसे ही उस सोम-रसको पीकर देहमें धारण करनेवाले ब्राह्मण उत्तमताके साथ पचाते हैं. [**अशृता सः शृता स्सश्च ॥** मलीन अन्तः करणवाला और शुद्ध अन्तःकरण वाला ॥ तैत्तरीयारण्यक १ । २७ । ४] **पयो ब्राह्मणस्य व्रतं ॥ यवागूराजन्यस्य ॥ आमिक्षा वैश्यस्य ॥** एक महिनेसे लेकर एक वर्ष पर्य्यन्त पापकी शुद्धिके लिये व्रत करे ॥ गौ दूध पीकर रहेनाही ब्राह्मणका व्रत है ॥ जव तिल मिश्रित लप्सी खाकर रहेना ही क्षत्रीका व्रत है ॥ गर्म दूधमें दही डालकर आमिक्षा रूप फटे दूधको खाना ही वैश्य जातिका व्रत है. यही पयोव्रत है ॥ तै० आरण्यक० २ । ८ । १] **संवत्सरं नमाँसमश्नीयात् ॥ न रामामुपेयात् ॥ न मृन्मयेन पिबेत् ॥ नास्य राम उच्छिष्ट पिबेत् ॥ तेजएवतत्स ँ श्यति प्रवर्ग्यं ॥** अनुष्ठान करने वाला, एक वर्ष पर्य्यन्त मांसको न खावे, (**रामां**) स्त्रीको सेवन न करे ब्रह्मचर्य्य व्रत पाले ॥ मट्टीके करवासे जल दूध न पीवे ॥ इस व्रत करने-वाले पिताका उच्छिष्ट जल भी (**रामः**) **पुत्र न पीवे** । भली प्रकार उस अपने व्रतको रक्षा करे नहीं तो तेजको नाश करता है ॥ तै० आरण्यक ५ । ८ । ४६] **अयज्ञो ह्येषयो अनग्निः ॥ अजोबद्धस्तां रात्रींवसेत ॥** जो यज्ञ रहित ब्राह्मी ही

अनग्नि है, यज्ञके लिये बकरा बाँधा उस रात्रीको यजमान भूमी-पर वास करे ॥ तांरात्रीं व्रतंचरेत् ॥ नमाँस मश्नीयात् ॥ नस्त्रीमुपेयात् ॥ उस रात्रीको व्रत करे मांसको नखावे और स्त्रीको गमन न करे ॥ देवतावा एता आविर्भवन्ति ॥ इस प्रकार पयोव्रत ब्रह्मचर्य्यं आदिनियम पालन करने वालेकी यज्ञमें ये सब इन्द्रादि देवता ही प्रगट होते हैं ॥ कपिष्ठल कठ सं० ७ । ७ ॥ काठक सं० ८ । १२] इन्द्राग्नी मित्रावरुणौ सोमोधाता बृहस्पतिः ॥ तेनो मुञ्चन्त्वेनसो यदन्कृतमारिम ॥ जो यज्ञसे भिन्न पापको करनेवाले हम हैं उस पाप समुहसे हमको जे सूर्य अग्नि दिन रातके देवता मित्र वरुण, सोम बृहस्पति ब्रह्मा आदि हैं, वे सब देवता छुडावें ॥ तै० आरण्यक २ । ३ । ४] यज्ञमें पशु वधका पाप नहीं होता है वह सर्वदा अहिंसा ही है ॥ सब देवता सोमपान करते हैं ॥ यज्ञ रहित होना ही अनाग्नि है ॥ तीन आश्रम यज्ञके अधीकारी और चतुर्थ आश्रम संन्यासी यज्ञ रहित होनेसे ही अनाग्नि है ॥ इस समय सबही अनग्नि हैं ॥ १० ॥

इन्द्राय साम गायत विप्राय बृहते बृहत् ॥ ब्रह्म-
कृते विपश्चिते पनस्यवे ॥ ११ ॥

अन्वयार्थः—हे उद्गाताओ तुम (विप्राय) मेधावी (विपश्चिते) विद्वान् (पनस्यवे) स्तुतिसे प्रसंन होनेवाला (बृहते) महा (ब्रह्मकृते) प्राणशक्तिके द्वारा प्रपंचका उत्पन्न कर्त्ता (इन्द्राय) इन्द्रकी महिमाको गायन करनेके लिये (बृहत्) बृहत् नामका (साम) साम (गायत) गायन करो ॥ साम सं० उत्तरार्चिक ६ । ७ । १ ॥

व्याख्याः—नित्य ज्ञान स्वरूप सर्वज्ञ स्तुतिसे संतुष्ट होनेवाला महा प्राणशक्तिके द्वारा विश्वको रचना करनेवाला रुद्रकी महिमाको गायन करनेके लिये बृहत् नामके सामका हे उद्गाताओ तुम सब मिलकर गायन करो ॥ ११ ॥

त्वमिन्द्राभिभूरसित्व ँ सूर्यमरोचयः ॥ विश्वकर्मा विश्वेदेवो महाँ असि ॥ १२ ॥

अन्वयार्थः—(इन्द्र) हे इन्द्र (त्वं) तुम (अभिभूः) पापका तिरस्कार करनेवाला (असि) है (त्वं) तुम (सूर्यं) सूर्यको (अरोचयः) प्रकाश करनेवाले हो (विश्वकर्मा) जगत् कर्त्ता (विश्वे देवः) समस्तदेव स्वरूप (महान्) सबसे बड़े (असि) हो ॥ सा० सं० उ० ६ । ७ । २ ॥

व्याख्याः—हे सर्वैश्वर्य्य सम्पन्न रुद्र तुम पाप आदि शत्रुओंका तिरस्कार करते हो तुम सूर्यको प्रकाश करते हो, तुम सब जगत्के कर्त्ता हो तुम सकलदेव स्वरूप हो तथा सबसे बड़े श्रेष्ठ तुम हो ॥ १२ ॥

त्वंहिनः पिता वसोत्वं माताशतक्रतो बभूविथ ॥ अथाते सुम्नमीमहे ॥ १३ ॥

अन्वयार्थः—(वसो) हे व्यापक (शतक्रतो) इन्द्र (त्वं) तुम (नः) हमारे (पिता) पिता (त्वं) तुम (माता) माता (हि) ही (बभूविथ) हुएहो (अथ) और (ते) आपके (सुम्नं) सुखको (ईमहे) हम चाहते हैं ॥ सा० सं० उ० ८ । ६ । २ ॥

व्याख्याः—हे व्यापक इन्द्र तुम हमारे मातापिता हुए हो और आपसे हम सुख माँगते हैं ॥ १३ ॥

भद्रं कर्णेभिः शृणुयाम देवा भद्रं पश्येमाक्षभिर्यजत्राः ॥ स्थिरै रङ्गै स्तुष्टुवा ँ सस्तनूभिर्व्यशेमहि- देवहितं यदायुः ॥ १४ ॥

अन्वयार्थः—(देवाः) हे देवताओ आपकी दयासे (भद्रं) कल्याणमय वेद वचनोंको (कर्णेभिः) श्रवण इन्द्रियोंके द्वारा (शृणुयाम) हमसुने (यजत्राः) हे यजन करनेवालोंके पालक देवताओ (भद्रं) वेदात्मक मंत्र समुहको (अक्षभिः) नेत्रोंद्वारा (पश्येम) हम पठन करते हुए देखें (स्थिरैः) दृढ (अङ्गैः) जिह्वा आदि अवयवों करके (तुष्टुवाँसः) स्तुतियोंको करते हुए (तनूभिः) शिष्य पुत्रोंके सहित (देवहितं) ब्रह्मासे स्थापित (यत्) जो (आयुः) सौ वर्ष आयु (व्यशेमहि) हम पावें ॥ साम० सं० २१ । १ । २ ॥

व्याख्याः—हे स्वर्गवासी देवताओं आपकी अनुग्रहसे मंगलमय वेदके वचनोंको कानोंसे हम सुने, हे यज्ञ ध्यान कर्त्ताओंके रक्षक देवताओ वेदके मंत्र समुहको नेत्रोंसे पठन करते हुए हम देखें जिह्वा आदि मूक दोष रहित दृढ हात पग अवयव पङ्गु आदि दोष रहित होवें उनके द्वारा प्रार्थनाओंको करते हुए शिष्य पुत्र आदिके सहित जो सौ वर्षकी आयु ब्रह्माने स्थापनकी हुई उस आयुको हम प्राप्त करें [शतायु वैं पुरुषः शतवीर्यः ॥ सौ वर्षकी आयुवाला पुरुषही है सैकडों शुभ कर्मरूप बलवाला पुरुष

है ॥ कपिष्ठल कठ सं० ३६ । २] ब्रह्माने मनुष्यकी सामान्य आयु सौ वर्षकी निर्माण किया है ॥ १४ ॥

स्वस्तिन इन्द्रो वृद्ध श्रवाः स्वस्तिनः पूषाविश्व वेदाः ॥ स्वस्तिनस्ताक्ष्यों अरिष्टनेमिः स्वस्तिनो बृहस्पतिर्दधातु ॥ ॐ शान्तिः ॥ शान्तिः ॥ शान्तिः ॥ १५ ॥

अन्वयार्थः—(वृद्धश्रवाः) महा यशवाला (इन्द्रः) इन्द्र देव (नः) हमको (स्वस्ति) सुख करे (विश्व वेदाः) सबको जाननेवाले (पूषा) पूषादेव (नः) हमको (स्वस्ति) सुखसे पालन करे (अरिष्टनेमिः) पापके नाश करनेवाला (ताक्ष्र्य) वायु देवता (नः) हमको (स्वस्ति) आरोग्य सुख करे (बृहस्पतिः) देव गुरु (नः) हमारे हृदयमें (स्वस्ति) उत्तम बुद्धिको (दधातु) स्थापन करे ॥ साम सं. उ. २१ । १ । ३ ।

व्याख्याः—महा यशवाला सूर्य देवता हमको सुखी करे, सब प्राणियोंके शुभाशुभ कर्मको जाननेवाला अग्नि देवता हमको पोषण करे, पापनाशक वायु देवता हमको आरोग्यरूप सुख करे, देव गुरु हमारे हृदयमें उत्तम बुद्धि मय सुखको स्थापन करे [वायुर्वै देवानां पवित्रं ॥ वायु ही सब देवोंके मध्यमें पवित्र है ॥ काठक सं ३१ । ५] वायुर्वै ताक्ष्र्यः ॥ वायु ही ताक्ष्र्य नामवाला है ॥ शांखायन ब्रा० ३० । ५] ये सब देवता मेरा कल्याण करें ॥ १५ ॥

इति श्री सामवेदीय रुद्र ॥ प्रथम सूक्त ॥

राजपीपला संस्थान निवासी

श्रीमत्परमहंसपरिव्राजकाचार्य स्वामी

शंकरानन्दगिरि विरचिता गौरी व्याख्या समाप्त ॥१२॥

॥ शुद्धि पत्र ॥

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१	३	मव	भव
१	५	सुरा सुरेः	सुरासुरैः
१	७	शंकराय्र्यै	शंकरार्यै
३	१	बह	बृह
३	६	पन्यंम्	पन्थाम्
४	३	तद्ब्रह्मै	तद्ब्रह्मै
४	४	ध्येत	ध्येत
४	१७	ह	है
४	१९	सूर्यस्य	सूर्यस्य
४	२१	त	तं
५	५	अग्नि	अग्निः
५	६	बहच्छेपः	बृहच्छेपः
५	१०	जगत्	जगतको

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५	१२	तत्तरीय	तैत्तरीय
५	१९	। ६ १०	। ६ । १०
६	६	होवे	होवेतो
७	७	ब्रा० २ । २ । ९ । ९	तै० ब्रा० २ । २ । ९ । १
६	२४	व्यापर	व्यापार
८	२३	तैत्तरीय सं० ५ ।	तैत्तरीय सं० १ ।
८	२५	ऋग्० ५ । ८८ । १	ऋग्० ५ । ४४ । २
९	३	अम्भिका	अम्भिका तथा
९	११	प्रकतं	प्रकेतं
९	१४	(गुह्ल)	(गुह्ळं)
१०	२३	ह	है
१२	११	त्रिवृध्दि	त्रिवृद्धि
१३	१३	प्रसुं	प्रभुं
१३	१९	आम्लिका	अम्बिका
१५	१३	। ९ । २	। १ । २
१६	८	राकाश	राकाशं
१६	१२	पुप्करे	पुष्करे
१६	१३	(ब्रह्म)	(ब्रह्म)
१६	१६	शक्तके	शक्तिके
१७	१९	अव्यातृत्त रूप	अव्याकृत रूप
१७	२३	अव्यावृत	अव्याकृत
१९	१२	अव्यक्तको	अव्याकृतकी
१९	२४	रेतों	रेतो
२०	१	रेतो धाः	रेतो धाः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०	१५	वक्षमें	वृक्षमें
२०	१६	ह	है
२०	२०	परिपक्क	परिपक्व
२०	२२	ह	है
२१	४	०	देहधारीके पीछे " ब्रह्माको स्थूलः देहधारी " अधिक वांचना
२१	८	ह	हैं
२१	१२	वरूप ह	स्वरूप है
२१	१३	तद्व्रह्य	तद्ब्रह्म
२१	१५	तस्मिल्लो	तस्मिँल्लोकाः
२१	१४	सव	सर्वे
२१	१८	आकाराम	आकारमें
२१	१९	वितृत	विस्तृत
२१	२२	आाद	आदि
२२	३	दितः	दितिः
२२	८	ऊर्ध्व	उर्ध्वं
२३	२३	(अजात)	(अजाता)
२४	४	कोन	कौन
२४	१०	हे	है
२४	१४	(इय)	(इयं)
२४	१६	जोही	सोही
२४	१७	(अय)	(अस्य)
२४	१९	जाता	जानता
२४	२२	जगत् का	जगत् को

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५	५	रुपं रुपं रुपं	रूपं रूपं रूपं
२५	६	पुरू रुप	पुरु रूप
२५	१३	ह	है
२५	१५	हुई	हुआ
२६	५	नही	नटी
२६	१९	०	तपलोकमें के पीछे "प्रजापति" वांचना.
२७	१	किमा	क्रिया
२७	१९	स्वधामिः	स्वधाभिः
२८	९	ऋन०	ऋग०
२८	११	वस्तु	वसु
२८	१३	ब्राह्मण	ब्राह्मण
२८	२२	सशदशधा	सदशधा
२९	१२	इद्रो	इन्द्रो
२९	२०	(वृघां)	(वृधां)
२९	२३	भहेश्वर	महेश्वर
३१	१५	द्यो	द्यौ
३२	१	दशानामेकें	दशानामेकं
३२	१०	समग्रेखर्यशाली	समग्रैश्वर्यशाली
३२	१५	रथापन	स्थापन
३३	२१	॥ ऋग० ६ ।	॥ ऋग० ३ ।
३३	२१	अङिरामिः	अङ्गिराभिः
३३	२५	रुद्र	रुद्रनें
३४	१३	(पूर्व)	(पूर्वे)

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३५	७	प्रजापतिर्देवा	प्रजापतिर्देवाँ
३६	७	साही	सोहि
३६	२०	वे	वै
३७	५	प्राणो	प्राणा
३७	१०	ब्रह्मण स्प्रति	ब्रह्मणस्पति
३७	१३	वामी	स्वामी
३७	२२	जसे	जैसे
३८	१५	रुदका	रुद्रका
३९	५	ब्रह्म	ब्रह्म
३९	८	बल	बलं
३९	१२	सं० १।ण०।२५]	सं० १।१०।१५]
३९	१३	वे	वै
४१	२३	फलरुप	फलरूप
४१	२४	रुपोंसे	रूपोंसे
४१	२५	प्रजापते रुपसे	प्रजापति रूपसे
४१	२५	स्वरुपसे	स्वरूपसे
४२	२	अतीति	अत्तीति
४२	२४	॥ ऋग्० १।२५।१	॥ ऋग्० १०।२५।१]
४३	२	अन्वजायन्न	अन्वजायन्त
४४	१९	द्युलोकम	द्युलोकमें
४४	२०	रुपसे	रूपसे
४७	२१	भव्य	भव्यं
४८	१२	मै ब्रह्मा एकहूँ बहुत	मै एक हूँ यही चेतन
४८	१५	ह	है

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६	१६	सामाभि रक्षतः	सोमाभि रक्षतः
५०	४	दाण्ड	दाण्डं
५०	७	पृथिवा	पृथिवी
५०	९	समुद्रः	स समुद्रः
५१	२	बभूवषी	वभुवुषी
५१	१३	नौवद	नौपद
५१	१६	॥ ऋग्०१.। १४४। ४२]	॥ ऋग् ०१ । १६४ । ४२]
५२	१५	जात	जांत
५२	२२	(पचजना:)	(पंचजना:)
५३	१५	रुप	रूप
५३	१६	आदतिके	अदितिके
५३	१६	देत्योंके	दैत्योंके
५३	१७	[आदतिः ॥	[अदितिः ॥
५४	८	रुप	रूप
५५	३	लोकरुप	लोकरूप
५५	१२	परुष	पुरुष
५५	१७	देवाधानं	देवध्यानं
५५	२५	देता	देवता
५६	१	हाता	होता
५३	३	प्रजापतके	प्रजापतिके
५६	३	ब्रह्मके	ब्रह्माके
५६	३	॥ कौषतक्कि	॥ कौषीतक्कि
५६	६	एक	एको

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५३	१४	व्पष्टिरुप	व्यष्टिरूप
५७	१०	ह	हं
५७	२२	स्वमं	स्वयं
५७	१३	स्वरुप	स्वरूप
५७	१३	व्रह्मके	ब्रह्मके
५८	२	साक्ष	साक्षी
५८	४	रे ा:	रेकः
५८	५	थ	था
५८	१२	मृत	मृतं
५९	४	जनिता	र्जनिता
५०	१२	——	प्रकट करनेवाला पीछे "(इन्द्रस्य) अन्तरिक्षमें वायुका (जनिता) प्रगट करनेवाला" अधिकवांचना
६०	१२	॥ में० सं०	॥ मै० सं०
६०	१४	इस स्थापनमें	इस स्थानमें
६२	३	। ऋग्० १० । १११ । १ ॥	ऋग्० १० । १९ । १ ॥
६२	११	हे	है
६२	१९	उपादन	उपादान
६३	८	महेशरका	महेश्वरका
६३	१०	॥ ऋग्० ६ । १६ । ६५ ।]	॥ ऋग्० ६ । १६ । ३५ ।]
६३	२०	॥ ऋग्० ४७ । ११ ।]	॥ ऋग्० १ । ४७ । ११ ।]
६४	६	रूप सूर्य	सम्वत्सर रूप सूर्य
६४	९	मूहुर्त	मुहूर्त
६४	१५	काष्ट	काष्ठा

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
६४	२०	पृथिवी	पृथिवीं
६५	१०	संस्वान	संस्थान
६६	२	ऑं	ॐ
६७	१०	अधिदेव	अधिदैव
६७	२२	(कि)	(किं)
६८	१५	विव्वतश्वक्षु	विश्वतश्वक्षु
६९	३	—	सर्वत्र व्यापकके पीछे " सूर्यसब प्राणीयोंका अध्यात्मरूप (चक्षुः) नेत्र है (उत) ओर (विश्वतः) अधिदैव रूपसे सर्वत्र व्यापक वायु सम्पूर्ण जन्तुओंका अध्यात्म (बाहुः) बलयुक्त हस्तक्रिया है (विश्वतः) अधिदैवरूपसे सर्वत्र व्यापक अग्नी सब देहधारीयोंका अध्यात्म रूप (मुखः) मुखसहित वाणी है (उतः) ओर (विश्वतः) अधिदैव रूपसे सर्वत्रव्यापक " अधिकवांचना
६०	७	उप मस्तक	रूप मस्तक
६०	१६	जसे	जैसे
७०	११	॥ तै० ब्रा० १।	॥ तै० ब्रा० १। ३। ७। ६। ७।]
७१	२२	स्थान	स्थान अन्तरिक्ष है
७२	३	तदात्मान	तदात्मानं९
७२	५	घाणशक्ति	प्राणशक्ति

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
७२	७	८ । ७ । २ ।]	८ । ७ । १ ।]
७४	१	पृथिव्यै	पृथिव्यै
७४	२	ताम्र	ताम्रे
७५	१४	प्रकार था	प्रकारका था
७६	३	विराजमान	विराजमान
७६	४	रश्मुर	रश्मुरै
७६	५	स्विद्गर्भ	स्विद्गर्भं
७७	८	भुनमात्र	भुवनमात्र
७७	२२	॥ ऋग्० ३ । ४१]	॥ ऋग्० ३ । ४५ । २ ।]
७७	२५	॥ ऋग्० १ । ६ । ७ । ६]	॥ ऋग्० १ । ६७ । ६ ।]
७७	२५	नाभिः	नाभिं
७८	८	आपो	अपो
७८	१०	अथर्वण १० । ५ । ११ ।	अथर्वण १० । ५ । १९
७८	१५	तैत्तरीयारण्यक ५ । ४ । ११	॥ ऋग्० ८ । ६१ । ११]
७८	२५	गापाः	गोपाः
७८	२५	ब्रह्मा देवता	ब्रह्मा देवताही
७९	१	चन्द्रमाका	चन्द्रमाको
७९	९	दीघ	दीर्घ
७९	११	कृत	अव्याकृत
७९	१३	घर्मोंसे रहेत	घर्मोंसे रहित
८०	१	ब्रह्मावे	ब्रह्माने
८०	१	(श्रद्धा)	(श्रद्धां)
८०	१०	९ । १५ । २५]	९ । १५ । २४]
८०	१७	वले	वाले

पृष्ठ	पंक्ति.	अशुद्ध	शुद्ध
८०	१९	प्रकाशवले	प्रकाशवाले
८१	७	॥ काठक सं० १४।]	॥ काठक सं. १४। ७।]
८१	१४	ऐतरेंय ब्रा० ३३।४१।	ऐतरेय ब्रा० ३३।४।१॥]
८१	२३	काठक सं० २४।६]	काठक सं० २४।५]
८१	२४	शतपथ ब्रा.४।१।१०	शतपथ ब्रा.४।१।४।१०]
८१	२५	वास्तोष्पति	वास्तोष्पतिं
८२	६	प्रपंव	प्रपंच
८२	६	कपिसं० ४८ १५]	कपि० सं० ४८।१५]
८२	१६	ाहरण्यं	हिरण्यं
८२	१९	कपि० सं० ३१।१२	कपि० सं० ३१।१३
८२	२२	प्रश्नों० १।१४	बृ० उ० ६।६
८२	२२		प्रजापतिर्वैकः के प्रथम "अन्नं वैप्रजापतिः ॥ स्थूल विराटही प्रजापति है प्रश्नो० उ० १। १४]" अधिक वांचना
८२	२३	हे	है
८२	२५	त्रिवृतू	त्रिवृत्
८४	२३	(विश्वे)	(विश्वे) सब
८५	८	क्षेत्र	क्षेत्रज्ञ
८५	१३	उपसना	उपासना
८५	१७	मासीं	मासी
८५	२४	अथर्वण १०।८।१२	अथर्वण १०।८।१३
८६	७	विघिध	विविध
८७	११	वें	वैं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
८८	१६	(स्वहा)	(स्वाहा)
८९	१	दहूळा	दहूळा
८९	१४	वहीदढ	वही वडी दढ
९१	१	तस्यभान	तस्यभाने
९१	२	मूर	सूर
९१	२१	विश्व	विंश्व
९४	६	नियता	नियंता
९४	१८	दृष्टिमें	दृष्टिमें
९४	१९	वस्तु है,	वस्तु सत्य हैं,
९६	५	ऋग्० ३।६२।८	ऋग्० ५।६३।३–७]
९६	७	॥८।३३।१५]	॥८।२३।१५]
९६	१३	ऋग्० ५।४४।]	ऋग्० ५।४४।११]
९६	१८	ता०	ता० ब्रा०
९६	१९	ता०	ता० ब्रा०
९६	२०	शतपथ ब्रा० ३।९।२७	शतपथ ब्रा० ३।९।३।२७
९७	१	अमुर	असुर
९७	२	शतपथ ब्रा० ६।२।६	शतपथ ब्रा० ६।६।२।६
९७	१३	अद्भुत	अद्भुतं
९७	१४	व्रतु	वस्तु
९७	१६	ऋग्० ६७।८]	ऋग्० ६।६७।८
९७	२०	महिना	महिना
९८	३	बह्माको	ब्रह्माको
९८	१६	उत्पत्ति	उत्पत्तिके
९८	१९	ऋग्० १।७५ ५	ऋग्० १।७५।५

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
९९	७	ऋग्० २ । ३ । १२	ऋग्० १ । ३ । १२
१००	२३	ब्रह्मापूवः	ब्रह्मा पूर्वः
१००	२३	पूजा	पूज्य
१००	२५	सत्यपद द्व्याविनः	सत्यंपदम् द्व्याविनः
१०१	५	जमन्	जामन्
१०१	७	स्वमी	स्वामी
१०२	६	अन्तय्यामीमें	अन्तर्य्यामीमें
१०२	२२	पुण्डराकं	पुण्डरीकं
१०२	२२	त्रिभिर्गुणे	त्रिभिर्गुणै
१०३	१०	जव	जव
१०३	१३	स्नयः	स्नयः
१०३	२१	यतो वच	यतो वैच
१०५	४	ब्रह्मवारी	ब्रह्मचारी
१०५	५	ब्रह्माको	ब्रह्माकी
१०५	१३	और	आर
१०५	१४	छौट	लौट
१०५	१९	मुपन्त्य	मुपयन्त्य
१०५	२०	हा	ही
१०६	१	तेसे	तैसे
१०६	१५	सभ	सभा
१०६	१७	है । के पीछे "तू कौन है" बांचनी	
१०६	२२	द्वेभ्य	द्वेभ्य
१०७	६	व्नष्टि उपाविक	व्यष्टि उपाधिक
१०७	१३	त्म	त्य

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१०७	२३	व्ययः	र व्ययः
१०८	२		सामवेद जिसका शिर है। पीछे "ऋग्वेद ही जिसकी मूर्ति है॥" यह अधिक वांचना
१०८	३	जनो	जानो
१०८	५	बूयात्	ब्रूयात्
१०९	८	वे	वै
१०९	९	मृतं	मृत
१०९	११	किया	क्रिया
११०	१२	ब्रा० ३। ५। ३। ३]	ब्रा० ३। ७। ३। २।]
११०	१६	पारता	परिता
१११	३	आसे	आपसे
११२	८	चरचर	चराचर
११२	१८	(पिशङ्ग)	(पिशङ्गा)
११२	२०	हिताः	हित;
११२	२५	संन्यासीयाका	संन्यासीयोका
११३	२४	विगजमान	विराजमान
११५	४	सपन्तं	सर्पन्तं
११७	८	प्रजा	प्रजा
११८	६	ह	है
११८	१२	प्रकश	प्रकाश
११८	१५	उतामत	उतामृत
११८	१७	अन्वयाथ	अन्वयार्थ
११९	२४	संबन्ध	संबन्धना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१२१	२	निश्चयं	निश्चय
१२१	७	अग्नि वै	अग्नि वैं
१२३	९	योग्य	भोग्य
१२३	१४	(पुरुष)	(पुरुषः)
१२३	१६	वह्य	वाह्य
१२३	१८	आश्रमें	आश्रयमें
१२५	४		(सः) सो पीछे "(पुरुषः) पूर्ण पुरुष" यह अधिक वांचना
१२६	४	प्रजाजपतिर्वा	प्रजापतिर्वा
१२६	२२	(आज्य)	(आज्यं)
१२६	२३		ईंधन हुआ पीछे " (शरत्) शरद् ऋतु (हविः) हवन द्रव्य हुआ ॥ " यह अधिक वांचना
१२७	८	देवो	देवोंने
१३१	७	हुई	हुई
१३१	११	जाति मात्र हूई	जातिमात्र प्रगट हुई
१३३	२०	पया	पयो
१४१	७	अग्नि	अग्निं
१४३	१७	पूर्वो	पूर्वौ
१४४	१४	विस्णुः	विष्णुः
१४४	२४	पूर्वोऽमा	पूर्वोऽसा
१४४	२५	द्वितयं	द्वितीयं
१४५	२०	अग्नि	अग्निं
१५३	१२	स्वर्ग	स्वर्गं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१५३	१९	कही	कटी
१५४	३	गौरी व्याख्या	गौरी व्याख्या समाप्तः
१५५	३	ऊँति	उति
१५८	७	त्याग	आश्रय
१५८	८	(अन्य न्रतः)	(अन्य व्रतः)
१५८	९	स्मति	स्मृति
१५९	१३	वेदोर्ंं	वेदोनों
१६०	६	शतपथब्रा० ६।४।२।३०]	शतपथब्रा० ६।४।१।३]
१६०	२१	ब्रह्या	ब्रह्मा
१६१	३	वास्तोष्पति	वास्तोष्पतिं
१६३	१५	कामकी	काम मोक्षकी
१६५	१३	रुद्रने	रुद्रने
१६७	११	वरूण	वरुण
१६७	१३	हुआ	हुए
१६८	१६	उत्पन्न	उत्पन्न
१६९	११	वास्तोप्पतये	वास्तोष्पतये
१६९	१४	हृदकमें	हृदयमें
१६९	२०	क्रूरे	क्रूरे
१७२	८	गीस्तु	गोस्तु
१७३	२	तस्माद्वार्गवश्व	तस्माद्वाग्विश्व
१७३	७	ब्रह्या	ब्रह्मा
१७३	१३	सेडेक	सेडैक
१७४	५	मोगोंको	भोगोंको
१७४	१७	षड्विश	षड्विंश

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
१७७	१४	ऋग्० ३।५८।१	ऋग्० ३।५५।१३
१७७	१४		सूरे दुहिताके प्रथम " धेनुः ॥ गों नाम उषाका है ॥ ऋग्० ३।५८।१ " अधिक वांचना
१७७	२२	धनुः	धेनुः
१८०	६	अर्घ्य	अर्घ्य
१८०	८	धियाय आनने	धिय आनने
१८३	९	द्रारा	द्वारा
१८५	२२	तङ्गाग	तङ्गण
१९०	८	देवकोक	देवलोक
१९१	५	स्वगौं	स्वर्गो
१९२	३	देवरथान्यं	देवरथाह्वयान्यं
१९६	२०	मूलको	मूलको
१९७	१६	देवताओंसे	देवताओंने
१९८	१६		पशवः ॥ के पीछे " बाराआदित्य पशु है ॥ कपि० सं० ३७।५] प्रजापत्यावैपशवः ॥" अधिक वांचना
२००	२०	हरता है	हराता है
२००	२४		देवानामोजिष्ठः ॥ के पीछे " इन्द्र देवोंके मध्यमें बलवान् है ॥ रुद्रो वै देवानामोजिष्ठः ॥ " अधिक वांचना
२०१	५	असौभ्य	असौम्य
२०१	७	यज्ञियांय	यज्ञियाय
२०१	१९	यक्ष	यक्ष

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२०१	२४	सततं	समर्थ
२०३	९	देखने लिये	देखनेके लिये
२०३	१५	वीयवे	वायवे
२०४	४	सनन	सततएव
२०७	१४	रिरण्य	हिरण्य
२०८	१३	बहती	वृहती
२०९	१६	स्वरूपको	स्वरूपका
२१०	६	वहन्त	वृहन्त
२१२	१६		शक्तिसे उत्तम पीछे " पुरुष है, " अधिक वांचना
२१२	१६	कगे०	कठो०
२१४	१८	ययः	वयः
२१६	४	मतेः	गतेः
२१७	५	औपन्यव	औपमन्यव
२१९	२१	ज्योतिहरः	ज्योतिर्हरः
२२०	१०	तयस्य	ते यस्य
२२०	१७	रूद्रका	रुद्रको
२२१	१३	ऋग्० १० । १६ ।	ऋग्० १० । ९६ ।
२२१	२१	है	हो
२२२	२१	विपरिचन्नायं	विपश्चनाय
२२२	२३	शारवतो	शाश्वतो
२२२	२३	पुराणा	पुराणो
२२३	२५	ऋग्० १ । ११५	ऋग्० १ । १ ५ । १
२२४	७	सविता है	सविता ही यह इन्द्र ओर प्रजापति है ।

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२२४	१४	हिरण्यम	हिरण्यमय
२२४	२२		बनता है ॥ पीछे "यह प्रतीका उपासना है ॥ और वास्तविकतो पुरुष सर्व चिन्ह रहित शुद्ध है ॥" यह अधिक वांचना
२२८	१४	देवताओ	देवताओंने
२२८	१७	रोनेके	रोनेसे
२३०	८	गण्डल	मण्डल
२३४	१६	(ब्रह्मणस्पति)	(ब्रह्मणस्पतिं)
२३५	१६	क० सं० ३९ । १८ ॥	क० सं० ३१ । १८ ॥
२३५	२२	ईन्द्र	इन्द्रो
२३६	२०	विप्णाप्वं	विष्णाप्वं
२३६	२१	मरें	मरे
२३७	१६–१७	१ । २४ । ७	ऋग्० १ । २४ । ५ ।]
२३८	१८	२ । ५ । ९	मै० सं० २ । ५ । ९
२४०	४	रदिति	रदितिं
२४०	२३	सामा	सोमो
२४०	२४	आदितिब्र	अदितिर्ब्र
२४१	१९	बृहस्पतिब्र	बृहस्पतिर्ब्र
२४२	१	वादियोंका	वादियोंका स्वामी है ॥
२४२	४	द्योका	मेघोंका
२४२	२४	ऋग्० १० । १३ । ४	ऋग्० १० । ९३ । ४ ॥
२४३	६	द्रु	ह्रुं
२४३	८	उसासकोंके	उपासकोंके

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२४४	२	विष्यतां	विप्यतां
२४४	१९	ऋग्० १ । २ । २९ ।]	ऋग्० २ । २ । २१ ।]
२४४	२०	विप्णु	विष्णु
२४५	४—५	रादित्य	रादित्यः
२४५	१७	उग्र	उग्रं
२४५	१७	मग्नि	मग्निं
२४७	३	मित्न	मित्र
२४८	१३	प्राप्तके पीछे " हुये " अधिक वांचना	
२४८	१७	करता	कराता
२४९	५	(तथाः)	(वयः)
२४९	८	धीरण	धारण
२५०	११	तेवा	तेघा
२५१	११	तुभ्यं	तुभ्य
२५२	१३	(अमन्यत्)	(अमन्थत्)
२५३	२	रुश्रयो	रुज्रयो
२५३	११	बाल	बाला
२५३	१२	ऋग्० सं० १० । ९२ । ५ ॥	ऋग्० १० । ९२ । ५ ॥
२५४	६	(सघस्थे)	(सधस्ये)
२५४	२१	सूर्यः	मथूर्यः
२५५	१२	चाता	जाता
२५६	१५	पराश्रय	पराजय
२५९	५	हे	है
२५९	९	तै० सं० ६ । १७]	तै० सं० ६ । २ । १ । ७]
२५९	१४	परिशिष्ट १० । ५]	परिशिष्ट १० । १ । ५]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२५९	२३	लक्ष	लक्ष्य
२६०	३	मिल गै पीछे “ कुरुक्षेत्रसे–मरुस्थल, सोराष्ट्रके समुद्रमें मिलगे ॥ ”	
२६०	२२	दृषद्वती	दृषयती
२६३	४	(सुरयः)	(सूर्य्यः)
२६३	१३	मेरी	मेरे
२६४	१	आकारका	आकारको
२६४	१४	हयृतं	ह्यृतं
२६५	२०	मै० सं० ५ । ५ । १]	मै० ४ । ५ । १]
२६५	२२	मै० सं० ६ । ८ । ५]	मै० सं० ४ । ८ । ५ ।]
२६५	२३	मै० सं० ५ । द । ६]	मै० सं० ४ । ३ । ६ ।]
२६६	३	रुद्रकों	रुद्रकी
२६७	२	ता० १२ । ४ । ४ ।	ता० ब्रा० १२ । ४ । ४ ॥
२६७	१०	द्यो	द्यौ
२६८	५	वृक्षसो	वक्षसो
२६८	११	द्योके	द्यौके
२६८	१२	(रूकम	(रुक्म
२६८	१७	द्योके	द्यौके
२६९	८	(रूद्रः)	(रुद्र)
२७०	२	(सुअस्वाः)	(सुअश्वाः)
२७१	१२	ऋग्० ६ । ५० । ५ ॥	ऋग्० ६ । ५० । ४ ॥
२७२	१	अन्ववर्यया	अन्वयार्थ
२७३	२	ऋग्० ७ । २५ । १ ।]	ऋग्० ७ । २४ । १ ।]
२७३	५	माध्वमिका	माध्यमिका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२७३	५–६	मै० सं० २ । २ । ८]	मै० सं० २ । १ । ८]
२७३	११	तै० सं० ५ । ५ । ६ । ७]	तै० सं० ५ । ४ । ८ । ७]
२७३	१४	मरूतः	मरुतः
२७३	१५	मरूतः	मरुतः
२७३	२०	(रूद्रस्य)	(रुद्रस्य)
२७३	२२	भूमी रक्षा	भूमीकी रक्षा
२७४	८	भेत	मेत
२७५	२०	महा	महो
२७६	५	(सादूत्)	(साइत्)
२७६	२४	सोमउमा	सोम–सउमा
२७७	२०	आश्रमके	आश्रयके
२७८	१४	—	विश्वे देवाः ॥ के पीछे " मरुतही सब देवता हैं ॥ जे अधिदैव हैं वे ही अध्यात्म मनुष्य हैं ॥ मनुष्या वै विश्व-देवाः ॥" अधिक बांचना
२८०	९	(युव)	(युवं)
२८०	२१	पोशा	पाशा
२८१	७	ऋग्० ६ । ७४ । ५ ॥	ऋग्० ६ । ७४ । ४ ॥
२८३	१५	पसंनता	प्रसन्नता
२८३	२२	एवयात	एवयाव
२८४	५	अद्य	(अद्य)
२८४	८	सोमं	स्तोमं

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
२८५	९	क्ा	को
२८५	१०	क	के
२८६	५	४२	४६
२८८	२	चतुष्पदे चतुष्पदे	"चतुष्पदे" एकवार वांचना
२८८	५	वीरोके	वीरोंके
२९०	९	कुनखो	कुनखी
२९२	२०	हिसा	हिंसा
२९२	२१	१०	२०
२९२	२२	२४ । ४]	२५ । ५]
२९२	२३	२७ ।	१७ ।
२९४	९	(उक्षत्तं)	(उक्षन्तं)
२९६	१०	पिताहे	पिता हे
२९६	२१	तुम पर	तुम परम
२९७	१४	क्षय	क्षयं
२९७	१५	५४	६४
२९८	४	(आदितिः)	(अदितिः)
२९८	५	लोंक	लोंक
२९९	९	भूवातो	भूर्वातो
३०१	१	पित मरुतां	पितर्मरुतां
३०१	९	अपराधोंके	अपराधोंको
३०२	९	वर्णोंकी	वर्षोंकी
३०२	१०	(भस्मन्)	(अस्मत्)
३०२	१८	तवस्तेम	तवस्तम

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३०२	१९	पर्षिंण:	पर्षिंण:
३०३	२	जनाद्दि	अनादि
३०४	२	सा	सो
३०४	४	सयुक्त	संयुक्त -
३०४	१७	वभूति	विभूति
३०५	१	वस्तां	वस्तो
३०५	७	व्रुराने	वुलाने
३०५	७	प्रसन	प्रसंन
३०६	५	अशोय	अशीय
३०६	२३	बचाआ	बचाओ
३०७	४	उनको	उनके
३०८	३	नि	भि
३०८	६	रुद्व्रयत्ते	रुद्रयत्ते
३०८	१४	विदु	बिन्दु
३०९	१५	(भूरेः)	(भूरेः) महान्
३११	१२	(मृगंत)	(मृगंन)
३११	१७	१२	११
३१२	१३	सा	सो
३१३	१	(त्व)	(त्वं)
३१३	१२	(या) जो	(या) जो (शुचीनि) पवित्र
३१५	२२	हवन श्रुनो	हवन श्रुन्नो
३१६	१५	(मेघपतिं)	मेघपतिं
३१९	४	सुवर्ण	सुवर्णके

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३१९	२१	भड़े	भेड़
३२०	१	राजाको	राजाकी
३२०	१८	(साम)	(सोम)
३२१	२	इमको	इमको न
३२२	१	मायये तै	मायये तो
३२२	९	पदार्थोको	पदार्थोंको
३२४	२१	(इन्द्र)	(इन्द्रः)
३२८	३	भन	मन
३२८	१०	पूरुषो	पुरुषो
३२८	२०	स्वरूथ	स्वरूप
३२८	२१	मध्यवती	मध्यवर्ति
३३१	१०	उपरत	उपराम
३३२	२	(पितर)	(पितरं)
३३२	२४	यज्ञको	यज्ञके
३३३	१६	मातारं	मातरं
३३४	२१	द्विताय	द्वितीय
३३५	१५	मृत्यो	मृत्योः
३३५	१६	याग्य	योग्य
३३५	२४	जाना	जानो
३३६	२३	म्रण्डलका	मण्डलका
३३७	४	मेरेमें	मेरेमें
३३७	११	अक्षय	अक्षय उत्तम
३३७	१९	ज्ञानी	ज्ञानीमुनि
३४०	२	काठस सं० १९ । १२]	काठक सं० १९ । ११]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४०	१४	अथ० १३ । २९]	अथ० १३ । २ । ९]
३४०	२०	अप्स्वरन्तः	अप्स्व १ न्तः
३४१	५	७ । ७९ । २]	अथर्वण ७ । ७९ । १]
३४१	१०	अथ० ७ । ४९ ।]	अथ० ७ । ४९ । १]
३४१	२४	अथ० १९ । ३७ । १]	अथ० १९ । ३७ । २]
३४२	१	ज्योतिर्हृरः	ज्योतिर्हृरः ॥ चेतन ज्योतिहर है विरुक्त ४ । १९]
३४२	२४	चेतन घन	चेतन घन
३४३	१७	यज्ञरुपसे	यज्ञरूपसे
३४३	१९	(हसः)	(हंसः)
३४४	४	रुपवाला	रूपवाला
३४४	७	भूमिरुप	भूमिरूप
३४४	१०	पूरुष	पुरुषं
३४५	४–५		इसके......हुआ है ॥ जास्ति लिखा है सो मत वांचना
३४५	८	हुआं	हुआ
३४५	१४	जीवन	जीव
३४५	१८	इन्द	इन्द्र
३४६	१०	अकः	अर्कः
३४६	२१	द्योमें	द्यौमें
३४७	२	वृष्टयः	वृष्ट्यः
३४७	११	सूयं	सूर्यं
३४८	५	यह	यह विश्व
३४८	५	वेदाह	वेदाहं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३४९	४	दैत्योंका	दैत्योंको
३४९	५	जरामि	जराभिः
३५०	१३	देहरुप	देहरूप
३५१	२१	हम हें	हम हैं
३५२	५	थस्या	यस्या
३५२	१२	कल्पित रुप	कल्पितरूप
३५२	१६	मदिस्यै	मादित्यै
३५२	२२	मित्रावरुण	मित्रावरुणा
३५३	११	मासो	मासी
३५३	१३	हरत्ता	हरत्तां
३५३	१९	कि सो	के, सो
३५४	१७	मेधरुप	मेघरूप
३५४	२५	गहन	गहनं
३५५	४	वृतः	वृत्रः
३५५	७	जलके प्रथम " मेघका नाम है " अधिक वांचना	
३५५	२५	वक्ष्यत	वक्ष्यंत
३५७	२०	भूरिस्यात्रां	भूरिस्थात्रां
३५८	७	जीवन	जीव
३५८	१०	व्यापीमें अप्रवेश	व्यापीमें प्रवेश अप्रवेश
३५९	१	नू	तू
३५९	१	सष्टि	समष्टि
३६०	१२	वन	वना
३६०	१३	उपासको	उपासकका

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३६०	११	दूषि	द्वेषि
३६१	६	है	हैं
३६५	९	अङ्गिश	अङ्गिरा
३६६	३	वानय	वातय
३६७	१	घि	धि
३६७	९	९ ५	९ । ५
३६९	३	ब्रवय	ब्रह्मा
३६९	१५	१२	२२
३७०	२१	गृणेभिः	गुणेभिः
३७२	३	कात्तिकेय	कार्त्तिकेय
३७२	१९	अद्रितीय	अद्वितीय
३७३	१८	अथ० ६ ।७२।	अथ० ६।७२।१]
३७४	६	अथ० २३।२।३॥	अथ० १३।२।३]
३७६.	२		करते हैं ॥ से पीछे " अथर्वण ११।१०।३२] व्याख्या—उस आत्मज्ञानसे ही जाननेवाला मुमुक्षु अपने शरीरमें इस अपरोक्ष भीतर बहार व्याप्त होकर बिराजमान व्यापक स्वरूप रुद्रको इस प्रकार अनुभव करता है, जैसे गोशालामें गौयें वास करती हैं, तैसे ही इस देशमें सब इन्द्रियोंके अग्नि वायु सूर्य आदि देवता निवास करते हैं " अधिक वांचना

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३७६	५	ब्रह्मष	ब्रह्मा
३७६	१७	१० । २२	१० । ७ । २२ ॥
३७८	३	पठकर	पढकर
३७८	१६	वर्षद्कारेण	वषट्कारेण
३७८	१७	एते	एते वै
३७९	१३	प्रजायतेर्वा	प्रजापतेर्वा
३८०	३	गृहस्य	गृहस्थ
३८०	३		" क्षीर " माल्पूआ के पीछे अधिक वांचना.
३८०	६	केवलाधो	केवलाघो
३८०	१२	१९	२९
३८०	१६	उग	उत
३८१	१३	वानौ	पानौ
३८२	९	स्वा	रचा
३८२	१३	लोकोंक	लोकोंको
३८२	१५	तीत	प्रतीत
३८२	१८	यो	यौ
३८२	१८	चतुष्यद	चतुष्पद
३८३	१		(वित्तं) धनके प्रथम वांचना
३८३	४	पाणि	प्राणि
३८४	८	इसाथे	इशाथे
३८४	१७	भ्यु	म्यु
३८९	१०–१७	मृउतं	मृऽतं
३९२	१९	ग्राह्य!	ग्राह्य.

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
३९२	२२	नाश	नाशके
३०२	१	(इषु)	(इषुं)
३९४	२	ह्रिसिष्टं	हिंसिष्टं
३९६	६	वालोले	बाले
३९७	१८	ब्रह्मानिरुक्तं	ब्रह्माऽनिरुक्तं
३९८	१	रुपाय	रूपाय
४००	८—७	तृणग्तु	वृणक्तु
४००	१०	(न)	(नः)
४०२	१६	(अमिभः)	(अभिभः)
४०४	८	(रुद्र) रुद्र	(रुद्र) हे रुद्र
४०४	१५	हुए	हुए
४०६	२२	रुदं	रुद्रं
४०६	२३	जिह्वये	जिह्वये
४०७	४	जिह्नया	जिह्वया
४०७	१५	श्यावाश्व	श्यावाश्वं
४०८	८	रूपाय्यर्जना	रूपाय्यर्जुना
४०८	२०	अर्जुन	अर्जुनः
४०९	१८	वूही	ब्रूही
४१०	१५	(पियरुणां)	(पियारुणां)
४१०	१९	हिसा	हिंसा
४११	५	पपाती हैं	पचाती है
४१३	८	यज्ञं	यक्षं
४१३	१६	(यज्ञं)	(यक्षं)
४१४	९	महदयक्ष	महदयक्षं

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४१४	१९	कॆंवडा	कॆंकडा
४१५	१२	तकमना	तक्मना
४१५	१२	विषण	विषेण
४१५	१६	(विषण)	(विषेण)
४१६	५	(भव)	(भव:)
४१७	२१	चन्द्रमा	चन्द्रमाका
४१८	१५	प्रतीत	प्रतीक
४१९	१९	क्कारे	कारे
४१९	२२	(इवभ्य:)	(इयभ्य:)
४२२	९	इन्द	इन्द्र
४२४	९	२२	१२
४२३	१	रुद्रा	रुद्रो
४२८	१९	——	उसके पीछे "(अपन्नवत्)" अधिक वांचना
४३२	१५	रुद्रु	रुद्र
४३४	४	(उन)	(उत)
४३४	१५	ब्राहय	बाह्य
४३५	११	(शफात्)	(शफान्)
४३७	९	सेवकाको	सेवकोंको
४४०	१३	कारण	करण
४४०	१७	१	११
४४०	१९	यभ	यम
४४१	३	नवभो	नवमो
४४१	९	पष्ठः	षष्ठः

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४४१	१७	पच	पंच
४४३	६	दामान्न	दायान्न
४४३	१६	५६	५५
४४६	५	प्रजव	प्रणव
४४७	४	२५	१५
४४७	१९	चाक्लृये	चाक्लृपे
४४९	४	सहिता	संहिता
४४९	५	कपिष्टल	कपिष्ठल
४४९	६	——	यजुर्वेदीय हैं के पीछे " और, पीछेकी दो शुक्ल यजुर्वेदीय हैं " अधिक वांचना
४५२	११	१ ।	२ ।
४५३	५	४ ।	४ । ७]
४५५	८	ब्रह्मानों	ब्रह्माने
४५५	८	क्रिया	क्रिया
४५५	१७	प्राण	प्राणा
४५६	१६	का	को
४५७	६	मा० स	मा० सं
४५७	९	२१ ।]	२१ । ४३]
४५७	१५	३ । ७ । ९]	३ । ७ । ७]
४५८	७	रुद्ब	रुद्र
४५८	२२	वज्रो	वज्रौ
४५९	३	कपिष्टल	कपिष्ठल
४५९	१६–१७	तै० सं० ५ । ७ । ३ ।	तै० सं० ५ । ७ । ९ । ३]

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४६०	४	गेवताओं	देवताओंका
४६१	५	——	सौम्य के पीछे "देह" अधिक बांचना
४६१	१२	मोदनो	मोदन
४६२	१५	एश्वर्यकी	ऐश्वर्य्यकी
४६२	१९	ह	है
४६२	१८	अग्निसोम ८	अग्निसोम ९
४६४	१९	गुरु	गुरुने
४७१	१	सूयको	सूर्यको
४७१	३	समस्रा	सहस्रा
४७१	१०	अकर	अकरं
४७१	१६	मण्डल	मण्डलही
४७३	३	खङ्ग	खङ्ग
४७३	७	मेगरूप	मेघरूप
४७३	११	ऋतुर्मे	ऋतुमें
४७३	१३	हेंतर्भि	हेतिर्मि
४७३	१४	सिन्चन	चिन्चन
४७४	१२	सोहो	सोही
४७४	१६	धावा	द्यावा
४७५	१२	स्थानकु, समय	स्थान कुसमय
४७६	१०	देवांके	देवोंके
४७६	१७	अवस्था हो	अवस्थाहो
४७७	११	——	अघोरके पीछे ओर ब्रह्माके प्रथम "हैं, इन्द्र घोर,

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
			प्रजापति घोर अघोर, " अधिक वांचना
४७८	९	२ । ३४ । १०]	ऋग्० २ । ७ । ३३ । ५]
४७८	१५	मृत्यर्वा	मृत्युर्वा
४७९	१५	पशवा	पशवो
४८०	३	त्रय	त्र्यय
४८०	३	——	त्र्यक्षि " के पीछे "शत्र यक्षि ५" अधिक वांचना
४८१	५	——	मंत्रका अर्थ " नित्य तरुण यज्ञोपवीत धारण करनेवाले दश प्रकारकी पुष्टिओंके स्वामीको वारंवार प्रणाम है ॥ ५ ॥ " अधिक वांचना
४८४	२३	५ । ५ । २ । ४८]	७ । ५ । २ । ४८]
४८५	२५	तएषऽएवैन	तएष उएवैन
४८६	१०	प्रजाको के	प्रजाको के पीछे " फल देऊँगा ॥ राजाकी धर्म अज्ञाको पालन करनेवाली प्रजाको" अधिक वांचना
४९०	१९	अलिगी	अलिंगी
४९२	६	——	॥६॥ केप्रथम "ओर आपको प्रणाम है" अधिक वांचना
४९२	८	कुत्तो	कुत्तों

पृष्ठ	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
४९४	४	——	सिवार्त्रग्नः केप्रथम "सीन्द्रस्य वज्रोऽ" अधिक वांचना
४९४	९	शाखनी	शाश्वनी
४९४	१३	साम सं० । ५।३।५।३]	साम सं० पू० ३ । ५ ३]
४९४	१४	नाकं	नाकं
४९५	१४	——	स्वरूपके आगे ओर समष्टिके पीछे "ब्रह्मका व्यष्टि स्वरूप" अधिक वांचना
४९५	२१	कष्ठायच	कण्ठायच
४९७	११	शीघ्नायच	शीघ्रायच
४९७	१३	ऊर्म्यायच	ऊर्म्यायच
४९८	१	वर्ती	वर्ती
५००	६	नन्वायाच	नन्थायच
५००	१५	व्रुधाय	युधाथ
५०३	१३–१८	ह	है
५०३	२०	का	को
५०५	२०	श्शाष्टयाथ	श्शाष्प्यायच
५०६	१२	उपर	उषर
५०७	९	और	और हरे
५०७	१४	लप्साय	लप्यायच
५०८	६	उद्गर	उद्गुर
५०८	६	भिघ्नते	भिघ्नते
५०९	१०	रुद्र	रुद्रसे
५०९	१८	दापे	द्रापे

पृष्ट	पंक्ति	अशुद्ध	शुद्ध
५१०	६	है	हे
५१०	१२	पुस्तङ	पुष्टङ
५१२	१७	परन्तु ताः	पन्तु ताः
५१९	८	वष	वर्षेद्दी
५१९	१६	मलयन्तु	मृलयन्तु
५२१	७	शरय्या	शरण्या
५२२	२	क्या	क या
५२४	२	शे	से
५२४	१२	मेदी	मदी
५२५	५	परेण	प्रेरणा
५२७	१२	नडं	नः
५२८	३	सम्पत्र	सम्पन्न
५२८	१४	यक्ति	शक्ति
५३०	१४	दशतों	दशतो
५३०	१७	मत्वा	मित्वा
५३०	२१	(लांकाः)	(लोकाः)
५४१	१३	दशादज्ञाओंके	दश दिशाओंके
५५५	१२	अरति	अरतिं
५५९	५	इन्दः	इन्द्रः
५६०	१८	विष्णुर्व्र	विष्णुर्वृ
५६२	२	(शघः)	(शर्धः)

चतुर्वेदीय रुद्र सूक्तके पुस्तक छपानेमें मदद करनेवाले सज्जनोंके नाम

रूपीया	नाम
१००	बालशंकर धीरजराम पंडया (भालाद)
६१	दलाल हरिशंकर गंगारामकी कुंपनी (रोहिरा)
५१	दलाल भगवानदास हेमाशंकरकी कुंपनी (”)
५१	दलाल नारायण गंगारामकी कुंपनी (”)
५१	दलाल दलपतराम प्रेमजीकी कुंपनी (,,)
५१	दलाल भवानीशंकर प्रेमजीकी कुंपनी (,,)
५०	वैद्य अमृतलाल नागेश्वर (राजपीपळा)
४१	दलाल हरिराम कीसनाजीकी कुंपनी (रोहिरा)
२५	दलाल रतनलाल माहाशंकरजी (”)
४८१	

इन सज्जनोंकी तरफसे जो रकम मददमें मिली है उस मददके बदलमें काशी आदि क्षेत्रोमें विद्वान महात्माओंको पुस्तक विना मुल्य देनेमें आवेगा ॥

पुस्तक मिलनेका पताः—

स्थलः—श्रेयस्सत्र, मु. राजपीपला, (गुजरात)

(1) गोभिलगृह्यसूत्र

उदयनारायणसिंह - श्रीहरप्रकाश कार्या
मधुरापुर - विद्दुपुर - मुजफ्फरपुर

ACC No 5021